विषयानुसूची क्रम

प्रथम खण्ड

कथाभूमि का विस्तार , पात्र-मण्डल और चरित्र - शिल्पन : कृष्ण : निर्बाध देवो नायक , अनिरुद्ध : शौर्यवृत्तों का वीर पुरुष , बाणासुर : अकेला और सबल प्रतिनायक , उषा : शृंगार-काव्यों की रूप-प्रतिमा , कुम्भाण्ड : कुशल मंत्री का रू; चरित्र , अन्य पात्र , चरित्रीकरण में 'जादू' का तत्व , निष्कर्ष बिन्दु , छन्द-विधान ।

(४) काव्यसौंदर्य के धरातल पृ० १३५-१७२

सौंदर्य-चेतना के आधार , बाणासुरकथा में नारी-सौन्दर्य का रूपायन, पुरुषरूप का बिम्बांकन , अति मानवीय रूप का भावन , प्राकृतिक सौन्दर्य का अविकल्पन , भावलोक के विविध चित्र , प्रेम की भावस्थितियाँ , युयुत्सा के भाव-चित्र , क्रोध और भय की रंगछायाएं , वैचित्र्य का तत्व और हास्य , माध्यम का सौंदर्य : बिम्ब-रचना और ऐन्द्रिक संवेदन , चाक्षुष-बिम्बों की विपुलता , नाद-बिम्ब , अन्य राग-बोधों से सम्बन्धित बिम्ब , संगीत-चेतना : श्रावणिक मूल्य , अलंकरण : यमक- क्रीड़ा , भाषिक संदर्भ : शैलीगत रूप ।

(५) कश्मीरी भाषा : उद्गम और विकास दिशाएं पृ० १७३-२२४

विकास-यात्रा का प्रथम चरण : वैदिक युग , ग्रियर्सन की स्थापनाएं , कश्मीरी और पैशाची , कश्मीरी और दरद परिवार : सम्बन्धों की पुनर्परीक्षा, दरद और भारतीय आर्य भाषा : सम्बन्ध-सूत्र , कश्मीरी और दरद बोलियां : असमानताएं ध्वन्यात्मक अंतर, रूपात्मक अन्तर, कश्मीरी : भा० आ० भा० परिवार में स्थान , शब्दावली , ध्वनि-तत्व, कश्मीरी संख्यावाचक शब्दों की प्राचीनता , रूप-संघटना, कश्मीरी और अन्य न० भा० आ० भाषाएं : समानता के सूत्र , कश्मीरी एक विशिष्ट भाषा , कश्मीरी भाषा : विकास का लिखित साक्ष्य : 'कुल सम्प्रदाय' की भाषा , राजतरंगिणी के वाक्यांश , महानय प्रकाश : सर्वंचर देश भाषा , लल्लेश्वरी के 'वाक्य' - शेख नूरुद्दीन के 'श्लोक' मध्यकालीन ह्रास , वर्तमान स्थिति : धर्म के आधार पर बोली-भेद ।

द्वितीय खण्ड

(१) बाणासुरकथा की भाषिक विशेषताएँ पृ० २२६-३१८

पुरानी कश्मीरी : ललेश्वरी की भाषा और बाणासुरकथा, महानय प्रकाश की भाषिक प्राचीनता , महानय प्रकाश और बाणासुरकथा : सम्बन्ध-सूत्र बाणासुरकथा की भाषिक संरचना , देश्यभाषा का संदर्भ , फारसी से भिन्न भाषिक प्रकृति , अन्य भाषाओं के शब्द , ग्राम-गिरा का रस , बाणासुरकथा और आधुनिक कश्मीरी , बाणासुरकथा और भा. आ० भा० की विकास-दिशाएँ अनुलेखन पद्धति , ध्वन्यात्मक विशेषताएँ , स्वर : स्वर-लोप, स्वर-संकोचन,स्वर परिवर्तन दिशाएं, परिवर्तन , 'ऋ' की/ व्यंजन : व्यंजन-लोप , व्यंजन परिवर्तन , 'ण' और 'ज्ञ' की स्थिति , व्यंजन समुदाय , अर्द्ध-स्वरों से संयुक्त व्यंजनगुच्छ , 'र' से संयुक्त व्यंजन , ऊष्म ध्वनियों से संयुक्त व्यंजन-गुच्छ , सन्धि , रूप-संघटना : संज्ञा-रूप लिंग-विधान , वचन , कारक : कर्मकारक के रूप , करणकारक के रूप, संप्रदान-कारक के रूप , अधिकरण के रूप, अपादानकारक के रूप , संबोधनकारक के रूप , परसर्गों का प्रयोग , पूर्वसर्ग , निर्विभक्तिक प्रयोग , विशेषण : संख्यावाचक विशेषण (अ) पूर्ण संख्यावाचक (आ) अपूर्ण संख्यावाचक (इ) क्रमसंख्यावाचक, पुरुषवाचक सर्वनाम , उत्तम पुरुष , मध्यम पुरुष , अन्य पुरुष अथवा दूर संकेतवाचक , निकटवर्ती संकेतवाचक , सम्बन्धवाचक सर्वनाम , अनिश्चयवाचक सर्वनाम प्रश्नवाचक सर्वनाम, निजवाचक सर्वनाम , परस्पर सम्बन्धबोधक सर्वनाम, समूहवाचक सर्वनाम, सार्वनामिक विशेषण : प्रकारवाचक , परिमाणवाचक, क्रियापद : वर्तमानकाल , आज्ञार्थ क्रियारूप , वर्तमानकालिक कृदन्त , घटमानवर्तमान , भूतकाल के रूप : अकर्मक क्रिया : वर्ग १ - वर्ग २ - सकर्मक क्रिया , वर्ग १ - वर्ग २- कर्म पूर्ण अथवा पुराघटित भूत , पूर्वकालिक कृदन्त , भविष्यत्काल के रूप : वर्ग १ वर्ग २ : क्रियार्थक संज्ञा , सहायक और अस्तित्ववाची क्रियाएँ , संयुक्त क्रिया ध्वन्यात्मक क्रियाएँ , अव्यय : क्रिया-विशेषण, कालवाचक क्रियाविशेषण , अवधिवाचक , स्थानवाचक क्रियाविशेषण , रीतिवाचक क्रियाविशेषण ,स्वीकृ

द्वितीय खण्ड

(१) बाणासुरकथा की भाषिक विशेषताएं

सूचक , निषेधवाचक , संयोजक अव्यय : सम्बन्धवाचक : समुच्चय बोधक, विस्मयादि बोधक ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय में

'बाणासुरकथा' १५वीं शताब्दी की एक कश्मीरी काव्य-कृति है जो मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा से नव्य भारतीय आर्यभाषा के रूप में कश्मीरी के विकास का प्रथम और अत्यन्त महत्वपूर्ण लिखित साक्ष्य प्रस्तुत करती है। तत्कालीन काव्य-रूपों और छन्द विधान पर भी यह कृति जो प्रकाश डालती है उससे कश्मीरी भाषा और साहित्य की विकास-यात्रा के विषय में अनेक भ्रान्त धारणाओं का खण्डन होता है। प्रस्तुत प्रबन्ध में प्रथम बार 'बाणासुरकथा' की विशेषताओं को भाषिक और काव्यात्मक संदर्भों में उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है और साथ ही हिन्दी भाषान्तर सहित उसके मूलपाठ का सम्पादन-संशोधन किया गया है। अभी तक यह कृति, असम्पादित और लगभग अछूती, एक हस्तलेख के रूप में भण्डारकर शोध संस्थान, पूना के हस्तलेख पुस्तकालय में उपेक्षित पड़ी हुई थी। और तो और इसका नोटिस भी ब्यूह्लर ने जिन्होंने इसे बीकानेर से प्राप्त किया था, एक गलत नाम - 'बाणासुरवध' के अंतर्गत दिया और उनके बाद जिसने भी इसका उल्लेख किया इसी गलत नाम से किया। प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प ने 'चतुर्दश भाषा निबन्धावली' में संग्रहीत कश्मीरी भाषा और साहित्य सम्बन्धी अपने लेख में इसी नाम से इसका परिचय (?) देते हुए इसकी जो चार पंक्तियां उद्धृत की हैं, वे अशुद्ध हैं। वस्तुत: आज तक किसी ने भी इस महत्वपूर्ण हस्तलेख का अध्ययन करने का प्रयत्न नहीं किया। इस दृष्टि से प्रस्तुत प्रबन्ध इसे अपरिचय के अंधेरे से बाहर निकाल भाषाशास्त्रीय विवेचन और काव्यगत मूल्यांकन के प्रकाश-वृत्त में रखने का प्रथम प्रयास है।

मेरे इस प्रयास के पीछे डा० रमेशकुमार शर्मा, अध्यक्ष तथा आचार्य, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय की प्रेरणा है जिन्होंने इस

दिशा में शोध करने के महत्व पर विशेष बल दिया । शोधकार्य हाथ में लेते समय मेरे लिए भी यह कृति 'बाणासुरवध' ही थी, किन्तु कृति के अंत में दी गयी पुष्पिका में इसका नाम स्पष्टतया 'बाणासुरकथा' दिया गया है, अत: 'बाणासुर-कथा' के नाम से ही इस हस्तलेख का मैंने यह अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

कृति के रचयिता भट्टावतार अथवा अवतार भट्ट के जीवन सम्बन्धी तथ्य दो-एक संकेतों के अतिरिक्त अज्ञात हैं । कृति में अपने विषय में जो संकेतसूत्र उसने दिये हैं उनसे ज्ञात होता है कि कवि श्रीनगर के उत्तर-पश्चिम में गान्धरबल क्षेत्र के लार परगना के शृगालपुरी (वर्तमान शालपुर) गांव का निवासी था और कश्मीर के प्रसिद्ध सुल्तान ज़ैन-उल-आबिदीन 'बडशाह' का समकालीन था । सुल्तान के सभा-पंडित श्रीवर ने 'जैनराजतरंगिणी' में कवि अवतारभट्ट को फारसी भाषा का भारी विद्वान् और देश्य भाषा में 'ज़ैनविलास' नाम के ग्रन्थ का रचयिता कहा है । 'बाणासुरकथा' का उसने उल्लेख नहीं किया है । ज़ैन-उल-आबिदीन का युग कश्मीर के इतिहास में एक ऐसा मोड़ उपस्थित करता है जब कश्मीर फारसी भाषा और संस्कृति के प्रभाववृत्त के अंतर्गत पूर्णतया आ चुका था । संस्कृत भाषा और संस्कृति की यह कश्मीर में एक प्रकार से अवसान बेला थी । फिर भी कश्मीरी भाषा अभी अपना शुद्ध रूप बनाये हुए थी और फारसी के प्रभाव से मुक्त थी । प्रस्तुत प्रबन्ध - जो दो खण्डों में विभाजित है - प्रथम खण्ड में उपलब्ध तथ्यों के आधार पर पहले कवि और कृति का परिचय दिया गया है तत्पश्चात् उस युग के सम्पूर्ण राजनीतिक-धार्मिक-सांस्कृतिक-सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य पर प्रकाश डाला गया है जिसमें कवि का जीवन अवस्थित था । इस विषय पर ऐतिहासिक साक्ष्य उतने ही विपुल हैं जितने उसके निजी जीवन के बारे में विरल ।

'बाणासुरकथा' एक लघु-कथाकाव्य है जिसकी कथाधारा का स्रोत 'हरिवंश पुराण' है । 'कथावृत्त : पौराणिक-मिथकीय ऐतिहासिक संदर्भ' शीर्षक अध्याय में आधार-ग्रन्थ में दिये गये पुराख्यान की तुलना में कवि द्वारा कथा को दिये गये नये मोड़ों और नयी दिशाओं पर दृष्टिपात किया गया है और उसके ऐतिहासिक-

मिथकीय संदर्भों को उजागर करने का प्रयास भी । प्राचीन भारतीय लेखन की प्रवृत्ति इतिहास से मिथक की ओर प्रयाण की रही है । कृष्ण भारतीय पूर्व-इतिहास के किसी युग के राष्ट्रीय आदर्श रहे हैं जिनके व्यक्तित्व के गिर्द मिथक और निजंधरी कथाओं का एक घना जाल बुना गया है । इस जाल के नीचे छिपी वास्तविकता का अनुमान करने का मैंने प्रयास किया है । इस संभावना की ओर भी संकेत किया गया कि भारतीय पुराणों का बाणासुर और प्राचीन असीरयाई इतिहास का असुर बाण-इ-पाल एक ही व्यक्ति हो सकते हैं । कृष्ण के असुर-संहारक जन-उद्धारक बिम्ब को अधिक सशक्त बनाने के लिए हरिवंशपुराणकार ने कृष्ण की बाणासुर पर विजय दिखलायी यद्यपि दोनों के समय में शताब्दियों का अंतर था ।

काव्यगत मूल्यों की दृष्टि से 'बाणासुरकथा' प्रारंभिक कश्मीरी की एक शीर्षस्थ कृति है । कथाकाव्य का रूपाकार होने पर भी सपाट इतिवृत्तात्मकता से वह अनेक स्थलों पर ऊपर उठी है । उसमें सर्वत्र एक नाटकीय संवेदना परिव्याप्त है । कृति की कथात्मकता में कुछ ऐसी मर्म-मधुर भावपरक गीतियां गुम्फित हैं जिनमें जनगीतियों का-सा रस है । सामूहिक और वैयक्तिक प्रार्थनाएं और स्तुतियां भी कथांश के रूप में प्रस्तुत की गयी हैं जो एक धार्मिक काव्य की शिल्प-छाया को दर्शाती हैं । इसी प्रकार वर्णना और अलंकरण का शिल्प-कौशल 'बाणासुरकथा' में ध्यातव्य है । रूप-शिल्पगत इन सब विशेषताओं पर 'रूप और शिल्प के आयाम' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत विचार किया गया है और साथ ही चरित्र-शिल्पन की दिशाओं का अध्ययन भी । अपने छन्द-विधान के कारण कश्मीरी की प्रकृति को ग्रियर्सन ने ईरानी के अधिक निकट माना है । 'बाणासुरकथा' में संस्कृत छन्दों का प्रयोग उनकी इस धारणा का मिथ्यात्व सिद्ध करता है । संस्कृत छन्दों में पुरानी कश्मीरी का श्रुति-सौन्दर्य मुखरित हुआ ही है उन्हीं की-सी प्रवृत्ति लिए 'धद्दो' 'फुरो' और संभवत: दुक्कटिका व कडोक्कुया जैसे कश्मीरी के मौलिक छन्दों के भी इस कृति में प्रथमबार दर्शन होते हैं । इन छन्दों के प्रयोग द्वारा कवि ने भावानुकूल लय की सृष्टि की है जो विशेष रूप से प्रभावित करती है ।

काव्य में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का माध्यम शब्द है। शब्द `भाव का रूपात्मक प्रतीक` है। रूप, भाव तथा शब्द अथवा माध्यम के सौन्दर्य के जो धरातल `बाणासुरकथा` में उभरते हैं उन्हें `काव्य-सौन्दर्य के धरातल` शीर्षक अध्याय में उद्घाटित किया गया है। अवतार भट्ट एक सौन्दर्य लोलुप कवि रहा है। नारी की देह-छबि के अनेक रति-उद्दीपक सौन्दर्य-बिम्ब उसने `बाणासुरकथा` में रूपायित किये हैं। मानवीय रूप के अतिरिक्त प्राकृतिक सौन्दर्य का भी उसमें अविकल्पन है। प्रेम और युद्ध की धुरी पर गतिमान कथावृत्त के कारण प्रेम और युयुत्सा से सम्बन्धित विभिन्न भावदशाएं ही इस कृति में अधिक चित्रांकित हुई हैं। विभिन्न राग-बोधों को संवेदित करने वाले बिम्बों में प्रधानता चाक्षुष बिम्बों की है। अवतारभट्ट की अत्यंत सूक्ष्म संगीत-चेतना इस काव्य-कृति में आद्यान्त क्रियाशील है और श्रावणिक मूल्यों की दृष्टि से उसकी उत्कृष्टता का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। इस प्रकार `बाणासुरकथा` में काव्य-सौन्दर्य दोनों मन द्वारा ग्राह्य और श्रवण द्वारा आस्वाद्य है।

`कश्मीरी भाषा : उद्गम और विकास-दिशाएँ` शीर्षक अध्याय में कश्मीरी के वैदिक मूल की ओर संकेत करते हुए उसकी प्राचीनता के स्तरों को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया गया है। ग्रियर्सन की यह धारणा कि कश्मीरी एक दरद भाषा है इतनी बद्धमूल हो गयी है कि इसकी परिधि के बाहर कश्मीरी पर विचार किया ही नहीं गया है। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या कश्मीरियों को ऋग्वेदिक आर्यों की एक शाखा तो मानते हैं पर उनकी भाषा में दरद आधारभूमि की चर्चा करते हैं। लेकिन कुछ शब्दों के आदान-प्रदान को छोड़कर यह दरद आधारभूमि क्या है, वे स्पष्ट नहीं कर सके हैं। इस अध्याय के अन्तर्गत ग्रियर्सन की धारणा की पुनर्परीक्षा की गयी है और उसे नितान्त भ्रान्त पाया गया है। ग्रियर्सन दरद, पैशाची और ईरानी का लगभग समानार्थक शब्दों के रूप में व्यवहार करते हैं और इस प्रकार समस्या को बेहद उलझाते हैं। इस बात का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है कि दरद और पिशाच एक ही जाति के दो नाम हैं। फिर अनेक आधुनिक भाषा-शास्त्रियों ने यह दिखला दिया है कि दर्दिस्तान विशेष की भाषाएं शुद्धरूप से भारतीय आर्यभाषाएँ हैं, ईरानी नहीं। ग्रियर्सन ने काफिर और दरद भाषाओं

को एक मानकर यह भ्रांति उत्पन्न की, किन्तु दरद भाषाओं का उनका अध्ययन बहुत सतही था । प्रस्तुत प्रबन्ध में मैंने संक्षेप में यह दिखाने का प्रयास किया है कि अपवादों को यदि नियम नहीं माना जाए तो प्राकृत वैयाकरणों द्वारा दी गयी पैशाची की विशेषताएं कश्मीरी पर लागू होती ही नहीं । यही नहीं कश्मीरी और दरद भाषाएं यद्यपि दोनों भारतीय आर्यभाषा परिवार से सम्बंधित हैं, संस्कृत या कहें तो प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के जिन शब्द-रूपों से दरद भाषाओं की शब्दावली विकसित हुई है, कश्मीरी की नहीं । उदाहरणार्थ पानी के लिए कश्मीरी शब्द `पोञ` और `ज़ल` संस्कृत `पानीय` और `जल` से व्युत्पन्न हैं जबकि शिणा में `वारि` से । यही नहीं कश्मीरी और दरद भाषाओं में अनेक ध्वन्यात्मक और रूपात्मक असमानताएं हैं और कश्मीरी और अन्य नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में अनेक महत्वपूर्ण समानताएं हैं जिनकी पूर्णतया उपेक्षा की गयी है । कश्मीरी भाषा सम्बन्धी विवेचन में इन दोनों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न मैंने किया है । इसके साथ ही भारतीय आर्यभाषाओं में कश्मीरी की विशिष्ट स्थिति की ओर भी इंगित किया गया है ।

दूसरे खण्ड के प्रथम अध्याय में `बाणासुरकथा` की भाषिक विशेषताओं— उसकी व्याकरणिक संरचना का अध्ययन प्रस्तुत है । प्रारम्भ में `महानय प्रकाश` और लल्लेश्वरी के पदों की भाषा के साथ उसकी तुलना करके उसके स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न है । `महानय प्रकाश` के लेखक शितिकण्ठ ने अपनी भाषा को `सर्वगोचर देशभाषा` कहा है, अवतार भट्ट ने भी अपनी भाषा को `देश्य` ही कहा है । कश्मीरी के सन्दर्भ में `देश्य` भाषा का क्या अर्थ हो सकता है, इस अध्याय में इस पर भी विचार किया गया है । `बाणासुरकथा` में प्रयुक्त अनेक शब्द-प्राकृत-अपभ्रंश रूपों के काफी निकट हैं । कृति का अध्ययन यह स्पष्ट कर देता है कि कश्मीरी के शब्द-रूपों में ध्वन्यात्मक परिवर्तन की दिशाएं उसके मध्यकालीन विकास के बाद बहुत कुछ वही हैं जो अन्य नव्य भारतीय अन्य भाषाओं ने ग्रहण की थीं । इनमें प्रमुख हैं ऋ का अ, इ, उ में रूपान्तरण और पदारंभ, पदमध्य और पदान्त में रेफ का लोप तथा `च` और `त` का लोप और `य` की श्रुति । संयुक्त व्यंजनों

में एक का दूसरे को आत्मसात करके व्यंजन द्वित्व की प्रवृत्ति 'बाणासुरकथा' में भी मिलती है - कहीं-कहीं अकारण भी । रूप-संघटना में वर्तमानकालीन कश्मीरी के अनेक शब्द अपने पूर्वरूप में दिखजाते हैं और साथ ही संस्कृत से उनके विकास की स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है । वर्तमान कालीन कश्मीर की भाँति क्रियारूपों के साथ सार्वनामिक प्रत्ययों के प्रयोग की प्रवृत्ति 'बाणासुरकथा' में भी है । दरद भाषाओं में यह प्रवृत्ति बहुत ही कम-केवल शिणा के कुछ क्रियारूपों में-- विद्यमान है । शिणा में भी ग्राह्म बेले इसे कश्मीरी का प्रभाव मानते हैं ।

केवल एक हस्तलेख के आधार पर किसी कृति का पाठ-शोध एक अत्यंत दुस्तर कार्य है । फिर भी डेक्कन कालेज, पूना के भूतपूर्व प्रिंसिपल, प्रसिद्ध भाषाशास्त्री तथा पाठालोचन के विशेषज्ञ डॉ० एस० एम० कत्रे के मूल्यवान परामर्श के अनुसार अन्य सहायक सामग्री के आधार पर मैंने इस अत्यंत महत्वपूर्ण कश्मीरी कृति का सम्पादन किया । जिन ग्रंथों का सहारा लिया गया उनमें हरिवंश पुराण, महानय प्रकाश तथा 'सुखदुख चरित्' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । मूलपाठ के साथ 'बाणासुरकथा' का हिन्दी भाषान्तर भी दिया गया है । अनुवाद शाब्दिक न होकर भाव पर आधारित है । अर्थ के जितना हो सके निकट पहुँचने का प्रयत्न किया गया है । अर्थ निर्धारण में हस्तलेख में पंक्तियों के ऊपर, मध्य तथा हाशियों में दी गयी टीका से कुछ सीमा तक सहायता मिली, किन्तु टीका का प्रयास कुछ ही छन्दों के बाद टीकाकार ने छोड़ दिया है । टीका में दिये गये हर अर्थ को स्वीकार नहीं किया गया है । कुछेक शब्दों के अर्थ-संधान में 'महानय प्रकाश' तथा 'सुखदुख चरित' सहायक सिद्ध हुए हैं । अनेक स्थलों पर अत्यन्त अप्रचलित शब्दों के अर्थ निर्धारण में संदर्भ को ध्यान में रखते हुए कल्पना का भी आश्रय लिया गया है । अंत में 'बाणासुरकथा' में प्रयुक्त सभी शब्दों को 'शब्द-सम्पदा' शीर्षक से अनुक्रमणिका दी गयी है ।

आभारी हूँ डॉ० रमेश कुमार शर्मा का जिनके मूल्यवान निर्देशन से विशेष रूप से लाभान्वित हुआ हूँ । अपने आदरणीय पिता, कश्मीरी भाषा के अद्वितीय विद्वान प्रो० श्रीकण्ठ तोषखानी से भी प्रबन्ध के भाषाशास्त्रीय संदर्भों पर विचार-

विमर्श के कारण कई स्थानों पर भटकने से बचा हूं। राजकीय शोध और प्रकाशन विभाग के श्री दीनानाथ यक्ष का विशेष आभार मानता हूं जिन्होंने मूल हस्तलेख के देवनागरी लिप्यांतरण तथा कुछ स्थलों पर अर्थ-निर्धारण में मेरी सहायता की। अंत में उन सब मित्रों और हितैषियों के प्रति धन्यवाद-ज्ञापन अपना कर्तव्य समझता हूं जिन्होंने प्रस्तुत प्रबन्ध की तैयारी में मुझे प्रोत्साहित किया ।

शशिशेखर तोषखानी

कश्मीरी ध्वनियाँ : लिपि-चिन्ह

विशिष्ट कश्मीरी स्वर ध्वनियाँ :

अं आं , उ़ ऊ़ , ऍ , ओ़

विशिष्ट कश्मीरी व्यंजन ध्वनियाँ :

च़ , छ़ , ज़

संक्षिप्त रूप

अ०	-	असमिया
अप०	-	अपभ्रंश
अव०	-	अवधी
अवि०	-	अविकारी
अशोक०	-	अशोकीय अभिलेख
आ० क०	-	आधुनिक कश्मीरी
ऋ० वै०	-	ऋग्वैदिक
क०डि०मा०इं०आ०लैं०	-	कम्पैरिटिव डिक्शनरी ऑफ माडर्न इण्डो-आर्यन लैंग्वेजिज़
क०	-	कश्मीरी
कु०	-	कुमाउंनी
कै०ए०हि०	-	कैम्ब्रिज एन्श्येण्ट हिस्ट्री
गु०	-	गुजराती
तु०	-	तुलनीय
न०भा०आ०भा०	-	नव्य भारतीय आर्य भाषा / भाषाएं

ने०	-	नैपाली
पं०	-	पंजाबी
प०अप०	-	पश्चिमी अपभ्रंश
प० पहाड़ी	-	पश्चिमी पहाड़ी
पा०	-	पाली
प्रा०	-	प्राकृत
प्रा०भा०आ०भा०	-	प्राचीन भारतीय आर्यभाषा | भाषाएं
पु० अव०	-	पुरानी अवधी
पु० गु०	-	पुरानी गुजराती
पु० बं०	-	पुरानी बंगला
पु० मा०	-	पु० मारवाड़ी
बा० क०	-	बाणासुरकथा
बुं०	-	बुंदेली
भो०	-	भोजपुरी
म०	-	मराठी
मनु०	-	मनुस्मृति
म० प्र०	-	महानय प्रकाश
मु० ह०	-	मुहीबबुल हसन
मै०	-	मैथिली
रा०	-	राजस्थानी
रा० ए० ज०	-	रायल एशियटिक सोसायटी जर्नल
लं०	-	लंहदा
लिं० स० इं०	-	लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया
लैं० म० प्र०	-	दि लैंग्वेज ऑफ महानय प्रकाश
वि०	-	विकारी
वै० सं०	-	वैदिक संस्कृत
शि०	-	शिणा

सं०	-	संस्कृत
संबन्ध०	-	संबन्धकारक
सम्प्र०	-	सम्प्रदानकारक
सिं०	-	सिंहली
सि०	-	सिन्धी
ह०वं०पु०	-	हरिवंश पुराण
हिं०	-	हिन्दी
हि० ग्रै० अप०	-	हिस्टॉरिकल ग्रैमर ऑफ अपभ्रंश

==

:: प्रथम खण्ड ::

(१) कृति , कृतिकार और युग परिदृश्य ।

(२) कथावृत्त : पौराणिक, मिथकीय, ऐतिहासिक संदर्भ ।

(३) रूप और शिल्प के आयाम ।

(४) काव्य-सौन्दर्य के धरातल ।

(५) कश्मीरी भाषा : उद्गम और विकास-दिशाएं ।

==

(१)

कृति, कृतिकार और युग-परिदृश्य

कृति-परिचय : अन्यघ्रातं पुष्पम् , अवतार भट्ट : अंधेरे में खोया जीवन-वृत्त , इतिहास के आलोक में कवि का युग:, शान्ति, स्थिरता और सह-अस्तित्व , इस्लामी और अन्य धर्म-सम्प्रदाय , समाज : बदलते हुए चित्र के रंग , सांस्कृतिक मंच : संक्रमण और नवोन्मेष , फारसी भाषा का उदयकाल , कश्मीरी में रचनात्मक उन्मेष , शिक्षा : मदरसे और मकतबे , अर्थतंत्र : सामन्ती उदारता का स्वरूप , नागरिक प्रशासन का ढांचा ।

(१)

कृति , कृतिकार और युग-परिदृश्य

कृति परिचय : अनाघ्रातं पुष्पम्

पन्द्रहवीं शताब्दी की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कश्मीरी काव्य-कृति है 'बाणासुर कथा', और यदि पद्य और कविता के अन्तर को ओझल न होने दिया जाये तो कहा जा सकता है कि उस काल की एकमात्र उपलब्ध कश्मीरी काव्य-कृति है। हरिवंश पुराण के ख्यात् उषा-अनिरुद्ध प्रणय और कृष्ण-बाणासुर युद्ध प्रसंगों से इस लघु कथा-काव्य को बुना गया है। इस कृति में तत्कालीन कश्मीरी काव्य-रूप, छन्द-विधान और भाषा-स्थिति का एक खोया हुआ लोक आलोकित हो उठता है। काव्यगत मूल्यों के अतिरिक्त, जो निःसंदेह काफी उत्कृष्ट है, प्रारम्भिक कश्मीरी के भाषा तत्वों के अन्वेषण की दृष्टि से इसका विशेष महत्व है। राजस्थान में संस्कृत-पाण्डुलिपियों की खोज में निकले ब्यूह्लर को इसकी पाण्डुलिपि बीकानेर में मिली। दूसरी कोई पाण्डुलिपि आजतक उपलब्ध नहीं हो सकी है। भण्डारकर शोध संस्थान, पूना के पुस्तकालय में कश्मीरी पाण्डुलिपियों के शेल्फ में लगभग

पण्डित
सभापण्डित, इतिहासकार श्रीवर हमें यह सूचना तो देते हैं कि अवतार भट्ट सुल्तान द्वारा सम्मानित कवि थे , पर वे केवल उनकी कृति 'ज़ैन विलास' का ही उल्लेख करते हैं जिसमें उनके कथनानुसार राजोक्तियों को पद्यबद्ध किया गया था ।[८] 'बाणासुर कथा' जैसी सुन्दर काव्य-कृति का उल्लेख उन्होंने क्यों नहीं किया – कुछ स्पष्ट नहीं । हो सकता है 'ज़ैन विलास' को ही कवि की प्रौढ़ कृति मानकर उन्होंने 'बाणासुर कथा' का उल्लेख आवश्यक न समझा हो । 'ज़ैन-विलास' यद्यपि आज उपलब्ध नहीं है पर इतना तो कहा जा सकता है कि सुल्तान के 'सुभाषितों' की उद्धरणी में कवि की प्रतिभा का प्रतिफलन संभव नहीं था । अधिक संभावना इसी बात की है कि बादशाह के आदेश पर लिखे गये इतिहास ग्रन्थ[९] में श्रीवर ने राजस्तुतिपरक कृतियों का उल्लेख ही अधिक उचित समझा हो ।

भट्टावतार ने 'बाणासुर कथा' का रचनास्थान भी सूचित किया है– लहर (वर्तमान लार) क्षेत्र का सृगालपुरी (वर्तमान शालपुर) गांव[१०] – जिससे कृति में आये कुछेक ग्राम्य शब्द-प्रयोगों पर प्रकाश पड़ता है । कैसी विडम्बना है कि जिस कृति ('ज़ैन विलास') को इतिहासकार ने महत्व दिया था वह विस्मृति के अंधेरे में विलुप्त हो गयी है और जिसका उसने उल्लेख भी नहीं किया वही आज कवि भट्टावतार की ख्याति का एकमात्र आधार है, बल्कि १५ शताब्दी की कश्मीरी काव्य-मनीषा का एकमेव दर्पण !

'बाणासुर कथा' कलात्मक एवं काव्य-सौन्दर्यात्मक मूल्यों की प्रचुरता के कारण मध्यकालीन कश्मीरी कविता की एक शीर्षस्थ उपलब्धि है । मांसल प्रेम और नारी की देह-छबि के रति-उद्दीपक बिम्बांकन, युद्ध के सशक्त गति-चित्रों की सृष्टि, शब्द-संगीत की मर्म-मधुर झंकार – इन सब के कारण यह कृति काव्य-अध्येता के लिए काफी आकर्षण लिये हुए है ही, पर जैसा पहले संकेतित किया जा चुका है, भाषा-विकास के अध्ययन की दृष्टि से तो एक अमूल्य दस्तावेज़ है । १५वीं शताब्दी में कश्मीरी भाषा का स्वरूप कैसा था,

इस पर प्रकाश डालने के लिए आज हमारे पास दो ही आधार हैं - ज़ैन-उल-आबिदीन के समय में रचित 'बाणासुर कथा' और उसके पौत्र हसन शाह के काल में गणक प्रशस्त लिखित 'सुख दु:ख मोह माया जाल चरितम्' ! इनमें से दूसरी ज्योतिष्य, चिकित्सा आदि विषयों पर लिखी गयी पद्य-कृति है जिसमें काव्यात्मक मूल्यों की खोज करना व्यर्थ है। पर महत्व की बात यह है कि दोनों कृतियों में भाषा का एक-सा रूप उभरा है। गहराई से अध्ययन करने पर 'सुख दु:ख चरित्र' की भाषा 'बाणासुर कथा' की भाषा से केवल एकाध डग आगे की प्रतीत होती है, जो कि वह है।

ग्रियर्सन ने शितिकण्ठ के 'महानय प्रकाश' की भाषा को १५ शताब्दी की कश्मीरी के नमूने के तौर पर प्रस्तुत किया है[११], पर 'बाणासुर कथा' से तुलना करने पर उसके भाषा-स्तर की प्राचीनता साफ प्रकट होती है। 'बाणासुर कथा' का उल्लेख ('बाणासुर वध' नाम से) ग्रियर्सन ने किया अवश्य है, पर उसका अध्ययन बिल्कुल नहीं किया, यहाँ तक कि उसके लेखक का नाम भी उन्हें ज्ञात न था। शितिकण्ठ को १४८० में रचित 'बालबोधिनी न्यास' (१४५० में जगद्दर भट्ट द्वारा रचित व्याकरण-कृति 'बालबोधिनी' की व्याख्या) का भी वे लेखक मानते हैं और इस प्रकार उन्हें १५वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में खींच लाते हैं। शितिकण्ठ इस ग्रन्थ के लेखक रहे हों अथवा नहीं उनका 'महानय प्रकाश' अधिक से अधिक ११वीं-१२वीं शताब्दी का ग्रन्थ है। भाषा-स्तर की दृष्टि से अध्ययन करने पर 'बाणासुर कथा' की भाषा 'महानय प्रकाश' में प्रयुक्त भाषा का अगला चरण प्रतीत होती है और दोनों को जोड़ने वाली भाषात्मक कड़ियाँ भी साफ दिख जाती हैं।

१४वीं शताब्दी की संत कवयित्री ललेश्वरी के पद 'बाणासुर कथा' से बहुत पहले रचे गये थे, पर उनकी भाषा उससे काफी परवर्ती है - आधुनिक कश्मीरी के अधिक निकट। इस विरोधाभास का कारण यह है कि ये पद मौखिक-परम्परा से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आये हैं और हर पीढ़ी में इनकी भाषा

में सूक्ष्म परिवर्तन होते रहे हैं । छः शताब्दियों की अवधि में तो इनका स्वरूप बिल्कुल ही बदल गया । इसके विपरीत 'बाणासुर कथा' काल के एक सुनिश्चित बिन्दु पर लिपिबद्ध की गयी कृति है जिससे इस प्रकार के परिवर्तनों की गुंजाइश ही नहीं रही ।

'बाणासुर कथा' की शब्दावली संस्कृत-बहुला है । उसमें प्राकृत-पाली-प्रभावापन्न शब्दों की भी भरमार है । कहा जा सकता है कि उसकी भाषा विकास की उस अवस्था को घोतित करती है जब कश्मीरी प्राकृत की अवस्था से निकलकर और अपभ्रंश की देहरी को भी पार कर आधुनिक कश्मीरी का रूप धारण करने लगी थी । उसका अध्ययन आधुनिक कश्मीरी के अनेक शब्द-रूपों के विकास पर प्रकाश डालता है और ग्रियर्सन की इस उपपत्ति का मिथ्यात्व सिद्ध करता है कि कश्मीरी भारतीय आर्य भाषा परिवार की भाषा न होकर भारत-ईरानी भाषा प्रवृत्तियों को दर्शाने वाले दरद भाषा समूह की सदस्या है । उसमें एक-या दो को छोड़कर कोई फारसी (अथवा दरद) शब्द नहीं है । यह बात महत्वपूर्ण है क्योंकि उस काल में फारसी राजभाषा घोषित हो चुकी थी और संस्कृत एक हारा हुआ युद्ध लड़ रही थी । इससे यह सूचना मिलती है कि 'बाणासुर कथा' में प्रयुक्त भाषा उस युग में बोलचाल की वास्तविक भाषा के काफी निकट थी । इस बात की पुष्टि 'सुख दु:ख चरित' से होती है । कहा जा सकता है कि 'बाणासुर कथा' में प्रारम्भिक कश्मीरी का शुद्ध रूप-सौन्दर्य निखरा है । यह कृति तत्कालीन काव्य-रूप तथा छन्द-योजना पर भी प्रकाश डालती है । इस दृष्टि से यह भारतीय काव्य-परम्परा के निकट है । इसमें प्रयुक्त अधिकांश छन्द संस्कृत के वर्णवृत्त हैं जिससे छन्दशास्त्र के आधार पर कश्मीरी की प्रकृति को ईरानी के अधिक निकट साबित करने का ग्रियर्सन का प्रयास भ्रामक सिद्ध होता है । वसन्त-तिलकम्, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, स्रग्धरा, शार्दूलम् वैताली आदि संस्कृत छन्दों के अतिरिक्त 'वहो' और 'फुरो' छन्दों का प्रयोग भी हुआ है जो कश्मीरी के उस समय के अपने छन्द प्रतीत होते हैं । 'गणक प्रशस्त'

द्वारा रचित `सुख-दु:ख चरित` में भी इन्हीं छन्दों का प्रयोग मिलता है जो यह द्योतित करता है कि कश्मीरी की तत्कालीन छन्द प्रवृत्ति यही थी ।

अवतार भट्ट : अंधेरे में खोया जीवन-वृत्त

`बाणासुर कथा` के रचयिता भट्टावतार अथवा अवतार भट्ट कश्मीरी कविता के आदिकाल के एक सशक्त और महत्वपूर्ण कवि हैं । उनसे पूर्व संभवत: ११वीं- १२वीं शती में शितिकण्ठ ने `महानय प्रकाश` में तांत्रिक-दर्शन को कश्मीरी के अपभ्रंश रूप में निबद्ध किया और लल्लेश्वरी ने आध्यात्मिक रहस्यवाद और नैतिक-सामाजिक उपदेश का स्वर अपने पदों में मुखर किया । अवतार भट्ट ने, मुहीबबुल हसन के शब्दों में, कश्मीरी भाषा को `प्रथम लौकिक काव्य` दिया । कण्ठ में काव्य का `सुधनद` प्रवाहित करने वाले १५वीं शती के इस प्रतिभावान कवि का जीवन अपरिचय के अंधेरों में खोया हुआ है । केवल कुछ धुंधली रेखायें भर अंतर और बहिर्साक्ष्य के आधार पर उभरती हैं जो बतलाती हैं कि कवि का जीवनकाल जैन-उल-आबिदीन `बडशाह` के समय (१४२० - १४७० ई०) में स्थित था । उस काल के विख्यात इतिहासकार और राजसभा के मान्य पण्डित श्रीवर ने अपने इतिहास-ग्रन्थ `जैनराज तरंगिणी` में संक्षेप में कवि का उल्लेख किया है जिससे पता चलता है कि अवतारभट्ट बडशाह कालीन प्रमुखतम साहित्यिक प्रतिभाओं में गिने जाते थे ।[१२] दरबार में उनको विशेष प्रतिष्ठा थी । उनके समकालीनों में थे इतिहासकार जोनराज और श्रीवर, वैदिक-विद्वान् योध भट्ट जिन्हें फिरदौसी का `शाहनामा` पूरे का पूरा कण्ठस्थ था और जिन्होंने संगीत पर एक ग्रन्थ की रचना के अतिरिक्त `ज़ैन प्रकाश` नामक नाटक लिखा था तथा पण्डित तोत्थसोम जिन्होंने कश्मीरी भाषा में लिखित अपने ग्रन्थ में बादशाह का प्रशस्तिगान किया था । कश्मीरी में रचित इन कृतिकारों के ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु अवतार भट्ट के काव्य-व्यक्तित्व का प्रकाशन

करने वाली कृति `बाणासुर कथा` सुरक्षित है और आज भी इस कवि की प्रतिभा का एक शक्तिशाली बिम्ब उभारती है। कृति का परिचय देते हुए कृतिकार ने स्वयं उसकी रचनातिथि का संकेत किया है —

ज़ैननि पाने विमले राज्ये
हर्विंशे वर्षे कतकिय दिव
सरवस्थ पूज्येत् आज्ये - - - -

अर्थात् स्वयं ज़ैन-उल-आबिदीन के विमल राज्य के छब्बीसवें वर्ष कार्तिक मास में सरस्वती की पूजा के उपरान्त इस काव्य-कृति की रचना हुई।[१३] ज़ैन-उल-आबिदीन का शासनकाल सन् १४२० ई० से शुरू होता है, इस दृष्टि से ग्रन्थ की रचना तिथि १४४६ ई० ठहरती है। कवि की जन्म और मरण तिथियों का कहीं भी उल्लेख नहीं पर इतना तो कहा जा सकता है कि बड़शाह के युग में उनके जीवन का अधिकांश व्यतीत हुआ होगा।

`बाणासुर कथा` के अंत में कवि ने उसके रचना-स्थान का भी उल्लेख किया है —

इति लहरे सृगालपुरीय बाणासुर कथा समाप्ता

संभवत: यही कवि का जन्मस्थान भी था। संस्कृत इतिहास ग्रन्थों में वर्णित `लहर` क्षेत्र वर्तमान लार परगना है - यह नाम फारसी इतिहासकारों ने दिया है - जो सिन्ध नदी की घाटी के पश्चिम में स्थित है।[१४] सृगालपुरी संभवत: वर्तमान शालपुर गाँव है। कश्मीरी `शाल` शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत `शृंगाल` से ही हुई है। मध्य-युगीन कश्मीर के इतिहास में हिन्दू राजशक्ति के पतन और मुस्लिम सत्ता के उदय में लार की भी एक भूमिका रही है। १४वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लद्दाख से आया राजकुमार रिंचन (ल्हाचेन रग्याल्बु रिंचन), जो आगे चलकर सदरुद्दीन के नाम से कश्मीर का प्रथम मुसलमान शासक

बना , सुहबेव के शासनकाल (१३०१ - २०) में उसके प्रधानमंत्री रामचंद्र की अनुमति से इसी क्षेत्र के एक गांव गगनगीर में आ बसा और इसे सत्ता प्राप्ति तक अपना कार्यस्थल बनाया ।[१५] रामचंद्र स्वयं लार क्षेत्र का था । १३२० में बारहमुला के पश्चिम द्वार से प्रविष्ट हो दुलचा अथवा जुलचा (दु-लु-हुवा-चि) नाम का बर्बर और खूंख्वार मंगोल आक्रान्ता[१६] जब आंधी की भांति कश्मीर पर छा गया तो सामना करने के बदले उसको दुर्मद और दुर्दम सेना को अपने अत्याचारों से रौंद डालने का निर्बाध अवसर दे रामचंद्र भाग कर यहीं एक दुर्ग में छिप गया ।[१७] जोनराज लिखते हैं कि दुलचा के साठ हज़ार सैनिकों की बर्बर वाहिनी के आगे कश्मीर के लोगों की दशा आग में झुलस रहे पतिंगों की-सी हो गयी ।[१८] उनकी धन-सम्पत्ति लूट ली गयी, उनके खेत नष्ट कर दिये गये, उनके घर जला दिये गये । हज़ारों ने अपनी जानें गंवायीं । तब राजनैतिक अस्थिरता और उथल-पुथल का लाभ उठाने के लिए रिंचन लार घाटी से बाहर निकला और निकटवर्ती बस्तियों को अपने धावों से उजाड़ने लगा । अंततोगत्वा उसे सत्ता हथियाने में सफलता मिली । उधर दुलचा के आक्रमण का आतंक छाया हुआ था इधर रिंचन लूट-पाट द्वारा असीम धन-सम्पत्ति जमा कर अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में लगा था । कपड़ा-व्यापारियों के वेष में उसने अपने आदमी लार भेजे और अचानक तड़ित्-वेग से दुर्ग पर आक्रमण कर दिया । रामचंद्र पराजित हुआ और मार डाला गया, उसका भाई रावणचन्द्र कुछ काल के लिए बन्दी बनाया गया । बाद में उसकी बहन से रिंचन ने विवाह कर लिया और इस्लाम स्वीकार करके कश्मीर का प्रथम सुल्तान बना ।[१९] इसी लार अथवा लहर के शालपुर गांव के थे कवि अवतार भट्ट ।

कथाकाव्यों की चिराचरित परिपाटी का पालन करते हुए कवि ने अपने गुरु का नामोल्लेख और वन्दना की है -

नमेत् रसाय सलहन आचार्यस
बहुशास्त्रज्ञस यश येन नेव ज्ञानसमुद्रस

ता अतिचार्यस अवतारे बाणासुर केय !

अर्थात् बहुशास्त्रज्ञ, यशस्वी, ज्ञानसमुद्रसलहन आचार्य को नमन करके कवि अवतार ने 'बाणासुर' (कथा) की रचना की । [20] इन सलहन आचार्य के विषय में अन्यत्र कोई प्रकाश नहीं पड़ता । इतिहासकार जोनराज और श्रीवर उनके बारे में एकदम मौन हैं, इसलिए वे कौन थे और क्या थे यह कह पाना असंभव है ।

जहां तक कवि के कृतित्व का सम्बन्ध है श्रीवर ने 'बाणासुर कथा' का कहीं उल्लेख नहीं किया है , किन्तु उसकी एक अन्य रचना 'ज़ैन विलास' के आधार पर उसे अपने समय के प्रतिष्ठित कृतिकारों में गिना है । 'ज़ैन विलास' आज अनुपलब्ध है, पर श्रीवर के अनुसार उस में ज़ैनुलाब्दीन बडशाह की उक्तियां संग्रहीत थीं । [21] ऐसा बादशाह के ही कहने पर किया गया होगा क्योंकि 'बाणासुर कथा' में अवतार भट्ट ने यह संकेत दिया है कि वे राजकवि थे । 'बाणासुर कथा' बडशाह के शासनकाल के छब्बीसवें वर्ष में लिखी गयी थी। श्रीवर इस महत्वपूर्ण कृति के विषय में चुप क्यों है, स्पष्ट नहीं । हो सकता है राजवृत्तान्त लिखते समय यह कृति श्रीवर की नज़रों से नहीं गुज़री होगी, पर इसकी अधिक संभावना नहीं क्योंकि उन्होंने अपनी 'जैनराजतरंगिणी' सन् १४५६ में जोनराज की मृत्यु के पश्चात् लिखी । इस बात की अधिक संभावना है कि श्रीवर ने दरबारी इतिहासकार होने के कारण कवि की केवल उस कृति का उल्लेख किया हो जिसका सम्बन्ध स्वयं बादशाह से था और स्वत: प्रेरित होने के कारण 'बाणासुरकथा' की उपेक्षा की हो ।

कवि के विषय में यह भी ज्ञात होता है कि वह संस्कृत के साथ-साथ फारसी भाषा का भी विद्वान था । श्रीवर ने 'जैनराजतरंगिणी' में उसे 'शाह्नामदेश ग्रन्थाब्धि पारग:' - 'शाहनमा' के देश के ग्रन्थ-सागर को पार करने वाला कहा गया है जिससे स्पष्ट पता चलता है कि अवतार भट्ट ने फारसी के अनेक ग्रन्थों का गहरा अध्ययन किया था । [22] श्रीवर की राजतरंगिणी के

कलकत्ता संस्करण में दिये गये (दत्त द्वारा अनुवादित) पाठ में केवल यह कहा गया है कि कवि ने फिरदौसी के शाहनामा का अध्ययन किया था, किन्तु बम्बई संस्करण और श्रीकण्ठ कौल द्वारा विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के लिए सम्पादित संस्करण दोनों में `शाहनाम देश ग्रन्थाब्धि पारग:' वाला पाठ ही मिलता है । संस्कृत और फारसी के प्रतिष्ठित विद्वान होने पर भी अवतार भट्ट ने `देशभाषा' में ही अपने कवित्व की संभावनाओं का विकास देखा । इससे मातृभाषा कश्मीरी के प्रति कवि का प्रेम द्योतित होता है । इस दिशा में उन्हें बड़शाह से विशेष प्रोत्साहन मिला होगा क्योंकि इस बादशाह ने स्वयं भी कश्मीरी भाषा में लिखा और कश्मीरी में काव्य-सृजन करने वाले अन्य कृतिकारों को संरक्षण-प्रोत्साहन दिया ।

इन कुछ रेखाओं और बिन्दुओं से कवि अवतार भट्ट के जीवन-वृत्त का कोई आकार तो स्पष्ट नहीं होता, केवल उनके व्यक्तित्व-बिम्ब का एक धुंधला-सा आभास-मात्र मिलता है । `बाणासुरकथा' का वक्तव्य-विषय उनके रूमानी भाव-संस्कारों और रुचि का संकेत देता है । अवतार भट्ट ने अपनी इस कृति को `रमणीय आख्य' कहा है[२३], जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि एक कवि के रूप में अपनी शक्ति से परिचित वे एक स्वाभिमानी व्यक्ति थे । विद्वान्, यशस्वी और सुल्तान द्वारा सम्मानित तो वे थे ही ।

इतिहास के आलोक में कवि का युग :

अपने युग के विषय में दो-तीन विशेषणों को छोड़ कवि ने कोई टिप्पणी नहीं की है : अपनी कृति की रचना-तिथि देते हुए उसने अपने समय के शासक ज़ैन-उल-आबिदीन `बड़शाह' के शासन को `विमल' और `सुशुद्ध धर्म-राज्य' कहा है — बस ![२४] परोक्ष रूप से भी कृति में एकाध इशारे के अतिरिक्त कवि के युग के जीवन तथा विश्वास-विचारों का प्रतिबिम्बन नहीं हुआ है ।

सौभाग्यवश उस युग तथा समाज के अनेक चित्र संस्कृत तथा फारसी इतिहासकारों की एल्बमों में सुरक्षित हैं जिनका सहारा लेकर तत्कालीन परिवेश की काल्पनिक पुनर्रचना की जा सकती है।

शांति, स्थिरता और सह-अस्तित्व

हिन्दू शासन के पतनकाल में राजनैतिक षड्यन्त्रों, स्वार्थी तत्वों द्वारा जनता के शोषण और उत्पीड़न, गृहयुद्धों आदि के कारण अशान्ति का वातावरण था और समाज में असुरक्षा तथा निराशा की भावना व्याप्त थी। मुस्लिम राजशक्ति, जिसका उदय यहां शरणार्थी से सम्राट बनने वाले उद्यमी भौट्ट रिंचन के समय में हुआ, अपनी जड़ें गहरी बनाती गयी और उसी के साथ स्थिति धीरे-धीरे बदलती गयी। रिंचन का शासनकाल केवल ३ वर्ष का रहा और उसकी मृत्यु के पश्चात् उदयन देव के समय में कश्मीर ने कुछ काल के लिए (१३२३-३६ ई०) पुन: हिन्दू शासन देखा पर हिन्दू राजशक्ति, जो अत्यंत जर्जर और जीर्ण हो चुकी थी, के लिए उदयन देव का अयोग्य और अनुत्तरदायित्वपूर्ण शासन अन्तिम आघात साबित हुआ। १३३९ में शाहमीर ने शम्सुद्दीन का विरुद धारण कर सुल्तानशाही की सुदृढ़ नींव डाली जो अकबर की कश्मीर-विजय तक बनी रही। ज़ैन-उल-आबिदीन इसी राजवंश से था। उदारता, सुव्यवस्था और न्याय के आधारों पर स्थित उसके शासनतंत्र ने कश्मीर के इतिहास को शान्ति और स्थिरता का एक स्वर्ण-युग प्रदान किया। इससे पूर्व उसके पिता सिकन्दर `बुतशिकन` ने अधिसंख्य हिन्दू जनता पर धार्मिक अत्याचारों और बर्बरताओं के द्वारा लोक-मानस में इस्लामी शासन का भय और आतंकपूर्ण बिम्ब स्थापित किया था। इस कट्टर पंथी शासक के नाम के साथ मंदिरों के विध्वंस, प्रतिमाओं के खण्डन और बलात् धर्म-परिवर्तन की सिहरा देने वाली कथायें जुड़ी हैं। धर्मान्ध इस्लाम प्रचारक सैयद मुहम्मद हमदानी और अन्य उलमाओं के प्रभाव और प्रेरणा के फलस्वरूप सिकन्दर ने हिन्दू-जनता को मूलभूत नागरिक अधिकारों से तक वंचित किया

और गैर-मुस्लिमों के लिए जीना एक प्रश्न-चिन्ह बना दिया । कत्ले आम, लूट-पाट, आगजनी के लोमहर्षक कार्यों में बादशाह और उसके नव-मुस्लिम मंत्री सुहभट्ट ने जैसे सैडिस्टिक आनंद का अनुभव किया । गैर-मुस्लिमों के लिए तीन विकल्प रखे गये — मरो, धर्म बदलो या भागो ! इस नीति के परिणामस्वरूप लारेन्स के शब्दों में, 'बहुत सारे (हिन्दू) कश्मीर छोड़कर भाग गये, बहुतों का धर्म-परिवर्तन किया गया, और बहुत मार डाले गये । कहा जाता है कि सुलतान ने मारे गये ब्राह्मणों के सात मन यज्ञोपवीत में आग लगायी ।'[२५] निश्चय से यह एक अतिशयोक्ति है, पर यह अवश्य एक सच्चाई की ओर भी इंगित करती है । हिन्दू संस्कृति और धर्म से सम्बन्धित जो कुछ भी सामने आया वह धार्मिक कट्टरता के उन्माद में ध्वस्त कर दिया गया । साहित्यिक ग्रन्थों तक को नहीं छोड़ा गया - जिन पर भी सुलतान हाथ डाल सका, लोक-श्रुति है, वे डलझील में डुबा दिये गये । नृत्य-संगीत, नाट्य- चित्रकला सब पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा, केवल सैनिक-वाद्य बचे रहे ।[२६] हजारों की संख्या में ब्राह्मणों के कश्मीर छोड़कर भागने से प्रतिभा और पाण्डित्य को देश-निकाला मिला । इस दृष्टि से सिकन्दर 'बुतशिकन' के युग की प्राय: औरंगज़ेब के युग से तुलना की जाती है । लेकिन उसके पुत्र ज़ैन-उल-आबिदीन का युग कश्मीर के इतिहास में एक नये मोड़ का सूचक है । दमन, आतंक और भेदभाव की नीतियों को एकदम बदल कर ज़ैनुलाब्दीन ने गैर-मुस्लिमों के प्रति उदारता दिखलाई और उन्हें स्वतंत्रता और सम्मान के साथ जीने के मूलभूत मानवीय अधिकार पुन: प्रदान किये । सिकन्दर के निरंकुश आचरण के कारण छिन्न-भिन्न प्रशासनिक ढांचे को फिर से सुव्यवस्थित करने के लिए उसने ब्राह्मण-मेधा का महत्त्व समझते हुए सत्ता संभालते ही जो पहला महत्वपूर्ण कार्य किया वह था कश्मीर छोड़कर भागे हुए ब्राह्मणों को वापस लौटने का आमंत्रण ! फारसी इतिहासकार फिरिश्ता के अनुसार, 'अन्य कदम उठाने से पूर्व उसने (ज़ैनुलआबिदीन ने) निष्कासित ब्राह्मणों को वापस बुलाया और सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता की सार्वजनिक घोषणा कर दी ।'[२७] सरकारी नौकरी के मामलों में धर्ममत नहीं प्रतिभा और योग्यता को प्राथमिकता दी गयी । धार्मिक स्वतंत्रता

के आश्वासन और उच्च-पद-प्राप्ति की संभावना के आकर्षण के कारण ब्राह्मणों का खोया हुआ आत्म-विश्वास लौट आया। परिणाम यह हुआ कि बौद्ध तिलकाचार्य राजकीय परामर्शदाता बने, शिर्य भट्ट न्यायपालिका के एक अधिकारी और रूपभट्ट और सिंह भट्ट जैसे ज्योतिष विद्, कर्पूर भट्ट और शिव भट्ट जैसे वैद्य और बोधिभट्ट जैसे विद्वानों और अन्य प्रतिभा के धनी हिन्दुओं से राजदरबार भर गया। बड़शाह ने हिन्दुओं पर से जज़िया-कर घटाकर तीन पल चांदी से एक माशा कर दिया यद्यपि उलमाओं की भावनाओं का ख्याल रखते हुए उसे पूरी तरह से समाप्त नहीं किया गया[२८] हिन्दुओं पर लागू अनेक अन्यायपूर्ण कानून उसने एकदम ख़त्म कर दिये, महाभारतादि हिन्दू धर्म-ग्रन्थों का फारसी अनुवाद अपने निजी अध्ययन के लिए करवाया। विद्वान् ब्राह्मणों के साथ उसके शास्त्रार्थ करने का भी उल्लेख मिलता है।[२९] इन्हीं कारणों से जोनराज और श्रीवर जैसे हिन्दू इतिहासकारों ने अतिशयोक्तिपूर्ण स्वरों में बादशाह के गुण गाये हैं और उसे 'नारायण का अवतार' तक घोषित किया है। कुछ मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकारों ने उदारता और सहिष्णुता की इस नीति को निंदा भी की है क्यों कि उनके कठमुल्लेपन के यह अनुरूप न थी ; पर अधिकांश ने उसे महान् शासक घोषित किया है। बड़शाह कालीन उदारता के इस वातावरण पर टिप्पणी करते हुए सर ऑरेल स्टोन लिखते हैं कि इसके परिणामस्वरूप हिन्दू-प्रथायें फिर से प्रतिष्ठित हुई[३०] और कश्मीर की सुख-समृद्धि के बीते दिन फिर लौट आये। इस युग में लोगों को अनावश्यक युद्धों और उसके परिणामों का बोझ नहीं ढोना पड़ा और उनकी ऊर्जा साहित्यिक और सांस्कृतिक दिशाओं में गतिमान हुई। ललित कलाओं की पुनर्प्रतिष्ठा हुई, सिकन्दर द्वारा ध्वस्त कई मंदिरों का नव-निर्माण किया गया।[३१] इस प्रकार बादशाह ने मुसलमानों के साथ-साथ हिन्दू जनता के सहयोग से एक उदार और सुदृढ़ मध्यकालीन मुस्लिम राजतंत्र को स्थापित किया जिसने प्रथा और परम्परा को एक झटके से समूल उखाड़ने के बदले धीरे-धीरे नये तत्वों को उनका स्थान लेने दिया। यह स्वाभाविक ही है कि ऐसे बादशाह की इतिहासकार मुग़ल सम्राट अकबर से तुलना करें। कुछ ने तो उसे अकबर से भी

महान घोषित किया । सर वुल्ज़े हेग के मतानुसार `ज़ैन-उल-आबिदीन के विचार अकबर से भी अधिक उदार थे । उसने उस सहिष्णुता को व्यवहार में लाया जिसका अकबर ने केवल प्रचार किया ।`[३२] ज़ैनुलआबिदीन की महानता गुलाम मुहीउद्दीन सूफी के विचार में इस बात में थी कि `अपने धर्म को छोड़े बिना अथवा बिना ऐसी किसी नीति को अपनाये जो उसके धर्म के प्रतिकूल हो, वह अपनी हिन्दू प्रजा से उतना ही, संभवत: उससे भी अधिक, सम्मान और स्नेह प्राप्त कर सका जितना अकबर को मिला था ।`[३३] कुछ लोगों का कथन है कि बादशाह की उदार नीतियों का श्रेय हिन्दू वैध शिर्य भट्ट को जाता है जिसने उसे एक भयंकर रोग से मुक्त किया और बदले में केवल अपने सहधर्मियों के लिए समानता और स्वतंत्रता की माँग की । जो भी हो कत्लेआम, लूट-पाट, आगज़नी की भयंकर स्मृति को जनमानस से पोंछ डालने का ज़ैनुलाब्दीन बड़शाह के समय में काफी प्रयत्न हुआ । इस सबके बावजूद यह समय ब्राह्मण संस्कृति के ह्रास और पश्चिम व मध्य एशियाई इस्लामी संस्कृति के अभ्युदय का था । सिकन्दर `बुतशिकन` ने तलवार की नोंक पर इस्लाम का प्रसार किया था, इस ज़माने में तलवार के स्थान पर अन्य साधनों के द्वारा कश्मीर में इस्लाम फैलाया गया और उसकी जड़ें यहाँ और भी मज़बूत हो गयीं । इस ऐतिहासिक पीठिका के आधार पर कवि अवतार भट्ट के समय के धार्मिक, सांस्कृतिक सामाजिक परिवेश का अध्ययन किया जा सकता है ।

इस्लाम ी और अन्य धर्म-सम्प्रदाय :

सबसे पहले हम तत्कालीन धर्म-सम्प्रदायों की स्थिति तथा आध्यात्मिक संस्थाओं के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे । इसके लिए कश्मीर घाटी में इस्लाम के प्रचार-प्रसार के इतिहास की जानकारी आवश्यक है । इस्लाम से कश्मीर का पहला परिचय आठवीं शती में हो चुका था जब यहाँ अनेक बार अरब आक्रान्ताओं के हमले हुए । तीन सदी बाद मुहम्मद गज़नी अपनी सेनायें लेकर दो बार

कश्मीर पर चढ़ आया । ये अरब और तुर्क आक्रमण सैनिक दृष्टि से सफल नहीं हुए पर इनके कारण ८वीं से ११वीं शताब्दी के बीच इस्लाम की विचारधारा कश्मीर में प्रविष्ट हुई ।[३४] १४वीं शताब्दी के आते आते मुस्लिम शासन के प्रारंभ के साथ ही यहाँ इस्लाम ने अपने पाँव दृढ़ता से जमाये । इस दिशा में जो शक्तियाँ और व्यक्ति विशेष प्रयत्नशील रहे उनमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण नाम है सैयद अली हमदानी । हमदान (ईरान) का यह उत्साही धर्म-प्रचारक अपने समय के मुस्लिम जगत् में विद्वत्ता और धर्मज्ञान के कारण एक अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्तित्व रहा है । सैयद अली हमदानी तीन बार कश्मीर आया — पहली बार १३७२ ई० में, दूसरी बार १३७९ ई० में और तीसरी बार १३८३ ई० में ।[३५] कुल मिलाकर उसने तीन वर्ष और दस महीने कश्मीर में बिताये और इस अवधि में यहाँ इस्लाम धर्म और संस्कृति के प्रचार-प्रसार की दिशा में विशेष रूप से सक्रिय रहा । उन दिनों कश्मीर पर शाहमीर वंश के सुल्तान कुतुबुद्दीन का शासन था । घाटी में मुसलमानों की संख्या बहुत कम थी और हिन्दू अधिसंख्यक थे । यही नहीं रीति-रिवाजों, प्रथाओं आदि की दृष्टि से तत्कालीन हिन्दुओं और मुसलमानों में भेद करना सरल न था ।[३६] मुसलमानों में हिन्दू पूजागृहों और धर्मस्थानों के प्रति आदर की भावना विद्यमान थी । मुहीबबुल हसन के अनुसार अलाउद्दीनपुर में स्थित एक प्रसिद्ध हिन्दू मंदिर में अपनी मुस्लिम प्रजा सहित सुल्तान कुतुबुद्दीन पूजार्थ जाया करता था । अकाल निवारण के लिए उसने एक यज्ञ का भी आयोजन किया था जिसके समापन पर ब्राह्मणों को विशेष दान दिया गया ।[३७] वेश-भूषा सामान्य जनता की और यहाँ तक कि राजा की भी बहुत कुछ हिन्दू ढंग की थी । सैयद अली इस स्थिति से खुश नहीं हुआ और उसने बादशाह को मुसलमानी पहनावा अपनाने तथा इस्लाम के नियमों के अनुसार आचरण करने का आदेश दिया ।[३८] कश्मीर में संस्कृति के इस्लामीकरण में सैयदअली की बहुत बड़ी भूमिका रही है । इस्लामीकरण की यह प्रक्रिया जैन-उल्-आबिदीन के समय में भी, उसकी समस्त उदारता के बावजूद गतिशील रही, बल्कि अधिक तीव्र रूप में प्रकट हुई । इस विषय पर विस्तार से आगे विचार किया जायेगा, यहाँ केवल यह कहना उद्दिष्ट है कि बड़शाह कालीन कश्मीर में इस्लाम एक धर्म और सांस्कृतिक शक्ति के रूप में काफी प्रतिष्ठित हो

चुका था । अन्य मुस्लिम देशों की भाँति यहाँ भी उल्माओं का आतंक था । वे धार्मिक कट्टरता और संकीर्णमन्यता के प्रतीक बन चुके थे और अशिक्षित और अर्धशिक्षित जनता पर उनका गहरा प्रभाव था । शासक वर्ग भी उनसे आतंकित रहा करता था और इस बात की पूरी कोशिश करता था उनसे सम्बन्ध मधुर ही बने रहें । स्वयं ज़ैनुलाब्दीन ने उल्माओं से आदर्श न सही तो अच्छे सम्बन्ध रखे ।[३९] शरियत के अनुसार शासन-व्यवस्था चले और इस्लाम में किसी नये विचार-तत्व का प्रवेश न होने पाये-- इस बात के लिए ये लोग विशेष सतर्क - सावधान और लड़ने-मरने के लिए सदा तैयार रहते थे । यह सोचना ग़लत होगा कि इन लोगों का प्रभाव क्षेत्र केवल धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं तक ही सीमित था , धर्म और राजनीति में अभेद मानने वाले ये लोग प्राय: राजनैतिक मामलों में टाँग अड़ाया करते थे । मुफ़्ती, काज़ी, शेख-उल-इस्लाम आदि प्राय: इन्हीं में से चुने जाते थे ।[४०]

इन उल्माओं में सैयद सम्प्रदाय के उल्मा विशेष प्रभाव और शक्ति रखते थे । हमदान के सैयदअली की चर्चा हम कर चुके हैं । उनके बाद कश्मीर में सैयदों का तांता लग गया । मध्य एशिया और ईरान में राजनैतिक उथल-पुथल के कारण, विशेष कर तैमूर द्वारा सताये जाने पर सैयद वहाँ से भागने को विवश हुए । सैयद अली के पुत्र सैयद मुहम्मद हमदानी के नेतृत्व में सात सौ सैयदों ने सिकन्दर बुतशिकन के शासनकाल में कश्मीर में शरण ली ।[४१] सिकन्दर और उसके मंत्री सुह भट्ट की हिन्दू-उत्पीड़न नीति में सैयद मुहम्मद और उसके अनुयायियों के उकसाने का बहुत हाथ रहा है । कवि अवतार भट्ट के समय में भी सैयदों का काफी दबदबा था क्योंकि हज़रत मुहम्मद की पुत्री फातिमा के वंशज होने के कारण उन्हें काफी श्रद्धाभाव से देखा जाता रहा है । राजदरबार में उन्हें विशेष सम्मान तथा प्रतिष्ठा प्राप्त थी । कश्मीर के सुल्तानों ने उन्हें हर प्रकार की सुविधायें प्रदान कीं और अनेक को काज़ी और मुफ़्ती के पदों पर नियुक्त किया ।[४२] यह स्वाभाविक था कि इन कारणों से सैयदों की शक्ति और प्रभाव में बहुत वृद्धि

हुई और इसकी अभिव्यक्ति उनकी राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं में हुई । बेहकी सैयदों ने तो कश्मीर की राजनीति में खुल्लमखुल्ला सक्रिय भाग लिया जिससे स्थानीय लोगों में असंतोष और रोष की भावना प्रबल हुई और आगे चलकर ज़बर्दस्त गृहयुद्ध तक की नौबत आयी । कश्मीर की सभी सामन्ती शक्तियाँ सैयदों को निकाल बाहर करने के लिए एकजुट हो गईं ।

मध्ययुगीन कश्मीर के धार्मिक-साम्प्रदायिक समूहों में सैयदों के अतिरिक्त सूफियों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । घाटी में इस्लाम के प्रचार-प्रसार की दिशा में इनकी विशिष्ट लोक-प्रिय भूमिका रही है, इनका हथियार आतंक या हिंसा न होकर आचरण की शुद्धता और सादगी था । इनके कादिरी, सुहरावर्दी, कुब्रवी, नक्शबन्दी और नूरबख्शी ये पाँच सम्प्रदाय कश्मीर में अपनी जड़ें स्थापित कर चुके थे और ईरानी तथा तुर्की मूल के थे । स्थानीय `ऋषि` सम्प्रदाय को भी सूफियों के ही अन्तर्गत रखा जा सकता है । प्रसिद्ध कश्मीरी सन्त-कवि शेख़ नूरुद्दीन इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे यद्यपि लोकश्रुति का हवाला देते हुए नावेल्स ने हज़रत मुहम्मद के समकालीन किन्हीं यमन निवासी ख्वाजा उवैस को इसका बानी माना है ।[४३] `ऋषि` शब्द साफ संस्कृत का है और कश्मीर के इन मुस्लिम `ऋषियों` पर निःसंदेह हिन्दुओं के अद्वैत और शैव-दर्शन का काफी प्रभाव पड़ा है । शेख नूरुद्दीन के पदों का अध्ययन करने पर यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है । ये सूफी-सन्त केवल आध्यात्मिक ऊर्ध्व-लोक में ही नहीं विचरण करते थे, अपितु समाज में भी एक स्वस्थ भूमिका निभाते थे । अन्याय और अत्याचार के विरोध में ये निर्द्वन्द्व अपनी आवाज़ उठाते और सामाजिक न्याय और समानता पर बल देते । `ऋषि` लोगों की जीवनचर्या, विरक्ति, त्याग और कठिन तपस्या की थी । खानकाहों में रहने वाले पीरों और उनके मुरीदों की संख्या भी इन दिनों काफी हो चुकी थी । लोग इनके पास मनौतियाँ लेकर जाया करते और ये लोगों के अंधविश्वास और अज्ञान से फायदा उठाने में नहीं चूकते ।

ग़ैर-मुस्लिम धर्म सम्प्रदाय भी अनेक थे । इनमें शैवों और शाक्तों का

प्राबल्य था । दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक का समय कश्मीर शैव-धर्म का उत्कर्ष काल था ; जब प्रत्यभिज्ञा दर्शन के प्रमुख ग्रन्थ और उनपर टीकायें प्रकाश में आ चुकी थीं । 'बाणासुर कथा' में अनिरुद्ध को दुर्गा की स्तुति करते हुए दिखलाया गया है जब कि मूल हरिवंश पुराण में वह वैष्णवी देवी की स्तुति करते हैं । इससे स्वयं कवि अवतार भट्ट की शाक्त आस्था का संकेत मिलता है । इस युग के इतिहासों में बौद्धों और जैनों के अस्तित्व का भी उल्लेख है यद्यपि उनकी संख्या और शक्ति काफी क्षीण हो चुकी प्रतीत होती है । ज़ैन-उल-आबिदीन के दरबार में बौद्ध तिलकाचार्य की काफी प्रतिष्ठा थी । श्रीवर ने जैनों के श्रीजैन सम्प्रदाय का उल्लेख किया है जिनके पात्र-पूजन के उत्सव में स्वयं बादशाह भाग लिया करता और क्षपणकों को भोज दिया करता था ।[४४] इस युग के इतिहासों में योगियों अथवा जोगियों का भी उल्लेख है जिनके लिए डल-झील के किनारे वर्तमान रैणावारी (श्रीनगर) के निकट ज़ैन-उल-आबिदीन ने एक 'लंगर' की स्थापना की थी जहाँ उनके नि:शुल्क भोजन की व्यवस्था थी।[४५] यह स्थान आज भी 'जोगी लंकर' के नाम से जाना जाता है । योगियों को बादशाह जोनराज के अनुसार 'मुद्राकर्दर कन्थादि' तथा 'कुण्डलं हेमपात्राणि दुकूलमपि' का दान दिया करता था । उसके समय में एक विद्वान (जोनराज के अनुसार 'पुस्तकाडम्बर' करने वाले) तथा सम्मानित सैयद (सैयदअली अथवा सैदुल्लाह) ने धार्मिक असहिष्णुता तथा द्वेषवश एक योगी की हत्या कर डाली तो सुल्तान ने उसे गधे पर दुम की ओर मुंह करके बिठाकर सारे श्रीनगर में घुमाया। उसका सिर मुण्डवा दिया गया, दाढ़ी पर मूत्र मला गया, बाँहें पीछे को मुर्दे की आँतों से कसी गयीं और लोगों से उसके मुंह पर थुकवाया गया ।[४६] इस दण्ड से उस युग में योगियों के प्रभाव का कुछ संकेत मिलता है । धार्मिक संस्थाओं के विभिन्न सम्प्रदाय समूहों को बादशाह द्वारा जो स्वतंत्रता और संरक्षण प्रदान हुआ था वह कुछ फारसी इतिहासकारों को नागवारा भी हुआ । बहारिस्तानि-शाही के लेखक को यह दु:ख था कि ज़ैनुलाबिदीन काफिरों और बहुदेववादियों को संरक्षण देता था ।

इन दिनों शेष भारत में वैष्णव-भक्ति के महान आंदोलन की लहर उठी थी । कश्मीर भी उसके स्पर्श से सर्वथा अछूता नहीं रहा यद्यपि इस ज़माने में उसका कोई विशेष प्रभाव कश्मीर पर नहीं पड़ा । जोनराज ने ज़ैन-उल-आबिदीन के समय में प्रसिद्ध वैष्णव-सन्त रामानंद के आने का उल्लेख किया है । प्रो० श्रीकण्ठ कौल के अनुसार कश्मीर आने में उनका उद्देश्य वैष्णव-भक्ति-आन्दोलन का प्रचार रहा होगा । `किन्तु ब्राह्मणों के उनके कार्य से अपरिचित होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपने उद्देश्य में असफल रहे थे ।'[४७] जोनराज ने उनको `भाष्य-व्याख्या' की चर्चा है[४८] जब कि फारसी इतिहासकारों ने इसे `व्याकरण-महाभाष्य' कहा है ।[४९] लेकिन इतिहास प्रसिद्ध वैष्णव सन्त रामानंद ने कोई `व्याकरण महाभाष्य' नहीं लिखा था, उनका लिखा तो वेदान्त-सूत्रों का `आनंद-भाष्य' बताया जाता है । रामानंद का बड़शाह के समय में कश्मीर आना कुछ संदिग्ध मालूम पड़ता है क्योंकि तब तो रामानंद का समय १५वीं शताब्दी मानना पड़ेगा जबकि आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार उनका समय `सन् ईस्वी की १४वीं शताब्दी के शुरू में या १३वीं शताब्दी के अंत में पड़ता है ।'[५०] पर भक्ति से उस समय के कश्मीरी बिल्कुल अपरिचित थे, ऐसी बात भी नहीं है । आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक `हिन्दी साहित्य' में दसवीं शताब्दी के कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र के `दशावतार चरित्' में गोपियों के मुख से गवाया गया एवं भजन उद्धृत किया है ।[५१] `बाणासुर कथा' से भी इस बात के संकेत मिलते हैं कि उस युग में कश्मीरियों का वैष्णव भक्ति से परिचय अवश्य था ।

समाज : बदलते हुए चित्र के रंग

बड़शाह के युग, जिसमें कवि अवतार भट्ट जीवित थे, कश्मीर हिन्दू मध्यकाल से मुस्लिम मध्यकाल में संक्रमण की अवस्था से, गुज़र रहा था । इस संक्रमणकाल में समाज का हिन्दू विश्वास-विचारों, रीतियों-नीतियों, प्रथाओं-

परम्पराओं से थोड़ा-बहुत चिपके रहना स्वाभाविक था । समाज के निम्न वर्गों के प्राय: सभी लोग – किसान, कारीगर, नाविक, माली, कसाई और छोटे-मोटे धन्धे करने वाले अन्य समूह मुसलमान हो चुके थे ।[५२] पंद्रहवीं शताब्दी के अंत तक कश्मीर की अधिकांश जन-संख्या इस्लाम स्वीकार कर चुकी थी । अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु होते हुए भी ज़ैनुलाबिदीन पक्का मुसलमान था – उसने इस्लाम स्वीकार करने वाले हिन्दुओं का सामाजिक रुतबा बढ़ाकर तथा उनकी आर्थिक स्थिति को ऊंचा उठाकर धर्म परिवर्तन को बड़े सूक्ष्म ढंग से प्रोत्साहित किया । धीरे-धीरे ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य सभी जातियां हिन्दू समाज से लुप्त होती गयीं और मुस्लिम समाज का अंग बनती गयीं । फिर भी, इस्लाम स्वीकार करने के बावजूद समाज हिन्दू रीति-रिवाजों और रहन-सहन के ढंग को एकदम छोड़ नहीं सका । इस्लाम के प्रभाव से जातिप्रथा की जकड़ यधपि कुछ ढीली पड़ी (कश्मीर में वह बहुत कड़ी कभी नहीं थी) पर इस्लाम में नव-दीक्षित लोगों ने अपनी जातिगत और वर्णगत विशेषताओं, कर्मों तथा वैवाहिक नियमों आदि को बनाये रखा ।[५३] ये लोग प्राय: अपनी 'जाति' के बाहर विवाह बहुत कम किया करते थे । इन लोगों ने अपने कुल नाम को भी यथावत् रखा : कौल, भट्ट, मन्टू, गनाई, रैणा, पंडित -- ये इस्लाम स्वीकारने वाले ब्राह्मण थे ; जबकि डार, मागरे, राठौर, नायक, लौन आदि क्षत्रिय मूल के थे । वस्तुत: कश्मीरी मुसलमानों ने हिन्दू-संस्कारों को सम्पूर्णतया नहीं त्यागा । यहां इस्लाम का वही रूप नहीं रह सका जो अरब, ईरान अथवा तुर्की में था , वह यहां आकर प्रचलित स्थानीय विश्वास-विचारों के अनुरूप ढल गया । अत: इस्लाम के आगमन के बहुत समय बाद तक भी यहां के समाज का स्वरूप बहुत कुछ वैसा ही बना रहा जैसा उससे पूर्व था । इसीलिए मुहीबबुल हसन यह विचार व्यक्त करते हैं कि यधपि कश्मीर के लोगों ने अपना धर्म बदल लिया, वे अपने अतीत से अपने आपको बिल्कुल विच्छिन्न नहीं कर सके और अपने अनेक पुराने विश्वासों और प्रथाओं को अपने साथ अपने नये धर्म इस्लाम में भी ले आये ।[५४] मुसलमान 'ऋषियों' ने आत्म-त्याग और एकान्त साधना के आदर्शों को हिन्दू

सन्तों से ग्रहण किया । इस्लाम में नव-दीक्षित मुस्लिम लोग ईदउल-फित्र और ईदुज़्जुहा के त्योहार मनाया करते, पर उन्होंने गणचक्र, व्यथ-त्रुवाह और श्रीपंचमी जैसे हिन्दू-त्योहारों में भाग लेना बन्द नहीं किया । वे हिन्दुओं के धर्म-स्थानों को पवित्र मानते रहे और ऐसे भी उल्लेख हैं कि वे यदा-कदा मूर्ति-पूजा भी किया करते थे ।[५५] बहिर्देशी नस्ल के होते हुए भी कश्मीर के सुल्तानों ने अपने समाज के हिन्दू-प्रभावों को स्वीकार किया और अपने आपको भी उसी रंग में रंगा । वे भी हिन्दू त्योहारों में भाग लेते और हिन्दू प्रथाओं को मुस्लिम चोगे में अपनाते -- कई सुल्तानों का तो संकट के समय देवताओं से सहायता माँगते तथा होमादि करने का भी उल्लेख है ।[५६] हिन्दू शासकों को भाँति वे भी अपना राज्याभिषेक कराते, अन्तर केवल इतना था कि हिन्दू राजपुरोहित के स्थान पर शेख-उल-इस्लाम इस अवसर पर उपस्थित रहता था ; सुल्तान का मुख्यमंत्री राज्याभिषेक का तिलक उसके माथे पर लगाता ।[५७] हिन्दू सन्तों और मुसलमान ऋषियों और फकीरों -- दोनों पर सामान्य लोगों को समान रूप से श्रद्धा थी । यह स्थिति ज़ैनुलाबिदीन और उसके कुछ समय बाद तक भी किसी न किसी रूप में बनी रही । कहने का अभिप्राय यह है कि जिस युग में अवतार भट्ट का जीवन-काल स्थित था, समाज की अधिसंख्यक जनता के धीरे-धीरे इस्लाम को स्वीकार करने के बावजूद कश्मीरी समाज का बुनियादी ढाँचा कुछ खास बदला नहीं यद्यपि बाह्य रूप से उसमें काफी परिवर्तन आ चुका था । मंगल तथा अमंगल-सूचक शकुनों में लोग पूर्ववत् विश्वास करते रहे, जैसे धूमकेतु का अचानक दिख जाना, कुत्ते का अकारण चिल्लाना, दिन में उल्लू का बोलना, साँप का रास्ता काटना आदि ये सब अपशकुन माने जाते थे ।[५८]

इस्लामीकरण के कारण इस युग का समाज आर्थिक स्थिति के आधार पर वर्णों के स्थान पर वर्गों में विभाजित था । सुल्तान के दरबारी तथा सामन्तगण सुल्तान और उसके परिवार , जिनका स्थान सर्वोपरि था, के बाद समाज में प्रतिष्ठा के उच्चतम आसन पर स्थित थे । इन लोगों को बड़ी-बड़ी

जागीरें, ऊंचे-ऊंचे पद, खिताब और अनेक सुविधायें प्रदान की जातीं जो पैतृक हुआ करतीं । यह धनी-सम्पन्न सामन्तीय वर्ग काफी शक्तिशाली हुआ करता और अपने यहां अनेक आश्रितों को रखा करता । ये लोग सुसंस्कृत हुआ करते तथा साहित्यकारों, विद्वानों, कलाकारों आदि को संरक्षण प्रदान करते । पवित्र स्थानों के निर्माण और शैक्षणिक संस्थाओं के अनुदान के लिए धन दिया करते, पर सामान्यतया अपना अधिकतर समय लोग एक दूसरे के विरुद्ध षड्यन्त्रों में व्यतीत किया करते । इन्हीं षड्यन्त्रों और आन्तरिक संघर्षों के कारण चक शाहमीर-वंशी सुल्तानों से सत्ता छीन सके थे । चक लोग सुहदेव के समय में कश्मीर आये थे, बैहकी सैयद ज़ैन-उल-आबिदीन के समय में । रैणा, डार, माग्रे आदि स्थानीय सामन्ती परिवार थे । समाज की निम्नतम सीढ़ी पर चाण्डाल, डोम और चमार जातियों के लोग थे ।[५६] चाण्डाल रात को पहरुए का काम किया करते अथवा मृत्यु-दण्ड प्राप्त व्यक्तियों की लाशों को ठिकाने लगाने का प्रबन्ध करते । वे खेती भी किया करते थे और अत्यंत ग़रीब होने के कारण कभी-कभी चोरी का भी आश्रय लेते थे । डोम अथवा डोम्ब काफी ग़रीब तबके के लोग थे और आजीविका के लिए चोरी भी कर लेते थे । ये लोग अच्छे सिपाही हुआ करते थे और अक्सर सेना में भर्ती कर लिये जाते थे । चमारों, जो सुल्तानों के समय में ही कश्मीर आये थे, का वही सामाजिक स्तर और काम-धन्धा था जो शेष भारत में उनका था । भेड़-बकरियों के चरवाहों का भी एक सुनिश्चित सामाजिक समुदाय था । इनके अतिरिक्त किसानों, कारीगरों, कसाइयों, मल्लाहों, व्यापारियों और दुकानदारों तथा अन्य छोटे-मोटे काम-धन्धे करने वालों के भी टोले अथवा वर्ग थे । इस्लाम के प्रसार के बाद समाज में ब्राह्मणों को पहले की-सी प्रतिष्ठा और पूछ नहीं रही थी । उनका स्थान उलमाओं ने ले लिया था । स्वयं ब्राह्मण भी दो वर्गों — नौकरीपेशा ‘कारकुन’ और पौरोहित्य करने वाले ‘भाष-भट्टों’ में बंट गये थे ।

दास-प्रथा इस्लामी देशों में मध्ययुगीन सामाजिक जीवन का एक अंग थी

किन्तु मुस्लिम मध्यकालीन कश्मीर में नहीं के बराबर थी ।[६०] राजदरबार को छोड़ कर अन्यत्र कहीं दास रखने का कोई उल्लेख नहीं मिलता ।

समाज में स्त्रियों का स्थान और स्थिति वैसी ही थी जैसी तत्कालीन ईरान, मध्येशिया अथवा भारत में । उच्च वर्ग की असूर्यम्पश्याएं अधिकतर घर की चहारदीवारी के भीतर ही रहा करतीं, पर निम्न वर्गों की स्त्रियां सहकर्मिणी और सहधर्मिणी के रूप में शहर और गांव में, खेतों में, नदी पर, घरों में सब कहीं अपने पुरुषों का हाथ बटाया करतीं । पर्दे में रहने से उनका काम कैसे चलता । वे मुक्त और निर्द्वन्द्व सभी कहीं कार्यवश आया-जाया करतीं । घर के भीतर बैठे रहने वाली कोमलांगनाओं की एय्याशी उनके लिए नहीं थी । शिक्षा केवल अमीर घरानों की स्त्रियों तक ही सीमित थी - इनमें से कुछ अत्यन्त सुसंस्कृत हुआ करतीं । वे मदरसा चलातीं,मस्जिदें बनवातीं और सार्वजनिक जीवन में भी भाग लिया करतीं । ग़रीब वर्गों की स्त्रियां प्राय: साधनों के अभाव में अशिक्षित ही रहा करतीं, यद्यपि इनमें से भी कोई-कोई स्त्री अपने अध्यवसाय और प्रतिभा के कारण समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त करती और शिक्षा के क्षेत्र में भी आगे बढ़ती ।

विवाह प्राय: माता-पिता द्वारा ही निश्चित किये जाते । बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी और शरिअत के अनुसार कोई भी मुसलमान चार बीबियां तक रख सकता था । वेश्यावृत्ति के प्रचलन का भी थोड़ा-बहुत उल्लेख मिलता है यद्यपि उसे सरकारी प्रोत्साहन प्राप्त नहीं था ।[६१]

सांस्कृतिक मंच : संक्रमण और नवोन्मेष

शांति, स्थिरता और उदारता का वातावरण होने के कारण इस युग में कश्मीर में एक सांस्कृतिक नवोन्मेष दृष्टिगोचर हुआ । कला, संगीत, नृत्य, साहित्य, नाटक- सभी क्षेत्रों में नवोत्थान और नव-विकास की लहर आयी ।

अपने पाण्डित्य, बुद्धि और प्रतिभा के लिए विख्यात् कश्मीर बासियों को पुन: अपनी बौद्धिक-सांस्कृतिक संभावनाओं के निर्बाध विकास का अवसर मिला। शरिअत के आदेशों के विषय में कठमुल्लेपन की प्रवृत्ति न रखते हुए ज़ैन-उल-आबिदीन ने ललितकलाओं और साहित्य आदि के विकास-प्रसार में व्यक्तिगत रुचि ली। घाटी में अनेक रंग और नृत्योत्सव हुआ करते थे जिनमें 'आंगिक-वाचिक-सात्विक' अभिनय का प्रदर्शन दर्शकों को मुग्ध-विभोर करता था और सुल्तान प्रतिभावान कलाकारों को मुक्तहस्त स्वर्ण-रौप्य-रत्न आदि का दान किया करता।[६२] 'ज़ैनराजतरंगिणी' के रचयिता श्रीवर, जो कवि ही नहीं उच्चकोटि के संगीतकार भी थे, एक नृत्य-गीत-रंगोत्सव तथा उपस्थित भावक-गण का यह सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं – ' अवन्तिपुर में नाट्य-प्रदर्शन हो रहा है। राजा भी उपस्थित हैं। दर्शक और गायक-गण अलंकार और प्रबन्ध के ज्ञाता हैं, काव्य-सिद्धान्तों से भली-भाँति परिचित – काव्य-मर्मज्ञ ! गीत-संगीत के रसास्वादन के उपयुक्त उनका अंत:करण है। और सुन्दरी गायिकायें संगीत कला प्रवीणा, अत्यन्त मधुर स्वर है उनका, मनोहर राग उनके कलकण्ठ से मुखरित हो रहा है – रस-स्फीत गीत ! रंगविद्याविद नृत्यांगणायें मंच पर अपनी कला का उन्मीलन कर रही हैं। हर प्रकार के संगीत की मदिर लय-ताल पर नाच-गा रही है नृत्यकुशला सुन्दरी तारा – नारी नहीं कामास्त्र ! आँखों को सुख का उत्सव प्रदान करने वाली नृत्यांगना उत्सवा लास्य और ताण्डव नृत्य के प्रदर्शन से मन का रंजन कर रही है। इन नृत्यांगनाओं ने उन्चास भावानुभावों का अभिनय कर दिखाया। वे संगीत के स्वरों के आरोह और अवरोह का मानो मूर्तिमान रूप थीं।'[६३]

यह एक विशेष प्रदर्शन था पर इसी प्रकार अनेक रंगोत्सव वर्षभर चलते रहते थे। सिकन्दर बुतशिकन के समय में मृतप्राय: ये कलायें ज़ैन-उल-आबिदीन का प्रोत्साहन पाकर फिर जी उठीं ! सुल्तान ने विदेशों से भी अनेक अभिनेता-अभिनेत्रियों तथा गायक-गायिकाओं को कश्मीर बुलाया और यहाँ विशेष अवसरों

पर उनकी कला-दक्ष से लोगों को परिचित किया । अनेक प्रतिभा के धनी संगीतकार दरबार में सम्मानित हुए । इनमें योधभट्ट थे जिन्होंने संगीत पर एक पुस्तक लिखकर सुल्तान को समर्पित की [६४], श्रीवर थे वंशी के अपने समय के अप्रतिम वादक ; खुरासान से आये मुल्ला ऊदी थे जो ऊद नामक अरबी वाद्य-यंत्र बजाया करते थे । [६५] इस युग के एक और प्रख्यात् संगीतकार थे खुरासान के ही मुल्ला ज़ादा जो कच्छप-चर्म से बनी एक विशेष प्रकार की बीन बजाया करते थे । संगीत में ज़ैन-उल-आबिदीन की यह अभिरुचि देख ग्वालियर के महाराज डोंगरसिंह ने उसे भारतीय संगीत पर अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ भेंट किये जिनमें 'संगीतचूड़ामणि' की एक प्रति भी थी । [६६] इस युग में यद्यपि संगीत का विशेष विकास हुआ पर उसकी प्रकृति बदल गयी — भारतीय तत्व गौण होते गये और मध्येशियाई तथा ईरानी तत्वों का प्राबल्य रहा । सुल्तान ने इन देशों से कई संगीतकारों को अपने दरबार में आमंत्रित किया था । विभिन्न पद्धतियों के मिश्रण से एक विचित्र प्रकार के संगीत का विकास हुआ जिसे आजकल 'कश्मीरी संगीत' कहा जाता है और जिसमें ईरान और तुर्किस्तान की संगीत-धाराओं की प्रधानता है । वस्तुत: इस युग में विशेष ईरानी और तुरानी संगीत निकायों की कश्मीर में स्थापना हुई । अन्य वाद्य-यन्त्रों के अतिरिक्त खुरासानी वाद्यर्यंत्र रबाब से इसी युग में कश्मीरियों का परिचय हुआ और यह यहां काफी लोकप्रिय बन गया । इस प्रकार 'कश्मीरी संगीत' का स्वरूप परिवर्तित होकर बहुत कुछ ईरानी-मध्येशियाई हो गया, यद्यपि कश्मीरी 'सूफियाना कलाम' में भैरवी, ललित और कल्याण जैसी भारतीय राग-रागिनियों का भी समावेश है ।

संगीत की ही भांति नृत्य का स्वरूप भी भारतीय नहीं रहा । धीरे-धीरे भारतीय शास्त्रीय नृत्य का स्थान हाफिज़ नग्मा ने लिया जिसका बीज इसी युग में कश्मीर में पड़ा । जहां तक चित्रकला का सम्बन्ध है इस युग की कोई भी चित्र-कृति आज उपलब्ध नहीं है ।

संगीत-नृत्यादि ही नहीं सांस्कृतिक गतिविधि के प्राय: हर क्षेत्र में

ईरानीकरण अथवा मुस्लिमीकरण की प्रवृत्ति प्रबलतर होती गयी । ईरान और कश्मीर के सांस्कृतिक सम्बन्ध यद्यपि काफी पुराने थे पर, जैसा कि मुहीबबुल हसन लिखते हैं, १४वीं शताब्दी तक कश्मीर की संस्कृति में प्रमुख स्वर भारतीय रहा है । सुल्तानशाही की स्थापना के बाद ईरानी-इस्लामी सांस्कृतिक केन्द्रों के साथ कश्मीर के सुदृढ़ और स्थायी सम्बन्ध जोड़े गये और परिणामस्वरूप भारतीय प्रभाव का स्थान धीरे-धीरे ईरानी-इस्लामी तत्व लेते गये, यद्यपि पूर्णरूप से उसे कभी समाप्त नहीं किया जा सका ।[६७]

इस काल में कश्मीर और ईरान के सांस्कृतिक सम्पर्कों के निकटतर होने के अनेक कारण हैं । प्रथम यह कि इस्लाम के प्रचार हेतु यहां ईरान तथा मध्य-एशिया से सूफियों और धर्म-प्रचारकों का तांता बंधा रहा जो यहां के वातावरण को ईरानी संस्कृति के रंग में रंग देने में महत्वपूर्ण माध्यम बने । इस्लाम धर्म ही नहीं, ईरानी भाषा और संस्कृति के भी ये लोग उत्साही प्रचारक थे । दूसरा कारण यह था कि घाटी में इस्लाम के प्रसार के साथ-साथ यहां के मुसलमानों के लिए इस्लामी संस्कृति के प्रमुख केन्द्रों के प्रति धार्मिक-बौद्धिक दृष्टि से आकृष्ट होना स्वाभाविक था । कश्मीरी मुस्लिम विद्वान यहां से हेरात, मेर्व, समरकन्द, बुख़ारा आदि ईरानी सांस्कृतिक साम्राज्य के अंतर्गत आने वाले प्रदेशों की यात्रा करने और अनजाने वहां के सांस्कृतिक प्रभावों को आत्मसात करने लगे ![६८] इसके अतिरिक्त शिहाबुद्दीन के समय से ही बाहर से आये ईरानियों और ईरानी प्रभावापन्न तुर्कों को कश्मीर के सुल्तानों ने अपने दरबारों में आश्रय और सम्मान दिया जिससे ये लोग काफी संख्या में कश्मीर आने लगे । कश्मीर के सांस्कृतिक-सामाजिक जीवन पर इन लोगों की विचार-तरंगों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था, विशेषकर उस स्थिति में जब कि इन्हें ऊंचे-ऊंचे पद दिये जाते थे । ज़ैनुलाबिदीन के पिता सिकन्दर 'बुतशिकन' के समय में जो लोग इन क्षेत्रों से कश्मीर आये उनमें शीराज़ से सैयद हस्सन जिसे कश्मीर का क़ाज़ी बनाया गया, इस्फाहान से सैयद अहमद जो अनेक ग्रन्थों का रचयिता था, बुख़ारा का संत सैयद

जलालुद्दीन जो अपने अनेक शिष्यों के साथ यहाँ आया, बलख से बाबा हाजी अहमद और उसका शिष्य बाबा हसन आदि उल्लेखनीय हैं।[६९] सैयद मुहम्मद हमदानी की चर्चा पहले की जा चुकी है। ज़ैनुलाबिदीन के समय में ख़ुरासान, मिस्र, जीलान, मक्का आदि इस्लामी देशों से सम्पर्क दृढ़तर हुआ, शासकों को बहुमूल्य उपहार भेजे गये और राजदूतों का आदान-प्रदान हुआ। 'नवादिरुल अख़बार' का हवाला देते हुए मुहीबबुल हसन बतलाते हैं कि तैमूर के पुत्र शाहरुख़ ने ज़ैनुलाबिदीन को हाथी तथा कीमती हीरे भेंट स्वरूप भेजे। सुल्तान ने उसे धन्यवाद देते हुए यह सन्देश भेजा कि हीरों से वहाँ के विद्वान तथा पुस्तकें अधिक अच्छे रहते। इस पर शाहरुख़ ने अनेक पाण्डुलिपियाँ और छः बहुपठित विद्वान् सुल्तान के दरबार में भेजे। इनके अतिरिक्त सैयद मुहम्मद रूमी, सैयद अहमद रूमी, काज़ी सैयदअली शीराज़, सैयद मुहम्मद ख़ुरिस्तानी, आदि विद्वान् ईरानादि देशों से कश्मीर आये और राजाश्रय में रहे।[७०] इन दिनों यारकन्द, काशगर, समरकन्द, बुख़ारा, ईराक, तुर्किस्तान आदि मुस्लिम मध्य और पश्चिम एशियाई देशों से कश्मीर के व्यापारिक सम्बन्ध भी उत्कर्ष पर थे।[७१] इन सब कारणों से कश्मीर ईरानी - मध्येशियाई सांस्कृतिक-वृत्त के अन्तर्गत आया।

अनेक कलात्मक हस्तशिल्प इस युग में ईरान, ईराक तथा मध्येशियाई देशों से या तो सीधे ग्रहण किये गये या उनका प्रभाव यहाँ की कारीगरी पर पड़ा। कालीन, नमदे, काग़ज़ की लुगदी का सामान, शाल-दुशाले इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं। ईराक, ख़ुरासान अथवा तुर्किस्तान से आये कारीगरों को कश्मीरी कारीगरों को अपनी विद्या सिखाने को कहा जाता था। कभी-कभी ये कारीगर कश्मीर में ही आ बसते।[७२] जनश्रुति के अनुसार कश्मीरियों ने शाल-दुशाले बुनने की कला ज़ैनुलाबिदीन के निमंत्रण पर यहाँ आ बसे तुर्किस्तानी बुनकरों से सीखी। अपने कलात्मक दुशालों के लिए कश्मीर इस युग में काफी प्रसिद्ध हो चुका था।

सोने, चाँदी, ताँबे आदि की कलात्मक वस्तुओं का निर्माण भी इस

काल में कश्मीरी कारीगरों की ख्याति का कारण बन चुका था । इस कला पर हिन्दू और चीनी कला के साथ-साथ ईरानी प्रभाव भी देखा जा सकता है— विशेषकर पुष्प-सज्जात्मक अवदानों में । इन्हीं विभिन्न प्रभावों को समन्वित करती हुई स्थानीय धातु-निर्माण कला का विकास हुआ । कला मर्मज्ञ उजफालवी इस सन्दर्भ में लिखते हैं — " इस्लाम के साथ-साथ कश्मीर में अरब-ईरानी कला भी आयी । संसार-भर में, विशेषकर मध्य-एशिया में, यहाँ के लोग सबसे अधिक निर्माण-प्रतिभा रखते थे । उन्होंने अपने सम्मुख कुछ प्रशंसनीय माडल पाये तो अनुकरण और क्रियान्वन को अपने गज़ब के कौशल द्वारा उन्होंने दैनिक जीवन के लिए उपयोगी अनेक कलात्मक वस्तुएं बनाना शुरू कर दिया जो शीघ्र ही मौलिक वस्तुओं से भी अधिक सुन्दर और बढ़ चढ़कर हो गयीं ।[७३] काठ-खुदाई की प्राचीन कला भी इस युग में प्रचलित थी ।

स्थापत्य और वास्तुकला को इस युग की देन काष्ठ-शैली थी । काष्ठ-स्थापत्य हिन्दू काल में अज्ञात न था, पर सुल्तानों के अभ्युदय काल में यह विशेष रूप से लोकप्रिय हुआ जैसा कि इस युग में बनी मस्जिदों और ख़ानकाहों में देखा जा सकता है ।

वेशभूषा और खानपान आदि में इस युग में इस्लामीकरण की प्रक्रिया पहले से तीव्र हो गयी । सुल्तान क़ुतुबुद्दीन (१३७३-८६) और सुल्तान सिकन्दर (१३८६-१४१३) के समय तक कश्मीरियों का और उनके शासकों का भी पहनावा बहुत हद तक हिन्दू ढंग का ही बना रहा । मुस्लिम वेषभूषा यहाँ सबसे पहले सैयद अली हमदानी ने लायी और सुल्तान ज़ैनुलाबिदीन के समय में वह काफी प्रचलित हो गयी । धीरे - धीरे किंचित परिवर्तन के साथ, यहाँ के ब्राह्मण वर्ग ने भी उसे अपनाना शुरू कर दिया ।[७४] इसी प्रकार खानपान के क्षेत्र में ईरानी व्यंजन — जैसे ज़र्द पुलाव, तुर्श पुलाव आदि का प्रचलन हुआ । अण्डे, मछली और मांस बहुत पहले हिन्दू शासन काल से ही यहाँ के भोजन का अंग थे — सुल्तानों के समय में उनका और भी व्यापक रूप से व्यवहार हुआ ।[७५] धर्म-ध्वजियों द्वारा

निंदित होने के बावजूद विशेष अवसरों पर मदिरापान हुआ करता ...
शासनकाल में यह काफी प्रचलित था, सुल्तानों के समय में भी इसका सेवन बन्द
नहीं हुआ ।[७६]

फारसी भाषा का उदयकाल

किसी भी संस्कृति के प्रभावों को अधिक व्यापक और दूरगामी बनाने में
भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है । मध्यकाल में कश्मीर में फारसी भाषा
के राजकीय स्तर पर व्यवहार को इसी संदर्भ में समझा जा सकता है । फारसी
भाषा के प्रसार के साथ-साथ यहाँ पश्चिम और मध्य एशिया की सांस्कृतिक
शक्तियों का प्राबल्य होता गया और स्थानीय हिन्दू संस्कृति की स्थिति क्षीण-
तर होती गयी । मुस्लिम राजशक्ति के उदय के लगभग दो शताब्दी बाद तक
संस्कृत कश्मीर में दरबार की भाषा बनी रही और उससे सम्बद्ध सांस्कृतिक परि-
वेश प्राणवान् बना रहा । श्रीनगर, मटन तथा बिजबिहारा में १४वीं तथा १५वीं
शताब्दियों की अनेक कब्रें आज भी विद्यमान हैं जो इस तथ्य को रेखांकित करती
हैं -- इन कब्रों में ऊपर संस्कृत और नीचे फारसी में लिखा गया है ।[७७] ज़ैनुला-
बिदीन के समय में फारसी दरबार और कचहरी की भाषा बनी और परिवर्तन
का ऐसा चक्र गतिमान हुआ जिसकी लपेट में आकर कश्मीर की सम्पूर्ण सांस्कृतिक
परम्परा कट गयी । बड़शाह की उदारता के बावजूद फारसी ने हिन्दू जन-समाज
के परम्परागत ढांचे को तोड़ डाला और अब उसके स्वरूप का नया गठन हुआ ।
सरकारी नौकरी कश्मीरी ब्राह्मणों के लिए अर्थोपार्जन का एकमात्र प्रमुख साधन
रह गया था। दरबार की भाषा फारसी बनी तो उन्हें एकदम पेट के लिए,
अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उसे अपनाना पड़ा । ऐसी तत्परता से उन्होंने
फारसी सीखी कि फारसी के मुसलमान विद्वान तक चकित रह गये । देखते-देखते
संस्कृत के दिग्गज पण्डित फारसी के आलिम बन गये और खुद फारसी के घर
ईरान में प्रशंसित हुए । दरबार में कलम घिसने वालों से तो संस्कृत धीरे-धीरे

बिल्कुल छुट गयी पर ब्राह्मणों का एक वर्ग ऐसा भी था जिसने धार्मिक कार्यों को चलाये रखने के लिए संस्कृत अध्ययन की परम्परा को जीवित रखा । इस प्रकार कश्मीरी ब्राह्मण इस युग में फारसी के कारण दो वर्गों में बंट गये — सरकारी नौकरी के हेतु फारसी सीखने वाले पण्डित जो `कारकुन` कहलाये और संस्कृत को अपनाने वाले पण्डित जो `भाष-भट्ट` कहलाये और जिन्होंने अपने ऊपर पौरोहित्य का उत्तरदायित्व भी लिया ताकि हिन्दू धार्मिक प्रथायें लुप्त न हो जायें । यह नहीं कि फारसी का अध्ययन कश्मीरी ब्राह्मणों ने ज़ैनुलाबिदीन के समय में ही शुरू किया । उससे पूर्व भी यहाँ फारसी भाषा के विद्वान ब्राह्मण हुए हैं । तारीख-ए-बैहकी में एक नाई के बेटे तिलक का उल्लेख है जिसने कश्मीर में फारसी का अध्ययन किया था और शीराज़ के काज़ी हसन के साथ धारा प्रवाह फारसी में बातचीत की थी । महमूद गज़नी के दरबार में तिलक फारसी और हिन्दी का दुभाषिया नियुक्त हुआ था ।[७८] अपनी किताब-उल-हिन्द में अलबरूनी ने उन फारसी के ज्ञाता कश्मीरी ब्राह्मणों का उल्लेख किया है जो महमूद गज़नी के दरबार में नौकर थे ।[७९] पर ये इक्के-दुक्के विद्वान् थे -- सारे समाज को आर्थिक विवशताओं के कारण अब तक बलात् फारसी सीखनी नहीं पड़ी थी और न उन्हें इस हेतु संस्कृत छोड़नी पड़ी ।

दरबार की चहेती होने के कारण साहित्य और विद्या की भाषा के रूप में भी फारसी ही छायी रही । कश्मीरी ब्राह्मण जो कभी संस्कृत के भारी पण्डित थे अब फारसी में अपनी साहित्यिक प्रतिभा और पाण्डित्य का प्रदर्शन करने लगे । सुल्तान ज़ैनुलाबिदीन स्वयं `कुतब` के उपनाम से फारसी में कविता किया करता था । उसकी लिखी दो फारसी गद्य-कृतियाँ भी मिलती हैं । कश्मीर में फारसी को व्यापक स्तर पर ग्राह्य बनाने की दिशा में उसका काफी बड़ा योगदान रहा है ।[८०] फारसी ग्रन्थों का संस्कृत में और संस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कराने के लिए उसने एक अनुवाद ब्यूरो की स्थापना की जिसके तत्वावधान में श्रीवर ने जामी की `यूसुफ जुलेखा` का `कथा कौतुक` शीर्षक से संस्कृत

अनुवाद किया, मुल्ला अहमद ने सुल्तान के आदेश पर महाभारत और कलहण की राजतरंगिणी का फारसी में भाषान्तर किया ।[८१] मुल्ला अहमद, मुल्ला नादिरी और मुल्ला फतही अवतार भट्ट के समकालीन प्रतिष्ठित फारसी कवि थे । इनमें मुल्ला अहमद राजकवि था और इतिहास लेखक भी । मुल्ला नादिरी ने भी फारसी में कश्मीर का एक इतिहास लिखा था ।[८२] इस युग में रचित फारसी साहित्य आज उपलब्ध नहीं है, पर यहाँ-वहाँ के टुकड़े बटोर कर जो नमूने मिलते हैं उनसे ज्ञात होता है कि इस काल में यहाँ फारसी लेखन का स्तर काफी अच्छा था ।

राजकीय प्रोत्साहन और संरक्षण के बल पर हमारे विवेच्य काल में फारसी भाषा कश्मीर में नि:संदेह शिखरस्थ हुई, पर संस्कृत का प्रभाव-वृत्त एकदम लुप्त हो गया हो ऐसी बात नहीं । शताब्दियों से जो भाषा यहाँ की संस्कृति की रखवालिका रही थी उसकी जीवनी-शक्ति काफी क्षीण भले ही हुई हो, पर समाप्त कदापि नहीं हुई । अपने ह्रास की अवस्था में भी उसने इस युग को अनेक गर्वयोग्य प्रतिभायें प्रदान कीं । इनमें ज़ैनुलाबिदीन के सभापंडित इतिहास लेखक जोनराज और श्रीवर, शिव-सूत्र वृत्तिका के लेखक वरदराज, स्तुति कुसुमांजलि और बालबोधिनी के लेखक जगद्धर भट्ट आदि की गणना की जा सकती है ।[८३] 'जैनराजतरंगिणी' में युग के इतिहास का आलेख करने के अतिरिक्त श्रीवर ने 'यूसुफ जुलेखा' का 'कथा कौतुक' नाम से संस्कृत अनुवाद भी किया था, संगीत पर एक ग्रन्थ रचा था और 'सुभाषितावली' नाम से साढ़े तीन सौ कश्मीरी और संस्कृत कवियों की उत्कृष्ट कविताओं का संकलन सम्पादित किया था ।[८४] इन उदाहरणों के होते हुए भी संस्कृत का व्यवहार कश्मीर में सिमट कर एक निरन्तर छोटे होते हुए वृत्त तक सीमित रह गया था ।

कश्मीरी में रचनात्मक उन्मेष

कश्मीरी भाषा में भी कश्मीर के इतिहास के इस संक्रमण काल में

उल्लेखनीय रचनात्मक गतिविधि हुई । स्थानीय प्रतिभाओं की उर्वरा कलम ने कश्मीरी में अनेक काव्य और नाट्य-कृतियों का सृजन किया । मातृभाषा को रचनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने वाले इस काल के कृती साहित्यकारों में तीन शीर्षस्थ नाम हैं — योध भट्ट, नीत्थसोम और भट्टावतार । योध भट्ट ने समकालीन इतिहास को अपने कश्मीरी नाटक 'ज़ैन प्रकाश' का वक्तव्य-विषय बनाया । नीत्थसोम ने 'ज़ैन चरित' में सुलतान का चरित्गान किया ।[८५] भट्टावतार ने ज़ैन-उल-आबिदीन की उक्तियों को 'ज़ैनविलास' में पद्यबद्ध किया और हमारी विवेच्य कृति 'बाणासुर कथा' की रचना की । निश्चय से इन कृतिकारों ने मातृभाषा कश्मीरी में और भी कृतियों का सृजन किया होगा पर सभा पण्डित श्रीवर ने अपनी 'ज़ैनराजतरंगिणी' में केवल राजस्तुतिपरक रचनाओं का उल्लेख किया । और तो और 'बाणासुर कथा' जैसी महत्वपूर्ण काव्य-कृति भी उनसे छूट गयी । इस युग की तमाम कश्मीरी साहित्यिक कृतियों में आज वही एक उपलब्ध है और है ज़ैनुलाबिदीन के पौत्र हसनशाह के समय (१४७२-८४) में गणक प्रशस्त द्वारा रचित 'सुख-दु:ख मोह-माया-जाल चरितम्' । यहाँ यह ध्यातव्य है कि हिन्दी क्षेत्र के अपभ्रंश (और प्राकृत) राजस्तुतिपरक चरित-काव्यों की भाँति यहाँ भी ऐसी कृतियों को 'चरित' अथवा 'विलास' की संज्ञा दी जाती थी ।

कश्मीर के इस्लामीकरण के साथ ही नस्ख़ और नस्तालीक लिपियों का भी व्यापक व्यवहार होने लगा यद्यपि शारदा लिपि का प्रयोग भी चलता रहा। इन लिपियों में किताबत अर्थात् सुलेख-कला को यहाँ काफी प्रोत्साहन मिला । ज़ैन-उल-आबिदीन के समय में ईरान और तुर्किस्तान से अनेक कातिब कश्मीर आये और यहाँ उन्हें जागीरें भेंट की गयीं ।[८६] दुर्भाग्यवश उस युग की किताबत-कला का कोई महत्वपूर्ण नमूना आज उपलब्ध नहीं है । कहते हैं सुलतान ने ज़मख़्शरी[८७] द्वारा की गयी कुरान की टीका की अनेक सुलिखित प्रतियाँ तैयार करवाई थीं; वे आज कहाँ हैं किसी को मालूम नहीं ।

शिक्षा : मदरसे और मकतबे

शिक्षा इस युग में मदरसों और मकतबों में प्रदान की जाती थी और अधिकतर धार्मिक हुआ करती थी । ज़ैन-उल-आबिदीन 'बड्शाह' ने शिक्षा के विकास के लिये बहुत कुछ किया । वर्तमान नौशहरा के निकट उसने एक मदरसा खोला जो मौलाना कबीर की देख-रेख में रखा गया । स्वयं सुलतान मौलाना के उपदेश सुनने को वहाँ जाया करता था । इसके अतिरिक्त एक विद्यालय ज़ैनगीर में स्थापित् किया गया और एक बड़ा मदरसा सीर क्षेत्र के दच्छिनपुर नामक स्थान पर खोला गया जिसके मुख्याध्यापक मुल्ला गाज़ी खाँ नियुक्त किये गये । शिक्षा-दान का एक और महत्वपूर्ण स्थान था बाबा इस्माइल कुबरवी की खानक़ाह । बाबा कुबरवी की ख्याति विदेशों तक फैल गयी थी और दूर-दूर से छात्र उनके पास विद्यार्जन के लिए आते थे ।[८८] मदरसों के अतिरिक्त बड्शाह ने कुछ प्राविधिक विद्यालय भी स्थापित् किये थे जहाँ कागज़-निर्माण, जिल्द-साज़ी आदि की शिक्षा दी जाती थी । छात्रों की सुविधा के लिए कई छात्रा-वास भी उसने बनवाये जहाँ बादशाह की ओर से उनके ठहरने की नि:शुल्क व्य-वस्था थी ।[८९] बड्शाह से पूर्व कश्मीर में अरबी और फारसी ग्रन्थों की संख्या थोड़ी थी, अत: उसने भारत, ईरान, इराक, तुर्किस्तान आदि देशों से ये ग्रन्थ मंगाये और इस उद्देश्य के लिए काफी धनराशि व्यय की गयी । अनेक महत्वपूर्ण संस्कृत पाण्डुलिपियों को भी खरीदा गया । सुलतान सिकन्दर के समय में नष्ट होने से बचाने के लिए जो ग्रन्थ कश्मीर से बाहर भेजे गये थे उन्हें वापस मंगवाया गया ।[९०] इस प्रकार सुलतान ने एक विशाल पुस्तकालय का निर्माण किया था जो सुलतान फतेहशाह के समय (१५०५- १४) तक विद्यमान रहा , जब वह गृह-युद्धों और बाहरी आक्रमणों के दौरान नष्ट हो गया ।[९१]

भट्टावतारकालीन इस सांस्कृतिक फलक पर दृष्टिपात करने के बाद कहा जा सकता है कि अरब-ईरानी-संस्कृति का आधार लिये हुए एक अलग-प्रकार की कश्मीरी संस्कृति का विकास इस युग में हुआ । इस संस्कृति के स्वरूप-गठन में

भारतीय सांस्कृतिक तत्व अनुपस्थित नहीं थे , पर गौण अवश्य थे । कश्मीर एक तरह से इन दिनों ईरानी-संस्कृति का एक उपकेन्द्र बन गया था । मध्य-युगीन हिन्दू सामन्तीय समाज अपना रूप और वेष बदल कर मध्य-युगीन मुस्लिम सामन्तीय समाज में रूपान्तरित हो रहा था । प्रारम्भ में इन दो समाजों में भिन्नता के तत्व अधिक प्रबल नहीं थे जिससे एक सांस्कृतिक सम्मिलन और समन्वय का भ्रम उपस्थित होता था पर धीरे-धीरे एक संस्कृति के टूट कर चुक जाने और दूसरी द्वारा उसका स्थान लेने की प्रक्रिया पूरी हो रही थी । केवल मुट्ठी-भर ब्राह्मण भारत की सांस्कृतिक-साहित्यिक-धार्मिक-सामाजिक परम्पराओं से जैसे-तैसे अपना सम्बन्ध जोड़े हुए थे । मध्य-युगीन मुस्लिम विचार-दृष्टि, कला-शिल्प, भाषा-लिपि सब की ध्वजायें वातावरण में फहर रही थीं ।

अर्थतन्त्र : सामन्ती उदारता का स्वरूप

सामन्तों - जागीरदारों - ज़मींदारों - व्यापारियों के सुख-ऐश्वर्य-समृद्धि को यदि मापदण्ड नहीं भी बनाया जाये तो भी सामान्य जनता के आर्थिक स्तर को ज़ैन-उल-आबिदीन के समय में बहुत बुरा नहीं कहा जा सकता । ग़रीबी के कीचड़ में धंसे हुए लोगों की दशा सुधारने के लिए सुल्तान ने बहुत कुछ किया । लोगों का आर्थिक शोषण-उत्पीड़न करने वाले, उनसे घूस लेने वाले अधिकारियों को वह दण्ड दिया करता । ग़रीब जनता से अतिरिक्त कर तथा मनमाने जुर्माने[६२] जिनसे भ्रष्ट अधिकारी अपनी जेबें भरा करते थे, लेना उसने बन्द करा दिया । बाज़ार में विभिन्न वस्तुओं के दामों को नियत करके उन्हें ताम्रपत्रों पर अंकित किया । ये ताम्रपत्र लोगों की सुविधा के लिए सार्वजनिक स्थानों पर लटकाये जाते।[६३] सुल्तान ने यह हुक्म जारी किया कि व्यापारियों द्वारा आयात किया हुआ माल घरों में छिपाया न जाए - खुले बाज़ार में कम लाभ पर लोगों को बेचा जाये ताकि कालाबाज़ारी द्वारा जनता का शोषण न हो ।[६४] खेती के विकास के लिए,अनेक कदम उठाये गये — सिंचाई के लिए अनेक छोटी-बड़ी नहरों का निर्माण किया

गया, दलदली तथा परती भूमि के एक बड़े भाग को कृषि-योग्य बनाया गया। इससे धान की उपज में काफी वृद्धि हुई और खाधान्नों के मूल्य में भारी कमी हुए। कीमतें बढ़ने पर सरकारी गोदामों से खाधान्न लोगों के लिए तुरन्त मण्डियों में सस्ती दरों पर उपलब्ध किये जाते। ६५ भू-राजस्व, जो मुहीबबुल हसन के अनुसार सामान्यतया कुल उपज का आधा या एक तिहाई हुआ करता, अकाल अथवा बाढ़ की स्थिति में एक चौथाई अथवा कहीं-कहीं उपज का सातवां भाग लिया जाता। ६६ इन उपायों से किसानों की दशा कुछ सुधर अवश्य गयी, पर इसका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि उनकी विपन्नता दूर हो गयी या यह कि उनके कष्ट दूर हो गये। सभी राहतों के बावजूद किसान सामन्ती जुल्मों का शिकार बना रहा, कर-भार के नीचे वह दबा रहा। बेगार की प्रथा भी पूर्ववत् जारी रही। शाहमीरों के शासनकाल में केसर बोनने के काम में लोगों को ज़बरदस्ती लगाया जाता और उजरत में उन्हें थोड़ा-सा नमक दिया जाता। ६७ इस प्रकार सुलतानों का अर्थतन्त्र भी किसानों को दरिद्रता और शोषण-उत्पीड़न से पूरी तरह से मुक्ति नहीं दिला सका।

यह ज्ञात नहीं कि कवि अवतार भट्ट सुलतान ज़ैन-उल-आबिदीन के शासन के अंतिम वर्षों में जीवित थे या नहीं। थे तो उन्होंने भी उस काल में पड़ने वाले भयानक अकाल और बाढ़ का आतंक झेला होगा। सन् १४६० में आसामयिक हिमपात से धान की पकी फसल बर्बाद हो गयी। अकाल के दैत्य ने सारी घाटी को अपने जबड़ों में दबोच लिया और लोग तड़फड़ा उठे। अन्नाभाव से दुर्बल, भूख से पीड़ित, सूजी हुई आँखें लिये लोग एक कौर भात के लिए यहाँ-वहाँ भटकने लगे।६८ उन्होंने पत्तों और जड़ों पर गुज़ारा किया। एक खरवार धान का मूल्य तीन सौ दीनारों से बढ़कर १५०० तक पहुँच गया। ६६ इस स्थिति से समाज के गरीब वर्गों के लोग ही अधिकतर पीड़ित हुए। जमाखोर, मुनाफाखोर और साहूकार गिद्धों की भांति उन की जीवित लाशों पर मंडराने लगे। तुलसी के युग में भी संभवत: ऐसा ही दारुण अकाल पड़ा था, पर जहाँ तुलसी की कृतियों

में उसकी भयानक याद छायी हुई है, श्रवतार भट्ट की कोई ऐसी कृति उपलब्ध नहीं जिसमें अपने युग की इस त्रासदी का ज़िक्र हो। सौभाग्य से बड़शाह ने शीघ्र ही सामान्य जनता और किसानों को राहत पहुँचाई। इस कार्य के लिए घाटी-भर में शिविर स्थापित किये गये जहाँ सुलतान के अपने भण्डार से अकाल-पीड़ितों को मुफ़्त भोजन खिलाया गया। अकाल समाप्त होने पर चावल खरीदने के हेतु लिये गये लोगों के ऋण उसने माफ़ कर दिये। जिन लोगों ने खाद्यान्नों के बदले साहूकारों को अपने आभूषण आदि बहुमूल्य वस्तुएं दी थीं, उन्हें उनकी वस्तुएं लौटा दी गयीं और साहूकारों को उनके एवज़ में नकद पैसे दिये गये।[100]

अकाल के दो वर्ष बाद बाढ़ ने भयंकर उत्पात मचाया। हज़ारों मनुष्य, ढोर और मकान उसकी लपेट में आगये। जोनराज के शब्दों में "नगर की इमारतें इसलिए जल में डूब गयीं क्योंकि उनसे अपने निर्माणकर्ताओं का दुःख देखा न गया।"[101] इस अवसर पर भी बादशाह ने अपने लोकरक्षक बिम्ब को सशक्त बनाया और बाढ़ के आतंक को दूर करने के अनेक उपाय किये। झेलम के तल को बारहमुल्ला के निकट खोद कर गहरा बनाया गया, सुय्या द्वारा छठी शताब्दी में बनाये गये बाँधों की मरम्मत की गयी। बाढ़ का सबसे प्रबल आक्रमण श्रीनगर पर हुआ था अतः वर्तमान नौशहरा के अपेक्षाकृत ऊँचे भू-भाग में योजनाबद्ध तरीके पर एक नये नगर का निर्माण किया गया।

खेती के अतिरिक्त सामान्य जनता के लिए अर्थोपार्जन के अन्य प्रमुख साधन थे — कारीगरी, मज़दूरी, व्यापार, छोटी-मोटी दुकानदारी, सरकारी नौकरी आदि। ज़ैन-उल-आबिदीन ने राज्य में अनेक कुटीर-उद्योगों की भी स्थापना की। शाल-दुशालों, रेशम, कागज़, काँच आदि के निर्माण का उल्लेख इतिहास ग्रन्थों में मिलता है। इनके अतिरिक्त कालीन, नमदे, तांम्बे और काँसे के पात्र, [illegible] भारी की वस्तुओं आदि का निर्माण भी इसकाल में हुआ करता था।[102]

रेशम का उद्योग, जो कश्मीर का एक प्राचीन उद्योग रहा है, ज़ैन-उल-आबिदीन के समय में उत्कर्ष पर पहुँच गया। कागज़-निर्माण का उद्योग सर्वप्रथम उन्होंने कश्मीर में स्थापित किया। कश्मीर में निर्मित कागज़ रेशमी और चिकना हुआ करता था और चित्रकारों तथा लेखन के लिए भारत-भर में इसकी मांग थी। जिल्दसाज़ी का धन्धा भी यहाँ बड़शाह के ही शासनकाल में शुरू हुआ।[१०३] इन उद्योगों में कितने आदमी काम करते थे इसका अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता क्योंकि इतिहास ग्रन्थों में इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

राज्य की खनिज सम्पदा का भी उपयोग किया जाने लगा था। ताम्र-कर पर्वत के पास ताम्बे की खान से ताम्बा निकाला जाता था। नदियों की रेत से सोना भी निकाला जाता था जिसका छठा भाग सरकार को देय था।[१०४] अपने समय के अनेक निर्माण-कार्यों में ज़ैन-उल-आबिदीन ने सैंकड़ों मज़दूरों, बढ़इयों, राज-मिस्तरियों आदि को रोज़गार प्रदान किया। इस प्रकार लोगों की आर्थिक दशा बेहतर बनाने की दिशा में इस उदार और जनहितैषी शासक ने अनेक ठोस कार्य किये जिनका परिणाम भी अच्छा रहा। लेकिन इस शुक्ल पक्ष के साथ ही स्थिति का कृष्ण पक्ष भी था जो सामन्तवादी अर्थतन्त्र में निहित आर्थिक-सामाजिक विषमताओं से सम्बद्ध था और जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

नागरिक प्रशासन का ढाँचा

ज़ैन-उल-आबिदीन ने अपने पिता के समय के छिन्नविछिन्न प्रशासनिक ढाँचे को सुव्यवस्थित करने के लिए एक सुनियोजित और सुचिन्तित प्रशासन-व्यवस्था का विकास किया। शाहमीरी राजवंश के प्रारंभिक शासकों ने बहुत कुछ हिन्दू शासनकाल के प्रशासनिक ढाँचे को बनाये रखा यहाँ तक कि प्रशासनिक अधिकारियों का नामकरण तक वही रहा। पर ज़ैन-उल-आबिदीन के समय में

रिस्थिति में परिवर्तन हुआ और इस्लामिक देशों में प्रचलित प्रशासन-पद्धति को अप-
नाया गया । सुलतान को सदा हर प्रकार से सर्वोपरि थी । उसके बाद वज़ीर
(हिन्दू शासनकाल और प्रारंभिक शाहमीरों का सर्वाधिकार) नागरिक प्रशासन
का सबसे बड़ा अधिकारी था और सुलतान को ~~[illegible]~~ विभिन्न विषयों पर
परामर्श दिया करता था । उसके हाथ में काफी शक्ति थी जिसके सदुपयोग अथवा
दुरुपयोग पर राज्य की स्थिरता और जनता का कल्याण निर्भर था । मज़हबी
मामलों का विभाग शेख-उल-इस्लाम के आधीन था वह उलमाओं का प्रतिनिधि हुआ
करता था और उसका कर्तव्य यह देखना था कि राज्य शरिअत के अनुसार चल रहा
है अथवा नहीं । वह राज्याभिषेक समारोह सम्पन्न कराता था और धार्मिक
व कानूनी (दोनों का मुसलमानों के लिए परस्पर निकट का सम्बन्ध होने के
कारण) सुलतान को समय-समय पर सलाह दिया करता था ।[१०५] न्यायपालिका
का सर्वोच्च अधिकारी काज़ी हुआ करता था । मीर अदल और मुफ्ती उसके
आधीन उसके सहायक थे जो हर कस्बे और परगना में नियुक्त थे । मीर अदल
सम्पत्ति आदि सम्बन्धी छोटे-मोटे स्थानीय झगड़े निपटाया करता था, मुफ्ती
हनफ़ी (मुस्लिम) कानून के अनुसार फैसले दिया करता । काज़ी के पास जाने
से पहले न्याय-प्रार्थी मीर अदल के पास जाया करते थे । मामला यदि अधिक
पेचीदा अथवा गंभीर हुआ तो काज़ी की शरण ली जाती । अमीर-ए-दर (जोन-
राज जिसे 'द्वारपाल' कहते हैं) लोगों को याचिकाओं को सुलतान के पास पहुं-
चाता । नित्य सुलतान के सम्पर्क में रहने के कारण उसका काफी प्रभाव और
दबदबा था ।[१०६] सुल्तान दण्डादि की व्यवस्था के लिए सदा शरिअत का ही
पालन नहीं किया करता था । उसने अपने भी कुछ कानून बनाये थे जिनके अनुसार
वह शासन करता था । अशोक की भांति इस कानून-संहिता को उसने ताम्रपत्रों
पर अंकित करवाया था जिन्हें नगरों और ग्रामों में सार्वजनिक सुविधा के लिए
लटकाया गया था । उसने मृत्युदण्ड केवल गंभीर अपराधों के लिए रखा था, सामा-
न्य अपराधों के लिए इससे नरम सजायें रखी गयी थीं । उसका आदेश था कि
चोरों और बटमारों को मृत्युदण्ड न दिया जाये अथवा उनके हाथ न काटे दिये

जायं अपितु उन्हें सार्वजनिक निर्माण-कार्यों के लिए श्रम कराया जाये ।[१०७]

कानून और व्यवस्था बनाये रखने की ज़िम्मेदारी कोतवाल और मुहतसिब पर थी । कोतवाल का काम नागरिकों को चोरों और डाकुओं से रक्षा करना तथा अव्यवस्था को समाप्त करना था । मुहतसिब बाज़ार का निरीक्षण किया करता तथा लोगों के नैतिक आचरण की निगरानी किया करता था ताकि मादक द्रव्यों का खुले-आम निर्माण अथवा बिक्रय न हो ; लोग जुआ न खेलें अथवा अनैतिक आचरण न करें ।[१०८] हिन्दू काल में इन बातों का उत्तरदायित्व नगराधिप अथवा नगराधिकृत पर था ।

प्रशासनिक सुविधा के लिए हिन्दू काल में किया गया राज्य का दो प्रान्तों — पूर्व में मराज (मदव राज्य), पश्चिम में कमराज (क्रमराज्य)- में विभाजन यथावत् रखा गया । दोनों प्रान्तों के प्रशासनिक अधिकारी हाकिम कहलाते थे — ज़ैन-उल-आबिदीन ने अपने पुत्र आदम खान को मराज का हाकिम नियुक्त किया था । प्रान्तों का विभाजन परगनों में किया गया था । हर परगना में शिकदर नाम का अधिकारी प्रशासनिक कार्य चलाता था । `लोकप्रकाश` के अनुसार हिन्दू काल में घाटी सत्ताईस `विषयों` में विभक्त थी, किन्तु सुलतानों के युग में परगनों की संख्या स्थिर नहीं थी ।

कश्मीर में जिन पहाड़ी दर्रों से प्रवेश किया जाता था उनके संरक्षकों का नाम नायक था — हिन्दू युग में इन्हें द्वारपति कहा जाता था । इनका कर्त्तव्य था कि बिना रहदारी (प्रवेश-पत्र) के किसी को घाटी में प्रवेश न करने दें ।

राजकोष का अधिकारी खज़ांची अथवा खज़ानादार कहलाता था । हिन्दू शासनकाल में इसे गंजवर कहते थे । सरकारी दस्तावेज़ों को सुरक्षित रखने के लिए एक विशेष विभाग श्रीनगर में स्थापित किया गया ।[१०९] ज़ैन-उल-आबिदीन से पूर्व अभिलेख केवल भोजपत्र पर लिखे जाते थे , पर उसके समय में सरकारी अभिलेख भोजपत्र के साथ-साथ कागज़ पर भी लिखे जाने लगे । श्रीनगर के अतिरिक्त ...पुर

ें भी एक अभिलेखालय था ।

यह है उस युग का परिदृश्य जिसमें 'बाणासुर कथा' के रचयिता अवतार भट्ट जीवित थे । समसामयिक जीवन-स्थितियों का प्रतिबिम्बन करने वाली उनकी कोई रचना आज उपलब्ध नहीं है, पर 'बाणासुर कथा' जैसा प्रेम और शौर्यपरक कथाकाव्य अपेक्षाकृत शान्ति और सुव्यवस्था के युग में ही रचा जा सकता है — कृति का वक्तव्य-विषय इस दिशा की ओर इंगित तो करता है ।

सन्दर्भ - संकेत

१. टूर इन सर्च ऑफ संस्कृत मन्युस्क्रिप्ट्स मेड इन कश्मीर, राजपुताना एण्ड सेण्ट्रल इण्डिया (रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई का अतिरिक्त अंक, १८७७) : पृष्ठ ६० ।

२. वही ।

३. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया (जिल्द ८ , खण्ड २): पृष्ठ २३७ ।

४. दि लालारुख़, अगस्त १९६७ ; पृष्ठ ५३ ।

५. चतुर्दश भाषा निबन्धावली (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना): पृष्ठ १२५ । पाण्डुलिपि को ठीक से न पढ़ पाने के कारण प्रो० पुष्प ने जो पद्य उद्धृत किया है उसमें अनेक अशुद्धियाँ हैं ।

६. कश्मीर अण्डर द सुलतान्स (ईरान सोसाइटी, कलकत्ता, १९५९): पृष्ठ२५९।

७. बा०क० । ४ । ज़ैन-उल-आबिदीन का राज्य-काल है १४२०-७० ई० ।

८. श्रीवर तथा शुक कृत `जैनराजतरंगिणी` : सम्पा० श्रीकण्ठ कौल (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर) : पृष्ठ ५५ : ४।३६ ।

९. वही : पृष्ठ ५५ : ४।३७-३९ । भट्टावतार रचित `ज़ैनविलास` के अतिरिक्त श्रीवर ने जिन कश्मीरी कृतियों का उल्लेख किया है वे हैं पण्डित-नोत्थ सोम लिखित `ज़ैनचरित्` और योध भट्ट लिखित `ज़ैन प्रकाश` - तीनों का सम्बन्ध सुल्तान ज़ैन-उल-आबिदीन से है ।

१०. बा० क० । `दि एन्श्येण्ट ज्यॉग्रफी ऑफ कश्मीर` (जर्नल ऑफ द एशियेटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, अंक ६८, १८९९) - ले० एम०ए० स्टीन: पृष्ठ २०९ । लेखक के अनुसार यह क्षेत्र कश्मीर लद्दाख और मध्य-एशिया के प्राचीन व्यापार-मार्ग पर स्थित था ।

११. दि लैंग्वेज ऑफ महानय प्रकाश (मेमोयर्स ऑफ द एशियेटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल - भाग ११, सं० २, १९२९) ।

१२. पृष्ठ ५५ : ४।३६.

१३. बा० क० । ४.

१४. कश्मीर अण्डर द सुलतान्स : मुहीबबुल हसन : पृष्ठ ७१ ।

१५. वही , पृष्ठ ३७ ।

१६. जोनराज इस आक्रान्ता का नाम डुलचा देते हैं जबकि मुहज्जुलचु -- यह नाम फारसी इतिहासकारों का दिया हुआ है । श्रीकण्ठ कौल के अनुसार डुलचा किसी व्यक्ति का नाम न होकर मंगोल प्रशासन के एक अधिकारी के पदनाम दासकाचेन के चीनी रूपान्तर डु-लु-हुआ-चि का भारतीय उच्चारण है ('जोनराज कृता राजतरंगिणी' : पृष्ठ ६५) ।

१७. मुहीबबुल हसन के अनुसार यह दुर्ग सोनमर्ग के पश्चिम में द्रास जाने वाले मार्ग पर गगनगीर नामक गाँव में स्थित था (कश्मीर अण्डर द सुलतान्स, पृष्ठ ३५ पर दी गयी पाद-टिप्पणी) ।

१८. जोनराज कृता राजतरंगिणी : सम्पा० श्रीकण्ठ कौल (विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर, १९६७) : पृष्ठ २७ ।१५४.

१९. कश्मीर अण्डर द सुल्तान्स : पृष्ठ ३८ ।

२०. बा० क० ।५.

२१. श्रीवर तथा शुक कृत 'जैनराज तरंगिणी' : सम्पा० श्रीकण्ठ कौल : पृष्ठ ५५, ४।३६.

२२. वही ४।१६.

२३. बा० क०

२४. बा० क० ।४.

२५. दि वैली ऑफ कश्मीर : वाल्टर आर० लारेन्स (केसर पब्लिशर्स, श्रीनगर द्वारा १९६७ में पुनर्मुदित) : पृष्ठ १९६ ।

२६. बहारिस्तानिशाही, २६वाँ पन्ना : मुहीबबुल हसन द्वारा कश्मीर अण्डर द सुलतान्स में ,पृष्ठ ६४ पर उद्धृत ।

२७. दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल (भाग ६) : पृष्ठ ३८२ पर उद्धृत ।

२८. जोनराज कृत राजतरंगिणी : सम्पा० श्री श्रीकण्ठ कौल, पृष्ठ १४८ , श्लो० ८१७ ; कश्मीर अण्डर द सुलतान्स : मुहीबबुल हसन : पृष्ठ ८७ ।
२९. देखिये : ए हिस्ट्री आफ मेडीवल कश्मीर : श्री एम० एल० कपूर (ए० आर० बी पब्लिकेशन्स, जम्मू, १९७१) : पृष्ठ ६८ ।
३०. एम० ए० स्टीन : कल्हण`स राजतरंगिणी : पृष्ठ १३१ ।
३१. पृथ्वीनाथ कौल बामजई : ए हिस्ट्री ऑफ कश्मीर (मेट्रोपालिटन बुक कम्पनी (प्रा०) लि०, दिल्ली, १९६१) , पृष्ठ ३०६ ।
३२. केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया , भाग ३ : पृष्ठ २८१ ।
३३. कशीर (लाहौर, १९४८) : पृष्ठ १७६ ।
३४. देखिए - पृथ्वीनाथ कौल बामजई : ए हिस्ट्री ऑफ कश्मीर : पृष्ठ २८३-२८६ ।
३५. मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स : पृष्ठ ५५ ।
३६. वही , पृष्ठ ५६ ।
३७. वही , पृष्ठ ५६ ।
३८. देखिए , पृ० ना० कौल बामजई : ए हिस्ट्री ऑफ कश्मीर, पृष्ठ २६५ ।
३९. `- - - उल्मार्ओं के साथ उसके सम्बन्ध सामान्यतया अच्छे थे ।`
— मु० ह० : कश्मीर अण्डर दि सुलतान्स : पृष्ठ ८१ ।
४०. द्रष्टव्य - वही , पृष्ठ २२१ ।
४१. पृ० ना० कौल बामजई इन सैयदों की संख्या सात सौ बतलाते हैं, मुहीबबुल हसन तीन सौ ।
४२. मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स : पृष्ठ २२१ ।
*४४. श्रीवर की जैनराजतरंगिणी का जगदीश चन्द्र दत्त द्वारा `किंग्स ऑफ कश्मीर` शीर्षक से किया गया अनुवाद : पृष्ठ १४२ ।
*४३. नॉवेल्स : ए डिक्शनरी ऑफ कश्मीरी प्रॉवर्ब्स एण्ड सेइंग्स : पृष्ठ २३ ।
४५. तुहफत-उल-अहबाब : (पाण्डुलिपि) : श्रीकण्ठ कौल द्वारा सम्पादित जोनराज कृत राजतरंगिणी की भूमिका के पृष्ठ १०६ पर उद्धृत ।

४६. जोनराज : राजतरंगिणी : (सम्पा० श्रीकण्ठ कौल): पृष्ठ १५४, श्लो० ८४१-५५ ।

४७. श्रीकण्ठ कौल : 'जोनराज कृता राजतरंगिणी' - भूमिका : पृष्ठ १०६ ।

४८. जोनराज : राजतरंगिणी : (सम्पा० श्रीकण्ठ कौल) : पृष्ठ ७३, श्लो० ८२८ ।

४६. उपरोक्त : भूमिका, पृष्ठ १०६ ।

५०. हिन्दी साहित्य (दिल्ली, १६५५) : पृष्ठ १०३ ।

५१. वही, पृष्ठ ६७ ।

५२. द्रष्टव्य : मु० ह० कश्मीर अण्डर द सुलतान्स : पृष्ठ २२६ ।

५३. वही, पृष्ठ २४० ।

५४. वही, पृष्ठ २३६ ।

५५. मुहीबबुल हसन के अनुसार दाऊद बाको (१५२१-८५) के समय तक मुसलमानों द्वारा मूर्तिपूजा करने की घटनायें होती रहीं ।

५६. द्रष्टव्य - मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स : पृष्ठ २४० ।

५७. वही, पृष्ठ २४०-४१ ।

५८. श्रीवर : जैनराजतरंगिणी : जगदीशचन्द्र दत्त कृत अनुवाद : पृष्ठ १५३,१६२।

५६. द्रष्टव्य : मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स, पृष्ठ २१६-२०,२२६-२२७ ।

६०. एम०एल०कपूर : ए हिस्ट्री ऑफ मैडीवल कश्मीर, पृष्ठ २१५ ।

६१. मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स, पृष्ठ २२७-२८ ।

६२. श्रीवर : जैनराजतरंगिणी : (सम्पा० श्रीकण्ठ कौल), पृष्ठ ५५, ४।४०, ४१ ।

६३. वही ।

६४. वही ।

६५. मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स, पृष्ठ ६३ ।

६६. पृ० ना० कौल बामज़ई : ए हिस्ट्री ऑफ कश्मीर, पृष्ठ ३०३ ।

६७. मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स, पृष्ठ २५४ ।

६८. वही , पृष्ठ २५४ ।

६९. वही , पृष्ठ ८८ ।

७०. वही , पृष्ठ ७३, ८८ ।

७१. द्रष्टव्य : पृ० ना० कौल बामज़ई : ए हिस्ट्री ऑफ कश्मीर, पृष्ठ ४५४-५६ ।मु०ह०:कश्मीर अण्डर दि सुलतान्स,पृ०२४२-४७,लारेन्स :द वेली ऑफ कश्मीर, पृष्ठ ६५ ।

७२. बहारिस्तानिशाही , तारीखे-हसन ।

७३. ल`आर्त दे कुह्क्र एन्शियेन औ केशमियर : पृष्ठ २६ : मु० ह० द्वारा कश्मीर अण्डर द सुलतान्स के पृष्ठ २६४ पर उद्धृत ।

७४. मु० ह० : कश्मीर अण्डर दि सुलतान्स , पृष्ठ २८८ ।

७५. द्रष्टव्य : आरेल स्टीन : कल्हण`स राजतरंगिणी : ८।१८६६-६७.

७६. द्रष्टव्य : एम० एल० कपूर : ए हिस्ट्री ऑफ मेडीवल कश्मीर , पृष्ठ २१९ ।

७७. द्रष्टव्य : स्टीन : कल्हण`स राजतरंगिणी भाग १ , पृष्ठ १३० ।

७८. तीरीखे बेह्की भाग २, पृष्ठ ५०३ , पृ० ना० कौल बामज़ई द्वारा अपनी पुस्तक `ए हिस्ट्री आफ कश्मीर` में पृष्ठ ५१५ पर उद्धृत ।

७९. उपरोक्त द्वारा पृष्ठ ५१५ पर उद्धृत ।

८०. `कश्मीर में फारसी के प्रसार और विकास में सबसे अधिक योग ज़ैन-उल-आबिदीन का है जो स्वयं फारसी भाषा का कवि तथा उसमें दो गद्य-कृतियों का लेखक था ` - मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स , पृष्ठ२५५।

८१. श्रीवर : जैन राजतरंगिणी : अनु० जगदीशचन्द्र दत्त , पृष्ठ १४६ । द्रष्टव्य सूफी : कशीर भाग १ , पृष्ठ १६७ ; पृ० ना० कौल बामज़ई : ए हिस्ट्री ऑफ कश्मीर , पृष्ठ ५०६ ।

८२. मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स, पृष्ठ ८९ ।

८३. द्रष्टव्य : पृ० ना० कौल बामज़ई : ए हिस्ट्री आफ कश्मीर, पृष्ठ ५०४ ।

८४. बुयूह्लर : टूर इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स , पृष्ठ ६१ ।

८५. श्रीवर : जैनराजतरंगिणी : सम्पा० श्रीकण्ठ कौल, पृष्ठ ५५, ४।३७-३९.

८६. मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स , पृष्ठ २६५ ।

८७. सूफी : कशीर , भाग २ , पृष्ठ ५५८ ।

८८. द्रष्टव्य - मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स , पृष्ठ २६१ , ६० ।

८९. वही , पृष्ठ ६० ।

९०. श्रीवर : जैनराजतरंगिणी , अनु० दत्त , पृष्ठ १४५ ।

९१. तारीखे हसन ।

९२. जोनराज : राजतरंगिणी : सम्पा० श्रीकण्ठ कौल, पृष्ठ १४३,श्लो०८०४;
मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स, पृष्ठ ८२ ।

९३. मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स , पृष्ठ ८३ ।

९४. उपरोक्त ।

९५. हैदर मलिक : तारीख-ए-कश्मीर : मु० ह० द्वारा `कश्मीर अण्डर द सुलतान्स` में पृष्ठ ८६ पर उद्धृत ।

९६. कश्मीर अण्डर द सुलतान्स, पृष्ठ ८६ ।

९७. कपूर : ए हिस्ट्री आफ मेडीवल कश्मीर, पृष्ठ २२८ ।

९८. श्रीवर : जैनराजतरंगिणी : अनु० दत्त `किंग्स आफ कश्मीर`,पृष्ठ ११७ ।

९९. वही , पृष्ठ १९-१६ ।

१००. मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स, पृष्ठ ७६ ।

१०१. दत्त : किंग्स ऑफ कश्मीर , पृष्ठ ११६ ।

१०२. द्रष्टव्य : पृ० ना० कौल बाम्जई : ए हिस्ट्री ऑफ कश्मीर, पृष्ठ ४४८-९;
मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स, पृष्ठ २४३-४४ ।

१०३. कागज़ निर्माण से पूर्व कश्मीर में भोजपत्र का प्रयोग होता था ।
द्रष्टव्य - कपूर : ए हिस्ट्री ऑफ मेडीवल कश्मीर, पृष्ठ २३३ ।

१०४. श्रीकण्ठ कौल : जोनराजकृत राजतरंगिणी की भूमिका, पृष्ठ ११० ।
जोनराज : श्लो० ८८३-८८५ ।

१०५. द्रष्टव्य : मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स, पृष्ठ १९७-१९९ ।

१०६. उपरोक्त , पृष्ठ २००-२०२ ।

१०७. जीनराज : राजतरंगिणी : (सम्पा० श्रीकण्ठ कौल), पृष्ठ १५० , श्लोक ८१८ । तथा पृष्ठ १७६ , श्लोक ६५२ ।

१०८. श्रीवर : जैनराजतरंगिणी : अनु० दत्त , पृष्ठ १८४ ; मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स, पृष्ठ २०४ ।

१०९. मु० ह० : कश्मीर अण्डर द सुलतान्स, पृष्ठ २०५ ।

-----

(२)

कथा - वृत्त : पौराणिक - मिथकीय - ऐतिहासिक संदर्भ

कथाधारा : स्रोत और दिशान्तर , पौराणिक आख्यान : शौर्यवृत्त के तत्व, मिथकीकरण की दिशाएं , ऐतिहासिक सन्दर्भों की खोज - `असुर` : इतिहास और ऐतिहासिकता , एक प्राचीन इतिहास के खण्डहर और असुर बाणिपाल , इतिहास का असुर बाणिपाल और पुराण का बाणासुर , निष्कर्ष बिन्दु ।

(२)

कथा-वृत्त : पौराणिक - मिथकीय - ऐतिहासिक सन्दर्भ

कथा-धारा : स्रोत और दिशान्तर

प्रेम और युद्ध की युगल धुरियों पर गतिमान 'बाणासुर कथा' की कथा-स्थिति उषा-अनिरुद्ध प्रणय-प्रसंग और कृष्ण-बाणासुर युद्ध के पुराख्यान से संबद्ध है। कथानक हरिवंश पुराण से लिया गया है। स्वयं कवि ने कृति के प्रारम्भ में इस कथा-स्रोत का संकेत-सूत्र दिया है : 'हरिवंशस अंधर वंथिय' - कथा हरिवंश में कही जा चुकी है। ख्यात होने के कारण इतिवृत्त पाठक के मन के आर्केटाइपल संस्कारों का उद्‌बोधन करता है। आधार ग्रन्थ (हरिवंश पुराण) से कवि ने प्राय: सभी मुख्य घटना-प्रसंगों को लेकर अपना कथा-फलक निर्मित किया है जिससे कहीं-कहीं, विशेषकर अंतिम अंशों में, अनुवाद की-सी प्रतीति होती है। पर सतह को भेदने पर दृष्टि यह पाती है कि कवि ने आधार-ग्रन्थ के कथा-सूत्र को आँखें मूंद कर नहीं पकड़ा है, गृहीत कथा को कुछ नये कोण भी दिये हैं। अनेक प्रसंगों को छोड़ दिया गया है और अनेक स्थलों पर वर्णन और विवरण के अनावश्यक विस्तारों से दामन बचाया गया है। कई प्रसंग परिवर्तित रूप में आये हैं और कई नये तत्व जुड़े हैं जिनसे कथा का स्वरूप प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका है।

स प्रकिया के पीछे एक सचेत और जागरूक कवि का रचना-कौशल है जो कृति कला-शिल्प का निर्देश तो करता ही है कवि की दृष्टि, बोध, प्रतिभा और ौलिकता के स्तर भी उद्घाटित करता है। यह केवल संयोग-मात्र अथवा आक-स्मिक नहीं कि कवि भट्टावतार जहाँ 'हरिवंशस अंधर वंथिय' द्वारा कथा-स्रोत ी ओर इंगित करता है वहाँ 'पाने रचोम इह काव्य-प्रबन्ध' : इस काव्य-बन्ध की रचना स्वयं मैंने की है : कहकर अपनी सृजनात्मक - मौलिकता को ी रेखांकित करना चाहता है। इस दृष्टि से 'बाणासुर कथा' हरिवंश-वर्णित प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान की अनुकृति अथवा कश्मीरी भाषान्तर मात्र नहीं, एक स्वतंत्र काव्य-कृति है। इस काव्य-कृति में आधार-ग्रन्थ की कथा कौन-सी दिशायें ग्रहण करती है, किन नये मोड़ों को अपनाती है, इसका अध्ययन काफी रुचिकर और उपादेय है। इससे यह पता चलता है कि किन कथा-बिन्दुओं पर कवि का मन अधिक ठहरा है और किन पर वह केवल फिसलती हुई दृष्टि डाल कर आगे निकल गया है, कहाँ वह इन्वॉल्वड है, और कहाँ तटस्थ।

ख्यात् इतिवृत्त को लेकर विश्व की अनेक शीर्षस्थ काव्य-कृतियां रची गयी हैं। उन्हीं की भांति 'बाणासुर कथा' में भी कथा से अधिक कथन-भंगिमा, नयी दिशा और चारित्रिक बिम्ब महत्वपूर्ण हो उठे हैं। किसी भी पात्र के चरित्रांकन में अथवा घटना के वर्णन में एक भी रंग या उसकी छाया अथवा किसी रेखा के भिन्न अथवा अधिक हो जाने से सम्पूर्ण चित्र ही भिन्न- प्रभावात्मक हो जाता है। 'बाणासुर कथा' में ऐसे चित्र अनेक हैं जो मूल से भिन्न रेखा-कृतियों अथवा रंग- छायाओं के कारण विशिष्ट हो उठे हैं। इस चित्रशाला में प्रवेश करने से पूर्व इस तथ्य की ओर इंगित करना आवश्यक है कि 'हरिवंश पुराण' के विभिन्न संस्करणों में बाणासुर प्रसंग एकरूप नहीं है।

परशुराम लक्ष्मण वैद्य के अनुसार 'हरिवंश' भारतीय हिन्दू पुराणों में सबसे प्राचीन है।[१] लिपिबद्ध होने से पूर्व यह कथा-गायकों (सूत-मागधों) को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मौखिक परम्परा से प्राप्त होता रहा है जिससे

समय-समय इसके पाठ में परिवर्तन होते रहे हैं। इस सन्दर्भ में वैद्य महोदय ने बाणासुर-आख्यान का विशेषकर उदाहरण दिया है। उनके द्वारा सम्पादित और संशोधित पाठ में यह कथा १२४६ पंक्तियों में निबद्ध है जो कि उनके विचार से इसका मूल कलेवर रहा है। किन्तु अन्य प्रकाशित प्रतियों अथवा पाण्डुलिपियों में कुल मिलाकर ५४७ पंक्तियाँ अधिक मिलती हैं और यह आख्यान फूलकर १७९३ पंक्तियों का हो जाता है।[2] इन पाण्डुलिपियों का विवरण देते हुए वैद्य ने इसके उन्तीस उत्तरी संस्करणों का उल्लेख किया है जिनमें कश्मीर से प्राप्त शारदा तथा देवनागरी में लिखित आठ पाण्डुलिपियाँ हैं। इनमें से एक प्राचीन शारदा-पाण्डुलिपि है जो कश्मीर के राजघरानों की रही है।[3] निश्चय से कवि भट्टावतार ने अपने समय में कश्मीर में उपलब्ध किसी पाण्डुलिपि को 'बाणासुर कथा' की कथा का आधार बनाया होगा पर यह कहना आज संभव नहीं कि यह पाण्डुलिपि कौन-सी रही होगी और उसमें बाणासुर के कथा प्रसंग का ठीक क्या रूप रहा होगा। फिर भी प्रभाकर लक्ष्मण वैद्य द्वारा सम्पादित संशोधित पाठ में प्रस्तुत कथा से भट्टावतार द्वारा दी गयी कथा बहुत मिलती है। श्री वैद्य के संस्करण में कश्मीर से प्राप्त पाण्डुलिपियों का काफी उपयोग किया गया है।

महाभारत के सभा-पर्व में भी बाणासुर का प्रसंग मिलता है। पाण्डवों के राजसूय यज्ञ के अवसर पर भीष्म उपस्थित राजाओं में कृष्ण को सबसे अधिक पूज्य तथा आदरणीय बतलाते हैं क्योंकि वे उनकी दृष्टि में स्वयं नारायण के अवतार हैं। इसके बाद भीष्म कृष्ण के असुर-विजयी अवतारी चरित्र की प्रतिष्ठा करते हुए सहस्र-भुज बाणासुर से उनके युद्ध तथा उषा-अनिरुद्ध प्रेम-प्रसंग का वर्णन करते हैं। वैद्य महोदय ने बहुत अच्छी तरह यह प्रमाणित किया है कि यह सारे का सारा अंश 'हरिवंश' से गृहीत क्षेपक है।[4]

'शिव पुराण' में भी बाणासुर की कथा आयी है जो काफी सीमा तक 'हरिवंश' में दी गयी कथा से मेल खाती है यद्यपि विवरणों में काफी अन्तर

है ।[५] `बाणासुर कथा` लिखने से पूर्व भट्टावतार ने ज़रूर इसका भी अध्ययन किया होगा – सर्प-पाश में बंधे अनिरुद्ध से वे उसी भाँति दुर्गा की स्तुति कराते हैं जैसे शिवपुराण में । इससे कवि की शैव-आस्था संकेतित होती है । हरिवंश पुराण के व्यंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित संस्करण में अनिरुद्ध से वैष्णवी देवी की एक लम्बी-सी स्तुति करायी गयी है ।

इस `क्षेपक` के बाद हम अब फिर मूल विषय की ओर आते हैं । हरिवंश पुराण की ही भाँति आख्यान - वाचन के लिए श्रोता-वक्ता का विधान `बाणासुर कथा` में भी है । सबसे पहले कथा-मंच पर सूत्रधारों की भाँति ऋषि वैशम्पायन और राजा जनमेजय आते हैं । राजा ऋषि से कहते हैं कि मैंने आपसे नारायण के अनेक विशेष चरित्र सुने हैं, अब इच्छुक हूं यह वृत्तान्त सुनने को कि कैसे दर्पान्ध बाणासुर को रण में कृष्ण ने पराजित किया और कैसे वह असुर-नृप जीवन्मुक्त हो गया । और उसके बाद : `शुन उय्ह एकमने तू भूपा बाणस-कृष्णस महायुद्ध हुव ।` — अब एक मन होकर सुनो हे भूप, बाण और कृष्ण में महायुद्ध हुआ । और फिर प्रारंभ होता है असुर बाण को वरदान प्राप्ति का प्रसंग । पाठक भी राजा जनमेजय के कथोत्सुक मन से तादात्म्य स्थापित कर लेता है और मानसिक स्तर पर स्वयं वैशम्पायन का श्रोता जनमेजय बन जाता है ।

इसके बाद ऋषि और राजा ओट में हो जाते हैं और पाठक के सामने आ खड़ी होती है अतुल बल और दर्प की महाकार मूर्ति— बाणासुर ! उसकी प्रचण्ड अतृप्त युयुत्सा, उसकी अनन्य शिवभक्ति, देव - दानव - यक्ष - गन्धर्वों पर छाया हुआ उसकी अपराजेय भीमा शक्ति का आतंक , उसके सचिव कुम्भाण्ड की प्रखर मंत्रि-बुद्धि और विवेक— इन सब बिन्दुओं को जोड़ती हुई कथा आगे बढ़ती है - हरिवंश पुराण और `बाणासुर कथा` दोनों में । यहीं भावी कार्य-व्यापार के कथा-बीज अंकुरित होने लगते हैं । भट्टावतार ने `हरिवंश पुराण` को आधार तो बनाया है, पर जाने-अनजाने अनेक प्रसंगों में हाशियों पर उनकी

शिव-आस्था पारदर्शी हो उठी है । इसी से यद्यपि असुर बाण उनकी कृति में भी 'हरिवंश' की भाँति उद्दण्ड, शक्तिगर्वित और प्रचण्ड है पर उसका एक और रूप है — शिवभक्त का जिसे कवि ने कुछ अतिरिक्त रेखाओं से अंकित किया है । इस रूप में वह अपनी एक हज़ार भुजायें काट कर अग्नि-समर्पित करता है ताकि शिव तुष्ट हों ।[७] 'हरिवंश पुराण' में असुर बाण की इस प्रकार की तपस्या का उल्लेख नहीं है । अवतार भट्ट उसे मात्र देव-उत्पीड़क और विष्णु विरोधी शिव का घृणित प्रतीक-पात्र नहीं बनाते जैसा 'मानस' में तुलसी ने रावण को बनाया है । भट्टावतार का बाण एक अविवेकी किन्तु निःसंशय शुभ पात्र है जिसका शक्तिशाली व्यक्तित्व सारी कथा पर आदि से लेकर अन्त तक छाया रहता है ।

(व्यंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित) 'हरिवंश पुराण' में क्रीड़ारत कार्त्तिकेय को देखकर बाणासुर के मन में वैसी ही इच्छा का प्रस्फुटन दिखाया गया है । शिव और पार्वती उसके तप से प्रसन्न हो उसे कार्त्तिकेयवत् ही मानते हैं । शिव स्वयं अपने गणों और कार्त्तिकेय के सहित बाण की राजनगरी 'शोणितपुर' की रक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हैं ।[८] कार्त्तिकेय उसे एक अत्यंत तेजस्वी रथ और मोर प्रदान करते हैं । 'बाणासुर कथा' में इन सब बातों का वर्णन नहीं है, केवल असुर बाण को शिव से यह अनुरोध करते दिखलाया गया है कि वे स्कन्द सहित सदा उसके निकट रहें और स्कन्द जैसा आकर्षक शरीर उसे भी प्राप्त हो[९] -

' स्कन्द सहित तु आसूं निरिश

- - - - - - - - - - - -

गच्छिये पावह रधोय वय किरिश्र !

शिव से यह वरदान पाकर असुर अजेय हो जाता है । किसी देवता में यह साहस या शक्ति नहीं रहती कि वह उसकी दुर्दान्त ललकार का युद्ध की भाषा में प्रत्युत्तर दे । उन्हें तेजोहत करके उनके भुज-बल और मनोबल दोनों को तोड़कर रख देता है और उन्हें नाकलोक में रहने को विवश कर देता है । हरिवंश

पुराण और 'बाणासुर कथा' दोनों में उसकी शक्ति का यह आतंक-चित्र है,[10] पर 'बाणासुर कथा' में उसकी युयुत्सा कुछ अधिक प्रचण्ड है। उसे बस युद्ध चाहिए - भयंकर युद्ध! हतवीर्य देवताओं के शान्त हो जाने के बाद उसे जब कहीं से भी युद्ध नहीं मिलता तो वह निराश हो जाता है। उसे लगता है कि उसकी सहस्र भुजायें व्यर्थ हैं, उसका सारा जीवन व्यर्थ है! फिर से तपस्या करने पर शिव जब प्रकट होते हैं तो बाणासुर अपनी इस विकलता और तीव्र निराशा को व्यक्त करके उनसे युद्ध का वरदान माँगता है। शिव वरदान देते हैं कि उसके कुल और भुजबल के उपयुक्त युद्ध उसे अवश्य प्राप्त होगा। युद्ध के आगमन की सूचना होगी ध्वज-गृह के आँगन में स्थित मयूर-ध्वज का टूटना! सुनकर असुर-भूप की आँखों में आनंद के आँसू छलक उठते हैं।[11] 'बाणासुर कथा' में इस प्रसंग के वर्णन में 'हरिवंश' का ही कथासूत्र ग्रहण किया गया है पर कुछ अतिरिक्त स्पर्शों ने चित्र को थोड़ा भिन्न बना दिया है।

'हरिवंश पुराण' में बाण की राजनगरी शोणितपुर और उसके निवासियों का वह प्रभाव-चित्र नहीं है जो भट्टावतार ने अपनी कृति में अंकित किया है: नरलोक में शोणितपुर नगरी: जैसे सरोवर में खिला हुआ कमल फूल! वहाँ के लोग पुण्यवान्, यशस्वी![12] पुराणकार का वैष्णव भक्ति-संस्कारी मन एक असुर-नगरी के लोगों का इन विशेषणों द्वारा परिचय कैसे देता? उसने बात को ही छोड़ दिया है। अवतार भट्ट की ये पंक्तियाँ कृतिधर्मिता द्वारा प्रेरित हैं, भक्त-बुद्धि-नि:सृत नहीं। नरलोक में खिले इस कुवलय (शोणितपुर) को देखकर सुरेन्द्र के मन में उसे पाने का लोभ उत्पन्न होता है।[13] क्या यहाँ सूक्ष्म संकेत द्वारा यह सुझाया गया है कि बाणासुर और देवताओं के बीच संघर्ष और वैमनस्य का एक कारण यह भी था कि इन्द्र की उसकी सुन्दर राज नगरी पर नज़र थी?

शिव से युद्ध का वरदान पाकर उल्लसित असुर-नृप अपने मंत्री कुम्भाण्ड से उसका उल्लेख करता है, पर कुम्भाण्ड उसकी प्रसन्नता में सम्मिलित नहीं होता, उसके पागलपन पर सिर धुनता है। उसकी तीक्ष्ण अनुभव-पुष्ट बुद्धि तुरन्त सारी

स्थिति का आकलन करती है और भावी युद्ध की विनाशकारी संभावनाओं से वह घबरा जाता है। उसकी आशंका, राजा को समझाने का उसका वृथा प्रयत्न-ये बातें 'बाणासुर कथा' में वर्णन में मामूली से अन्तर के साथ वैसी ही हैं जैसी आधार-ग्रन्थ में।[१४]

'हरिवंश' की भाँति 'बाणासुर कथा' में भी शोणितपुर में शिव-पार्वती और उनके साथ अप्सराओं-गंधर्वों की मुक्त विलास-केलि का वर्णन है, लेकिन विलास-भूमि में अन्तर है – 'हरिवंश' में यह रति-उत्सव शोणितपुर के निकट नदी-तट पर दिखाया गया है जबकि 'बाणासुर कथा' में नगर के 'वर-उपवन' में जहाँ 'विधु-बांधव' पारिजात की महक से वातावरण गंधमय है![१५] ऐसे स्थलों पर प्रतीत होता है कि अवतार भट्ट अपनी सही काव्य-भूमि पर खड़े हैं। यहाँ उनका कवि-मन इतिवृत्तात्मकता की सीमाओं को तोड़कर रूप और सौन्दर्य के मुक्ताकाश में उड़ानें भरता है। 'मुरज-मिर्दंग-पटह-कलाहगण' के मादक काम-संगीत, 'गजगमना, शशि वदना' अप्सराओं की काम-भंगिमाओं और नृत्य-गान व उषा की भुवन-मोहिनी देह-छवि के काम्य-आकर्षण की रस-चर्चा में विभोर हो जाता है। 'हरिवंश' की भाँति केवल घटना-स्थिति का वर्णन-भर करके सन्तुष्ट नहीं होता।

रस-विलास का यह दृश्य नवयौवना उषा के मन को कामना-विह्वल कर देता है। भाँप जाती हैं पार्वती, उसे निकट बुलाकर आश्वस्त करती हैं कि वह भी शीघ्र ही अपने पति के साथ इसी भाँति सुखी होगी! पति के साथ? उषा के मन की इस क्षण-भर की शंका को भी कोमलमना गिरिजा जान लेती हैं। कहती हैं बैशाख के शुक्ल पक्ष की द्वादशी की रात को उसे नींद में अपने स्वप्न-पुरुष के दर्शन होंगे-- वही उसका पति होगा! यहाँ तक हरिवंश और 'बाणासुर कथा' की कथा-धारायें एक ही दिशा में प्रवाहित होती हैं।[१६] व्यंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित हरिवंश के संस्करण में पार्वती के इस वचन के तुरन्त बाद उषा की काम-विदग्ध मनोदशा दिखलायी गयी है। वह उस अनदेखे

(स्वप्न में भी) अनजाने पुरुष की विरह-पीड़ा से एकदम व्यथित हो उठती है । चेहरा पाण्डु हो जाता है, आँखों से अविरल अश्रुधारा बह निकलती है, शरीर को ज्वर जकड़ लेता है, दिन में भोजन से अरुचि हो जाती है, रात को नींद से । उच्छ्वास, रुदन, एकान्त सेवन द्वारा वह अपनी मनोदशा के संकेत देती है पर वे समझे नहीं जाते और उसके ताप को दूर करने के लिए उसके वक्ष-स्थल पर चन्दन का लेप किया जाता है । इस पर भी दशा नहीं सुधरती तो घबराकर वैद्य बुलाये जाते हैं जो ज्वर को काम-ज्वर घोषित करते हैं । रोती हुई माँ के सामने उषा के मन का उद्वेग फूट निकलता है ! सखियों की अटकलें सच प्रमाणित होती हैं — गरज़ यह कि वह सभी कुछ होता है जिसके वर्णन की परिपाटी है ।[१७] 'बाणासुर कथा' में स्वप्नदर्शन से पूर्व व्यभिचारी और सात्विक भावानुभावों की यह बेबादल बरसात नहीं बरसती ! इस प्रकार कवि भट्टावतार अस्वाभाविक मन:स्थिति-निरूपण की इस परम्परा से बचे हैं । वे स्वप्न-दर्शन प्रसंग के बाद उषा की अपने स्वप्न-पुरुष से मिलनातुरता का पूरे रस के साथ वर्णन करते हैं । स्वप्न-दर्शन की कथानक-रूढ़ि का समावेश उन्होंने भी हरिवंश के आधार पर किया है, लेकिन यहाँ भी स्वप्न में अनिरुद्ध द्वारा उषा के बलात् आलिंगन, अधरपान और 'सुखमय मन्मथ भोग' के ऐन्द्रिक बिम्बों के सृजन में उनकी कवि-प्रतिभा अधिक सक्रिय रही है[१८], जबकि पुराणकार ने मात्र यह कहकर प्रसंग को समाप्त किया है कि स्वप्न में उषा का एक पुरुष से संयोग हुआ ।[१९]

स्वप्न में कौमार्य भंग को लेकर उषा के नैतिक संकट और दुख को 'बाणा-सुर कथा' में अधिक गहरा दिखाया गया है । विवाह-पूर्व यौनाचरण के औचित्य की समस्या उसके लिए एक विकट मानसिक द्वन्द्व का कारण बनती है जो लगभग एक मनोग्रन्थि का रूप धारण कर लेती है । 'हरिवंश' में इस द्वन्द्व को इतनी तीव्रता से प्रक्षेपित नहीं किया गया है, बस यह सपाट कथन मात्र है कि कुल को कलंक लगने के भय से वह जीवन-विसर्जन करना चाहती है ।[१९] 'बाणासुर कथा' की उषा गले में पाश लगाकर मर जायेगी, पिता को मुंह नहीं दिखायेगी ।[२०]

वह नैतिक अपराध-भावना से बुरी तरह से संत्रस्त वय:सन्धि की देहरी को पार कर चुकी एक नवयौवना है ।

इसी प्रसंग में पुराण वर्णित आख्यान में, अपनी सखी मंत्री कुम्भाण्ड की कन्या [२१] (कुछ संस्करणों के अनुसार उसका नाम रामा है) [२२] के सामने उषा अपना मन खोलकर रख देती है और वह उसे आश्वस्त करने का प्रयत्न करती है । वह उषा को पार्वती के वचनों का स्मरण कराती है जिससे उषा की मनो-व्यथा कुछ कम हो जाती है । वह उसे (कुछ संस्करणों के अनुसार) काम-चतुरा, बुद्धिकुशला अप्सरा चित्रलेखा से समस्या के समाधान में सहायता लेने को कहती है। [२३] 'बाणासुर कथा' में कुम्भाण्ड की कन्या को कहीं भी प्रवेश नहीं कराया गया है, कथा-नेपथ्य में भी नहीं । उसकी कोई भूमिका ही नहीं, नामोल्लेख तक नहीं। वहाँ चित्रलेखा ही एकमात्र अंतरंग सखी है जो उस प्रथा और शास्त्र का हवाला देकर उसे आश्वस्त करती है कि स्वप्न में उसके साथ जो कुछ हुआ उसके लिए वह किसी प्रकार उत्तरदायी नहीं, उसने किसी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं किया, वह अकलंक है, दोष रहित है अर्थात् भारतीय यौन-नैतिक शब्दावली में, सती है [२३]। 'हरिवंश' में दिया गया चित्रलेखा का परिचय भी 'बाणासुर कथा' में नहीं है [२४]।

स्वप्न के रति-तस्कर को पहचानने के लिए चित्रलेखा उषा को सात रातें प्रतीक्षा करने को कहती है । इस अवधि में वह प्रसिद्धतम देव, यक्ष, किन्नर, नाग, असुर, मनुष्य राजपुरुषों की मुखाकृतियाँ चित्रपट पर अंकित करेगी । यह प्रसंग 'बाणासुर कथा' में 'हरिवंश' से लिया तो गया है पर उषा का अनिरुद्ध को स्वप्न-पुरुष के रूप में पहचानने का वर्णन उसमें उस विस्तार से नहीं दिया गया है । 'हरिवंश' की उषा चित्रलेखा से अपनी काम-व्यथा का हवाला देकर अनिरुद्ध के अपहरण का अनुरोध करती है -- कहती है कि अन्यथा वह प्राण-त्याग करेगी । [२५] 'बाणासुर कथा' की उषा उसे यह धमकी भी देती है कि यदि वह तुरन्त अनिरुद्ध को नहीं लाती तो वह उसे शाप दे देगी -- 'गच्छ अनुन पिय, नत पियियि शाप ।' [२६] अनिरुद्ध के अपहरण के लिए चित्रलेखा

का मनोवेग से द्वारका जाने का प्रसंग 'हरिवंश' से कमोबेश उसी रूप में लिया गया है, पर पाण्डुलिपि के कुछ पृष्ठ गायब होने के कारण उसकी द्वारका से वापसी का विवरण नहीं मिलता । चित्रलेखा अनिरुद्ध को अपनी सुन्दरी पत्नियों के बीच भी उदास और अनमना बैठा पाती है । उसने भी स्वप्न में उषा को देखा है जिसकी उज्ज्वल चाँदनी-सी मदिर देह-छवि की स्मृति से बिन्धा वह मन में काम-पीड़ा से तड़प रहा है । इस प्रकार स्वप्न-दर्शन और पूर्वराग की कथानक रूढ़ियाँ दोनों कृतियों में प्रयुक्त हुई हैं । अनिरुद्ध के मनोलोक की अधिक विस्तृत और अंतरंग झाँकी हमें अवतार भट्ट ही देते हैं, हरिवंश पुराण के आख्यानकर्ता नहीं ।[२७]

नारद भारतीय मिथक-पटल के एक ऐसे दिलचस्प तथा स्थिर (स्टॉक) पात्र हैं जो सत्य-युग से लेकर द्वापर तक किसी भी काल में किसी भी पुराण कथा के पृष्ठों पर बिना सूचना दिये अवतरित हो सकते हैं हरिवंश पुराण और इसलिए 'बाणासुर कथा' में भी वे अनेक बार प्रकट हुए हैं । अनिरुद्ध के अपहरण को आसान बनाने के लिए वे चित्रलेखा को तामसी विद्या प्रदान करते हैं जिसके प्रभाव से वह स्वयं अदृश्य रहकर भी सब को देख सकती है । वे चित्रलेखा को आश्वासन देते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर वे स्मरण मात्र करने से उपस्थित हो जायेंगे । अनेक प्रसंगों के बीच अपनी उपस्थिति से वे कथा का कोई न कोई मोड़ या गति अवश्य प्रदान करते हैं । हरिवंश-वर्णित बाणासुर-आख्यान में वे अनिरुद्ध-हरण के मामले पर विचार कर रही यादव सभा के मध्य प्रकट होकर कृष्ण को यह सूचना देते हैं कि उनके अनिरुद्ध कहाँ हैं , कैसे हैं — उषा ने चित्रलेखा द्वारा उन्हें अपहृत कराया है और बाणासुर से युद्ध के दौरान सर्पपाश में बंधे हुए वे घोर शारीरिक-मानसिक यंत्रणा भोग रहे हैं । वे ही द्वारका से शोणितपुर तक की ग्यारह हजार योजन की दूरी को तय करने के लिए कृष्ण से तुरन्त गरुड़ पर आरोहण को कहते हैं ।[२८] 'बाणासुर कथा' में नारद सम्बन्धी वे सभी प्रसंग समाविष्ट नहीं हैं जो 'हरिवंश' के कुछ संस्करणों में कथा को गति देते हैं । कहीं-

कहीं उन्हें उषा और अनिरुद्ध को परिणय-सूत्र में भी बाँधते हुए दिखाया गया है।[29] `बाणासुर कथा` में नारद इस स्वत: स्वीकृत पौरोहित्य का आसन नहीं संभालते-- उषा और अनिरुद्ध का विवाह-प्रसंग उसमें है ही नहीं।

अनिरुद्ध के द्वारका से सहसा विलुप्त हो जाने पर उसकी पत्नियों का विलाप, जो शास्त्रीय शब्दावली में `विरह-वर्णन` अथवा `विप्रलम्भ शृंगार` के अंतरगत आता है, `हरिवंश` की भाँति `बाणासुर कथा` के पन्नों को भी अश्रु-सिंचित करता है; पर उनकी अस्त-व्यस्त-संत्रस्त मनोदशा का जो चित्र भट्टावतार ने अंकित किया है वह पुराण में नहीं मिलता। `बाणासुर कथा` में अनिरुद्ध-पत्नियों का केवल सामूहिक क्रन्दन ही नहीं गूंजा है, हल्के से वैयक्तिक खाके भी उभरे हैं जो `हरिवंश` में नहीं हैं।[30] `हरिवंश` में उन्हें बस यही दु:ख है कि कृष्ण के होते हुए भी अनिरुद्ध का अपहरण किया गया। यहाँ कृष्ण के अवतारी रूप के प्रति उन्हें अधिक सचेत दिखाया गया है।[31] लेकिन अवतार भट्ट ने उनके विछोह-दु:ख के भावानुभावों को अधिक आत्मीयता से चित्रित किया है। साफ प्रतीत होता है उन्होंने धर्मबुद्धि से संचालित होकर अपना काव्य नहीं रचा था -- उसमें कला के मूल्य हैं, भक्ति की मीमांसा नहीं। स्थिति पर विचार करने के लिए यादव-सभा आ जुटती है। सात्यकि, अक्रूर, अनाधृष्टि आदि यादव-वीर कृष्ण से उनकी चिन्ता का कारण पूछते हैं और कृष्ण के कारण बताने पर अनिरुद्ध को खोजने के लिए सब कहीं दूत भेजे जाते हैं। अन्त में नारद आकर वास्तविक स्थिति सूचित करते हैं -- ये घटना-स्थितियाँ `हरिवंश पुराण` से जस को तस ली गयी हैं।[32]

उधर `बाणासुर कथा` में उषा के साथ अनिरुद्ध की निर्बन्ध प्रणय-क्रीड़ा और मदिरापान करते हुए दिखलाया गया है।[33] `हरिवंश` में पुराणकार के वैष्णव-संस्कारी मन ने इस प्रसंग को मदिरा-सिक्त नहीं किया है। इस बीच हर्म्य के रक्षक अनिरुद्ध का उषा के शयनागार में यह विलास-व्यापार देख लेते हैं और असुर नृपति बाण को तुरन्त इसकी सूचना देते हैं। बाण भभक उठता है,

अनिरुद्ध की तत्काल हत्या करने का आदेश देता है। शस्त्रास्त्र-सज्जित असुर-वाहिनी उषा के महल को घेर लेती है और अनिरुद्ध के साथ उसका घोर युद्ध होता है।[३४] इन घटनाओं के ढांचे भी 'बाणासुर कथा' में हरिवंश पुराण से ज्यों के त्यों उतारे गये हैं (कहीं - कहीं तो अनुवाद का आभास होता है), लेकिन उनमें जो चारित्रिक विशेषताओं के रंग भरे गये हैं वे भट्टावतार की तूलिका के हैं। यहां उषा को मात्र 'कामिनी' और 'रमणी' की कामशास्त्रीय संज्ञाओं से ऊपर उठाकर एक कोमल-मना प्रेमिका के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। कवि मानो आशंका, आकुलता, भय से धड़क रहे उसके हृदय को अपनी कृति के पन्नों पर रख देता है। इस प्रसंग को 'बाणासुर कथा' के सुन्दरतम गीत में गूंथा गया है : 'हे प्रिय, युद्ध में न जाओ, वे सब मिलकर तुम्हारी हत्या कर डालेंगे।'[३५] अपने प्रणयी से उषा का यह आकुल-अनुरोध 'हरिवंश' की उस सपाट इतिवृत्तात्मकता से बिल्कुल भिन्न है जो इस मनोवैज्ञानिक कथा-बिन्दु को बस दो-तीन पंक्तियों में ही फिसलने देती है। उसका पछतावा : 'अनत्थ गो व् आनना' — तुम्हें यहां लाने से अनर्थ हो गया, प्रिय ! ; उसका डर : 'म्यानेस पितस बाण से रोष चड़ि महारणे' — महारण में मेरे पिता बाण को रोष चढ़ेगा !' — यह सब उसके व्यक्तित्व को भिन्न बिम्ब प्रदान करता ही है, कथा को भी एक नया आयाम प्रदान करता है, वह इतिवृत्त से ऊंची उठकर मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित हो जाती है। यही बात इस प्रसंग के सन्दर्भ में अनिरुद्ध के विषय में कही जा सकती है — वह यहां 'हरिवंश' के अनिरुद्ध से भिन्न एक अनिरुद्ध प्रतीत होता है। 'हरिवंश' में वह बस उषा से अपना पराक्रम देखने को कहता है ; यहां उसके वीर-दर्प को जगाया गया है। 'मैं युद्ध नहीं करूं तो धिक्कार है मेरे यादव जन्म को ! मैं क्या ऐसे अवसर पर कपों में मुंह छिपा सकता हूं, वनिते ! नहीं स्वकर्म को नमन कर मैं तो युद्ध करूंगा।'[३६] यह बात 'हरिवंश' के अनिरुद्ध में कहां आ पायी है।

अनिरुद्ध और असुर-सेना के बीच हुए युद्ध का वर्णन वैसा ही बाणासुर

कथा' में है जैसा कि आधार ग्रन्थ में, पर इस अन्तर के साथ कि उसमें असंगत और अनावश्यक विवरणों को भरमार से कथा के प्रभाव को क्षीण होने नहीं दिया गया है। बाणासुर की असुर वाहिनी का चित्र तो यहाँ विशेष रूप से प्रभावपूर्ण है। यह सेना भयंकर अवश्य है पर साथ ही एक वीर, सुप्रशिक्षित और अनुशासनबद्ध सेना है, 'हरिवंश' के कुछ संस्करणों में वर्णित असुर सेना की भाँति भयंकर वन्य पशुओं की-सी मुखाकृति वाले किमाकार प्राणियों का समूह नहीं। अनिरुद्ध का बाणासुर से युद्ध, कुम्भाण्ड का बाण को स्वरक्षा के लिए माया के प्रयोग द्वारा अनिरुद्ध को पराजित करने का परामर्श, बाणासुर का अनिरुद्ध को नागपाश में बद्ध करना — ये प्रसंग मामूली से अन्तरों के साथ 'बाणासुर कथा' में 'हरिवंश' का उल्था मात्र हैं।[३७] एकमात्र महत्वपूर्ण अन्तर है 'बाणासुर कथा' में नागपाश में बंधे अनिरुद्ध का आर्त हो दुर्गा से यातना से मुक्ति के लिए प्रार्थना करना।[३८] यह, जैसा बतलाया जा चुका है, शिव पुराण का प्रभाव है। इससे भट्टावतार की शिव-शक्ति मानसिकता की झलक मिलती है। यहाँ कवि ने ईश्वर और मनुष्य के बीच माता-पुत्र का एन्थ्रोपोमार्फिक सम्बन्ध स्थापित किया है। वत्सला माँ की भाँति अनिरुद्ध की पीड़ा से द्रवित हो दुर्गा स्वयं प्रकट होकर उसे स्नेह-सिक्त शब्दों में आश्वस्त करती हैं — 'आस-आस तनया अनिरुद्धा, वाचुस मु पानय अज़ हवों' — अनिरुद्ध, मेरे तनय, मैं आयी, लो मैं स्वयं आ गयी।' और फिर वे उसके कठिन नागपाश को ढीला कर देती हैं — पूरा इसलिए नहीं खोलतीं कि तब कृष्ण और बाणासुर के बीच पूर्वनिश्चित युद्ध की संभावना समाप्त हो जाती।[३९] यहाँ निश्चय से कवि के शाक्तभाव ने ज़ोर मारा है। 'हरिवंश' में अनिरुद्ध से वैष्णवी देवी की एक लम्बी स्तुति-भर करायी गयी है - बस! प्रभाकर लक्ष्मण वैद्य द्वारा संशोधित पाठ में यह स्तुति नहीं दी गयी।

बाणासुर के साथ युद्ध से पूर्व कृष्ण का शोणितपुर के संरक्षक आहवनीय अग्नि और शिव ज्वर से रण दिखाया गया है। सभी विवरण वैसे ही हैं जैसे आधार ग्रन्थ में।[४०] शिव ज्वर कृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है जिसे

निकालने के लिए कृष्ण वैष्णव ज्वर को उत्पन्न करते हैं। 'हरिवंश' के कुछ संस्करणों में शैव और वैष्णव ज्वरों में युद्ध होता दिखाया गया है, किन्तु वैद्य द्वारा संशोधित पाठ में केवल यह वर्णित है कि घबरा कर ज्वर कृष्ण से प्राण-दान की भिक्षा मांगता है। कृष्ण वैष्णव ज्वर को अदृश्य हो जाने को कहते हैं और शैव ज्वर को वर देते हैं कि एक मात्र वही ज्वर संसार में रहेगा।[४१] 'बाणासुर कथा' में भी यह प्रसंग लगभग इसी भांति वर्णित है। कृष्ण और शिव तथा कृष्ण और बाणासुर युद्ध की मोटी-मोटी रेखायें भी 'बाणासुर कथा' में हरिवंश की ही अनुकृतियां हैं, यद्यपि, जैसा पहले संकेतित किया गया है, आधार ग्रन्थ की कई बातों को उसमें छोड़ दिया गया है। उसमें कृष्ण के चक्र से पहले कार्तिकेय और बाद में बाणासुर की प्राण-रक्षा करने के लिए पार्वती की प्रेरणा पर लम्बा अथवा कोटवी देवी को युद्धस्थल में कृष्ण के सामने गतलज्जा-निर्वस्त्रा नहीं लाया गया है। यह विचित्र और अशोभन प्रसंग शैव-वैष्णव-द्वन्द्व का संदर्भ लिये हुए है। शैव-धर्म की उदय-भूमि कश्मीर में अवतार-भट्ट देवी को इस रूप में प्रस्तुत कैसे करते ? उन्होंने तो बस यह दिखलाया है कि कार्तिकेय को हारते हुए देख पार्वती ने आगे बढ़कर उन्हें रणक्षेत्र से बाहर खींच लिया।[४२] 'बाणासुर कथा' में कृष्ण 'हरिवंश' की भांति असुर बाण की ललकार के उत्तर में उसे कार्तवीर्य सहस्रार्जुन का आख्यान नहीं याद दिलाते,[४३] न वे उसके पौरुष को धिक्कारते हैं कि वह युद्ध में कोटवी देवी का सहारा ले रहा है।[४४]

कुछ और भी 'हरिवंश' के कथा-प्रसंग हैं जिन्हें भट्टावतार ने छोड़ दिया है। विजयी कृष्ण के बाणासुर के भुजचक्र का छेदन कर द्वारका लौटने पर 'बाणासुर कथा' में भी द्वारकावासियों को उनके स्वागत को व्याकुल दिखलाया गया है, इन्द्रादि देवताओं को भी स्वागतातुर दर्शाया गया है[४५], पर सिंह, वृषभ, मृग, नाग, अश्व, सारस और मयूर आदि के आकार के सहस्रों विमानों का चिड़ियाघर वहां नहीं सजाया गया।[४६] न द्वारकावासियों से पूजित इन्द्र को आहुक, वसुदेव, साम्ब, उल्मुक, विपृथु, अक्रूर आदि यादवों का आलिंगन करते दिखाया गया है।[४७] आख्यान के अंत में हरिवंशपुराण में कथामंच पर आकर वैशम्पायन

जनमेजय को केशव-महात्म्य सुनाते हैं ।[४८] 'बाणासुर कथा' भक्ति-भावना प्रेरित पुराणगाथा न होकर काव्य है अत: इस प्रकार के प्रसंग उसमें नहीं हैं । कुल मिला-कर यह कहा जा सकता है कि बाणासुर कथा में आधार-ग्रन्थ से ली गयी कथा को अनेक नये स्पर्श दिये गये हैं । चारित्रिक बिम्बांकन यहां इतिवृत्त की अभिधा-त्मक भंगिमा से अधिक महत्वपूर्ण हो उठे हैं । प्रेम और सौन्दर्य की ऐन्द्रिक सुखा-नुभूति की व्यंजना में, शब्दों के आनुभविक-मूल्यों की सृष्टि में कवि की सृजना-त्मकता अधिक क्रियाशील रही है । दूसरे शब्दों में उसकी सौन्दर्य और संगीत-चेतना पुराणवर्णित आख्यान को काव्य के रसात्मक आयाम प्रदान करती हैं ।

पौराणिक आख्यान : शौर्य-वृत्त के तत्व

कथा की मूल चेतना स्पष्टतया पौराणिक है, पर उसमें शूरकथाओं के अनेक अभिप्राय जुड़ गये हैं जिनमें प्रमुख हैं कन्या-प्राप्ति और उसके हेतु होने वाला संघर्ष । प्राप्ति का तात्पर्य श्री मैथिली प्रसाद भारद्वाज के शब्दों में, 'सामन्ती पुरुष को युद्ध अथवा अन्य कोटि के संघर्ष के पश्चात् इच्छित्-सुन्दरी की प्राप्ति' है ।[४६] संघर्ष प्राप्ति के लिए किये गये प्रयत्न में निहित है । प्रतिशोध अथवा प्रतिद्वन्द्विता की स्थिति में यह संघर्ष युद्ध का रूप धारण कर लेता है । कुल - परिवार की मान-प्रतिष्ठा की रक्षा अथवा कन्या के अपहरण के परिणामस्वरूप युद्ध की स्थिति दिखलायी जाती है । शूर नायक में विकट परिस्थितियों के बीच पराक्रम प्रदर्शन तथा दुस्साहसी कार्यों में उलझने की प्रवृत्ति प्रबल होती है । प्राय: हर विपत्ति से टक्कर लेकर, कठिन से कठिन संघर्ष को चुनौती स्वीकार कर पथ के अवरोधों को रौंदता हुआ वह अन्त में विजयी होता है । इस प्रकार शूर-वृत्तों के केन्द्र में प्रेम और युद्ध की स्थितियां हुआ करती हैं । यहां प्रेम का अर्थ भावा-त्मक प्रणय न होकर रूप अथवा यौनाकर्षण मात्र है, क्योंकि हिन्दू मध्यकालीन भारतीय आख्यान-काव्यों में रोमांस दैहिक संस्कारों से ऊपर उठकर भावके धरा-तल का स्पर्श नहीं करता ।

जनमेजय को केशव-महात्म्य सुनाते हैं।[४८] 'बाणासुर कथा' भक्ति-भावना प्रेरित पुराणगाथा न होकर काव्य है अत: इस प्रकार के प्रसंग उसमें नहीं हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 'बाणासुर कथा' में आधार-ग्रन्थ से ली गयी कथा को अनेक नये स्पर्श दिये गये हैं। चारित्रिक बिम्बांकन यहाँ इतिवृत्त की अभिधात्मक भंगिमा से अधिक महत्वपूर्ण हो उठे हैं। प्रेम और सौन्दर्य की ऐन्द्रिक सुखानुभूति की व्यंजना में, शब्दों के श्रावणिक-मूल्यों की सृष्टि में कवि की सृजनात्मकता अधिक क्रियाशील रही है। दूसरे शब्दों में उसकी सौन्दर्य और संगीत-चेतना पुराणवर्णित आख्यान को काव्य के रसात्मक आयाम प्रदान करती हैं।

पौराणिक आख्यान : शौर्य-वृत्त के तत्व

कथा की मूल चेतना स्पष्टतया पौराणिक है, पर उसमें शूरकथाओं के अनेक अभिप्राय जुड़ गये हैं जिनमें प्रमुख हैं कन्या-प्राप्ति और उसके हेतु होने वाला संघर्ष। प्राप्ति का तात्पर्य श्री मैथिली प्रसाद भारद्वाज के शब्दों में, 'सामन्ती पुरुष को युद्ध अथवा अन्य कोटि के संघर्ष के पश्चात् इच्छित्-सुन्दरी की प्राप्ति' है।[४९] संघर्ष प्राप्ति के लिए किये गये प्रयत्न में निहित है। प्रतिशोध अथवा प्रतिद्वन्द्विता की स्थिति में यह संघर्ष युद्ध का रूप धारण कर लेता है। कुल-परिवार की मान-प्रतिष्ठा की रक्षा अथवा कन्या के अपहरण के परिणामस्वरूप युद्ध की स्थिति दिखलायी जाती है। शूर नायक में विकट परिस्थितियों के बीच पराक्रम प्रदर्शन तथा दुस्साहसी कार्यों में उलझने की प्रवृत्ति प्रबल होती है। प्राय: हर विपत्ति से टक्कर लेकर, कठिन से कठिन संघर्ष की चुनौती स्वीकार कर पथ के अवरोधों को रौंदता हुआ वह अन्त में विजयी होता है। इस प्रकार शूर-वृत्तों के केन्द्र में प्रेम और युद्ध की स्थितियाँ हुआ करती हैं। यहाँ प्रेम का अर्थ भावात्मक प्रणय न होकर रूप अथवा यौनाकर्षण मात्र है, क्योंकि हिन्दू मध्यकालीन भारतीय आख्यान-काव्यों में रोमांस दैहिक संस्कारों से ऊपर उठकर भाव के धरातल का स्पर्श नहीं करता।

डॉ० रमेश कुंतल मेघ ने स्पष्ट किया है कि 'भारतीय मध्य-काल में शूरनायक और दैवी चरित् नायक की विशेषताओं को अद्भुत रूप से समन्वित कर लिया गया था।'[५०] दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि शूरनायक को उस काल में एक आध्यात्मिक और मिथकीय प्रभा-मण्डल से आवृत्त किया गया था। इस प्रभा-मण्डल के नीचे इतिहास के किसी सुदूर युग में राष्ट्रीय-संस्कृति और आदर्शों के किसी प्रतीक-पुरुष के प्रेरक चरित्र का अन्वेषण किया जा सकता है। कृष्ण वृत्त के संदर्भ में बात करें तो उन्हें और उनसे सम्बंधित घटनाओं के मिथकीय रूपान्तरण को समझा जा सकता है। किसी धुंधले किन्तु निश्चय से ऐतिहासिक काल में कृष्ण ने एक सम्पूर्ण युग को उसके आदर्श दिये थे, बाद में पौराणिक युग अर्थात् हिन्दू मध्यकाल में वे निजन्धरी कथाओं के एक आदर्श चरित्-नायक बन गये। कृष्ण-वृत्त को सामान्यतया निबन्ध उत्कट भोग से सम्बद्ध किया जाता है। इस वृत्त में पारिवारिक और यौन-नैतिक बन्धन ढीले पड़ते हैं और सीमाओं का अतिक्रमण होता है। पारिवारिक इकाई से तोड़कर सभी सम्बन्ध मुक्त और पूर्ण-पुरुष कृष्ण से जोड़ लिये जाते हैं। नैतिक वर्जनाओं और सामाजिक विधि-निषेधों की अस्वीकृति और व्यक्ति के रति-राग पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है। कृष्ण लीला पुरुषोत्तम हैं, उनके रास-रमण और विहार-केलि में भाग लेना अनिर्वच दिव्य आनंद की उपलब्धि है जो व्यक्ति के जीवन का चरम उद्देश्य है। 'बाणासुर कथा' में कृष्ण-वृत्त के इस भोगवादी पक्ष को अनिरुद्ध से सम्बद्ध किया गया है। अनेक रानियों के साथ रमण-सुख को भोगते हुए भी अनिरुद्ध बाणासुर की 'शशिवदना कुरंग-नयना' कन्या उषा की प्राप्ति के लिए अधीर और व्याकुल हो उठते हैं। यह अधीरता, जिसे मध्य-युगीन रोमांस की शब्दावली में पूर्वराग की संज्ञा दी जाती है, भावात्मक प्रेम न होकर काम-विकलता अधिक है। इस मनोदशा में अनिरुद्ध अपने आपको चित्रलेखा द्वारा उषा के लिए अपहृत होने देते हैं। शूर वृत्तों में शायद यह पहला और अकेला उदाहरण है जिसमें स्त्री के हाथों पुरुष का स्वेच्छापूर्वक अपहरण दिखाया गया है। भोग-सुख की तृप्ति-आकांक्षा लेकर ही अनिरुद्ध

काम-चतुरा अप्सरा चित्रलेखा के साथ सभी रानियों को छोड़, किसी को भी सूचित किये बिना उषा के अन्त:पुर में चले जाते हैं। अनिरुद्ध ही नहीं शिव को भी यहाँ योग के स्थान पर भोग के देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। शोणितपुर के 'वर-उपवन' में वे पार्वती और अप्सराओं तथा गन्धर्वों सहित मुक्त यौनाचरण का आनंद लेते हैं जो वर्तमान यूरोप के मुक्त (परमिसिव) समाज की स्मृति दिलाता है। शिव-पार्वती और अप्सराओं- गंधर्वों की यह निर्बन्ध अनंकुश काम-क्रीडा (सेक्स ओर्जी), जिसे 'बाणासुर कथा' में 'नर-नारि-केलि'[५१] कहा गया है, उस युग के नैतिक-सामाजिक स्वातंत्र्य की स्थिति की ओर संकेत करती है जो इस कथा की रचना के समय तत्कालीन समाज की स्वीकृत आचरण-संहिता रही होगी यद्यपि इसे यह सुनकर अनन्त पाप नष्ट होते हैं[५२] कहकर आध्यात्मिक आलोक से मंडित करने का प्रयत्न किया गया है।

बलात् यौन-भोग (रेप) और उससे उत्पन्न अपराध और लज्जा-भावना की नैतिक समस्या भी कृति में प्रस्तुत की गयी है। यह समस्या वस्तुत: विवाह से पूर्व यौनाचरण की वर्जना से सम्बन्धित है। रेप अर्थात् बलात्कार की स्थिति यहाँ स्वप्न में दिखायी गयी है किन्तु उससे उत्पन्न अपराध - भावना का जाग्रत-अवस्था में उदय दिखलाया गया है। पार्वती के वचनों के अनुसार उषा स्वप्न में एक अज्ञात पुरुष (अनिरुद्ध) द्वारा बलात् अपना कौमार्य-भंग होते देखती है और जागने पर एक प्रबल नैतिक द्वन्द्व उसे जकड़ लेता है।[५३] सखी उसे समझाती है — स्वप्न में किया गया बलात्कार बलात्कार नहीं। दुश्शीला स्त्री तो वह है जो मन, वचन अथवा कर्म से पर-पुरुष के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित करे। फिर स्वप्न में देखा पुरुष तो पार्वती के वचन के अनुसार उसका भावी पति है।[५४] शील-मीमांसा को यहाँ चित्रलेखा एक नया मोड़ देती है — विवाह पूर्व पुरुष के साथ यौनाचरण दोष नहीं यदि उसके साथ बाद में विवाह की शर्त जुड़ी हो। दूसरे शब्दों में मध्यकालीन भारतीय नैतिक-संहिता विवाह-पूर्व यौन-सम्बन्धों को वैध मानती है यदि उनकी परिणति विवाह में हो।

शौर्य-वृत्तों में इसी से जुड़ा अभिप्राय कुल-प्रतिष्ठा की रक्षा तथा प्रतिशोध की भावना का है जो प्राय: कथा को युद्ध की स्थिति की ओर खींच लेता है। `बाणासुर कथा` में अनिरुद्ध द्वारा उषा के शील-भंग की बात सुनकर बाणासुर प्रतिशोध की भावना से भभक उठता है क्योंकि उसकी कुल-मर्यादा अतिक्रमित हुई है।[५५] उसमें कुल की चेतना अत्यंत प्रबल है। कुल की प्रतिष्ठा और प्रतिशोध की भावना कृष्ण को भी बाणासुर के साथ घोर संग्राम में प्रवृत्त कराती है। इस प्रकार `बाणासुर कथा` के पौराणिक आख्यान में शौर्ययुग के मूल्य भी प्रतिष्ठापित हुए हैं। शूरनायक युद्ध में अतुल पराक्रम द्वारा सब को चकित कर देता है, किसी भी बाधा अथवा संकट का सामना वह अपने आदर्श (कन्या-प्राप्ति) के लिए करने को तत्पर है। `बाणासुर कथा` में अकेले और निहत्थे अनिरुद्ध भयंकर शस्त्रास्त्र सज्जित लक्ष-कोटि असुरों को रण में हताहत करके स्वयं अपराजेय रहते हैं उस समय तक जब कि बाण उन्हें नाग-पाश में बद्ध कर लेता है।[५६] अन्त में असुर की माया चलती है जिसका सामना वे दैवी (हरि के पौत्र) पात्र होने पर भी नहीं कर सकते। अनिरुद्ध की पूर्ण विजय को यहाँ इसलिए नहीं दिखलाया गया है कि उससे कृष्ण-बाणासुर और कृष्ण-शिव युद्धों की संभावना समाप्त हो जाती — कथा का उद्देश्य मर जाता। अतिप्राकृतिक तत्व — जो इस प्रसंग में बाणासुर की `माया` में समाविष्ट हुए हैं — पौराणिक आख्यान और शौर्य-वृत्त दोनों की विशेषता हैं।

अति प्राकृतिक और अति मानवीय शक्ति की प्रतिष्ठा कृष्ण में भी हुई है। उनका यहाँ असुर-विजयी शूरनायक रूप ही प्रबल हो उठा है। वे यहाँ वंशी नहीं भेरी बजाते हैं, शंख फूंकते हैं। रास-रमण नहीं युद्ध करते हैं। इसके साथ-साथ वे दैवी नायक भी हैं — हरि हैं, अवतार हैं : उनके सहस्र शीर्ष, आठ भुजायें, विराट रूप, अपराजेय अतुल शक्ति — उनके इसी दिव्य-अवतारी रूप की प्रतिष्ठा करते हैं। वे पूर्ण मनुष्य हैं — यादवों के संरक्षक, असुर-संहारी। बाणासुर-कथा में वे शौर्य और पौराणिक युगों के समन्वित मूल्यों के प्रतीक हैं — लोक-रंजक गोपीजन वल्लभ से अधिक उनका लोकरक्षक बिम्ब यहाँ सशक्त है।

मिथकीकरण की दिशायें

राम और कृष्ण वृत्तों की तुलना करते हुए डॉ० रमेश कुंतल मेघ उनके ऐतिहासिक पक्षों के मिथकीकरण की प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हैं : 'पूर्व इतिहास के राम और कृष्ण राष्ट्रीय आदर्श हैं --- त्रेता के राम ने देश की उत्तर-दक्षिण धुरी को एक किया है। ---- उन्होंने वानर, निषाद, भील, कोल, किरात, राक्षस आदि जातियों को आर्य संस्कृति में शामिल किया, पराजित करके या मित्रता करके। --- राम एक सुसंस्कृत युग के देवता-नेता हैं। -- लेकिन द्वापर युग अर्थात् महाभारत के नायक कृष्ण सम्पूर्ण और निर्बाध मनुष्य हैं। ---- उन्होंने देश को पूर्व-पश्चिम धुरी को एक किया है। कृष्ण को राम से ज्यादा संघर्ष और कूटनीति दोनों का इस्तेमाल करना पड़ा था --- कृष्ण के युग में प्रखरता, कूटनीति, सन्धिविग्रह और बौद्धिकता का बोल-बाला था। ---- इस तरह राम और कृष्ण भारतीय मिथकीय चरित्र तथा ऐतिहासिक आदर्श रहे हैं जिनके चरित्रों की व्याख्या प्रत्येक युग अपनी विचार-धारात्मक चेतना की पुकार पर की है।'[५७] कृष्ण-वृत्त सम्बन्धी इन ऐतिहासिक-मिथकीय तत्वों का समावेश 'हरिवंश' अत: 'बाणासुर कथा' में भी हुआ है। यहाँ भी वे एक दैवी और निर्बाध पुरुष के रूप में कथा-मंच पर आते हैं। यादवों के वे प्रश्नातीत नेता हैं। अक्रूर, सात्यकि, अनाधृष्टि आदि यादव वीरों को उनके नेतृत्व में, प्रखर बुद्धिबल में पूरा और अडिग विश्वास है। पुरुषोत्तम होने के बावजूद कृष्ण का यादवों की सभा बुलाकर अनिरुद्ध के अपहरण के विषय में परामर्श करना उनके प्रजातंत्र-प्रतिष्ठापक रूप को रेखांकित करता है। संभवत: बाण की राजनगरी शोणितपुर पर उनकी चढ़ाई राजतंत्रों के विरुद्ध उनके प्रजातंत्र स्थापना अभियान का ही एक अंग था।

परम्परा और प्रथा का अंध समर्थन कृष्ण-वृत्त में नहीं मिलता प्रत्युत उनके प्रति विरोध और अस्वीकृति की भावना प्रबल है। 'बाणासुर कथा' में यादव-सभा में अनाधृष्टि और अक्रूर का इन्द्र पर अनिरुद्ध के अपहरण के लिए

सन्देह करना वैदिक देवताओं के प्रति विरोध का पल्लवन है जिसके बीजांकुर कृष्ण के गोवर्धन-धारण प्रसंग में मिलते हैं। कृष्ण इस सन्देह को स्वीकार नहीं करते। फिर भी अनाधृष्टि और अक्रूर कह ही देते हैं कि पारिजात-हरण के अवसर पर ऐरावत् रूढ़ इन्द्र को कृष्ण से जो तीव्री पराजय मिली थी उसकी कसक उसके हृदय से गयी नहीं है, उसी बैर के कारण इन्द्र ने यह कार्य किया होगा — 'इन्द्रानो रह कार्य गोविन्दा !' : हे गोविन्द, यह कार्य इन्द्र ही का है।[५८] शोणितपुर पर चढ़ाई के लिए जाते हुए कृष्ण के नगर-संरक्षक आह्वनीय अग्नि से और बाण-पराजय के बाद वरुण से जो युद्ध दिखाये गये हैं[५९] वे वैदिक देव-मण्डल पर अवतार-वाद की विजय की सूचक मिथकीय घटनायें हैं। पौराणिक युग में वैदिक देवोपासना का स्थान अवतारवाद ने ले लिया था।

कृष्ण गोचारण-संस्कृति के भी प्रतीक-पुरुष थे। इस संस्कृति से संबंधित उनके संस्कार बाणासुर आख्यान में भी प्रकट हुए हैं जब उन्हें बाणासुर की पराजय के पश्चात् उसकी गायों का लोभ हो जाता है और वे गरुड़ को आदेश देते हैं कि उन्हें हांक ले जाये। इन्हीं गायों के लिए कृष्ण वरुण और उसके अनुचरों से भयंकर संग्राम करते हैं यद्यपि गायें उनके हाथ नहीं लगतीं।[६०]

पौराणिक युग अर्थात् हिन्दू मध्यकाल के दो प्रमुख धर्म-साम्प्रादायिक समूह थे शैव और वैष्णव। इन दोनों के बीच चलने वाले द्वन्द्व का प्रक्षेप - 'बाणासुर कथा' के (हरिवंश पुराण से गृहीत) कथानक में भी हुआ है। वैष्णव पक्ष जिसके अंतर्गत कृष्ण के अतिरिक्त बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, गरुड़ आदि आते हैं, को शैव-पक्ष जिसमें शिव के अतिरिक्त बाणासुर, कार्तिकेय, आह्वनीय अग्नि, नन्दी, मयूर आदि सम्मिलित हैं, पर भारी दिखाया गया है। 'हरिवंश' में सभी जगह शिव-पक्ष को तुलनात्मक दृष्टि से दुर्बल दिखाया गया है और कार्तिकेय तथा असुर बाण की प्राण-रक्षा के लिए लम्बा देवी को युद्ध-स्थल में निर्वस्त्रा- निर्लज्ज होकर कृष्ण से अनुनय करते दिखला कर शैवों की नैतिकता पर भी परोक्ष ढंग से प्रहार किया गया है।[६१] यह स्वाभाविक ही था कि

अवतार भट्ट इस शैव-विरोधी कर्दम-कीच में यथासंभव कथानक को बचाये हुए चलते हैं। उधर उषा के अंत:पुर में हरि के पौत्र अनिरुद्ध को जो उन्होंने मुक्त मदिरा-पान करते हुए दिखलाया है वह उनके शाक्त संस्कारों की झलक तो देता ही है, अपने युग के सामन्ती-विलास का प्रतिबिम्ब भी है।[६२]

हरिवंश पुराण में हिन्दू समाज के इन दो प्रमुख धार्मिक सम्प्रदाय-समूहों के वैमनस्य का जहाँ आभास मिलता है वहाँ कुछ संस्करणों में उनके बीच हुई सन्धि का भी संकेत-सूत्र मिलता है ऋषियों द्वारा रचित हरिहरात्मक स्तोत्र में।[६३] इस स्तोत्र में शिव और विष्णु में अभेद दर्शाया गया है – शिव और विष्णु एक हैं – हरि ही हर हैं और हर ही हरि। शिव पीत वसन और चक्र धारण करते हैं, कृष्ण (विष्णु) बाघम्बर, सर्प और त्रिशूल। 'बाणासुर कथा' में यह स्तोत्र नहीं है किन्तु कथा के अन्त में कृष्ण-शिव संवाद[६४] पर शैव-वैष्णव सन्धि की छाया अवश्य है। शिव बाणासुर की प्राणरक्षा के लिए 'आदि देव' कृष्ण से चक्र लौटाने का अनुरोध करते हैं तो कृष्ण उसके उत्तर में कहते हैं कि हे वृषभ वाहन यह तो स्वयं तुम्हारा ही कार्य था – तुम्हारे द्वारा पूर्वनिश्चित :

सन्न व्यानो वृषभगहना कार्य अस्ति विशेष
इवो पाने रचेत कुशि किचे विना आदि देवा।

शिव कृष्ण को आदिदेव कहकर सम्बोधित करते हैं तो कृष्ण शिव को।

'बाणासुर कथा' की कथा-भूमि का भी मिथकीय रूपान्तरण कर दिया गया है। शोणितपुर एक ऐतिहासिक भौगोलिक सत्ता न होकर स्वयं शिव द्वारा बसायी गयी नगरी है, उनकी क्रीड़ा-भूमि है जहाँ वे पार्वती और गंधर्वों-अप्सराओं सहित केलि-विलास करते हैं। वे और उनके पुत्र कार्तिकेय तथा उनके गण नगरी की रक्षा के लिए सदा तत्पर रहते हैं। आह्वनीय अग्नियाँ (प्राचीन अग्निपूजक असुर-धर्म के अनुयायी समूहों) ने स्वयं कृष्ण को उस पर आक्रमण करने से रोकने का प्रयत्न किया था। इसी भाँति द्वारिका भी ऐतिहासिकता से कट

कर दिव्य-नगरी का मिथकीय रूप धारण करती है। वहाँ नारद इन्द्र आदि मिथकीय पात्रों को मनुष्यों के सम्पर्क में दिखाया गया है। बाणासुर की राजनगरी शोणितपुर की ही तरह द्वारका भी अभेद्य है - वहाँ बिना कृष्ण की आज्ञा के देव-दैत्य-असुर-गंधर्व (मनुष्य की बात ही नहीं) किसी का प्रवेश संभव नहीं।

दिक् के साथ-साथ काल की भी मिथकीय चेतना 'बाणासुर कथा' के कथानक में परिव्याप्त है। गरुड़ क्षणों में कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न को द्वारका से ग्यारह हज़ार योजन दूर शोणितपुर पहुँचाता है। उषा की अंतरंग सखी चित्रलेखा 'मनोजवा' है, मन की गति से वह आकाश मार्ग से अनिरुद्ध का अपहरण करने के लिए द्वारका जा पहुँचती है। काल की मिथकीय चेतना का सबसे दिलचस्प उदाहरण प्रस्तुत करते हैं नारद। वे सभी कालों में विद्यमान हैं - वे त्रेता में भी हैं तो द्वापर में भी। हरि लीला के दर्शन के लिए वे एक मिथकीय युग से दूसरे मिथकीय युग में अबाध गति से फलाँगते हुए प्रवेश करते हैं। 'बाणासुर कथा' में कभी वे चित्रलेखा को तामसी विद्या प्रदान करने, कभी कृष्ण को अनिरुद्ध के विषय में समाचार देने, कभी कृष्ण और बाणासुर युद्ध के दर्शन के लिए मंच पर प्रकट होते हैं।

मिथकीय दिक् और काल की चेतना और भी प्रसंगों में व्यक्त हुई है। कृष्ण ने बाणासुर के पिता बलि को पाताल में बन्दी बनाकर रखा है। अनिरुद्ध औरकृष्ण के साथ युद्ध करने वाले बाणासुर के सैनिकों की संख्या गणित की एक अबूझ पहेली है। अकेले अनिरुद्ध एक ही भिड़न्त में 'लक्ष-कोटि' असुर-सैनिकों का सफाया कर देते हैं। इतनी अपार सेना उस एक नगर की भौगोलिक सीमा में कैसे समा सकती और इस हिसाब से शोणितपुर की जनसंख्या क्या रही होगी यह विचार कल्पना की गति को भी अवरुद्ध कर देने वाला है। पर मिथकीय दिक्-बोध में इस प्रकार की विसंगतियाँ जज़्ब हो जाती हैं।

बाणासुर आख्यान में, अन्य पौराणिक आख्यानों की तरह, मनुष्य,

असुर, पशु, पक्षी, देवता, ऋषि, गंधर्व, अप्सरायें सब एक ही स्थान पर, एक ही काल में एक दूसरे के साथ वास करते दिखलाये गये हैं। इन सब के मध्य एक लीला-पुरुषोत्तम भी हैं — कृष्ण! अतिप्राकृतिक और अतिमानवीय तत्वों के अबाध समावेश से कथा-प्रसंगों का परिवेश अद्भुत और आश्चर्यजनक हो गया है। अलौकिक, दैवीय, अतिप्राकृतिक तत्वों के साथ जादू और माया आदि के मोटिफ भी जुड़े रहते हैं जिन्हें 'बाणासुर कथा' के कथा-फलक में भी देखा जा सकता है। चित्रलेखा 'मनोजवा' है - मन की गति से कहीं भी जाने का जादू उसके पास है। नारद उसे 'तामसी-विद्या प्रदान करते हैं जिसके प्रयोग से वह अनिरुद्ध के महल में रानियों के लिए अदृश्य हो जाती है किन्तु अनिरुद्ध को दिखायी देती है, उससे बात करती है! इसी विद्या के सहारे वह अनिरुद्ध को आकाश मार्ग से पल भर में उषा के कक्ष में पहुंचा देती है। निशाचरी माया का प्रयोग अनिरुद्ध के विरुद्ध बाणासुर करता है। वह अपने रथ-अश्वों-सारथि समेत 'एक गंधर्व नगरी की भांति' अदृश्य हो जाता है और अनिरुद्ध को नागपाश में बांध देता है। दुर्मद ज्वर कृष्ण पर दो मुट्ठी भस्म फेंकता है जिससे उनके शरीर में जलन उत्पन्न होती है।

'हरिवंश पुराण' 'पुराण' नाम धारण करने पर भी अन्य पुराणों की परम्परा से कुछ भिन्न है। उसके पौराणिक निजंधरी, मिथकीय और शूर-कथात्मक कथावृत्त में वास्तविक अतीत के सन्दर्भों का भी समावेश है। कृष्ण भारतीय पूर्व-इतिहास-युग के एक महान् नायक रहे हैं। भोग, शौर्य, राजनय, दार्शनिक मनीषा और अन्य अनेक अद्वितीय मानवीय गुणों से सम्पन्न इस महान चरित्र का शुद्ध ऐतिहासिक व्यक्तित्व क० म० मुंशी के शब्दों में 'निजंधरी कथाओं मिथकों, चमत्कारों और अभिशंसाओं से लगभग तीन हज़ार वर्ष तक आच्छादित रहा है। उनके अद्भुत गुणों और कार्यों ने उन्हें एक दैवी पारमार्थिक सत्ता के रूप में मध्यकालीन भारतीय लोक-मानस और पुराण-साहित्य में प्रतिष्ठित कर दिया है।'[६५] उनके 'असुर संहारक, मुक्तिदायक तथा देव-रक्षा के पराक्रम' वास्तविक ऐतिहासिक घटनाओं के रूपान्तर हैं जिन्हें आज ठीक और सुनिश्चित

ऐतिहासिक अर्थ देना कठिन है । कहने का अभिप्राय यह है कि 'बाणासुर कथा' के हरिवंश पुराण गृहीत इतिवृत्त में इतिहास का रूप मिथक में संक्रमित हुआ है । मिथकीय चेतना ने ऐतिहासिक तथ्यों का जो कायाकल्प किया है उसी का एक दिलचस्प उदाहरण 'बाणासुर का यह वृत्तान्त' है । इतिहास से मिथक की दिशाओं और प्रयाण की इस प्रक्रिया पर विचार प्रकट हुए डॉ० रमेश कुंतल मेघ ने लिखा है : " सभ्यता के आरम्भिक काल में ऐतिहासिक धारणायें मिथक-शास्त्रीय अति कल्पनाओं (फैंसीज़) की निर्मितियों पर आधारित होती हैं जिनमें इतिहास की तथ्यात्मकता का अभाव होता है । वे ऐतिहासिक आदर्शों की प्रधानता वाली आदर्शपूर्ण अतीत बन जाती हैं । अत: उनमें इतिहास-बोध या वास्तविक के बजाय पौराणिक आदर्श मिथकीय होते हैं एवं अतीत की सम्पूर्णता की एक तस्वीर-सी खिंच जाती है । जब मनुष्य सर्वोत्कृष्टता (एक्सिलेंस) की धारणाओं को काल-विरहित अतीत में प्रक्षेपित करता है तब वे आदर्शों की भूमिका बन जाती हैं ।"[६६]

ऐतिहासिक संदर्भों की खोज

'असुर' : इतिहास और ऐतिहासिकता

इस प्रक्रिया को मनसा उलटाकर हम मिथक से इतिहास की ओर जाने का प्रयास करेंगे और अब असुर जाति और बाणासुर के सन्दर्भ में। यह बात अब निश्चय से कही जा सकती है कि 'असुर' एक पौराणिक अति कल्पना मात्र नहीं है, अपितु एक वास्तविक ऐतिहासिक जन-जाति का नाम रहा है । असुर और सुर प्रारम्भ में दोनों वैदिक देव-मण्डल के महत्वपूर्ण सदस्य रहे हैं । ऋग्वेद के प्रारंभिक सूक्तों में इन्द्र और नासत्य को असुर कहा गया है, बाद में इस शब्द का अर्थ-परिवर्तन हो गया । ईरानी आर्यों के लिए वह देवता का पर्याय बन गया जबकि भारतीय वैदिक आर्यों के लिए इससे ठीक विपरीत अर्थ का बोधक । दोनों वैदिक और ईरानी आर्य एक ही विशाल भारत-ईरानी आर्य समुदाय के अंग थे । उनकी संस्कृति,

उनका धर्म, उनकी प्रथायें सभी एक थीं । किन्तु वैदिक युग में ये दो पृथक् भौगोलिक समुदायों में विभक्त हो गये और उनमें संस्कृति, धर्म, प्रथा आदि के स्तर पर भेद उत्पन्न होने लगे । धीरे-धीरे दोनों उपशाखाओं के पारस्परिक सम्पर्क-सूत्र कटते गये । ईरानियों ने वैदिक देवताओं की पूजा व उससे सम्बन्धित रीतियां और प्रथायें बन्द कर दीं और 'असुर' नाम की नयी अतिप्राकृतिक शक्तियों का विकास किया । इन पारलौकिक शक्तियों के अग्रणी वरुण थे जैसे प्राचीन वैदिक प्राकृतिक देव-शक्तियों के इन्द्र ।[६७] बोगोज़कोई में प्राप्त प्रसिद्ध संधिलेख में वैदिक देवता इन्द्र और नासत्य तथा असुर-देवता वरुण और मित्र का एक साथ उल्लेख यह सूचित करता है कि १४०० ई० पू० में अभी दोनों आर्य-उपशाखाओं में विरोध उत्पन्न नहीं हुआ था ।[६८] किन्तु ज़रथुस्त्र के समय से काफी पूर्व विरोध धार्मिक स्तर पर इतना प्रबल रूप ग्रहण कर चुका था कि उसे शत्रुता की संज्ञा दी जा सकती है । इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी भारत-निवासी आर्य देवपूजक और असुर-विरोधी थे और सभी ईरानवासी आर्य असुर-पूजक और देव-विरोधी । ऋग्वेद में (प्रारंभिक ऋचाओं में) इन्द्र आदि वैदिक देवताओं का असुर कहा जाना इस बात को साक्ष्यांकित करता है कि कुछ असुर-पूजक आर्य भी भारत में थे । अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि इन्हीं लोगों ने ऋग्वेद की इस प्रकार की ऋचाओं की रचना की होगी । विरोध और भेद की प्रवृत्ति विशेष रूप से ज़रथुस्त्र के समय से बलवती हो उठी । उन्होंने ईरानी देवता-मण्डल से सुर-पूजकों के धार्मिक प्रभावों को समाप्त करने के लिए वैदिक और ईरानी देवताओं के नाम तक बदल दिये । असुर-उपास्य वरुण का नाम 'अहुर मज़्द (असुर मज़्दस् = असुरमेधा , असुर महत् (?)) रख गया । सुर-पूजकों के देवताओं को अपवर्ग में निवासिन मिला । फिर भी 'ज़रथुस्त्र का यह सुधार उतना अतीत से विच्छिन्न होने का प्रयत्न न था जितना कि प्राचीन असुर-धर्म को सभी दैविक स्पर्शों से मुक्त करने का सुनिश्चित और सफल प्रयास ।'[६९]

१४०० ई० पू० में मेसोपोटामिया और सिरिया में अनेक आर्य बस्तियां

विद्यमान थीं ।[७०] बेन वेनिस्ते ने यह सिद्ध किया है कि अख्मानी समय में ईरानी धर्म वैदिक धर्म से बहुत समानता रखता था ।[७१] ये असुर-पूजक जातियाँ कौन थीं, किन विशिष्ट ऐतिहासिक जन-समुदायों के रूप में इनकी पहचान की जा सकती है इस विषय पर जो अनेक मत हैं उनमें से अधिकांश एक प्राचीन साम्राज्य के नाम की ओर इंगित करते हैं — असीरिया । बनर्जी शास्त्री का मत है भारत में बसे असुर असीरिया से आये थे, ये असुर धर्म के अनुयायी थे । वे भारत में वैदिक धर्मानुयायी आर्यों से पहले आये थे तथा सिंधु-घाटी की सभ्यता के निर्माता थे ।[७२] भाण्डारकर भी असुरों को 'अस्सुर' अथवा असीरियाई मानते हैं । भारत में बसे असुरों के विषय में उनका विचार है कि इन्हें वैदिक धर्मानुयायियों के शत्रु के रूप में बाद में प्रतिष्ठित किया गया, शुरू-शुरू में (ऋग्वेद में) इनका नाम अच्छे अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए भण्डारकर का कथन है कि वे ऋचायें जिनमें वैदिक देवी-सत्ताओं को 'असुर' संज्ञा दी गयी है असुर जाति के उन ऋषियों ने रची हैं जिन्होंने (वैदिक) आर्य धर्म को स्वीकार कर लिया था और असुर-विषयक जो निंदापरक स्थल हैं वे असुर-विरोधी आर्य-ऋषियों के रचे हैं । असुरों और आर्यों के बीच वैमनस्य वस्तुत: ऋग्वेदोत्तर काल में बढ़ा ।[७३] भाषाशास्त्रीय अनुसंधानों द्वारा डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या भी इसी प्रकार के निष्कर्षों पर पहुंचे हैं । उन्हीं के शब्दों में 'हमारे भारतीय संस्कृत पुराणों में राक्षसों के अर्थ में प्रयुक्त 'असुर' लोगों की महान ऐहिक संस्कृति, भवन-निर्माण कला तथा उनकी क्रूरता का उल्लेख है । परन्तु यह बहुत ही संभव है कि यह शब्द उनकी 'अश्शुर' या 'अस्सुर' (असीरिया) के जनों की स्मृति का बोधक हो, जिनकी महान् वास्तुकला तथा युद्ध में क्रूरता का प्रत्यक्ष अनुभव आर्य लोग उनके सम्पर्क में आकर प्राप्त कर चुके थे । असीरो-बाबिलोनी संस्कृति के कुछ उपादानों को आर्यों ने अपना लिया था, ऐसा प्रतीत होता है; उदाहरण — राजचिन्हों में छत्र का उपयोग, तथा भरहुत एवं सांची में प्राप्त बहुत-सी वास्तुकला विषयक तथा शिल्प-सज्जा विषयक बारीकियाँ, जो निश्चित रूप से पश्चिमी काष्ठ-शिल्पों का पाषाण में रूपान्तर मात्र है ।[७४] डॉ०चाटुर्ज्या ने आर्यों द्वारा असीरो-बाबिलोनी से वैदिक भाषा में अपनाये गये कुछ शब्दों के भी उदाहरण दिये हैं और तिलक का हवाला देते हुए बतलाया है बाबिलोनी दन्त-

कथाओं में आये कुछ सर्पों के नाम अथर्ववेद में परिवर्तित रूप में लिये गये हैं। पर डॉ० चाटुर्ज्या यह निर्णय नहीं कर पाये हैं कि 'ईरान में बस जाने के पश्चात् आर्यों के प्रधान जन की उपशाखाओं के दो दलों में जो मतभेद हो गया उसके मूल में प्राचीन उपजातिगत मतभेद ही थे या धार्मिक। जो हो असुरों के असीरियाई मूल की ओर उन्होंने भी संकेत किया है।

शतपथ ब्राह्मण में वर्णित तथा पाणिनि द्वारा उद्धृत एक कथा के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में रहने वाले असुर मगध या दक्षिणी बिहार में बसने वाले थे और इन लोगों का उच्चारण भ्रष्ट था। ये वैदिक र के स्थान पर प्राय: ल कहते थे और वैदिक अरय: का अलयो अथवा अलवे: उच्चरित करते थे - ते असुर: हेऽ लयो हेऽलय इति कुर्वन्त: पराबभूव - वे असुर हे अलय - हे अलय कहते हुए पराजित हो गये।* इस विवेचन से यह सिद्ध करना उद्दिष्ट है कि 'असुर' किसी काल्पनिक अतिमानवीय अतिप्राकृतिक प्राणी की संज्ञा नहीं थी। अतिमानवीय अथवा अतिप्राकृतिक तत्त्व उनकी क्रूरता तथा आर्यों के साथ उनके प्रबल युद्धों के आतंक के कारण उनसे सम्बद्ध किये गये होंगे। असुर-धर्म के अनुयायी प्राचीन असीरियाई जनों को असुरों के मूल-पुरुष मान लेने के बाद बाणासुर की ऐतिहासिक सत्ता के रूप में प्रामाणिकता खोजना सरल हो जाता है।[७५] इसके लिए हम महान् असीरियाई साम्राज्य के प्राचीन इतिहास-युग में प्रविष्ट होते हैं।

एक प्राचीन इतिहास के खण्डहर और असुर बाणिपाल

निनेवेह के उत्खनन में असुर वंश के असीरियाई सम्राटों के दो हज़ार वर्ष का इतिहास हमें उपलब्ध हुआ है। असुर उबल्लित (१३६४-१३३० ई०पू०), शालमनेसुर (१२७५-१२४५ ई०पू०) जिसने मितानी शासक वैदिक देवताओं के उपासक शत्वरा द्वितीय को बन्दी बनाया और वहाँ के चौदह हज़ार नागरिकों को निर्वासित कर समुद्र मार्ग से भाग जाने को विवश किया, असुर नदिन-ए-पालि तिगलथ पिलेसर प्रथम आदि शक्तिशाली असुर सम्राटों के शासन युग को असीरियाई

* जगदीश प्रसाद कौशिक द्वारा "अपनी पुस्तक" भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास" (अपोलो प्रकाशन, जयपुर, १९६९), में पृ० ४८ पर उद्धृत।

साम्राज्य-शक्ति का प्रथम उत्थानकाल माना जा सकता है । इसके बाद असुर-साम्राज्य अपने गौरव-श्रृंग से गिरकर कुछ काल के लिए इतिहास के पृष्ठों से लगभग विलुप्त हो गया । असुर नशिर-पाल (१०३८-१०२० ई०पू०), शल्मनेसर द्वितीय (१०१७-१००८ ई० पू०) और असुर निरारि चतुर्थ (१००७-१००२ ई०पू०) ने अत्यंत उथल-पुथल के दिनों में राज्य किया था ।असुर रबी द्वितीय से असुर निरारि पंचम तक असीरियाई सम्राटों का क्रम निर्बाध गति से चलता रहा ।[७६] १००१ ई० पू० में राजगद्दी पर बैठने वाले असुर रबो द्वितीय को असीरियाई नवोदय काल में नये असुर-साम्राज्य का संस्थापक माना जा सकता है ।[७७] शाल्मनेसर और तिलगथ पिलेसर के विजय अभियानों के बावजूद ६६६-६३४ ई० पू० में तिलगथ पिलेसर द्वितीय के समय तक साम्राज्य की स्थिति डांवाडोल रही और आर्मेनियाइयों व काल्दियों का प्राबल्य रहा । असुर तिलगथ पिलेसर द्वितीय ने स्थिति को यत्किंचित् संभाला और असुर दान द्वितीय के समय से असीरिया का भाग्योदय पुन: हुआ । असुर तुकलति निनुरता द्वितीय (८८६-८८४ ई०पू०) के शासनकाल में असीरिया ने फिर से अपने व्यापक और विशाल सैनिक अभियान शुरू किये और प्राचीन साम्राज्य के अन्तर्गत आने वाले तमाम राज्यों को,जो इस समय तक हाथ से निकल चुके थे , पुन: प्राप्त करने के प्रयत्न किये ।[७८] तुकलति निनुरता की सैनिक विजयों के क्रम को उसके पुत्र असुर नशिर-पाल द्वितीय (८८४-८५९ ई० पू०) ने और आगे बढ़ाया और असुर-साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार किया ।[७९] इस प्रकार असुर-शक्ति के दिगन्तव्यापी प्रसार का इतिहास-चक्र फिर से गतिमान होकर चलता रहा । शक्तिशाली असुर सम्राट सरगोन द्वितीय ने सुमेरिया को असुर-साम्राज्य का अंग बना दिया ।[८०] ७७४ ई० पू० से ६८१ ई० पू० तक शासन करने वाले असुर-साम्राज्य के प्रबलतम सम्राटों, सेनाचरिब और एसरहदन को इतिहास के सर्वाधिक प्रसिद्ध असीरियाई शासक माना जाता है । दोनों महान विजेता किन्तु बर्बर तथा अत्यन्त क्रूर सम्राट थे । उन दिनों मिस्र पर इथियोपियाई राजवंश के किसी तरकू नाम के राजा का शासन था । तरकू के बाद नेचो मिस्र का शासक बना और उसने असुर-साम्राज्य का जुआ उतार फेंकने का प्रयत्न किया । एसरहदोन अपनी

राजधानी निनेवेह से उसको कुचलने के लिए सुसज्जित और रणकुशल विशाल विशाल असुर-वाहिनी लेकर चल पड़ा किन्तु मार्ग में ६६७ ई० पू० में उसकी मृत्यु हो गयी । असुर बाण ने अपने पिता के अधूरे कार्य को हाथ में लिया और मिस्र पर चढ़ाई करके राजधानी मेम्फिस पर अधिकार कर लिया ।[८१]

निनेवह की खुदाई में असुर बाण के दो विशाल पुस्तकालय निकले हैं जिनमें मृतिका-फलकों पर कीलाक्षर लिपि में उसके विषय में अनेक महत्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध हुए हैं । उसके पिता एसरहद्दोन ने अपने उत्तराधिकार का प्रश्न निबटाने के लिए सामन्तों की सभा बुलाई थी जिसमें बहुमत असुर बाण के पक्ष में रहा । प्रारंभ में एसरहद्दोन का विचार अपने सब से बड़े पुत्र सिन-हद्दीना-अप्लु को अपना उत्तराधिकारी बनाने का था , पर उसकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी थी । शायद वह युद्ध में मारा गया था या फिर आकाशवाणी उसके पक्ष में नहीं थी । ६७० ई० पू० में जब वह मिस्र से लौटा तो असीरिया में गृह-युद्ध छिड़ने को था । सामन्त उसके दो पुत्रों शम्श-शुम-उकिन तथा असुर बाणि-पाल के समर्थकों में बंट गये थे । एसरहद्दोन ने असुरबाण को असीरिया में 'मर-शर्रो' अर्थात् युवराज घोषित किया और शम्श-शुम-उकिन को बाबिलोन में साम्राज्य का प्रतिनिधि उपशासक नियुक्त किया । उसके समर्थक कुछेक असन्तुष्ट सामन्तों के विद्रोह को कुचल दिया गया ।[८२]

बाणासुर के शासनकाल (६६९-६२६ ई० पू०) में असीरियाई संस्कृति का सूर्य अपनी प्रखरता और प्रचण्डता के उच्चतम बिन्दु पर तप रहा था । यह इसलिये संभव हुआ कि लगभग एक शती तक राजनीतिक क्षेत्र में असीरिया का प्रभुत्व और प्रताप युद्धों और साम्राज्य विस्तार द्वारा स्थिर रखा गया था । स्वयं असुर बाणिपाल ने गद्दी संभालते ही अनेक सैनिक अभियान शुरू किये और जीवनपर्यन्त युद्धों में रत रहा । मिस्र, इलाम, अरब प्रदेशों आदि तक उसने असी-रियाई साम्राज्य शक्ति की ध्वजा फहरायी । अपने शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में उसने मीडिया पर चढ़ाई की और वहां के पांच प्रमुख नगरों पर अधिकार

कर लिया । अपने पिता द्वारा की गयी व्यवस्था के अनुसार शम्श-शुम-उकिन को उसने बाबिलोन का उपशासक नियुक्त किया । शम्श को सारे प्रदेश का वैधानिक शासक माना गया, किन्तु प्रान्तीय अधिकारियों की नियुक्ति स्वयं असुरबाण किया करता था और वे कम से कम सैनिक विषयों के सम्बन्ध में सीधे उसी के प्रति उत्तरदायी थे । प्रान्तीय हाकिम बाबिलोन के वैधानिक और धार्मिक अधिकारियों के आदेशों का उल्लंघन करते रहे जिससे वर्षों तक टकराव और तनाव की स्थिति बनी रही । किन्तु ६५४-६५३ ई० पू० में शम्श-शुम-उकिन ने बाबिलोनी, आर्मेनियाई, अरब, तथा फिलस्तानी राजाओं से गुप्त सन्धि करके असुर बाणिपाल के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । बाबिलोनी पक्ष के योद्धाओं ने साहस और दृढ़ता से युद्ध किया, पर असुर बाण ने एक-एक करके सब को पराजित कर दिया । उसकी सैनिकों ने लगभग एक वर्ष तक बाबिलोन को घेरे रखा । बाबिलोन में अकाल पड़ गया और वहाँ के शासक शम्श ने भूख के कारण घुटने टेक दिये । उसने न केवल पराजय स्वीकार की अपितु आग में कूद कर आत्महत्या कर ली ! ६४६ ई०पू० में असीरियाई सेनायें बाबिलोन में प्रविष्ट हुईं, यद्यपि शम्श का वहाँ वैधानिक शासन ६५० ई० पू० में ही समाप्त कर दिया गया था । वैधानिक दस्तावेज़ों में 'असुर बाणिपाल का १६वाँ वर्ष' की तिथि दी गयी थी । बाबिलोन को असीरियाइयों ने नष्ट नहीं किया, पर शम्श-शुम-उकिन के राजमहलों की अपार धन-सम्पत्ति को लूट लिया गया और सभी विद्रोही नेताओं को मार डाला गया । उसके बाद असुर बाण ने बाबिलोन का नव-निर्माण किया । स्वयं एक वर्ष वहाँ शासन करने के पश्चात् अपनी ओर से एक उपशासक को नियुक्त किया और स्वयं वापस निनेवेह चला गया । इसके उपरान्त वहाँ शान्ति बनी रही ।

असुर बाण ने ६२६ ई० पू० तक राज्य किया । अपने शासन के बयालीस वर्षों में उसने निष्कंटक राज्य भोगा । मिस्र फिर हाथ से चला गया, पर अन्य पड़ोसी राज्यों - फिलस्तीन, फिनीशया और सिरिया के साथ उसने अच्छे सम्बन्ध स्थापित किये । एलाम को कुचल डाला गया । मीडिया वासियों की साम्राज्य के सामने सिर उठाने की हिम्मत नहीं हुई । साम्राज्य के अंतर्गत सभी

महत्वपूर्ण प्रदेशों में नियुक्त असीरियाई राज्याधिकारियों ने वहाँ शांति और व्यवस्था बनाये रखी – इस विषय में असुर बाणिपाल का गर्व उचित ही था। किन्तु असुर सम्राट बाण के अंतिम वर्ष घोर विपत्ति और संकट के थे। अपने जीवन की इस दु:खपूर्ण अवधि के विषय में असुर बाणिपाल ने स्वयं लिखा है – ` हे देवता, मुझ पर रोग और कुस्वास्थ्य ने क्यों आक्रमण किया है ? मैं अपने राज्य और परिवार में पारस्परिक झगड़ों को रोकने में समर्थ नहीं हूं। - - - मन और देह की पीड़ा मुझे तोड़ रही है। - - -`[८४]

असुर बाण के उत्तराधिकारी महान् असुर साम्राज्य को स्थिर नहीं रख सके और आखिर मेसोपोतामिया, बाबिलोन, मिस्र, फिनीशिया, सिरिया में तप रहा असुर प्रताप का सूर्य ऐसा अस्त हुआ कि इतिहास के अंधेरे से कभी निकल न सका।

असुर बाण सहित प्राय: सभी असुर सम्राट, महान विजेता, रणकुशल, युयुत्सु तथा शत्रु के प्रति बेहद क्रूर और बर्बर थे। असुर नसिरपाल का अपने सैनिक अभियानों के अभिलेखों में स्वयं अपने बारे में यह कहना है - ` - - - औरन्तीस नदी को पार कर मैंने अनेक नगरों को जीता, असंख्य नर-हत्यायें कीं, नाश किया, तबाही मचायी, आग लगायी। मैंने (शत्रु के) योद्धाओं को बन्दी बनाया और नुकीले शूलों पर उन्हें सभी नगरवासियों के सामने चढ़ाया। - - - उनके स्थान पर मैंने असीरियाई जनों को बसाया। मैंने अपने शस्त्रास्त्रों को महासमुद्र में नहलाया।`[८५] तिलगथ पिलेसर तृतीय, जो बाइबल में पुल के नाम से विख्यात् है, बाबिलोन , सिरिया, बाइबल-भूमि एक के बाद एक को जीत कर सुमेरिया पर जा चढ़ा और बर्बरता और क्रूरता की वही लोमहर्षक कथा दोहरायी।[८६] १८४३ में फ्रेंच विद्वान् पौल एमिले बोता ने सारगौन द्वितीय का महल खोज निकाला जिसकी दीवारों पर खुदे इतिहास-फलकों पर यह लिखा था – `अपने शासन के प्रथम वर्ष में ही मैंने घेरा डाला और सुमेरिया को जीत लिया। - - - वहाँ के २७,२९० निवासियों को मैंने बन्दी बनाया। - - - अपने शाही इस्तेमाल के

लिए मैंने पचास बढ़िया प्रकार के रथ लिये। - - - - [८७] बाइबल में वर्णित है कि सारगोन द्वितीय ने शताब्दियों से स्थिर इज़राइल राज्य को मसल कर रख दिया और दस इज़राइली कबीलों का कुछ पता ही न चला कि कहां विलुप्त हो गये। इतिहास में ये खोये हुए कबीलों के नाम से जाने गये। [८८] उसके बाद सेनाचरिब ने जूडा को रौंद डाला। वहां के छ्यालीस किलेबन्द नगरों पर उसने अधिकार कर लिया और २,००,१५० व्यक्तियों को बन्दी बना कर ले गया। देहाती इलाकों से उसने असंख्य पशु - ऊंट, घोड़े, गधे, खच्चर, मेढ़े आदि - लूट लिये। [८९] असरहद्दोन मिस्र के मेम्फिस नगर तक लूट, अग्निकाण्ड, कत्लेआम, निवासिन आदि का यह बर्बर क्रम जारी रखता हुआ जा धमका और उसका पुत्र असुर बाणिपाल यह विजय अभियान नील नदी के तट तक ले गया। क्रूरता और नृशंसता में असुर बाणिपाल अपने बर्बर पूर्वजों से भी आगे था। बाबिलोन इलाम देश और सुषा नगरी पर बिजली-सा टूट कर उसने जो हृदयहीन नरसंहार किया वह असुरवंश के अत्याचारों के इतिहास में शायद सबसे भयंकर था। बाबिलोन में उसने अपने भाई शम्श-शुम-उकिन को किस तरह से पीड़ित किया इसका उल्लेख हो चुका है। वहां के बेगुनाह लोगों का कत्लेआम करके उनकी लाशें कुत्तों और भेड़ियों को खाने को दीं। सिन्धु नदी के पूर्वी तट तक व्याप्त इलाम देश पर धावा बोलकर वहां के काल्दी शासक नबू-बेल-सुमति को उसने बुरी तरह से पराजित किया। घबराकर वह मदक्तु नाम के नगर की ओर भाग गया। इसके लिए वहां के असीरियाई उपशासक उमानलदाश को दोषी ठहराकर असुर बाण ने उसे पकड़ कर निनेवेह मंगाया। इसके बाद नबू-बेल-सुमति को भी पकड़ लिया गया और उसके शव में नमक भरकर सारे नगर में सर्वत्र प्रदर्शित करवाया। उसके अनुयायियों को उसका शव दफनाने की तक अनुमति न दी। [९०]

असुर वंश के सम्राटों के इन्हीं अत्याचारों और क्रूरताओं की स्मृति ने लोक-मानस में उन्हें भयंकर राक्षसों और दैत्यों के रूप में प्रतिष्ठित किया होगा। भारतीय पुराणों में उनका यही मिथकीय रूपान्तर उपलब्ध है जिसके मूल में उनके निर्दय उत्पीड़न की सिहरा देने वाली कथायें हैं। उनके प्रचण्ड बल और पराक्रम के

कारण लोक ने उनके साथ अति प्राकृतिक और अतिमानवीय शक्तियों को सम्बद्ध किया ।

असुरों के इन ज़बर्दस्त सैनिक अभियानों और युद्ध में करालता का रहस्य रोमनों की भाँति उनके सैन्य संगठन और संरचना में है था। युद्ध हो अथवा शांति, विजय हो अथवा पराजय यह सैन्य संगठन सब से निरपेक्ष निर्बाध अपना कार्य किया करता था । प्राय: हर शारीरिक दृष्टि से योग्य व्यक्ति के लिए कुछ काल के लिए सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त करना अनिवार्य था । हर प्रान्तीय शासक के अपने सुसज्जित सैनिक दस्ते हुआ करते थे, जिनमें उनके व्यक्तिगत अनुचर और अनुयायी भी शामिल थे जो सदा उसके साथ रहते थे । असीरियन साम्राज्य के अपने इसी विराट सैन्य-तन्त्र पर टिका हुआ था जिस पर अपार धनराशि व्यय होती थी ।[६१] उत्खनन से प्राप्त लेखों में इस बात के बहुत से प्रमाण मिले हैं कि असुर सम्राटों ने युद्ध-विज्ञान पर काफी ध्यान दिया था । उनकी कुछ रणनीतियों और व्यूह-रचनाओं के विषय में कहा जाता है कि सिकन्दर से पूर्व इस प्रकार की व्यूह-रचना किसी को ज्ञात न थी । किलेबन्द शिविरों से उनके सैनिक अभियान संचालित होते थे । घेरा डालने की कला में ये विशेष रूप से माहिर थे ।[६२] इस प्रकार असुरों का युद्ध-तंत्र अपने समय में अद्वितीय था । इसी के भरोसे असुर सम्राट अपना अधिकांश समय युद्ध-अभियानों में बिताते थे । युद्ध उनके लिए जैसे एक नशा था जो उनपर हरदम छाया रहता था । हरिवंश पुराण में बाणासुर की प्रबल और अबुझ युयुत्सा का जो चित्र मिलता है उसमें इसी वास्तविक अतीत का ऐतिहासिक रंग है । देवताओं पर छाया उसकी क्रूरता का आतंक, उसकी उत्पीड़न प्रकृति, उसकी विशाल और सुप्रशिक्षित वाहिनी का वर्णन सभी एक ऐतिहासिक सत्य की ओर संकेत करते हैं । श्री यमुनादत्त 'अशोक' ने सच लिखा है, "अपने- - - आक्रमणों में बाण असुर ने जिस क्रूरता का परिचय दिया उसी के फलस्वरूप असुर-वंश अत्याचारी शासकों का वंश कहलाया ।"[६३] असुरों की सैन्य शक्ति की सफलता और प्रबलता के पीछे एक सुदृढ़ और कुशल गुप्तचर व्यवस्था का हाथ था जिसके विषय में आजकल अनेक अभिलेख उपलब्ध हैं ।

हरिवंश पुराण में भी इसका संकेत है । उसमें बाणासुर के गुप्तचर उसे उषा के अंत:पुर में अनिरुद्ध के प्रवेश की सूचना देते दिखलाये गये हैं ।[६४] तत्काल बाण की सुसज्जित विशाल सेना एकदम उषा के महल को घेर लेती है । असीरियाई इतिहास के लेखक उस समय के किलेबन्द नगरों की चर्चा करते हैं जिसका रूप हमें 'हरिवंश' (और बाणासुर कथा) के शोणितपुर और द्वारका में मिलता है। दोनों नगरियों के विषय में वर्णित है कि वहाँ की रक्षा-व्यवस्था ऐसी दुर्भेद्य थी कि देवता, असुर, गन्धर्व, मनुष्य किसी के भी लिए वहाँ प्रवेश पाना लगभग असंभव था ।[६५]

असुर बाणिपाल को केवल महान विजेता और बर्बर योद्धा के रूप प्रस्तुत करना उसके विषय में सारी ऐतिहासिक सच्चाई नहीं कहना है । निनेवह की खुदाई में प्राप्त उसके दो विशाल पुस्तकालयों के अवशेष यह सिद्ध करते हैं कि वह अपने समय के सभी ज्ञान-विज्ञानों और कलाओं का अच्छा पंडित था । पूर्वकाल में यूरोप और एशिया में कहीं भी ऐसा विद्याव्यसनी राजा नहीं हुआ है जिसके संग्रह में इतने अधिक ग्रन्थ हों । संग्रह के लगभग तीस हज़ार मृद्-पट्टिकाओं पर अंकित ग्रन्थों को अब तक सम्पादित कर लिया गया है उनमें से कुछ की प्रतियाँ तथा कुछ के अनुवाद प्राचीन नगरों में भी मिल गये हैं ।[६६] इनमें प्रसिद्ध गिलगिमेश महाकाव्य है जिसमें वर्णित जल-प्रलय की कथा यहूदियों की नूह की नाव और भारतीय मनु की कथाओं का आधार मानी जा सकती है । सात मृद्-फलकों पर लिखित सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी एक काव्य तथा एक गडरिये की कथा से सम्बन्धित 'एताना' महाकाव्य भी इस पुस्तकालय में उपलब्ध ग्रन्थों में है ।[६७] ये साहित्यिक कृतियाँ मूलतया बाबिलोन की हैं, निनेवेह में इनकी अनुकृतियाँ तैयार की गयीं थीं । स्वयं असुर बाण मृद्-फलकों पर लेखन की कला (दुपशर्रूति) में विशेष रूप से कुशल एक कलाकार था ।[६८] इस कला के अन्तर्गत कीलाकार लिपि में लेखन की तकनीकी विधा ही नहीं साहित्यिक रचना को भी रखा जाता था । इससे पूर्व असुर सम्राट सारगोन ने भी विभिन्न ग्रन्थों का संग्रह किया था, किन्तु असुर बाण ने मात्र ग्रन्थ-संग्रह नहीं किया । उसके पुस्तकालयों से प्राप्त कुछ मृद्-

फलकों के समापन-वाक्यों से ज्ञात होता है कि इनमें से अनेक ग्रन्थ उसके सामने उसकी स्वीकृति के लिए पढ़ लिए गये थे। उसके शासन समय के प्रारम्भिक वर्षों में अंकित ऐतिहासिक घटनाओं के अभिलेखों में उसके हाथ को स्पष्ट देखा जा सकता है।[९९]

भारतीय पुराणों में असुरों को महान् स्थपति और कुशल वास्तु-शिल्पीके रूप में चर्चित किया गया है। दोनों कलायें असुर बाणिपाल के शासनकाल में अपने उत्कर्ष के चरम को छू रही थीं। कुयूनिजीक के टीले पर असुर बाण के महल के जो अवशेष मिले हैं, उसकी उन्नत कलारुचि के प्रमाणपत्र हैं। वहाँ जो शिलांकन प्राप्त हुए हैं नदी-घाटी क्षेत्रों से प्राप्त कला के उत्कृष्टतम नमूने माने गये हैं।[१००] सारगौन के फलकों में जो दिक्बोध है और सेनाचरिब के शिलांकनों में जो दृश्य-सौन्दर्य है दोनों असुर बाणिपाल के शिलांकनों में समन्वित हैं। यही नहीं उनकी एक खूबी यह भी है कि उन पर अंकित हर अनुकृति, चाहे वह मनुष्य की हो अथवा पशु की, दूसरी से भिन्न है, कहीं भी आकृति नहीं, अत: समरूपता भी नहीं है कि देखने वाला ऊब जाये — भिन्न रूप, भिन्न भाव। हर आकृति एक अलग इकाई के रूप में उकेरी गयी है। शेर के शिकार का दृश्यांकन तो असीरियाई मूर्ति-शिल्पों में अद्वितीय माना जाता है।[१०१] कैदी उमानलदाश को रथ पर बिठा कर निनेवेह ले जाने का चित्र तथा युद्ध के अनेक दृश्यांकनों में भी इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। सृजनात्मकता का उफान और अंकन की गज़ब की बारीकियाँ असुर बाणिपाल के भोज के चित्र में प्रदर्शित हुई है।

खुदाई में भवन-निर्माण सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनकी प्रेरणा यद्यपि बाबिलोनी माडलों से ली गयी है पर स्वरूप और शैली असीरियाई है। पहले उस देवता की प्रशस्ति अंकित मिलती है जिसे भवन समर्पित किया जाना हो, उसके बाद राजा का नाम और कृतित्व आता है और फिर समर्पण से सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्यों का अंकन। राजा के विरुदों की व्याख्या करते समय लिपिकार तत्कालीन प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करता था।

असीरिया में तो यह भवन-निर्माण सम्बन्धी समर्पण लगभग ऐतिहासिक अभिलेखों का रूप धारण कर चुके थे। सरगोन के समय में राजा के शासनकाल के हर वर्ष, उसके हर युद्ध-अभियान का पृथक् रूप से विशद् और विस्तृत वर्णन किया जाने लगा।[१०२] इस प्रकार के लेखनों में लेखक अपनी सम्पूर्ण लेखकीय-प्रतिभा का प्रयोग करता था। सामान्य बात को भी अत्यंत रंगीन और कल्पनात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता था जिससे ये लेख साहित्यिक दस्तावेजें बन गये। असुर बाणिपाल का गिगेज के साथ अपने सम्बन्धों का वृत्तान्त इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। असुर बणिपाल के प्रिज़्माकार लेखों को असीरियाई साहित्यिक शैली के उत्कृष्ट नमूने कहा जा सकता है; यद्यपि उनपर बाबिलोनी प्रभाव भी निश्चित रूप से पड़ा है।[१०३]

इतिहास का असुर बाणिपाल और पुराण का बाणासुर

इस विवेचन का उद्देश्य केवल यह है कि असुर राजाओं के व्यक्तित्व का एक ऐतिहासिक बिम्ब प्रस्तुत किया जाये और उसके आलेख में उनके साथ जुड़े मिथकीय तत्वों के नीचे छिपी वास्तविकता को उद्घाटित किया जाये। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राचीन असीरियाई इतिहास का असुर बाणिपाल एक बर्बर और क्रूर विजेता, महान् योद्धा, विद्याव्यसनी और विद्वान् तथा उच्च कलाबोध-सम्पन्न एक शक्तिशाली सम्राट रहा है। प्रश्न यह है कि क्या इतिहास का असुर-बाणिपाल निश्चय से हरिवंश पुराण का बाणासुर ही था जिसकी राजनगरी शोणितपुर थी और जिसने कृष्ण से युद्ध किया था? प्रश्न के उत्तर के लिए हमें इतिहास के जल पर जमी मिथक की काई को हटाकर देखना पड़ेगा। निनेवेह के उत्खनन में प्राप्त मृद्-पट्टिकाओं में इस असुर-सम्राट का नाम कीलाक्षर लिपि में 'असुर-बाण-इपलि' मिलता है जिसे असुर बाणिपाल भी पढ़ा जा सकता है। हरिवंश पुराण में भी उसका नाम असुर-बाण दिया गया है। उसे वैरोचन का पौत्र तथा दान के लिए प्रसिद्ध असुर राजा बलि का पुत्र बताया गया है। असीरियाई इतिहास का बाणिपाल सेनाचरिब का पौत्र तथा असरहद्दोन का पुत्र था। बहुत संभव है इस असुर शासक के नाम के आगे जो 'इपलि' प्रत्यय जुड़ा है वह वास्तव में 'बलि'

ही हो । शायद बलि असुर सम्राटों के किसी महान पूर्वज का नाम या विरुद रहा हो । यह भी संभव है कि पुराणकार ने इतिहास प्रसिद्ध असुर-सम्राट बाण को मिथकीय पात्र बलि के साथ जोड़ दिया हो । अपनी विजयों तथा क्रूरता के कारण यह शासक सारे पश्चिमी और मध्य एशिया में ख्यात रहा होगा, किन्तु शनैः शनैः उसके ऐतिहासिक चरित्र के गिर्द निर्जधरी कथाओं की परतें चढ़ती गयीं होंगी और भारत में केवल उसका मिथक ही शेष रहा हो ।

तो क्या सचमुच इस असीरियाई सम्राट पर द्वापर के कृष्ण ने चढ़ाई की थी ? क्या कृष्ण-बाणासुर युद्ध कोई वास्तविक ऐतिहासिक घटना थी ? असीरिया के ऐतिहासिक अभिलेखों में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता है । फिर कृष्ण और बाणासुर के समसामयिक मानने में भी कठिनाई है । उसके लिए हमें कृष्ण और महाभारत का काल ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में ले जाना पड़ता है जबकि अधिक-से अधिक इस काल को १४०० से १००० वर्ष ई०पू० तक खींचा जा सकता है ।[१०४] श्री ए० डी० पुलस्कर ने १९५०-१४०० ई०पू० को कृष्ण का युग माना है[१०५] जब कि असुर बाणिपाल का शासनकाल ६६९-६२६ ई० पू० में माना गया है ।[१०६] इतना निश्चित है कि कृष्ण बुद्ध के युग से, जिसे ढाई हज़ार से अधिक वर्ष हो गये हैं, पूर्व थे । अतः कृष्ण और असुर बाण का समसामयिक होना किसी भी प्रकार से संभव नहीं । कनिंघम ने दोनों को समसामयिक मानने की भूल करते हुए अपनी "एन्श्येण्ट ज्यॉग्रेफी आफ इण्डिया" में लिखा है कि बाण, जिसे सामान्यतया बाणासुर कहा जाता है, कृष्ण का असफल प्रतिद्वन्द्वी था जिससे कृष्ण ने मुल्तान का राज्य छीन लिया था ।[१०७] पर यह बात सत्य नहीं, केवल दन्त-कथा पर आधारित है । अधिक संभावना इस बात की है कि असुर बाण के शौर्य, अत्याचारों, बर्बरता आदि की कहानियां भारत तक फैल गयी हों और लोकचित्त में उसका प्रबल आतंक बैठ गया हो । कृष्ण के असुर-विजयी रूप को और पुष्ट करने के लिए हरिवंश पुराण के लेखक ने लोक स्मृति में स्थित बाणासुर के वृत्तान्त को कृष्ण वृत्त के साथ जोड़ दिया और असिलोम, पुलोमा आदि असुरों की भांति कृष्ण की उस पर भी विजय दिखलायी हो । पौराणिक काल-चेतना

दो युगों के दो वृत्तान्तों को गड्डमड्ड करने में सर्वथा समर्थ मानी जा सकती है। यदि नारद सत्ययुग से लेकर द्वापर युग के वृत्तान्तों तक में उपस्थित हो सकते हैं, परशुराम का जीवन सहस्राब्दियों तक फैल सकता है तो कृष्ण और बाण का एक ही कथा-मंच पर मिलना कौन-सी बड़ी बात है? हरिवंश पुराण एक हिन्दू मध्यकालीन कृति प्रतीत होती है। किसी भी सूरत में उसकी रचना महाभारत काल के बहुत बाद हुई है।

असुर बाण सम्बन्धी असीरियाई ऐतिहासिक अभिलेखों में उसकी राजधानी निनेवेह बतलायी गयी है जब कि 'हरिवंश' में शोणितपुर को उसकी राजधानी बताया गया है जिसका नामोल्लेख तक असीरियाई इतिहास में नहीं है। अन्यत्र इसी नगर को बाणपुर या रुधिरपुर भी कहा गया है। द्वारिका से उसकी दूरी ग्यारह हज़ार योजन बतायी गयी है जो करीब अस्सी-पच्चासी हज़ार मील ठहरती है — 'एकादश सहस्राणि योजनानि जनार्दन।' यदि निनेवेह को ही शोणितपुर मान लिया जाये तो यह दूरी कोई मामूली नहीं है। प्राचीन इराक के मानचित्रों और अभिलेखों में द्वारिका और शोणितपुर नाम कहीं नहीं मिलते।

इस समस्या का समाधान श्री यमुनादत्त 'अशोक' यों करते हैं — 'जहां तक दूरी का प्रश्न है, पुराणों में ऐसी अतिशयोक्तियां यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती हैं। द्वारिकापुरी में बलदेव तथा श्रीकृष्ण के महलों की लम्बाई-चौड़ाई का वर्णन करते हुए उन्हें भी इसी प्रकार विशाल बताया गया है। बलदेव के चार योजन लम्बे और इतने ही चौड़े महल को यदि हम ८०० गज़ लम्बा-चौड़ा मान लें तो पुराणों का एक योजन लगभग एक फर्लांग हुआ और उपर्युक्त ११००० योजन की दूरी का अर्थ हुआ लगभग १,३७५ मील, जो असुर राजधानी निनेवेह की द्वारिका से दूरी हो भी सकती है। निनेवेह असुर शासकों के अत्याचारों के कारण रक्त-रंजित नगर कहलाया जाने लगा था'[१०८]। इसी से उसके शोणितपुर नाम की सार्थकता सिद्ध होती है। यहूदी बाइबल में इस बात के स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं। स्टैण्डर्ड हिस्ट्री ऑफ द वर्ल्ड (खण्ड दो) में असुर-सभ्यता का विवरण देते हुए एक

स्थल पर लेखक ने लिखा है कि यहूदी देवदूत नाहूम ने निनेवेह को 'द ब्लडी सिटी' कहा है। ओल्ड टेस्टामेण्ट में भी प्रथम और दूसरे अध्यायों में उसे 'खूनी शहर' कहा गया है। 'हरिवंश पुराण के रचयिता ने पराक्रमी बाण असुर की तत्कालीन प्रचलित वीर-गाथाओं से प्रभावित रहने के कारण उसकी राजधानी को शोणितपुर और रुधिरपुर कहा होगा - - - - - इस बात के प्रमाण हैं कि हरिवंश पुराण ईसा के पूर्व चौथी शताब्दी में लिखा गया था। तब पराक्रमी असुर बाण की कथायें पश्चिमोत्तर भारत के लोगों में इसी भाँति प्रचलित रही होंगी जैसे आज औरंगज़ेब अथवा शिवाजी की कथायें प्रचलित हैं।'[१०९]

श्री गजानन वर्मा ने धर्मयुग (३० अगस्त, १९७०) में प्रकाशित अपने एक लेख में शोणितपुर को असम का तेजपुर नगर बताया है। वे लिखते हैं — 'असमिया भाषा में शोणित (रक्त) का पर्याय शब्द 'तेज' है। इसीसे शोणितपुर तेजपुर बना। बाणासुर की इस नगरी में समय-समय पर शोणित की नदियां बहीं थीं। कालान्तर में यहाँ आग्नेय एशियाई, आर्य, द्रविड़, मंगोल आदि जातियों का आगमन हुआ।' - - - श्री वर्मा ने 'उषा के महल अग्निगढ़' की भी चर्चा की है और उसके ध्वंसावशेषों के चित्र भी दिये हैं। इस प्रकार श्री वर्मा बाणासुर को पश्चिम से पूर्व में खींच लाते हैं, किंवदन्तियों और दन्तकथाओं को आधार बनाकर ही किन्हीं खण्डहरों को उषा का महल साबित करने की चेष्टा करते हैं। कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमाण वे प्रस्तुत नहीं करते। धर्मयुग के ही २७ सितम्बर, १९७० के अंक में मध्यप्रदेश के श्री बसंतकुमार खण्डेलवाल ने श्री वर्मा के मत के विरोध में एक पत्र लिखा है जिसमें वे मध्य रेल्वे लाइन पर मध्यप्रदेश के होशंगाबाद ज़िले में स्थित सोहागपुर गाँव को हरिवंशपुराण का शोणितपुर बतलाते हैं। उनके अनुसार सोहागपुर का पुराना नाम शोणितपुर ही था, किन्तु बाणासुर की पुत्री उषा को उसी स्थान पर अपने सोहाग अर्थात् अनिरुद्ध की प्राप्ति हुई थी। इसलिए उसका नाम शोणितपुर से सोहागपुर रखा गया, जो आज भी प्रचलित है। अपने मत की पुष्टि में 'सशक्त प्रमाण' उपस्थित करते हुए वे लिखते हैं — 'बाणासुर के पाषाणमय शरीर के भाग यहाँ पड़े हैं, करीब दो-ढाई मन वज़नी सिर कृष्ण मंदिर

के अहाते की एक दीवार पर रखा हुआ है और मर्नी वज़नी हाथ-पैर हनुमान मंदिर के पास एक गढ़े में पड़े हैं । कहते हैं अनिरुद्ध की मुक्ति के लिए जब भगवान कृष्ण ने बाणासुर पर चढ़ाई की तो उसने डटकर मुकाबला किया किन्तु अपनी हार होते देख उसने युद्ध रोक दिया और हनुमान जी से युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए प्रार्थना की । कहा यह जाता है कि हनुमान जी बाणासुर के हठ के कारण बहुत क्रोधित हुए और उसे शाप दिया कि तेरा शरीर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा ।" 'कहते हैं' और 'कहा गया है' का आधार लिए हुए इस किस्से को गंभीरता से लेना व्यर्थ होगा जिसमें बाणासुर की कथा में हनुमान जी को कुदाया गया है ।

बाणासुर की राजधानी को पश्चिम से पूर्व खींच लाने का भी कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है । बाइबल जगत में 'द ब्लडी सिटी' नाम से ख्यात् निनेवेह ही असुर बाण की राजधानी थी जिसे संस्कृत पुराणों में शोणितपुर कहा गया है । निनेवेह एक अत्यन्त सुन्दर और सम्पन्न नगर था जिसे असुर-वंश के राजाओं ने स्थापत्य का अद्भुत नमूना बना दिया था । असुर सम्राटों ने उसे दुर्गवत् अभेद्य बनाकर उसकी रक्षा की पूरी व्यवस्था कर रखी थी । उसमें शत्रु के लिए प्रवेश पाना अत्यंत कठिन था । इस बात के संकेत हरिवंश वर्णित बाणाख्यान में बिखरे पड़े हैं । उसके अपराजित होने के कारण ही भारतीय पुराणकारों ने उसको शिव और कार्तिकेय द्वारा रक्षित होने की कल्पना की । हरिवंश पुराण में यह भी वर्णित है कि बाण नगरी में प्रवेश करने से पहले कृष्ण को आह्वनीय अग्नि और ज्वर से लड़ना पड़ा था । अग्नि असुर-पूजक ईरानियों का एक देवता था अत: उसी को नगर का संरक्षक मान लिया गया । यह भी संभव है कि शत्रु के आक्रमणों को रोकने के लिए नगर की बाहरी सीमाओं पर आग जलाई जाती होगी । जहां तक दुर्मद ज्वर का सम्बन्ध है, उससे यह संकेत लिया जा सकता है कि कभी उस नगरी में कोई भयंकर महामारी फैली होगी जिसकी स्मृति लोक-चित्त में देर तक बनी रही और पुराणकार ने उस घटना का भी मिथकीय रूपान्तरण कर दिया ।[110]

निष्कर्ष-बिन्दु :

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि हरिवंश पुराण में इतिहास मिथक को दिशाओं में खो गया है। लेकिन पुराण, मिथक और निजंधरी कथाओं के घटाटोप के नीचे छिपे ऐतिहासिक संकेतों को समझने का प्रयत्न किया जा सकता है। `बाणासुर कथा` के रचयिता भट्टावतार ने इस आख्यान में प्रेम और युद्ध की स्थितियों में विशेष रस लिया है और उनके वर्णन को शुद्ध काव्य का धरातल प्रदान किया है। फिर भी मूल पौराणिक कथा में जो ऐतिहासिक और मिथकीय संदर्भ बिखरे हैं उनका अध्ययन काफी दिलचस्प है।

संदर्भ - संकेत

१. हरिवंश पुराण : (भण्डारकर शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित संशोधित संस्करण, १९६९) : भूमिका ।
२. वही
३. वही
४. वही
५. शिवपुराण (व्यंकटेश्वर प्रेस)
६. बाणासुर कथा ।४-६.
७. बा० क० । १०.
८. ह०व०पु० (व्यंकटेश्वर प्रेस)
९. बा० क० । १२.
१०. बा० क० ।१८ , ह० ब० पु० (भण्डारकर शोध संस्थान) :सम्पादक प० ल० वैद्य : १०६।९.
११. बा० क० । १८-२३.
१२. बा० क० ।९.
१३. उपरिवत्
१४. बा० क० ।३२। ४०-४२, ह० व० पु० ।१०६। ५५-५७.
१५. बा० क० ।४४-४९, ह० व० पु० । १०७।१-८.
१६. बा० क० । ५०-५३ , ह० व० पु० । १०७।१०-१६.
१७. ह० व० पु० (व्यंकटेश्वर प्रेस)
१८. बा० क० । ५६-५९ , ह० व० पु० ।१०७।२७.
१९. ह० व० पु० ।
२०. बा० क० । ६५-६८.
२१. ह० व० पु० ।१०७।३९-४३.

२२. प०ल० वैद्य ने स्व० सम्पादित 'हरिवंश पुराण' की भूमिका में इन पाण्डुलिपियों का विवरण दिया है। ये हैं शारदा पाण्डुलिपियों को छोड़कर उत्तरी संस्करण की सभी पाण्डुलिपियाँ व ग्रन्थ तथा तेलगु में उपलब्ध पाण्डुलिपियाँ। व्यंकटेश्वर प्रेस तथा संस्कृति संस्थान, बरेली द्वारा प्रकाशित संस्करणों में भी यही पाठ है।

२३. बा० क० ।७६-७९.

२४. ह० व० पु० । १०७।७५-७७.

२५. ह० व० पु० । १०७।७८-८१.

२६. बा० क० ।८६.

२७. बा० क० ।९९-१०९.

२८. ह० व० पु० । ११०।६६-६७.

२९. ह० व० पु० (सम्पा० श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, कानपुर) पृष्ठ १४८ ।

३०. बा० क० ।१७५-१८९.

३१. ह०व०पु० ।१०९।२-५.

३२. बा० क० ।१९६-२०४, २१८-२२२ ; ह० व० पु० ।१०९।१९-२७, ६६-६७.

३३. बा० क० ।११४.

३४. बा० क० ।११४-११९, १२४-१४३; ह० व० पु० ।१०८।२१-५०.

३५. बा० क० ।११६-१२३.

३६. बा० क० । ११८.

३७. बा० क० ।१४३-१६६, ह० व० पु० ।१०८।५२-८७.

३८. बा० क० ।२३४-२३८.

३९. बा० क० ।२३९-२४१

४०. बा० क० ।२५१-२६२, २७६-९४ ; ह० व० पु० ।११०।२०-२२ , ५६-७३ ; १११।१-४.

४१. ह० व० पु० । १११।७-९.

४२. बा० क० ।३२४.

४३. ह० व० पु० ।११२।६१-६३.

४४. ह० व० पु० ।११२।१००.

४५. बा० क० । ३८६-८८.

४६. ह० व० पु० । ११३। ५७.

४७. ह० व० पु० ।११३। ६६.

४८. ह० व० पु० ।११३।८१.

४९. परिशोध

५०. तुलसी : आधुनिक वातायन से (भारतीय ज्ञान पीठ,वाराणसी): पृष्ठ ।

५१. बा० क० ।४४.

५२. बा० क० ।४९.

५३. बा० क० ।५८-५९, ६४-६०.

५४. बा० क०।७१-७३.

५५. बा० क० ।११६.

५६. बा० क०।१६६

५७. तुलसी : आधुनिक वातायन से : पृष्ठ १३-१४ ।

५८. बा० क० ।२१३-१४

५९. बा० क० । २५१-२६२ , ३६६-३८१.

६०. बा० क० । ३७५-३८४.

६१. ह० व० पु० (व्यंकटेश्वर प्रेस) , ह० व० पु० संस्कृति संस्थान, पृ०१४१। भण्डारकर शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित हरिवंश पुराण के संशोधित संस्करण में प० ल० वैद्य ने पृष्ठ ७२८ तथा ७३६ पर पाद-टिप्पणियों में उन पाण्डु-लिपियों का सन्दर्भ दिया है जिनमें इन प्रसंगों का समावेश है ।

६२. बा० क० ।११३.

६३. ह० व० पु० (संस्कृति संस्थान, बरेली), पृष्ठ १३५ ; ह० व० पु० (व्यंकटेश्वर प्रेस) बम्बई ।

६४. बा० क० । ३५५-३५६.

६५. कृष्णावतार (भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९६१) : भूमिका.

६६. तुलसी : आधुनिक वातायन से , पृष्ठ ४ ।

६७. द्रष्टव्य `दि वैदिक एज` (सम्पा० आर० सी० मजूमदार) में बी० के० घोष का लेख ` इण्डोइरानियन रिलेशन्स`, पृष्ठ २१८-२२५ ।

६८. द्रष्टव्य : ` दि वैदिक एज` में बी० के० घोष का लेख` द आर्यन प्रॉब्लिम, पृष्ठ २०४ ।

६९. द्रष्टव्य : `दि वैदिक एज` , पृष्ठ २२२ ।

७०. वही , पृष्ठ २१८ , `आक्ता ओरिएन्तालिया` वर्ष ६, अंक १,२,३ में प्रकाशित एन० डो० मिहिनोन के लेख `अन्तिक प्राच्य में द्वितीय सहस्राब्दी के आर्यों के चिह्नावशेष` का हवाला देते हुए सु० कु० चाटुर्ज्या लिखते हैं कि मेसोपोतामिया के आर्यभाषा-भाषी जन पूर्व वैदिक एवं पूर्व-भारतीय आर्य थे । (भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी , पृष्ठ १८)

७१. दि वैदिक एज में बी० के० घोष द्वारा उद्धृत , पृष्ठ २२३ ।

७२. उपरोक्त में पृष्ठ २५० पर उद्धृत ।

७३. उपर्युक्त में पृष्ठ २५० पर उद्धृत ।

७४. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी , पृष्ठ ३०-३१ ।

७५. केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (खण्ड १), पृष्ठ ७६ पर लिखा है कि असुर बाणिबाल द्वारा ७ वीं शती ई० पू० में सात अच्छे और सात बुरे फरिश्तों के साथ अस्सर मज़स (अहुर मज़्द) का उल्लेख इस बात का स्पष्ट संकेत है कि वह ज़रथुस्त्रीय देव-मण्डल से परिचित था ।

७६. केम्ब्रिज एन्श्येण्ट हिस्ट्री (भाग ३), पृष्ठ २-३ ।

७७. उपरिवत्

७८. उपरिवत् , पृष्ठ ६ ।

७९. उपरिवत् , पृष्ठ ११ ; स्टोरी ऑफ दि बाइबल वर्ल्ड (न्यूयार्क,१९६२), ले० - नेल्सन बोचर केज़ , पृष्ठ ७८-७९ ।

८०. स्टोरी ऑफ द बाइबल वर्ल्ड , पृष्ठ ८२-८३ ।

८१. के० ए० हि० (भाग ३ : पृष्ठ ८६ तथा ११४ , स्टोरी आफ द बाइबल वर्ल्ड, पृष्ठ ८६ ।

८२. के० ए० हि० (भाग ३) , पृष्ठ ८६ ।

८३. द्रष्टव्य उपरिवत , पृष्ठ १२०-१२४ ।

८४. उपर्युक्त में पृष्ठ १२७ पर उद्धृत ।

८५. स्टोरी ऑफ द बाइबल वर्ल्ड , पृष्ठ ७६ पर उद्धृत ।

८६. उपरिवत , पृष्ठ ८१-८३ पर उद्धृत ।

८७. उपरिवत , पृष्ठ ८३ पर उद्धृत ।

८८. बाइबल (२ किंग्स - ४ किंग्स) १७ : ३-६)

८९. स्टोरी ऑफ दि बाइबल वर्ल्ड , पृष्ठ ८८-८९ ।

९०. कादम्बिनी नवम्बर, १९६६ के अंक में यमुनादत्त वैष्णव `अशोक` का लेख : `बाणासुर इतिहास के दर्पण में` , पृष्ठ ३०-३१ ।

९१. द्रष्टव्य - के० ए० हि० , पृष्ठ ९९-१०० ।

९२. उपरिवत् ।

९३. कादम्बिनी, नवम्बर, १९६९ , पृष्ठ ३० ।

९४. ह० व० पु० ।१०८।१२.

९५. ह० व० पु० ।१०७।८०.

९६. कादम्बिनी , नवम्बर, १९६९ : पृष्ठ ३३ , यमुनादत्त `अशोक`का लेख `बाणासुर : इतिहास के दर्पण में` ।

९७. द्रष्टव्य - के० ए० हि० , पृष्ठ ११० ।

९८. उपरिवत , पृष्ठ ८८ ।

९९. उपरिवत , पृष्ठ ८८ ।

१००. द्रष्टव्य के० ए० हि० , पृष्ठ १०९ ।

१०१. उपरिवत् ।

१०२. द्रष्टव्य उपर्युक्त , पृष्ठ १११ ।

१०३. द्रष्टव्य उपर्युक्त , पृष्ठ १११-१२ ।

१०४. एन्श्येण्ट इण्डिया , ले० रमेशचन्द्र दत्त (लांग्मैन्स , १६०४), पृष्ठ ६ तथा ३७ ।

१०५. दि वैदिक एज में 'ट्रेडिशनल हिस्ट्री फ्रॉम द अर्लियस्ट टाइम्स' शीर्षक लेख , पृष्ठ २६४ , लेखक के अनुसार महाभारत युद्ध की अनुमानित तिथि १४०० ई० पू० है (पृष्ठ ३००) ।

१०६. द्रष्टव्य केम्ब्रिज एन्श्येण्ट हिस्ट्री , पृष्ठ ११३ ।

१०७. कनिंघम्स एन्श्येण्ट ज्याग्रफी ऑफ इण्डिया :सम्पाद० सुरेन्द्रनाथ मजूमदार, पृष्ठ २६७ ।

१०८. कादम्बिनी, नवम्बर १६६६ , पृष्ठ ३३ ।

१०९. उपरिवत ।

११०. बाइबल (२ किंग्स (४ किंग्स) १६:३५) के अनुसार असुर बाण के दादा सेनाचरिब के १८५,००० सैनिक महामारी के कारण एक ही रात में मर गये और उसे विवश होकर बिना यरूशलम पर अधिकार किये लौटना पड़ा ।

-----

(३)

रूप और शिल्प के आयाम

कथाकाव्य का रूपाकार , रूप और शिल्प के सूत्र और एक सौन्दर्य-लोलुप कवि , नाट्य-शिल्प की छाया , इतिवृत्त में गुम्फित काव्य-गीतियाँ , कथा में प्रार्थना और स्तुति की स्थिति , वर्णन का शिल्प-कौशल, कथानक रूढ़ियाँ , कथाभूमि का विस्तार , पात्रमण्डल और चरित्र-शिल्पन : कृष्ण : निर्बाध दैवी नायक , अनिरुद्ध : शौर्य वृत्ती का वीर पुरुष , बाणासुर : अकेला और सबल प्रति-नायक , उषा : शृंगार-काव्यों की रूप-प्रतिमा , कुम्भाण्ड : कुशल मंत्री का रूढ़ चरित्र , अन्य पात्र, चरित्रीकरण में `जादू` का तत्व , निष्कर्ष-बिन्दु , छन्द-विधान ।

(३)

रूप और शिल्प के आयाम

कथाकाव्य का रूपाकार

'बाणासुर कथा' , जैसा उसके शीर्षक से ध्वनित होता है, एक लघु-आख्यानक अथवा कथा-काव्य है । स्वयं कवि अवतार भट्ट ने कृति का परिचय देते हुए उसके रूपाकार की ओर संकेत किया है - 'पाने रचोम इह काव्य-पबन्धं' , अर्थात् यह काव्य-प्रबन्ध मैंने स्वयं रचा है । किन्तु प्रबन्ध काव्य का सर्ग अथवा अध्याय में विभाजित रूप उसका नहीं है - उसमें विभिन्न कथा-बिन्दु बिबिध छन्दों की लय पर उभरते हैं और घटना-वृत्तों का सृजन करते हैं । मुख्य कथा-बिन्दु तीन अथवा चार हैं जो इतिवृत्त को गति और यति दोनों प्रदान करते हैं - ये हैं बाणासुर को वर-प्राप्ति, उषा द्वारा अनिरुद्ध का स्वप्न में दर्शन और अनिरुद्ध-हरण, अनिरुद्ध-बाणासुर युद्ध, अपहृत अनिरुद्ध की यादवों द्वारा खोज और कृष्ण-बाणासुर युद्ध । इस दृष्टि से 'बाणासुर कथा' में कथा का स्वरूप इकहरा है और वह बिना पताकाओं और प्रकरियों में अधिक मुड़े युद्ध के चरम नाटकीय-क्षण की ओर धावित होती है । कथा-फलक के लघु होने के कारण उसमें अनावश्यक रंगों का फैलाव नहीं अत: घटना-स्थितियों और परिस्थितियों के अंकन में समाज-जीवन का रूपायन अधिक नहीं हो पाया है ।

कथा-काव्य के लक्षणों को देते हुए काव्य-चिन्तक रुद्रट ने कथा के आरम्भ में देवता और गुरु की वन्दना, रचयिता द्वारा अपना और अपने कुल का परिचय, कथा-लेखन के प्रयोजन का उल्लेख आदि बातों को आवश्यक माना है । 'बाणासुर कथा' में भी इस पारम्परिक विधान का पालन हुआ है । गणेश और सरस्वती की वन्दना में लिखे छन्दों से काव्य का प्रारम्भ होता है, उसके बाद कवि अपने यशस्वी आचार्य 'ज्ञान समुद्र' सल्हण को नमन करता है, राजा, रचनाकाल तथा रचना का संक्षिप्त परिचय देता है और यह भी सूचित करता है कि स्वप्न में मिली प्रेरणा का प्रतिफलन है उसकी यह कृति ! कथा-काव्य के पारिभाषिक सूत्र प्रस्तुत करते हुए रुद्रट 'सरस वर्णनों से संजीवित कन्या-प्राप्ति' को उसका प्रधान प्रतिपाद्य मानते हैं और भामह कन्याहरण, युद्ध, विरोध और नायक की विजय को उसके लिए अनिवार्य घोषित करते हैं । न्यूनाधिक रूप में इन लक्षणों को 'बाणासुर कथा' में भी लक्षित किया जा सकता है । इच्छित सुन्दरी के लिए नायक का युद्ध में शौर्य प्रदर्शन और अन्त में उसकी प्राप्ति का रोमांसीय रस उसमें भी प्रवाहित है किन्तु कन्या-हरण के स्थान पर नायक-हरण का प्रसंग एक भिन्न रंग लिए है । वस्तुत: संस्कृत के काव्य-शास्त्रियों ने उपलब्ध रचनाओं को आधार बनाकर ही तत्कालीन काव्य-रूपों के लक्षण नियत किये थे जैसा कि आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इंगित किया है ।[१] 'बाणासुर कथा' के रचयिता के ध्यान में भी निश्चय से प्राकृत-अपभ्रंश कथाकाव्यों की एक पुष्ट परम्परा अपनी कृति का सृजन करते समय रही होगी । पर कृति के रूप-शिल्प का आकलन केवल पारम्परिक परिभाषाओं को सीमा-रेखाओं के अन्तर्गत करना उसकी रचना-धर्मिता का अधूरा साक्षात्कार करना है ।

रूप और शिल्प के सूत्र और एक सौन्दर्य लोलुप कवि

काव्य के रूप और शिल्प के प्रश्नों पर विचार करते हुए डॉ० रमेश कुंतल मेघ ने प्रस्तुत (पात्र, अनुभव, घटनायें वर्णन आदि) का इतिहास के पैटर्न और कलाकार के 'व्यक्तित्व के 'माध्यम' दोनों से रूपान्तरित होकर आने को 'रूप'

कहा है ।[2] वे लिखते हैं, "रूप-विधान में वस्तुओं का स्थानगत (इन-स्पेस) विन्यास होता है जबकि वे वस्तुएं कालगत भी होती हैं । अत: काल-सापेक्ष्य को एक स्थान-सापेक्ष्य लेन में कुछ उपायों (शिल्प-विधियों) के द्वारा रूपान्तरित करना ही 'रूप' का विधान है ।"[3] 'बाणासुर कथा' का कथा-सूत्र, जैसा, कहा जा चुका है, हरिवंश पुराण से गृहीत है, पर 'रूप' की दृष्टि से यह कृति पुराण में वर्णित कथा से भिन्न आयाम रखती है । 'हरिवंश' में बाणासुर को इतिहास की वास्तविकता से विच्छिन्न करके एक मिथकीय रहस्य से मण्डित किया गया है, किन्तु 'बाणासुर कथा' में यह मिथक प्रणय और प्रतिशोध के ललित-काव्य में गूंथा गया है । ओटो रैंक मिथक को 'जनसमूह का स्वप्न' मानते हैं ।[4] जेन हेरिसन ने भी उसे जन-समष्टि के आत्मिक-जीवन (सोल-लाइफ) का अंश, उसका स्वप्न-चिन्तन कहा है, "उसी प्रकार जैसे स्वप्न व्यक्ति का मिथक है ।"[5] युंग ने प्रतिपादित किया है कि मनुष्यों में कुछ सामान्य प्रतीकों के निर्माण की जन्म-जात प्रवृत्ति होती है, ये प्रतीक मिथक, स्वप्न, लोकवार्ता आदि में व्यक्त होते हैं ।[6] बाणासुर की पुराण-वर्णीत कथा के विषय में कहा जा सकता है कि भारतीय अवचेतन मन के किसी स्वप्न, किसी गहरी इच्छा की उसमें बाणासुर पर सुदूर अतीत के राष्ट्रीय आदर्श कृष्ण की विजय द्वारा अभिव्यक्ति हुई है । अवतार भट्ट के समय में यह मिथक-कथा समाज की धार्मिक-सांस्कृतिक चेतना का निश्चय से एक अंग रही होगी । कवि ने 'बाणासुर कथा' में पुराण प्रसिद्ध कथा को फिर प्रस्तुत कर अपने समकालीन पाठक वर्ग की काव्य-आस्वाद की भूख को परितृप्त करने का प्रयत्न किया है । उसका प्रयास एक परिचित कथा में नयी बात जोड़ने का नहीं, नयी बात पैदा करने का प्रतीत होता है । उसका मन उषा के सौन्दर्य-विलास और रतिराग की मादकता के वर्णन की ओर अधिक झुका है, मात्र इतिवृत्त के कथन में नहीं । उसकी दृष्टि पुराणकार की नहीं, एक सौन्दर्य-आखेटक कवि की है । और यह दृष्टि कृति के आरंभ से अन्त तक कथा की गति को प्रभावित करती है । कहा जा सकता है कि कवि का व्यक्तित्व कृति को सर्वत्र रंजित करता हुआ घटना, वर्णन, चरित्र, कार्य आदि का व्यवस्थापन मौलिक ढंग

से करता है । डॉ० रमेश कुंतल मेघ के अनुसार `व्यवस्थापन में सन्तुलन ( बैलेंस ), समरूपता ( सिमेट्री ), व्यवस्था ( ऑर्डर ) की आवश्यकता पड़ती है ।`[७] इन तीन को `रूप के तत्व` मानते हुए वे लिखते हैं — ` तत्वों की आपसी पूरकता और अनिवार्यता ही एकता का अभिनिवेश पाती है । इस भाँति सभी वस्तुओं को एकसाथ किसी विलक्षण ढंग से अन्वित करने में रूप और शिल्प का सहयोग है जहाँ `सभी` वस्तुएं तत्वों द्वारा व्यवस्थापित होने लगती हैं । इस तरह वस्तु-तत्व-शिल्प की त्रयी विधात्मक रूप ( जेनेटिक फार्म ) का निर्माण करती है ।`

नाट्य-शिल्प की छाया

`बाणासुर कथा` में वस्तुओं को रूप और शिल्प द्वारा जिस `विलक्षण ढंग` से अन्वित् किया गया है उस पर हम कथा-काव्य के पारम्परिक पारिभाषिक दायरे से बाहर निकल कर दृष्टिपात करेंगे । सबसे पहले जो बात ध्यान आकर्षित करती है वह है `बाणासुर कथा` के रूपगठन में नाटकीय तत्वों का समावेश । अपनी संवेदना में `बाणासुर कथा` नाटक के काफी निकट प्रतीत होती है । पुराण की श्रोता-वक्ता (वैशम्पायन-जनमेजय) की योजना को कवि ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया है पर पात्रों के अनेक संवादों के कारण आख्यान वाचक वैशम्पायन बहुत कुछ भारतीय सूत्र-धार या ग्रीक कोरस-से लगते हैं, अन्तर इतना ही है कि ग्रीक कोरस में अनेक समवेत स्वर कथा की आगामी घटना की सूचना देते हैं । यहाँ वैशम्पायन कार्य-कारण क्रम को स्पष्ट करते हुए कथा-का सूत्र आगे सरकाते चलते हैं और कथा-मंच पर विभिन्न पात्र विभिन्न घटना स्थितियों और परिस्थितियों में अवतरित होते हैं । ये पात्र पारस्परिक संवादों द्वारा कार्य-व्यापार को गति देने के साथ-साथ विभिन्न कथा-बिन्दुओं पर अपनी चारित्रिक विशेषताओं को भी उद्घाटित करते चलते हैं । प्रारम्भ में ही शिव और बाणासुर के संवादों में बाण के युयुत्सु मन की बेचैनी उसके व्यवहार-पैटर्न की मुख्य कुंजी पाठक को पकड़ाती है । (बा० क० । १८-२२) पाठक जान जाता है कि सारा घटना-चक्र एक युद्ध की धुरी पर घूमने वाला है । पार्वती-उषा संवाद (बा० क० । ५०-५३) में इस

युद्ध के लिये भूमि प्रस्तुत की गयी है और साथ ही उषा की भावी भूमिका भी संकेतित हो उठी है। इसी प्रकार संवादों द्वारा सारी कथा की बन्द रील धीरे-धीरे खुलकर छाया-चित्रों को पाठक के मन: पटल पर प्रक्षेपित करती है और बाण, कुम्भाण्ड, उषा, अनिरुद्ध, कृष्ण आदि पात्रों के चारित्रिक आयामों को स्पष्ट करती चलती है। दो-तीन स्थलों पर 'बाणासुर कथा' में संस्कृत में कार्य-संकेत भी आये हैं -- 'युवतय: प्रलापं कुर्वन्ति', दुर्गाभगवती स्तुति करोति' 'तत: प्रतिश्यति दुर्गा, संग्राम:', जो इस काव्य को नाटकीय भंगिमा प्रदान करते हैं। नाटकीय तनाव के अनेक क्षण भी 'बाणासुर कथा' में विभिन्न स्थितियों के बीच उभरते हैं। एक ऐसा क्षण है जब असुरबाण के हर्म्य-रक्षक उषा को सहसा अनिरुद्ध की प्रणयाकुल बाहों के पाश में बंधी देख लेते हैं (बा० क०।११२)। तनाव की यह स्थिति और भी गहरी हो जाती है जब अनिरुद्ध स्वयं को सुसज्जित, क्रुद्ध और युद्धोद्धत बाण-सेना से घिरा पाता है। वह अकेले लगभग निहत्था ही ललकार रहे असुरों से युद्ध करने को निकलता है तो उषा का मानसिक द्वन्द्व और अनिरुद्ध को रोकने की उसकी चेष्टा इस तनाव को उसके चरम-बिन्दु पर पहुंचाते हैं (बा० क० ११७-१२६)। चित्रलेखा द्वारा अनिरुद्ध के अपहृत हो जाने पर द्वारका में जो स्थिति उत्पन्न होती है, अनिरुद्ध की स्त्रियों का प्रलाप, कृष्ण द्वारा यादव सभा में अपनी चिन्ता का उद्घाटन और नारद ऋषि का प्रवेश (बा० क० ।१७५-२१७) -- ये सब नाटकीय स्वरूप लिए हुए हैं। यहां पर कार्य द्रुत गति से चलता है। चारों ओर अनिरुद्ध की खोज की जाती है, कृष्ण परेशान हो जाते हैं, चिन्तित पृथ्वी पर लोग उन्हें सब यादवों सहित क्लीब कहेंगे। अंत में नारद द्वारा वस्तुस्थिति के उद्घाटन द्वारा तनाव कुछ कम हो जाता है। ये नाटकीय क्षण आंतरिक और बाह्य द्वन्द्वों की सृष्टि करके विलीन हो जाते हैं। किसी त्रासद अथवा कामद विश्रान्ति की योजना कृति में नहीं है, किन्तु बाणासुर की सेना की भयंकरता के वर्णन अनिरुद्ध के नागपाश में बद्ध होने और असुर बाण की पराजय में भयानकता तथा आश्चर्य और आतंक का समावेश है। बाण की एक त्रासदी के खल-नायक की-सी मृत्यु दिखाई गयी है।

इतिवृत्त में गुम्फित काव्य-गीतियाँ

"बाणासुर कथा" के रूपगठन की एक और महत्वपूर्ण विशेषता है उसमें काव्य-गीतियों का समावेश जो जनगीतियों की प्रेरणा से रचित प्रतीत होती हैं। इनसे उसका संस्कृत के राग-रस-रंजित गीत-काव्य "गीत गोविन्द" का-सा स्वरूप हो गया है। ऐसा सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि गीत गोविन्द के अतिरिक्त कवि के सामने प्राकृत-अपभ्रंश और स्वयं कश्मीरी की काव्य-गीतियों की पुष्ट परम्परा अवश्य रही होगी। 'बाणासुर कथा' में समाविष्ट इन गीतियों का रूप व्यक्तिगत अथवा मनसपरक लिरिक अथवा गेयगीत का नहीं है। वे यहां इतिवृत्त के अन्तर्गत आये हैं और उनकी गीतात्मका कथा-सूत्र का आश्रय लेती है। फिर भी मनस् परक गीति की स्वाभाविक प्रेरणा से अध्यन्तरित रूप उनका अवश्य है। लोकगीति का उन्मुक्त वातावरण उनमें सुरक्षित है। कुल मिलाकर चार-पांच गीतियों से अधिक उसमें नहीं हैं किन्तु उनकी उपस्थिति ने इस लघु कलेवर काव्य की आंतरिक संरचना को काफी गहराई से प्रभावित किया है। इनमें पात्र की मनोदशा का द्योतन, वर्णन और विवरण के सपाट विस्तार में नहीं गीति की सघन-बिम्बात्मकता द्वारा हुआ है। लोक-गीत की ही भांति इनमें प्रणयाकुल मन की अधीरता, सौन्दर्याकर्षण, विरहदग्ध मनोदशा का मर्म-मधुर अंकन है। शुद्ध प्रेम से अधिक काम-विकलता की भावभूमि का ये स्पर्श करते हैं और कृति के प्रबन्ध-प्रवाह, उसकी कथात्मकता में सुन्दरता से गुम्फित हैं।

कथा में प्रार्थना और स्तुति की स्थिति

'बाणासुर कथा' धार्मिक आस्था द्वारा विशेष रूप से निदेशित काव्य नहीं है, पर उसका विषय, उसके सन्दर्भ ही कुछ ऐसे हैं कि एक धार्मिक-काव्य की आंतरिकता से अनछुआ रहने पर भी उसके बाहरी रूप की छाया इस पर पड़ती है। यही कारण है कि प्रार्थनायें और स्तुतियां उसके इतिवृत्त में इस भांति अनुस्यूत हैं कि वे कथांश बन गयी हैं। जैसा कि डॉ० रमेश कुंतल मेघ ने लिखा है, ये प्रार्थनायें और स्तुतियां धर्म के सार-तत्व और धर्म के मनोविज्ञान (एसेंस एण्ड

साइकालोजी आव रिलिज्म) को उद्घाटित करती हैं । उनके विचार में प्रार्थना या स्तुति करना एक मनस्तात्त्विक आवश्यकता की पूर्ति है । "मिथक धर्म का काव्य है, स्तुति धर्म का दर्शनशास्त्र होती है।"[९] मिथक के मूल में मानवीय विश्वास है तो प्रार्थना अथवा स्तुति के मूल में ईश्वर के प्रति गहरी और अडिग आस्था । प्रार्थना ईश्वर को मानवीय सन्दर्भों में उपस्थित करने, उससे स्वामी, सखा, प्रिय, पति, पुत्र आदि के व्यक्तिगत मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास है । फ्यूरेर बौरव के अनुसार "धर्म का अंतरतम सारतत्व धर्म के सरलतम कार्य प्रार्थना द्वारा उद्घाटित होता है ।"[१०] प्रार्थनायें वैयक्तिक और सामूहिक दोनों प्रकार की होती हैं । काव्य में वे पात्रगत अथवा कवि के नितान्त वैयक्तिक धार्मिक आवेश द्वारा प्रेरित होती हैं । "बाणासुर कथा" में कवि की वैयक्तिक प्रार्थनायें अथवा स्तुतियाँ केवल परिपाटी निभाने के लिए गणेश और सरस्वती की वन्दना के रूप में आयी हैं, उनमें आवेश अथवा भक्ति-विह्वलता नहीं है । शेष प्रार्थनायें (वैयक्तिक और समूहगत) पात्रों के माध्यम से करवायी गयी हैं । पात्रगत प्रार्थनाओं में पात्र की कोमल और गूढ़ तथा नितान्त निजी भावनाओं के लोक से कवि अंतरंग परिचय स्थापित करता है । ये प्रार्थनायें पात्र को एक अत्यंत कमज़ोर मनोवैज्ञानिक क्षण में प्रस्तुत करती है और उसकी किसी गहरी मनोव्यथा अथवा विवशता से निःसृत होती है । यातना-पीड़ित पात्र का अपनी सम्पूर्ण असहायता में आर्त-स्वर में ईश्वर को पुकारना उसके धार्मिक मनोविज्ञान को उद्घाटित करता है । बाणासुर से युद्ध करते-करते अनिरुद्ध सहसा उसके द्वारा नागपाश में बाँध दिया जाता है । शारीरिक यातना और पराजय की घोर मानसिक पीड़ा से उसे हताश कर देती हैं । अपनी सम्पूर्ण वीरता, रणकुशलता, युद्धोत्साह के बावजूद बाणासुर की "माया" उसकी इच्छाशक्ति को पंगु बनाकर उसे बेहद विवश बना देती है । अतः "माया" के निराकरण के लिए वह दैवी शक्ति से आर्त वाणी में सहायता माँगता है (बा० क० ।२३३-२३८) । "बाणासुर कथा" में इसे "स्तुति" कहा गया है — "दुर्गा भगवती स्तुति करोति" पर वास्तव में यह स्तुति और प्रार्थना का समन्वित रूप है — स्तुति-धर्मा प्रार्थना है । स्तुति के हर चरण के अन्त में सहायता की यह पुकार टाँकी गयी है : "कर जनिनी पसाद, फणिबद्धेस

मि दुरगे !' — जननी मुझ फणिबद्ध पर कृपा करो ।' इसके बाद अनिरुद्ध अपने पीड़ा-कीलित मन की दशा देवी के सामने प्रस्तुत कर उस संत्रास से मुक्ति की प्रार्थना करता है जो उसे विवश किये हुए है — ' भयस जय चु देता' — भय को जय दो माँ ! इस प्रार्थना में ईश्वर से 'माँ' का मानवीय सम्बन्ध जोड़ा गया है जिसमें स्वयं कवि का शाक्त भाव झलमलाया है । इस प्रार्थना में जहाँ अनिरुद्ध के मनस्ताप का बिम्ब उभरा है वहाँ ईश्वर की उपस्थिति और शक्ति के प्रति एक गहरी आस्था भी । स्वयं देवी प्रकट होकर एक वत्सला माँ की भाँति अनिरुद्ध को अपने स्नेह से आश्वस्त करती हैं —

आस-आस तनया अनिरुद्धा
वाचुस मु पाने अज़ हवी
रक्षा त अतिनेहे महा युद्धा
विषमो कम्प फण्यु चि़दिवी ! (बा० क० ।२३९)

—'ठहरो-ठहरो , अनिरुद्ध, मेरे तनय, लो मैं स्वयं तुम्हारे पास आ गयी । अत्यंत स्नेह से मैं तुम्हारी इस महायुद्ध में रक्षा करूंगी । ये साँप तुम्हें विषम पीड़ा दे रहे होंगे । यहाँ ईश्वर पर मानवीय सम्बन्धों का केवल आरोप ही नहीं किया गया है अपितु मानवीय कार्यधर्मों (फन्क्शन्स) के अनुसार उससे आचरण भी करवाया गया है । उसे करुणा, स्नेह, प्रेम के मानवीय गुणों से युक्त, मातृत्व की भावना से मंडित किया गया है ।

अनिरुद्ध हरण के पश्चात् उसकी अनुपस्थिति के आघात से सहसा दुख विह्वल उसकी स्त्रियों का कृष्ण को पुकारना सामूहिक प्रार्थना होकर भी अपनी तीव्रता और प्रकृति के कारण वैयक्तिक प्रार्थना के अंतर्गत रखी जा सकती है (बा० क०।१८७) । सामूहिक प्रार्थना की निर्वैयक्तिकता उनमें नहीं है, निजी अनुभव (फीलिंग) की विह्वलता है । इस प्रार्थना में अनिरुद्ध की पत्नियों की कृष्ण के लोकरक्षक ईश्वरीय रूप के प्रति गहरी आस्था की अभिव्यक्ति है । वे इस आघात से विजड़ित हैं कि जिसके भय से चण्ड रूप मृत्यु-देवता भी काँपता है, इन्द्रादि देव

जिसके आश्रय में रहते हैं उस कृष्ण के पौत्र को कोई दुस्साहसी अपहृत करके ले गया। इसके अतिरिक्त कुछ वन्दनायें भी 'बाणासुर कथा' का कथांश बनी हैं। इनमें पराजित होने के बाद प्राणरक्षा की अग्नि और ज्वर की लघु वन्दनायें हैं। पराजित वरुण भी कृष्ण का स्तुति-गान करता है। इनमें अपने से अधिक शक्तिशाली के प्रति पराजित व्यक्ति के विवश समर्पण का मनोविज्ञान व्यक्त हुआ है। बाणासुर की पराजय के पश्चात् कृष्ण द्वारा नागपाश से मुक्त करने पर कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए अनिरुद्ध की एक लघु-वन्दना भी है। आकार में अति लघु होने पर भी इन्हें स्तुतियों —प्रार्थनाओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है। प्रार्थना के आंतरिक ढांचे का निर्माण, जैसा कि फ्रीडरिक हाइलर ने स्पष्ट किया है, तीन तत्व करते हैं - एक जीवन्त इष्ट देवता में आस्था, उसकी वास्तविक तथा तात्कालिक उपस्थिति में आस्था, तथा उसके साथ एक यथार्थवादी सम्बन्धता। 'बाणासुर कथा' में इन तीनों तत्वों से युक्त प्रार्थनायें स्तुतियां इतिवृत्त में पात्र के धार्मिक मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्व रखती हैं और धर्म के प्रति आस्थावान् पाठक को भक्ति के आवेश से युक्त करती हैं।

वर्णन का शिल्प-कौशल

जैसा पहले स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है 'बाणासुर कथा' में हरिवंश पुराण से गृहीत् कथा में कोई नितान्त मौलिक और बड़ा परिवर्तन कवि ने नहीं किया है। इसका कारण यह रहा है कि घटना से अधिक उसे घेरने वाले आलोक में कवि का मन रमा है। यह बात कृति में आये विभिन्न वर्णनों के मौलिक सौन्दर्य से समर्थित होती है। काव्य में वर्णन को शिल्प-कौशल का एक महत्वपूर्ण अंग माना जा सकता है। नाटकीय संवेदना के बावजूद 'बाणासुर-कथा' में देश-कालगत वस्तु-स्थितियों के बीच परिस्थिति के विस्तार को वर्णनों द्वारा चित्रित किया गया है। ये वर्णन तीव्रगति से धावित घटना की गति को थोड़ा रोक लेते हैं और पाठक को बाह्य स्थितियों में तनिक भटका कर कथा के कुछ अंशों में, कार्य-व्यापार में उसके मन को कुछ देर रमाते हैं। पात्र के रूपाकार,

वेष-भूषा , मुद्रा, गतिविधि आदि को बिम्ब-विधान अथवा विवरण द्वारा इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि वह पाठक के मनोरागों को प्रभावित करते हैं और कथानक की गति को तनिक विश्रान्ति देते हैं। डा० रमेश कुंतल मेघ के शब्दों में कहा जा सकता है कि 'वर्णन इतिवृत्त में कल्पना के शुद्ध एन्द्रिक आनंद के हेतु हैं।[११] वर्णन चरित्र और घटना को परिस्थिति के विस्तार में स्थिर रकरते हैं , पात्रों के कार्यों को सन्दर्भ प्रदान करते हैं। सुसान्ने के० लैंजर भी 'फीलिंग और फार्म में इसी ओर इंगित करती हुई लिखती हैं कि वर्णन वह पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है जिसमें घटनाओं और मानवीय सत्ताओं के होने की प्रतीति उत्पन्न होती है। इतिहास की एक गति को वह रोक लेता है जबकि दूसरी क्रियाशील रहती है।[१२] नि:सन्देह परिस्थिति का एक भाग, जैसा कि डॉ० रघुवंश ने इंगित किया है, मानव-चरित्र में व्याप्त होता है, पर उसका दूसरा भाग देश और काल अर्थात् परिवेशगत् विस्तारों में फैला रहता है।[१३] इन विस्तारों को चित्रित करने में कवि वर्णन का सहारा लेता है। 'बाणासुर कथा' में सबसे पहले परिपाटी के अनुसार संक्षेप में नगर वर्णन हुआ है — शोणितपुर एक ऐसा सुन्दर नगर जैसे सरोवर के बीच खिला कमल ! इतना मोहक कि स्वयं इन्द्र के मन में उसको प्राप्त करने का लोभ हुआ था। वहाँ के निवासी पुण्यवान और यशस्वी (बा० क०।६)। इसके बाद नायिका उषा की देह-छबि का वर्णन, युद्ध की सूचना देने वाले प्राकृतिक अपशकुनों के वर्णन, हर-गौरी और अप्सराओं-गन्धर्वों के उन्मुक्त रति-विलास का वर्णन, उषा के स्वप्न और कौमार्य भंग तथा उससे उत्पन्न मनस्थिति का वर्णन, अनिरुद्ध और असुर-सेना के युद्ध का वर्णन, अनिरुद्ध-बाणासुर युद्ध का वर्णन, अनिरुद्ध की स्त्रियों की विरह-दशा का वर्णन, युद्धोद्यत असुर-सेना का वर्णन, कृष्ण ज्वर, कृष्ण-अग्नि, कृष्ण-शिव, कृष्ण-कार्तिकेय, कृष्ण-बाणासुर, कृष्ण-वरुण युद्धों के वर्णन, द्वारकावासियों और देवताओं द्वारा कृष्ण के लौटने पर स्वागत् का वर्णन आदि हैं जिनमें घटना से सीधी टक्कर से बचाकर कवि पाठक को दृश्यों की चित्रशाला में ले जाता है। सबसे अधिक संवेदक वर्णन हैं उषा के दैहिक रूपाकर्षण के वर्णन जिनमें कवि ने कालिदासीय सौन्दर्य-बोध का परिचय

दिया है । इन वर्णनों की शब्दावली संस्कृत काव्यों के नारी-देह सम्बन्धी उत्कट शृंगारिक वर्णनों से काफी साम्य रखती है । इन्हें शुद्ध-रूप से पारम्परिक नख-शिख वर्णन न कहकर नारी-रूप का प्रभाववादी बिम्बांकन कहना अधिक उचित है । शशिवदना, मधुकरवयना जैसे उपमान बहुत कुछ पारम्परिक भी हैं पर नव-यौवना उषा के देह-संभार का ऐन्द्रिक आकर्षण कुल मिलाकर काफी ललित शब्दावली में वर्णित है । उषा के अतिरिक्त अप्सराओं की मादक रूपचर्चा से भी 'बाणासुर कथा' की पंक्तियाँ सरस हैं । हर और पार्वती की अप्सराओं - गन्धर्वों सहित शोणितपुर के 'वर-उपवन' में 'नर-नाद केलि' के वर्णन में प्राकृतिक सौन्दर्य तथा संगीत की दृश्य-नादमय पृष्ठिका प्रस्तुत की गयी है । इन वर्णनों में उपमेय और उपमान के दो समान्तर सौन्दर्य-लोकों की सृष्टि की गयी है जिनमें पाठक का मन एक साथ विहार करता है । रणोत्सुक असुर सेना का वर्णन भी काफी प्रभावित करता है । असुरों के भाव-रूप-रंग, वस्त्र-मुद्रा-चेष्टा-गति के दृश्य बिम्ब इसमें एक के बाद एक उभर उठते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि रण के लिए प्रयाण कर रही असुर सेना 'बाणासुर कथा' की पंक्तियों से सीधे पाठक के मस्तिष्क में प्रवेश करती जा रही है । अनिरुद्ध के प्रत्याक्रमण से घबराकर रक्त वमन करते हुए भाग रहे असुर सैनिकों का वर्णन भय और वीभत्स की सीमाओं का स्पर्श करता है । कृष्ण का अलौकिक रूप धारण कर जम्हाइयां लेते हुए विचित्र त्रिशिर-त्रिपद ज्वर से युद्ध करना अद्भुत की सृष्टि करता है । बाणासुर की 'माया' का वर्णन जादू-वृच का समावेश करता है जिसमें स्पष्टतया अद्भुत के तत्व हैं । अपनी पराजय में बाणासुर बहुत करुण हो गया है । उसका कटी हुई हज़ार भुजाओं से रक्त टपकाते हुए नृत्य करने का वर्णन उसके खलनायकत्व के बावजूद पाठक के मनोरागों का स्पर्श करता है ।

ऋतु-वर्णन का 'बाणासुर कथा' में सर्वथा अभाव है, उपमाओं में भले ही प्रिय के रूप के लिए बसन्त का प्रयोग किया गया हो और बढ़ी आ रही कृष्ण-वर्णी असुर सेना को शरद काल में बह रही नदी अथवा कृष्ण के पराक्रम से नष्ट हो रही असुर सेना को शरद की आग में जल रही घास कहा गया हो । यौन-भोग

और शृंगार के वर्णनों में शिव और पार्वती की काम-केलि को अन्त में अलौकिक रंग देने की चेष्टा की गयी है अंत में यह जोड़कर कि इसके सुनने से पाप मिटते हैं।

कथानक रूढ़ियां

निजंधरी कथाओं में प्रयुक्त कथानक-रूढ़ियों का भी प्रयोग हुआ है। ये रूढ़ियां ज्यों की त्यों आधार ग्रन्थ हरिवंश पुराण से ली गयी हैं। इनमें चित्रलेखा द्वारा पार्वती का रूप धारण करना, पार्वती का उषा को स्वप्न में अपने पति के दर्शन का वचन देना, उषा द्वारा स्वप्न में अनिरुद्ध को देखना और उस पर आसक्त हो जाना, इसी भांति अनिरुद्ध का स्वप्न में उषा को देख काम-विकल हो जाना, बाण द्वारा प्राकृतिक अपशकुनों का दर्शन करना, असुर द्वारा माया का प्रयोग करना आदि सम्मिलित हैं। स्वप्नदर्शन द्वारा नायक-नायिका को मिलन से पूर्व एक दूसरे की प्राप्ति-विकलता, जिसे भारतीय काव्य-शास्त्रीय शब्दावली में 'पूर्वराग' कहा जाता है, मध्यकालीन भारतीय कथाकाव्यों की एक प्रिय कथानक रूढ़ि रही है। 'बाणासुर कथा' में इस कथानक रूढ़ि को विशेष वर्णनात्मक विस्तार प्रदान किया गया है और नायक-नायिका की मनोदशा को गीतों में गूंथ लिया गया है।

कथाभूमि का विस्तार

कृति की कथाभूमि द्वारका से लेकर शोणितपुर तक फैली हुई है और साथ में नाकलोक (स्वर्ग), पाताल, और वरुण लोक के मिथकीय परिवेश को भी समेटती है। इस प्रकार धरती पर हुई घटनाओं को पौराणिक तीन लोकों से सम्बद्ध कर एकदम एक मिथकीय भूगोल की सृष्टि की गयी है जिसमें वास्तव और अतिकाल्पनिक की सीमा-रेखायें मिलती हैं। कथा प्रवाह इन सबका स्पर्श करता हुआ आगे बढ़ता है। पाताल में घटी घटना पूर्व युग की है — बाणासुर के पिता बलि को कृष्ण (विष्णु) ने पाताल में बंदी बना कर रखा है। इस बात की सूचना शिव के पास से वरदान प्राप्त करके आये हुए बाणासुर के प्रति उसी के मंत्री

कुम्भाण्ड के व्यंग से मिलती है । बाण ने अपने प्रबल आतंक से सभी देवताओं को 'नाक-पृष्ठ' में रहने को विवश कर दिया है— यह बात वह स्वयं युद्ध का वरदान माँगते समय शिव से कहता है (बा० क०।१८) ।पर मूलत: कथा के घटित को दो केन्द्राथसारो वृत्तों में बाँटा जा सकता है । एक वृत्त का केन्द्र है शोणितपुर और दूसरे की द्वारका । दोनों नगरियाँ सुदृढ़ दुर्गों-सी अभेद्य हैं । शोणितपुर में बाण की इच्छा के विरुद्ध देव, गन्धर्व, यक्ष किसी का प्रवेश संभव नहीं है तो द्वारका में किसी भी अपर के लिए प्रवेश पाना दुष्कर है । शोणितपुर की बाहरी सीमाओं की रक्षा आहवनीय अग्नि और ज्वर आदि करते हैं। यह संभवत: इस ऐतिहासिक सत्यांश का अवशेष हो कि नगर के इर्द-गिर्द सुरक्षा के लिए आग जलायी जाती हो जैसी कि प्राचीन असीरियाई साम्राज्य में हुआ करता था । ~~इसमें~~ ज्वर और कृष्ण का युद्ध सुदूर अतीत में घटित किसी भयंकर महामारी की स्मृति का लोक-मानस में तैर रहा अंश हो । असुर नसीरपाल के समय में निनेवेह में एक भयंकर प्लेग का उल्लेख वहाँ से प्राप्त ऐतिहासिक अभिलेखों में मिलता है । जो हो, 'बाणासुर कथा' का उससे प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं । उसकी कथा का अधिकांश शोणितपुर में ही घटित होता है और सारे घटनाचक्र के केन्द्र में बाणासुर और उसकी सुन्दरी कन्या उषा है । प्रेम और युद्ध के शौर्य युगीय मुख्य नाटक के लिए वही रंगस्थल है । द्वारका से सम्बन्धित कथा-चक्र के केन्द्र में हैं अनिरुद्ध और कृष्ण । शोणितपुर-द्वारका, पुन: शोणितपुर और पुन: द्वारका: कथा-इकाइयाँ इस लयात्मक क्रम का अनुकरण करती हैं ।

पात्र-मण्डल और चरित्र-शिल्पन

'बाणासुर कथा' में पात्रों की बहुलता नहीं, अत: इस दृष्टि से कोई उलझाव नहीं । किन्तु दिक् और काल की मिथकीय चेतना ने दैवी, आसुरी और मानवीय पात्रों को एक ही कथा-मंच पर उपस्थित किया है और उन्हें पारस्परिक सम्बन्धों में गूंथ दिया है । मूल कथा सूतों और मागधों की अतिशंसाओं और अतिकल्पनाओं की निर्मिति हैं । 'हरिवंश पुराण' में वस्तुत: कृष्ण की वंशावली

और जीवन-चरित् सम्बन्धी `तथ्यों` का संकलन है[१४] जिसे निजंधरी और मिथकीय आवरण में प्रस्तुत किया गया है, मौखिक परम्परा के कारण जिसका रूप बदलता रहा है। `हरिवंश` के अपने संशोधित संस्करण में परशुराम लक्ष्मण वैद्य ने इन परिवर्तनों की ओर संकेत किया है। विंटरनित्ज़ ने प्राचीन भारतीय दरबारी कवियों की प्रवृत्ति के विषय में साफ लिखा है कि `- - - वे इतिहास की घटनाओं को मिथक के परिधान में ढकने के शौकीन थे।`[१५] परिणाम यह हुआ कि कृष्ण एक अति मानवीय दिव्य पुरुष में परिवर्तित हो गये और उनके जातीय शत्रु भीम कर्मा अतिप्राकृतिक सत्ताओं — असुरों में। यहाँ यह सब कहने का अभिप्राय यह है कि `हरिवंश` में इतिहास से निजन्धर और मिथक की ओर प्रयाण के कारण उससे लिया गया `बाणासुर कथा` का पात्र-मण्डल अतिप्राकृतिक और आधिदैविक अधिक है, प्राकृत बहुत कम। मानवीय भाव सामंजस्य के कारण यह पात्रमण्डल मानवीय और अतिमानवीय का दोहरापन एकसाथ वहन किये हुए है। आदिम मानव समाज ने कार्यों, अनुभवों, वस्तुओं, दृश्यों और इतिहास तक को अपनी प्रतीक-चेतना से युक्त किया और कथाओं में पिरो दिया। कृष्ण वृत्त के बारे में विशेषकर यह कहा जा सकता है कि उसमें प्राचीन इतिहास की स्मृति मिथकीय चरित्रों में संयोजित हुई है। इस प्रकार `बाणासुर कथा` के पात्र एक सुदूर इतिहास युग के आदर्शों, मूल्य-मानों, विश्वास-विचारों को अपने चरित्र में संस्कार रूप में लिये हैं। भारतीय हिन्दू-मध्य युग के समाज के लिए ये सभी पात्र विश्वसनीय और अस्तित्वपूर्ण थे। उन्हें मिथकीय प्रतीकों के रूपों में नहीं वास्तविक सत्ताओं के रूप में लिया जाता था और उनके दैवी और अति प्राकृतिक गुणों में तनिक भी संदेह का प्रश्न ही नहीं था। यह अलौकिक अतिप्राकृतिक चरित्र-वत्ता `बाणासुरकथा` में शिव-पार्वती, कृष्ण, बाणासुर, नारद, चित्ररेखा, कार्तिकेय, ज्वर, अग्नि, वरुण, नन्दिरुद्र, गरुड़ को विशेषकर (घेरे हुए हैं।) उषा, अनिरुद्ध, कुम्भाण्ड अपेक्षाकृत प्राकृत हैं। आधिदैविकता के अतिरिक्त शौर्य वृत्त के रोमांस से भी कुछ पात्रों को मंडित किया गया है — कृष्ण, अनिरुद्ध, बाणासुर, उषा का इस सन्दर्भ में उल्लेख किया जा सकता है।

भारतीय दार्शनिक परम्परा की कर्म, नियति, काल, पुरुषार्थ आदि की धारणाओं ने काव्यगत पात्रों के चरित्र में `घटनात्मक क्रियाशीलता` को सीमित कर दिया है। स्वभाव अथवा प्रकृति के निश्चित और विशिष्ट गुणों के आधार पर नायक का धीर ललित, धीर प्रशान्त, धीरोदात्त और धीरोद्धत वर्गों में विभाजन भी काव्यगत पात्र से स्वतंत्र चारित्रिक विकास का अवसर छीन कर उसके आचरण को पूर्व-निश्चित दिशाओं की ओर मोड़ता है। इसके पीछे जीवन-सम्बन्धी भारतीय आदर्श-भावना कार्य करती है। इससे चरित्रों के रूढ़ हो जाने और अपने स्वभाव-गुणों के `सुनिश्चित व्यवहार-पैटर्न` से निदेशित होने का भय रहता है। डॉ० रघुवंश के शब्दों में कहें तो भारतीय (संस्कृत) परम्परा के काव्यों में `घटना केवल चरित्र की व्याख्या करती है।`[१६] `बाणासुर कथा` भी निश्चय से इसी परम्परा का काव्य है अत: उसके पात्रों का चरित्रांकण भी इन्हीं दिशाओं को ग्रहण करता है, फिर भी `हरिवंश पुराण` में पात्रों के जो चरित्र-बिम्ब हैं अवतार भट्ट ने `बाणासुर कथा` में उनके कुछ सीमा तक भिन्न बिम्ब भी उभारे हैं। सब से महत्वपूर्ण बात इस सन्दर्भ में यह है कि अति प्राकृतिक और अतिमानवीय चरित्रवत्ता को अधिक न खींचकर जहां भी संभव हो अधिक लौकिक और प्राकृतिक बनाने का कवि ने प्रयास किया है। यही कारण है कि `बाणासुर कथा` के असुर पात्र अति किमाकार अथवा जी० एस० किर्क से शब्द उधार लें तो `जड़ीभूत कर देने की सीमा तक भयंकर` नहीं हैं।

कृष्ण : निर्बाध दैवी नायक

नायक पक्ष के दो प्रमुखतम पात्र हैं - कृष्ण और अनिरुद्ध। कृष्ण `चतुर्धीर नेतावर्ग` से ऊपर निर्बाध दैवी नायक हैं। भागवत् में कृष्ण का चरित्र मुक्त-भोग से सम्बन्धित किया गया है। रामवृत्त की यौन-नैतिक लीकों को सर्वथा उपेक्षा और अतिक्रमण कर भागवत के कृष्ण एक मुक्त समाज (पर्मिसिव सोसायटी) के सर्वप्रिय नायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। `लीला` के रूप में इसकी अन्यापदेशिक आध्यात्मिक व्याख्या भी प्रस्तुत की गयी है जिसके अन्तर्गत कृष्ण और गोपबालाओं

का रति-सम्बन्ध ईश्वर और जीवों का चिरन्तन प्रेम-सम्बन्ध हो जाता है, चीर-हरण का कार्य माया का आवरण हटाने, रास-विलास, दिव्य-आनंद तथा मुरली-ध्वनि अनहद नाद के पर्याय हो जाते हैं। 'हरिवंश' में इसके विपरीत कृष्ण का शौर्यपरक रूप ही अधिक उभरा है। 'बाणासुर कथा' में भी वे एक वीर-नेता के रूप में चरित्रांकित हुए हैं। इस रूप में उन्हें शक्तिशाली असुर सम्राट का देव-विरोधी निर्बन्ध आचरण सह्य नहीं है जिसका शिकार स्वयं उन्हें होना पड़ा है। कृष्ण में कुल की चेतना भी अत्यन्त प्रबल है। अनिरुद्ध के अपहरण के बाद उसकी स्त्रियों का विलाप सुनकर यह चेतना एकदम फण फैलाये विषधर-सी दृप्त हो जाती है - विष भुजगेस जन चुख चढु- (मानो विषैला भुजग क्रोध से फुफकार उठा हो)। यहाँ क्षण भर के लिए उनका दिव्य अलौकिक रूप तिरोहित हो जाता है और शूरनायक का रूप उभरता है। पौत्र-हरण के कारण क्षण भर के लिए उनकी बुद्धि भ्रमित हो जाती है - 'भि निभिषस दि भमवान बुद्ध'। उन्हें दु:ख इस बात का है कि सब यादव वीरों के होते हुए कोई उनके पौत्र को अपहृत करे इससे पृथ्वी भर में उन्हें क्लीव मान लिया जायेगा (बा० क० ।१९८)। उनके पौरुष को यह एक बड़ी चुनौती है। यादवों के वे तर्कातीत नेता हैं इसलिए यह चुनौती उनके लिए और भी प्रबल रूप धारण करती है। अनिरुद्ध की पत्नियां साफ कहती हैं कि जिसके भय से मृत्यु-देवता भी कांपता है, इन्द्रादि देव जिसका आश्रय मांगते हैं उसी के पौत्र को कोई अपहृत करे - यह कितनी विचित्र बात है (बा० क० ।१८९)। सात्यकि, अक्रूर, अनाधृष्टि आदि यादव वीरों की सभा में वे मौन, गंभीर और क्रुद्ध यह अनुमान लगा लेते हैं कि यह कार्य केवल किसी 'पुंश्चली' का हो सकता है और जब नारद अनिरुद्ध हरण के विषय में वास्तविक तथ्य प्रकट करते हुए यह सूचित करते हैं कि वे बाणासुर के नागपाश में बंधे पड़े हैं तो कृष्ण का पौरुष तुरन्त प्रचण्ड और उग्र हो उनसे सेना-सहित बाणासुर का वध करने का संकल्प कराता है। गरुड़ पर आरूढ़ वे तुरन्त शोणितपुर पर आक्रमण करने चल पड़ते हैं। यहां कवि ने उनका विराट (एन्थ्रोपोमॉर्फिक) अलौकिक रूप प्रस्तुत किया है -

अत्रान्तरे सह कृषेवर किष्णा भट्टे
सोमार्क शक्क सदिशो बिरचोन रूप
क्यो शीर्ष सास्स भुज अष्ट महादरट्टे
सत्थो सुपन्नस नमेत धनेके रूप ।

(२४१)

शूर नायक कृष्ण हज़ार-सिरों आठ भुजाओं वाले विराटाकार पुरुष हो जाते हैं । उनके हाथ में शंख-चक्र-धनुष आदि दिव्य आयुध आ जाते हैं (बा० क० ।२४३-४४) । इस रूप में कृष्ण को प्रस्तुत करके उनके अवतारवादी प्रयोजन को संलग्न करने का प्रयत्न हरिवंश-पुराणकार ने (अवतार भट्ट ने आधार ग्रन्थ से इसे लिया है) किया है । इसके अतिरिक्त कृष्ण के पौरुष की प्रचण्डता और तेज की अलौकिकता को भी प्रक्षेपित किया गया है । यहाँ कृष्ण के साथ मुरली का अवदान नहीं शंख और भेरी जुड़े हैं । अकेले ही वे ससैन्य आहवनीय अग्नियों, ज्वर, शिव, कार्तिकेय, बाणासुर सब को परास्त कर देते हैं । यह अद्भुत पराक्रम निश्चय से उनके निजन्धरी मिथकीय बिम्ब के अनुरूप है । बाणासुर के साथ युद्ध में उनका प्राकृत शूर-रूप फिर उभारा गया है । किंकिणियों और सैकड़ों लाल पताकाओं से सज्जित रथ पर बाणासुर का कृष्ण से युद्ध बहुत कुछ रावण और राम के संग्राम का आर्केटाइपल बिम्ब उजागर करता है । शौर्य के उनके अपने मान और मूल्य हैं । संग्राम में बाणासुर की आत्मश्लाघापूर्ण ललकार इसीलिए असह्य हो उठती है - बाणा संग्रामि थिक्कन ना तेम शूर (बाण, संग्राम में बढ़ हाँकने वाले शूर नहीं कहलाते) । कृष्ण दुर्मद बाण की दुर्दम शक्ति का दमन करते हैं, किन्तु अपनी शौर्य-संहिता के अनुकूल शिव के अनुरोध पर वे उसकी हज़ार में से दो भुजाओं को रहने देते हैं और उसका बध नहीं करते (बा० क० ३५५-५६)। इसी प्रकार वे पराजित किन्तु शरणागत अग्नियों, ज्वर, वरुण आदि को भी क्षमा कर देते हैं । वेलावन में चर रही बाणासुर की गायों को देख ललचाना उनके गोप-संस्कारों के अनुकूल है, किन्तु विजित की सम्पत्ति पर अपना अधिकार समझना उन्हें अपने उच्च चारित्रिक धरातल से तनिक गिरा देता है । द्वारका लौटने पर

जन-समुदाय द्वारा श्रद्धा और अपनत्व भरा स्वागत उनके जन-नेता बिम्ब को पुष्ट करता है । कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'बाणासुर-कथा' में कृष्ण के असुर-संहारक, लोक-रक्षक रूप की प्रतिष्ठा की गयी है । देवी नायक होते हुए भी उनमें शूर और निजंधरी नायक की छाया है ।

अनिरुद्ध : शौर्य वृत्ति का वीर पुरुष

कृष्ण पक्ष के दूसरे प्रमुख नायक हैं अनिरुद्ध— शौर्य - रोमांस वृत्त के नायकों की भांति प्रेम और युद्ध दोनों से जुड़े । प्रारम्भ में वे स्वप्न में देखी और भोगी गयी उषा के रूप-बाण से विद्ध काम-विकल पुरुष के रूप में उभरे हैं (बा० क० ।६३-११०) । कृष्ण वृत्त से सम्बद्ध भोग-पक्ष के यहाँ वे प्रतीक पुरुष बन जाते हैं । उषा के प्रति उनका आकर्षण, उसकी प्राप्ति की उनकी आकांक्षा भाव के स्तर का स्पर्श नहीं करती । वह अनिरुद्ध के ही शब्दों में उनके मन की लम्पटता है । सुन्दरी नारी की काम्य देह की भोगेच्छा ही उन्हें चित्रलेखा द्वारा स्वेच्छया अपहृत होने को प्रेरित करती है । कवि के शब्दों का प्रयोग तो 'सुखमय मम्मत भोग' की प्रेरणा उन्हें एक नये दुस्साहस का रोमांच प्रदान करती है । उषा की स्वप्न में देखी 'भुजंग-सी लिपटने वाली' देह-वल्ली की मदिर स्मृति ही उन्हें उषा के महल में खींच लाती है । वहाँ उषा को कण्ठ से लगाये उसके हाथों से मणिमय मद्य-पात्र में ढाली मदिरा पीकर रतिसंग और अनंग-सुख की अपनी उत्कट इच्छा को पूरा करते हैं । पर यहाँ रति लोलुपता के साथ ही उनके चरित्र का शौर्य-पक्ष सहसा उभारा गया है । बाणासुर के हर्म्य रक्षक उन्हें इस मुद्रा में देख लेते हैं और शीघ्र ही उसके रक्त के प्यासे असुरों की विकट सेना महल को घेर लेती है । उनके भीतर का वीर 'मत्तवासण'-सा जाग कर सीधे चुनौती की दिशा में दौड़ता है । कामिनी के काम्य कर्मों का बन्धन यहाँ उन्हें रोक नहीं पाता । उषा के उन्हें युद्ध में न जाने देने के सभी प्रयत्न, अनुरोध-अनुनय व्यर्थ जाते हैं —

धिक् धिक् म्यानेस यादव जम्मस

वनीत, अड़ी मज्जा कचान
युद्ध करा नमेंत स्वकम्मस ।
उषे अथक्कोल हह थान । (बा० क० ।११०)

लगभग निहत्था ही, हार्थों में द्वार की अर्गला लिये क्रुद्ध अनिरुद्ध का असुर वाहिनी पर टूट पड़ना शूर-वीर-नायकत्व के आदर्शों के अनुरूप हैं । अवतार भट्ट यहाँ अनिरुद्ध के चरित्र को मूल हरिवंश के अनिरुद्ध से कुछ भिन्न रेखाओं से अंकित करते हैं । आकुलता से युद्ध निहार रही रूपसी के प्रेम की प्रेरणा उसके अतुल पराक्रम का रहस्य है । प्रथम बार जब असुर-वाहिनी की सम्पूर्ण शक्ति को कुचल कर विजयी अनिरुद्ध अपनी सुन्दरी के पास आते हैं तो उपहार में मिलता है भुज-लताओं का मधुर कसाव जो उन्हें फिर से संगठित हो लड़ने आयी असुर सेना को पुन: खदेड़ देने की शक्ति प्रदान करता है (बा० क० ।१२६) । यह बात हरिवंश में नहीं आ पायी है । अनिरुद्ध असुर बाण की भीमा शक्ति का सामना भी इसी प्रेरणा के बल पर करते हैं । युद्ध में उनका सबसे बड़ा गुण है आत्मविश्वास जो चतुर्दिक हो रही बाण-वृष्टि के बीच भी उन्हें विचलित होने नहीं देता । वे घोड़ों के नीचे छिपकर वार बचाते हुए बाणासुर के रथ को तोड़ देते हैं और उसे बुरी तरह से घायल कर देते हैं (बा० क० ।१५६) । पर बाण की माया-शक्ति के सामने उनका मानवीय शौर्य पंगु हो जाता है । उसके द्वारा नागपाश में बद्ध होने की शारीरिक पीड़ा से कहीं अधिक उनकी पराजय की पीड़ा है । यह बात `बाणासुर कथा` में कही नहीं गयी, ध्वनित की गयी है । नागपाश में बंधे अनिरुद्ध का आर्त्त-भक्त रूप भी हरिवंश में उनके रूप से काफी भिन्न है । विवश असहाय वे दुर्गा से माया के निराकरण के लिए सहायता की प्रार्थना करते हैं (बा० क० ।२३४-३५)। अंत में कृष्ण जब बाणासुर को परास्त कर उन्हें सर्पपाश से मुक्त करते हैं तो उनकी कृतज्ञता एक लघु वन्दना के रूप में फूटती है । शूर नायकों की भाँति अनिरुद्ध को भय नहीं व्यापता । वे भोग और युद्ध दोनों में मन की सम्पूर्ण शक्ति लगा देते हैं । भोग, साहस, वीरता, धैर्य, विनय — इन कुछ आदर्श गुणों से उनका व्यक्तित्व-चित्र `बाणासुर कथा` में अंकित है । यह बिम्ब बहुत कुछ पारम्परिक है, पर इससे

ने रंगों का प्रभाव फीका नहीं पड़ जाता जो कवि अवतार भट्ट ने भरे हैं ।

बाणासुर : अकेला और सबल प्रतिनायक

खलनायक पक्ष में सबसे सशक्त चरित्र स्वयं असुर बाण का है । वह अनेक रूपों में पाठक के सामने आता है यद्यपि उसका मुख्य रूप एक दुर्दमनीय, मदान्ध, युयुत्सु, देव-विरोधी एक वीर का है । इस 'पर्वताकार योद्धा' में कुछ ऐसा है कि उसका खल-नायकत्व खलता नहीं । देवता उससे आतंकित हैं, सब का मनोबल और बाहुबल उसने कुछ इस तरह तोड़ कर रखा है कि किसी में उसे ललकारने का साहस नहीं है । उसकी सहस्र भुजायें उसके प्रबल आतंक की मूर्त प्रतीक हैं । कृष्ण अति-मानवीय दिव्य-शक्तियों के प्रतीक हैं तो वह आतंककारी अतिप्राकृतिक शक्तियों का प्रतिनिधि । उसे कृष्ण के विलोम (फॉइल) के रूप में कथा-मंच पर लाया गया है । 'असुर' नाम से सम्बद्ध क्रूरता, निरंकुशता और स्वैराचार के गुणों के भारी परिमाण से उसके व्यक्ति का निर्माण किया गया है ताकि कृष्ण के सशक्त प्रतिद्वन्द्वी के रूप में उसका बिम्ब विशेष प्रभावी बन सके । 'राक्षस' के 'धार्मिक बिम्ब' के विषय में डॉ० रमेश कुंतल मेघ का यह विचार युक्त है कि धार्मिक काव्यों में "देवता या ईश्वर के लिए, उसके चरित्र-शिल्प और आदर्श स्थापना के लिए राक्षस या दुष्ट अनिवार्य भी हैं । एक ईश्वर बिना राक्षस की विरोधी मौजूदगी के अस्तित्वमान ही नहीं हो सकता । उसमें अतिमानवता, देवत्व तथा अति प्राकृतिकता का समावेश नामुमकिन हो जायेगा ।"[१७] इस दृष्टि से कृष्ण के असुर-संहारक बिम्ब को पुष्ट करने के लिए, और असत् पर सत् की विजय के भारतीय आदर्श को अन्यापदेशिक ढाँचा प्रदान करने के लिए बाणासुर को एक प्रचण्ड भीमकर्मा असुर के रूप में प्रस्तुत किया गया है । पर "बाणासुर-कथा" में उसके अस्तित्व का केवल इतना ही औचित्य नहीं, न उसके व्यक्तित्व का केवल यह आधार है । प्रारम्भ से अंत तक वह अकेले और सबल प्रतिनायक के रूप में अपनी छाप छोड़ता है ।

युद्ध उसकी सबसे बड़ी वासना है, उन्माद है । उसकी घोर युयुत्सा में ही सारी कथा के विकास के बीज निहित हैं । सभी देवताओं, दैत्यों, गन्धर्वों, यक्षों को हटाकर उसका युयुत्सु मन निराश हो जाता है । बिना युद्ध के उसे अपने जीवन की कोई सार्थकता नज़र नहीं आती, कोई प्रयोजन दिखायी नहीं देता । बिना युद्ध के उसकी हज़ार भुजायें बेकार हैं — बाहु सहस विथा गो सामू (स्वामी, मेरी हज़ार भुजायें वृथा हो गयीं ।) शिव से कोई युद्ध माँगते हुए वह कह उठता है ! बिना किसी वीरेन्द्र से युद्ध किये वह घर में छिपे-छिपे करेगा तो क्या ! युद्ध (बा० क० ।१८।२१) । युद्ध ! युद्ध ! उसकी यह टेक अंत में पूरी हो जाती है --शिव उसे वरदान देते हैं कि उसे शीघ्र ही उसके भुजबल, कुल और मनोकामना के अनुरूप एक युद्ध मिलेगा (बा० क० । १८) । आनंद के आँसू बहाता हुआ वह मंत्री कुम्भाण्ड को यह `सुसमाचार` सुनाने दौड़ा आता है, पर कुम्भाण्ड इसे उसका अविचार और अविवेक मानता है । सामाजिक दृष्टि से उसे एक विचारहीन निरंकुश शासक कहा जा सकता है । युद्ध के परिणामों की उसे चिन्ता नहीं, युद्ध के लिए खुजाता-सा उसका मन शांत हो जाये, उसे बस यही चाहिए !

बाणासुर के चरित्र के कई कृणात्मक पक्ष भी हैं । वह प्राकृतिक अपशकुनों में विश्वास नहीं रखता , न उनसे भयभीत होता है । अपने मंत्री कुम्भाण्ड पर, अपनी अदूरदर्शिता के बावजूद, उसका गहरा विश्वास है । उसके व्यंगों की परवाह किये बिना ही वह उससे हर बार परामर्श लेता है । उसकी सलाह मानकर वह युद्ध में अनिरुद्ध को नागपाश में बाँधकर भी मारता नहीं । वह कवि के ही शब्दों में रण-कुशल और धीर है । शिव और कार्तिकेय को कृष्ण के हाथों हारते देखकर भी वह विचलित नहीं होता और कृष्ण को ललकारता हुआ युद्धभूमि में उपस्थित हो जाता है । शौर्य वृत्त के प्रतिनिधि खलनायक की भाँति वह अपने अनुचरों से कठोर आज्ञापालन और युद्ध में वीरता का आचरण चाहता है । उसके लिए अनिरुद्ध से हार कर आ रहे असुरों का अस्त्र-समर्पण असह्य हो उठता है - इसे वह कभी क्षमा नहीं कर सकता ! वह निर्मम व्यंग से अपनी भाग कर आयी सेना को बींध डालता है ।

कुल की चेतना उसमें अत्यंत प्रचण्ड है। अनिरुद्ध ने उसकी कन्या का विवाह के बिना कौमार्य भंग करके उसके कुल को दूषित किया है (बा० क० । ११६) यह भावना उसे प्रतिशोध के लिए पागल बना देती है। उसका यह रूप इस प्रकार की परिस्थिति से क्षुब्ध एक सामान्य पिता का रूप है जिसके लिए कुल की मर्यादा का उल्लंघन अक्षम्य अपराध है। इस दृष्टि से अनिरुद्ध के प्रति उसके क्रूर आचरण को हम अविवेक की संज्ञा दे सकते हैं, पर उसके भीतर जो अपमानित पिता तिलमिलाता है, उसे हम आँख से ओझल नहीं कर सकते। इस दृष्टि से अन्याय नहीं अन्याय-पीड़ित पक्ष उसका है। ~~उसका यह मनोविज्ञान~~, उसके चरित्र को मात्र 'दुष्ट' की संज्ञा के अनुसार वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। उसकी कन्या का शीलहरण हुआ है और अपराधी ठीक उसकी नाक के नीचे है, उसके आचरण का औचित्य ठहराने के लिए परम्पराबद्ध समाज में इतना काफी है। फिर भी वह अनिरुद्ध के साहस, वीरता, रूप की प्रशंसा करना नहीं भूलता, क्योंकि वह शौर्य युग की नैतिकता में रंगा एक वीर है - वुह-वुह वीर त रूप सुन्दर (बा० क० ११६) (वाह, क्या वीरता है, क्या रूप-सौंदर्य!) जहाँ तक उसके देव-उत्पीड़क बिम्ब का सम्बन्ध है, 'बाणासुर कथा' में उस पर अधिक बल नहीं दिया गया। यह तथ्य पाठक की आँखों के सामने ही रहता है कि देवताओं के षड्यन्त्र के कारण उसके पिता बलि दानव को विष्णु ने पाताल में बन्दी बना कर रखा है कि उसकी फुल्ल कमल-सी नगरी शोणितपुर पर इन्द्र की लोभी आँख गड़ी है। कोई आश्चर्य नहीं कि वह देवों को अपने बाहुबल से आतंकित करे।

उसका एक रूप, शिव के अनन्य भक्त का भी है। अपनी हजार भुजायें काट कर वह अग्नि में स्वाहा कर डालता है। इसलिए कि शिव प्रसन्न हों और नित्य उसके पास रहें, कि उसे कार्तिकेय का-सा आकर्षक शरीर प्रदान करें। उसके चरित्र में कई तत्व अंतर्विरोध के भी हैं। शूर होकर भी वह रण-श्लाघी है, शिव का भक्त है, किन्तु दुर्मद और अविचारी! अपशकुनों में विश्वास नहीं करता, किन्तु माया का प्रयोग करता है। उसके पतन में ग्रीक त्रासदी के नायक के-से आयाम

कुल की चेतना उसमें अत्यंत प्रचण्ड है । अनिरुद्ध ने उसकी कन्या का विवाह के बिना कौमार्य भंग करके उसके कुल को दूषित किया है (बा० क० । ११९) यह भावना उसे प्रतिशोध के लिए पागल बना देती है । उसका यह रूप इस प्रकार की परिस्थिति से क्षुब्ध एक सामान्य पिता का रूप है जिसके लिए कुल की मर्यादा का उल्लंघन अक्षम्य अपराध है । इस दृष्टि से अनिरुद्ध के प्रति उसके क्रूर आचरण को हम अविवेक की संज्ञा दे सकते हैं, पर उसके भीतर जो अपमानित पिता तिलमिलाता है, उसे हम आँख से ओझल नहीं कर सकते । इस दृष्टि से अन्याय नहीं अन्याय-पीड़ित पक्ष उसका है । ~~उसका यह मनोविज्ञान~~, उसके चरित्र को मात्र 'दुष्ट' की संज्ञा के अनुसार वर्गीकृत नहीं किया जा सकता । उसकी कन्या का शीलहरण हुआ है और अपराधी ठीक उसकी नाक के नीचे है, उसके आचरण का औचित्य ठहराने के लिए परम्पराबद्ध समाज में इतना काफी है । फिर भी वह अनिरुद्ध के साहस, वीरता, रूप की प्रशंसा करना नहीं भूलता, क्योंकि वह शौर्य युग की नैतिकता में रंगा एक वीर है - अुह-अुह वीर त रूप सुन्दर (बा० क० ११६) (वाह, क्या वीरता है, क्या रूप-सौंदर्य !) जहाँ तक उसके देव-उत्पीड़क बिम्ब का सम्बन्ध है, 'बाणासुर कथा' में उस पर अधिक बल नहीं दिया गया ! यह तथ्य पाठक की आँखों के सामने ही रहता है कि देवताओं के षड्यन्त्र के कारण उसके पिता बलि दानव को विष्णु ने पाताल में बन्दी बना कर रखा है कि उसकी फूल कमल-सी नगरी शोणितपुर पर इन्द्र की लोभी आँख गड़ी है । कोई आश्चर्य नहीं कि वह देवों को अपने बाहुबल से आतंकित करे ।

उसका एक रूप, शिव के अनन्य भक्त का भी है । अपनी हजार भुजायें काट कर वह अग्नि में स्वाहा कर डालता है। इसलिए कि शिव प्रसन्न हों और नित्य उसके पास रहें, कि उसे कार्तिकेय का-सा आकर्षित शरीर प्रदान करें । उसके चरित्र में कई तत्व अंतर्विरोध के भी हैं । शूर होकर भी वह रण-श्लाघी है, शिव का भक्त है, किन्तु दुर्मद और अविचारी ! अपशकुनों में विश्वास नहीं करता, किन्तु माया का प्रयोग करता है । उसके पतन में ग्रीक त्रासदी के नायक के-से आयाम

उभरते हैं । कृष्ण के चक्र से कटी हुई अपनी हज़ार बाँहों से रक्त टपकाते हुए शिव को पुन: प्रसन्न करने के लिए उसका नृत्य करना एक-साथ करुण और वीभत्स है । उसका सारा शौर्य, उसका सारा दर्प, उसका युद्धोन्माद एक अत्यंत दयनीय परिणति को प्राप्त होते हैं । युद्ध के बाद वाला बाणासुर वह विराट व्यक्तित्व वाला युयुत्सु वीर नहीं रहता , एक दीन भक्त मात्र रह जाता है जिसकी अंतिम इच्छा है शिव के गणों का प्रमुख बनना । कुल मिलाकर उसके चरित्र के बारे में कहा जा सकता है कि एक खलनायक और असुर से सम्बद्ध सभी धारणाओं के बावजूद वह अपने आचरण में काफी हद तक मानवीय है ।

उषा : शृंगार काव्यों की रूप-प्रतिमा

उषा भारतीय शृंगारिक काव्यों की एक प्रतिनिधि नायिका है जिसका रूप-सौन्दर्य उसकी सबसे बड़ी विशेषता है । चरित्र से अधिक उसका नख-शिख महत्वपूर्ण है । चन्द्रवदना, सारंगनेत्र, गज गमना — संस्कृत काव्यों के उपमान कोश से ली गयी ललित शब्दावली कवि उस पर पग-पग पर न्यौछावर करता है । कालिदासीय सौन्दर्य-दृष्टि के अनुकूल उसकी देह-लता से सारी काव्य-कृति गन्ध-मय है । हज़ारों जलयानों को महासागर की लहरों पर डोलायमान करने वाले हेलेन के चेहरे की भाँति उसका यह सौन्दर्य के सभी परम्परित विशेषणों को आकर्षित करने वाला चेहरा कृष्ण और बाणासुर के महासंग्राम का कारण बनता है । काव्य में उसका कामिनी रूप ही प्रमुख है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि कवि ने उसे व्यक्तित्वहीन देहमात्र रचा है । देह-कान्ति को महत्व देते हुए भी कवि यह भूल नहीं गया कि वह भी एक संवेदनशील सचेतन इकाई है । शोणितपुर के `वर-उपवन` में मुक्त केलि-विलास कर रहे शिव-पार्वती और गन्धर्व-अप्सराओं को देखकर इस नववय सुन्दरी के मन में कामना का उदय होता है । पार्वती से स्वप्न में पतिदर्शन का वचन पाकर वह वय:सन्धि की देहरी को पार कर चुकी स्वप्नशीला नवयौवना की भाँति आनंद की बाढ़ में डूब जाती है (बा० क०। ५०-५३) । किन्तु यह स्वप्न उसके लिए एक विकट नैतिक चिन्ता का कारण

बन जाता है। स्वप्न में सहसा उस पुरुष द्वारा बलात् अपना कौमार्य भंग होते देख वह अपराध की भावना से बुरी तरह से ग्रस्त हो जाती है। स्वप्न में हुई घटना उसके लिए एक भयंकर सत्य बन जाती है और विवाह से पूर्व यौनाचरण की समस्या उसे उसके लिए जीवन-मरण की समस्या बन जाती है। यह रेप का मनोविज्ञान है - सहसा अपना कौमार्य खो बैठने वाली लड़की की मानसिक आघात से हुई दशा। आघात की इस दशा में वह स्वप्न और जागृति के अन्तर को भूल जाती है। पर-पुरुष से सम्पर्क के कारण उसका कुल दूषित हो गया है। अब पिता को वह कैसे मुंह दिखाये। शील खोने के बाद वह जीवन को कैसे रखे ? यह नैतिक द्वन्द्व उसे आत्म-हत्या की सीमा तक ले जाता है --वह तो गले में पाश लगा कर मर जायेगी जिससे यह रहस्य किसी को ज्ञात न हो सके (बा० क० । ६५-६०)। रोती हुई उषा को उसकी अंतरंग सखी चित्रलेखा आश्वस्त करती है कि जो कुछ हुआ है स्वप्न में हुआ है, जागृति में नहीं और स्वप्न में व्रतलोप नहीं होता। उसका शील तो अकलंक है। दुश्शीला स्त्री वह है जो मन से,वचन से, कर्म से पर-पुरुष के साथ संसर्ग करे - उसने तो ऐसा कुछ नहीं किया (बा० क० । ७०-७१)। चित्रलेखा उषा को पार्वती के वचन की याद दिलाती है कि वैशाख के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को वह जिस पुरुष को देखेगी, वही उसका पति होगा (बा० क० ७४)। इससे उषा की नैतिक समस्या का समाधान होता है। भावी पति से विवाहपूर्व यौनाचरण को सतीत्व की पवित्रता को रेखांकित करने वाली मध्ययुगीन नैतिक आचरण संहिता की अनुमति है। पार्वती के वचनों की याद आते ही, अपराध भावना से मुक्त हो उषा अपने स्वप्न-पुरुष की कामना से विकल हो जाती है। यहां उषा के शील-निरूपण पर विशेष किसी टिप्पणी की इसलिए आवश्यकता नहीं कि ये सब बातें मामूली से परिवर्तनों के साथ 'बाणासुर कथा' में 'हरिवंश' से ली गयी हैं। केवल उषा के नैतिक द्वन्द्व को कुछ अधिक उभारा गया है। स्वप्न-पुरुष की स्मृति से विकल उषा की मनोदशा का चित्रण भारतीय शृंगारिक काव्यों की परिपाटी के अनुसार ही हुआ है - उसका शरीर क्षीण हो जाता है, अपने 'चौर रमण' की निकटता के बिना वह अपनी मृत्यु

निश्चित समझती है । काम-अधीरा हो वह चित्रलेखा से तुरन्त अपना 'शशि आनन' प्रिय ढूंढ लाने को कहती है और ऐसा न कर सकने पर शाप तक की धमकी दे बैठती है (बा० क० ८५) ।

गच्छ अनुन पिय नत पियिय शाप । (जाओ प्रिय को ले आओ, अन्यथा तुम्हें शाप लगेगा) । चित्रलेखा द्वारा चित्रपट पर अंकित अनिरुद्ध की मुखाकृति उसे और भी विकल कर देती है । वह चित्रलेखा से अनुनय करती है कि जैसे भी हो वह अनिरुद्ध को ढूंढ लाये और उसके (उषा के) प्राणों की रक्षा करे । यह मिलन से पूर्व विरह की अधीरता परम्परित शृंगार-चित्रण का अंश है, किन्तु 'बाणासुर कथा' में यह ऊहा की सीमा तक नहीं गया । विवश हो चित्रलेखा को द्वारका जाना ही पड़ता है । 'बाणासुर कथा' के हस्तलेख के २४ वें से लेकर ३७ वें पृष्ठ के अनुपलब्ध होने के कारण अनिरुद्ध के साथ उषा के मिलन प्रसंग के चित्र भी उपलब्ध नहीं हैं । केवल एक पद्य मिलता है जिसमें उषा मणिमय मद्य-पात्र में मदिरा ढाल कर उसे पिलाती है । यहां तक उषा एक काम-विह्वला, अल्हड़, किन्तु कुल के सम्मान की चेतना से युक्त, भोली-सुकुमारी रूपसी बाला का बिम्ब प्रस्तुत करती है । किन्तु अनिरुद्ध को मारने के हेतु जब बाणसुर की सेना उषा के महल को घेर लेती है तो उसके चरित्र का एक नया उजला पक्ष उद्घाटित होता है — वह एक कामिनी के स्तर से उठकर एक प्रिया बन जाती है । रक्त के प्यासे भयंकर असुरों से युद्ध करने के लिए जाने से वह अनिरुद्ध को रोकने का प्रयास करती है, अपने को कोसती है कि उसने अनिरुद्ध को ढूंढकर वहां लिवाया ही क्यों । इस आशंका से वह भयभीत हो जाती है कि उसके निहत्थे प्रेमी को शस्त्रादि से सज्जित असुर मार डालेंगे (बा० क० ११६-२१)। पर जब अनिरुद्ध युद्ध में जाते ही हैं तो आकुल-व्याकुल हो वह उन्हें युद्ध करते निहारती है और जब अनिरुद्ध युद्ध का पहला दौर जीत लेते हैं तो उषा शौर्यवृत्तों की रूपसी नायिका की भांति उन्हें अपनी भुजलताओं का उपहार देती है, गले के हार से मणिलड़ी तोड़ कर उन पर वारती है (बा० क० १२६) । बाणासुर के नागपाश में बंधे अनिरुद्ध अन्त में उसी के स्नेह की मृदु छाया में आश्रय पाते हैं।

इसके बाद कोई ऐसा प्रसंग नहीं आता जिसमें उषा के चरित्रांकण की गुंजाइश हो । अन्त में रुद्रट के 'कन्या-प्राप्ति' वाले लक्षण के अनुसार वह अनिरुद्ध के साथ द्वारका में प्रणय-क्रीड़ा करती है । उसका स्वप्न सफल हो जाता है ।

कुम्भाण्ड : कुशल मंत्री का रूढ़ चरित्र

कुम्भाण्ड खलनायक पक्ष का एक प्रमुख पात्र होते हुए भी उससे बाहर है । असुर बाण का मंत्री होने पर भी उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है । असुर होने पर भी वह अतिप्राकृत पात्र-मंडल में सम्मिलित नहीं किया जा सकता । कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र के पृष्ठों से अवतरित एक मंत्री वह प्रतीत होता है । तीव्र अनुभवी बुद्धि जो तुरन्त वस्तु स्थिति को भाँप लेती है, स्थिति के अनुसार कार्य की मंत्रणा, दूरदर्शिता और विचारशीलता - ये उसके विशेष चारित्रिक गुण हैं । कहा जा सकता है कि एक कुशल मंत्री का रूढ़ चरित्र उसे प्रदान किया गया है । असुरों की युद्धप्रियता, बर्बरता तथा विचारहीनता की प्रवृत्ति उसमें नहीं है । युद्ध उसके निकट आत्मविनाश का साधन है - यह बात शिव से युद्ध का वरदान प्राप्त करके आये हुए बाणासुर से वह सीधे निर्भयतापूर्वक कह डालता है -

शुनेत वनो कुम्भाण्डे बाणस
अनोत मंगेत कित विनाश ! (३२)

(सुनकर, कुम्भाण्ड ने बाण से कहा, तुमने यह विनाश क्यों मांग लाया) ।

सच्ची, किन्तु तीखी कड़वी बात कहने से वह घबराता नहीं । उसे बाणासुर की विचारहीनता का दु:ख है जो युद्ध के उन्माद में उसके भयंकर परिणामों की चिन्ता नहीं करता, यह नहीं जानता कि उसने सबके लिए मृत्यु को आमंत्रण दिया है - ह भूपाल विचार करिना सदाय (बा० क० ४०) । (यह भूपाल कभी विचार नहीं करता ।) फिर भी वह अपने राजा का अहित नहीं चाहता, न वह कायर है । अनिरुद्ध के प्रहारों से घायल और विचलित बाणासुर को वह

ही यह सुझाव देता है कि अनिरुद्ध को माया द्वारा बाँध लिया जाये अन्यथा वह सारे शोणितपुर को नष्ट कर देगा (बा० क० ।१६६) । उसी के रथ में बैठकर असुर बाण युद्ध के लिए जाता है । वह वीरता की प्रशंसा करना जानता है, चाहे वह शत्रुपक्ष द्वारा ही क्यों न प्रदर्शित हो ! नागपाश में बंधे अनिरुद्ध का वह बाणासुर के कहने पर भी वध उचित नहीं समझता । वीर शत्रु उसके निकट पूजा योग्य है, वध्य नहीं । फिर वय-कुल-शील, प्रयोजन को जाने बिना किसी योद्धा का — जो नयी उम्र का हो, रण में जिसने सुरेन्द्र के समान पराक्रम दिखाया हो, इस प्रकार वध कर डालना उसकी अन्तरात्मा के विरुद्ध है — 'निपा ना पज्जिय मारणो (बा० क० १७०-७१) । (हे नृप, उसे मारना उचित नहीं) ।

कृष्ण के साथ युद्ध करते हुए कार्तिकेय जब परास्त होते हैं तो दूरदर्शी कुम्भाण्ड समझ लेता है कि अन्त समीप है, बाण को सलाह देता है कि वह स्वयं अनिरुद्ध से उषा का विवाह करे । दूरदर्शिता के साथ-साथ इसमें उसका वस्तुस्थिति को स्वीकारने का यथार्थवादी आग्रह है । उन्माद नहीं ठण्डे दिल से विचार — उसका आचरण इस सूत्र से संचालित है । पर बाणासुर का नहीं । वह तो बिना युद्ध के असुर-जन्म को ही निष्फल समझता है और अपने कुल को दूषित करने वाले अनिरुद्ध को किसी भी मूल्य पर क्षमा करके अपनी कन्या सौंपने को तैयार नहीं ।

कुम्भाण्ड की व्यंग-शक्ति भी बहुत तीव्र है । युद्ध का वरदान पाकर बाण सर्वप्रथम उसे ही यह 'प्रियबात' कहने को आतुर होता है, पर वह राजा को व्यंगों से आहत कर देता है (बा० क० । २५-२६) । युद्ध में पराजय को सन्निकट देख अनिरुद्ध से उषा का विवाह करके शान्ति स्थापित करने का अपना सुझाव बाण द्वारा ठुकराया जाता देख वह असुर-राजा को 'कुस्त्री, मत्तहय, डिण्डिम और ढक्के' की सूची में रखता है जो पिटना माँगते हैं । इस प्रकार कुम्भाण्ड परिपक्व और तीक्ष्ण बुद्धि सम्पन्न, अनुभवी, विचारशील, वस्तुस्थिति

को पहचानने वाला, उचित को कहने से कभी न चूकने वाला, निर्भीक मंत्री का किंचित रूढ़ बिम्ब उपस्थित करता है ।

अन्य पात्र

अन्य पात्रों में शिव और पार्वती देवी-पात्र मण्डल के सदस्य हैं । कथा में उनकी भी महत्वपूर्ण भूमिका है । शोणितपुर के `वर-उपवन` में `नर नाट्य-केलि` अर्थात् निर्बन्ध काम-विलास कर रहा यह देव-युगल योग से कुछ अधिक भोग से सम्बन्धित हो गया है । उषा को स्वप्न में पति-दर्शन का वचन देने वाली पार्वती भोग (सेक्स) और फर्टिलिटी की देवी के रूप में कथा-मंच पर आयी हैं । उन्हें `जगजननी` कह कर उनके `मातृदेवी` (मदर गॉडेस) रूप की ओर भी इंगित किया गया है । इसी रूप में दुर्गा भी अनिरुद्ध को अपना स्नेह प्रदान करती हैं । शिव कथानक के आदि और अन्त दोनों से सम्बद्ध हैं । बाणासुर को वरदान देकर वे ही युद्ध का कथा-बीज बोते हैं और इस प्रकार कथानक को गति प्रदान करते हैं । युद्ध में वे बाणासुर के पक्ष में लड़ते हैं और रथ के समेत उसके धराशायी होने पर उसे अपना रथ भेजते हैं । अंत में भुजविहीन, रक्त से लथ-पथ, पराजित बाण को अपने गणों का प्रमुख `महाकाल` बनाकर वे कथा-पट को समेट भी लेते हैं । नारद भारतीय पुराणों के चिरपरिचित समाचार-वाहक हैं । `बाणासुर कथा` में वे कृष्ण को अनिरुद्ध के शोणितपुर में नाग-पाश में बंधे होने का समाचार देते हैं । वरुण, अग्नि और ज्वर भी अतिमानवीय पात्र हैं। त्रिशिर-त्रिपद अर्द्ध-सुप्त-अर्द्ध-जाग्रत, जम्हाइयां लेता हुआ ज्वर वैचित्र्य की सृष्टि करता है । देवताओं- देव-कामिनियों का कार्य समय-समय पर आकाश से फूल बरसाना या फिर कृष्ण का वन्दन-स्तवन करना है । चित्रलेखा एक अंतरंग सखी का प्रारूप है । गुरुड़ और मयूर को टोटेमीय पात्र माना जा सकता है । पशु-कथाओं की भांति उन्हें मानवीय आत्मा और चेतना से युक्त दिखाया गया है । वे टोटेम पशु-पूजा के प्रतीक नहीं हैं, जैसा कि दुर्खीम ने स्पष्ट किया है । वे पशु में अन्तर्हित शक्ति अथवा गुण के प्रतिनिधि हैं जिसके कारण उन्हें जातीय

अथवा कबीलियाई चिह्न के रूप में लिया जाता है।[१८]

चरित्रीकरण में `जादू` का तत्व

कृष्ण और बाणासुर दोनों पक्षों के चरित्रीकरण में जादू का भी विशेष अंश समाविष्ट है। धर्म और जादू, जैसा कि टाइलर आदि प्रमुख नृतत्व वेत्ता मानते हैं दोनों में एक ही प्रकार के प्रतीकात्मक तत्व हैं, दोनों का मूल कर्मकाण्ड (रिचुअल) में है। किन्तु जादू का प्रयोग जहाँ अच्छे या बुरे व्यक्तिगत लक्ष्यों की पूर्ति के उद्देश्य से दैवीशक्ति को वशीभूत करने के लिए किया जाता है वहाँ धर्म में दैवी शक्ति की सहायता प्राप्त करने के लिए प्रार्थना का सहारा लिया जाता है। दोनों में अतिप्राकृतिक के प्रति विश्वास पर बल दिया जाता है पर जादू की भाँति धर्म में कपट और भय का समावेश न होकर पवित्रता और शुद्धता का महत्व है। यों दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध गहरा है। प्राय: जादू में धर्म का अंश भी होता है और धर्म में जादू का पक्ष। इस दृष्टि से `बाणासुर कथा` के पात्र-मण्डल पर विचार करने पर हम पाते हैं कि कुछ पात्रों के व्यक्तित्व में जादू का भी एक पक्ष है। कृष्ण द्वारा सहसा हज़ार सिरों और आठ भुजाओं वाला आतंककारी विराट (एन्थ्रोपो सेण्ट्रिक) रूप धारण करना, शरीर में प्रविष्ट शैव `ज्वर` को बाहर निकालने के लिए वैष्णव ज्वर को पैदा करना जादू तत्व का ही एक रूप है। बाणासुर के माया द्वारा रथ और सारथी सहित अदृश्य होकर अनिरुद्ध को नागपाश में बाँधने में भी जादू का ही आधान है। चित्रलेखा द्वारा पार्वती का रूप ग्रहण करने तथा उसके मनोजवा होने - मन की गति से कहीं भी जा सकने में जादुई तत्व विद्यमान हैं।

निष्कर्ष-बिन्दु

`बाणासुर कथा` में चरित्र-शिल्पन की यही कुछ दिशायें हैं। अलौकिक और अतिप्राकृतिक पात्र भी मानवीय गुणों से संचालित और मानवीय भूगोल के

अन्तर्गत अस्तित्वमान दिखाये गये हैं। वस्तुत: देवता अथवा असुर की कल्पना मानवीय संदर्भों के बाहर हो ही नहीं सकती। मिथक भी अंततोगत्वा मानवीय स्वप्नों की निर्मिति हैं। इसी सन्दर्भ में देवता अथवा असुर या राक्षस की धारणा समझी जा सकती है - वे भी किसी सुदूर इतिहास के वास्तविक व्यक्तित्वों के अतिकल्पना-जनित रूप हैं। यूनानी मिथकशास्त्र पर विचार करते हुए एच०जे० रोज़ लिखते हैं कि उनके देवता और अन्य अतिप्राकृतिक पात्र अतिरिक्त महिमा से मण्डित स्त्री-पुरुष हैं।[१६] भारतीय मिथकों पर यह बात और भी उपयुक्तता से लागू होती है।

छन्द विधान :

काव्य में एक विशिष्ट लयात्मक-पैटर्न की आवृत्ति को छन्द कहा जा सकता है। शिप्ले के अनुसार हर घटमान गतिविधि में एक नियमित लय अपनाने की प्रवृत्ति होती है - प्रयत्न और यति का एक क्रम होता है जिसका उद्देश्य अथवा प्रभाव कार्य को तनिक यांत्रिक बनाना और इस प्रकार श्रम का परिहार करना होता है।[२०] कोलरिज और येट्स के अनुसार छन्द मन को एक 'जाग्रत समाधि' में बांध लेता है।[२१] मिडल्टन मरे के अनुसार छन्द व्यावहारिक संसार से एक मनोस्तात्विक दूरी उत्पन्न करने वाला चौखट है। लयात्मक विविधता का प्राचुर्य ही इस संसार को, जिसमें हम रहते हैं, आकर्षण योग्य बनाता है। छन्द द्वारा हम कविता की मन:स्थिति में (आकर) सम्मोहित हो जाते हैं और कवि के भावों और बिम्बों के प्रति अधिक संवेदनशील हो उठते हैं।[२२] 'बाणासुर कथा' का छन्द-विधान भी इस मूलभूत प्रयोजन की पूर्ति करता है। पाठक पर सम्मोहिनी-सी डालकर उसे यह कवि के रंगमय भावलोक में ले जाता है। कहा जा चुका है कि 'बाणासुर कथा' सर्गों, अध्यायों अथवा उच्छ्वासों आदि में विभक्त नहीं है। प्रसंग के किसी नये मोड़ पर अथवा नये प्रसंग के बिन्दु पर छन्द परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार कृति में जो छन्द-वैविध्य आ गया है उसका आधार कवि की प्रदर्शन-प्रवृत्ति नहीं कथ्य के दबाव से प्रेरित एक आंतरिक आवश्यकता प्रतीत होती है।

भाव अथवा प्रसंग की दिशा में छन्द का स्वरूप-परिवर्तन इतिवृत्त की एकरसता का भी परिहार करता है। इस प्रकार नदी की छोटी-बड़ी तरंगों-सा जो लयात्मक उतार चढ़ाव कृति में आ गया है वह पाठक के मन को अपने साथ अनायास बहा ले जाता है।

अपने भाषा-सर्वेक्षण (जिल्द ८ भाग २) में ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा के उद्गम के सन्दर्भ में उसके छन्दों की चर्चा करते हुए लिखा है – '--- यद्यपि कश्मीर का सम्पूर्ण साहित्यिक इतिहास संस्कृत से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है, आधुनिक कश्मीरी ने संस्कृत छन्दों का सर्वथा बहिष्कार किया है।'[२३] इस छन्द-चर्चा द्वारा ग्रियर्सन ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि कश्मीरी प्रकृति से ईरानी से अधिक मेल खाती है क्योंकि इसके काव्य में जिन छन्दों का प्रयोग किया गया है वे मूलत: ईरानी हैं यहाँ तक कि 'रामावतार चरित् जैसे हिन्दू महाकाव्य में भी सुपरिचित फारसी छन्द बहरे हज़ाज का प्रयोग हुआ है।'[२४] पर 'बाणासुर कथा' ग्रियर्सन को गलत प्रमाणित करती है। इसकी एक बहुत बड़ी विशेषता है इसमें संस्कृत के छन्दों तथा कश्मीरी के कुछ मौलिक छन्दों का प्रयोग। अपने कला-सामर्थ्य का परिचय देते हुए कवि अवतार भट्ट ने निम्नलिखित छन्द इस काव्य में व्यवहृत किये हैं – १. यद्दी, २. वसन्ततिलकम्, ३. दुक्काटिका, ४. मालिनीवृत्तम्, ५. मंदाक्रान्ता वृत्तम्, ६. स्रग्धरावृत्तम् ७. नरकंटका वृत्तम्, ८. मत्तमयूरावृत्तम्, ९. शार्दूल वृत्तम्, १०. चतुष्खण्डिका, ११. पंचपाजावृत्तम्, १२. द्रुतविलम्बितम्, १३. प्रहर्षिणी वृत्तम, १४. तोटकवृत्तम्, १५. कुरी, १६. तनुमध्यावृत्तम्, १७. मन्दाक्रान्तावृत्तम्, १८. पुष्पिताग्रावृत्तम्, १९. चर्यावृत्तम्, २०. दत्तविधान, २१. विषमचर्यावृत्तम्, २२. षट्पदावृत्तम्, २३. वैतालीवृत्तम्, २४. हरिणी वृत्तम्, २५. अचलावृत्तम्, २६. कडोक्झ्या वृत्तम्। इन छन्दों के प्रयोग की कश्मीर में निश्चय से एक परम्परा रही होगी। 'बाणासुर कथा' से पूर्व ऐसी कोई कश्मीरी काव्य-कृति आज उपलब्ध नहीं जिनमें इन छन्दों का प्रयोग हो, किन्तु उसके लगभग ५०-६० वर्ष पश्चात् ज़ैनुलाब्दीन के पौत्र हस्सनशाह के समय में हम 'गणकप्रशस्त' को इन इन्हीं प्रकार के छन्दों का प्रयोग करते हुए

पाते हैं । इससे सिद्ध होता है कि कश्मीरी की प्रकृति ईरानी नहीं संस्कृत से मेल खाती है । `थद्दो` , `फुरो` और शायद दुक्कटिका और कडोम्ब्या वृचम् कश्मीरी के अपने छन्द प्रतीत होते हैं - इनकी खोज कश्मीरी काव्य के इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना मानी जा सकती है क्योंकि अब तक कश्मीरी के मौलिक छन्दों की पहचान नहीं हो पायी थी । इन छन्दों का संस्कृत छन्द-विधान से साम्य भी महत्वपूर्ण है । इससे कश्मीरी भाषा विषयक कई मिथकों का खण्डन हो जाता है ।

`थद्दो` , जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, ऊँची आवाज़ में पढ़े जाने के लिए है । ऐसा प्रतीत होता है कि `थद्दो` कभी नाटकों अथवा गेय-रूपकों में प्रयुक्त होने वाला छन्द रहा होगा । `बाणासुर कथा` का रूपगठन है भी एक गेय-रूपक अथवा गीत नाट्य का-सा। ऐसा लगता है उसमें इस चार पंक्तियों के छन्द का प्रयोग उन स्थलों पर हुआ है जहाँ आख्यानवाचक किसी प्रसंग पर बल देना चाहता हो । `गणकप्रशस्त` द्वारा लिखित `सुखदुख चरित` में भी इसका प्रयोग वर्णना के लिए ही हुआ है, यद्यपि उसमें कोई इतिवृत्त अथवा कथानक नहीं है । `फुरो` का प्रयोग `बाणासुर कथा` में केवल एकबार हुआ है । `सुखदुख चरित` में `द्विकुरो` नामक छन्द भी मिलता है ।

`बाणासुर कथा` में छन्द की संगीतात्मकता अर्थ के साथ-साथ प्रवाहित होती है और कहीं-कहीं अपनी गति की तीव्रता में बोध को भी डुबा देता है । कविता और संगीत के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में एज़रा पाउण्ड का विचार है : `ज़रूरी नहीं कि कविता अपने संगीत पर ही आधारित हो, पर यदि वह संगीत पर आधारित है तो उसका संगीत उस कोटि का होना चाहिए कि विशेषज्ञ को संतुष्ट करे ।` २५ इस निकष पर `बाणासुर कथा` के छन्द सफल उतरते हैं । इन छन्दों की लयात्मक लहर की उठान पकड़ते समय कान को संगीत का विशेष रस अनुभव होता है । उनमें स्वर-व्यंजन, लघु-गुरु, ध्वनि-मूल्यों आदि का विशेष कलात्मक पैटर्न है । इन लयात्मक संरचनाओं की एक बड़ी विशेषता

है कि ये कवि के शब्दों के रूप उनकी नैसर्गिक ध्वनि अथवा अर्थ को नष्ट नहीं करते। संस्कृत छन्दों में ढली `बाणासुर कथा` को कश्मीरी अकथनीय माधुर्य लिए हुए हैं। ये छन्द कश्मीरी की आंतरिक भाषिक-संरचना के बिल्कुल अनुकूल लगते हैं।

हर छन्द का प्रयोग (फुरो को छोड़कर) एकाधिक बार हुआ है, भिन्न-भिन्न भावों को अभिव्यंजना के लिए। उनकी लय में निहित विभिन्न भावों की अनुकूलता को कवि अवतार भट्ट ने सफलता से पहचाना है। शोणित-पुर के सुन्दर उपवन में शिव-पार्वती की केलि-विलास मत्तमयूर छन्द में वर्णित है, और कितना उपयुक्त। उसकी लय भी वर्षाकाल में नाचते मोर की भाँति आकर्षक है — कर तावत हर भयहर सरसे गिरिज सहितै ।। वैशाख के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को चंचल सखियों से घिरी हुई अद्वितीय सुन्दरी बाणकन्या उषा सोयी है। उज्ज्वल चाँदनी-सा रूप है उसका। स्वप्न में उसे भावी पति के दर्शन होने वाले हैं। इस प्रसंग को पंचपाजावृत्त की मधुर लय में प्रस्तुत किया गया है -

बाण दुहित-सा उषि वर-सुन्दर
रूप चद्रु सकलि जगि अन्दर
वैशाखे मासू शयनि निज मंदिर
कौमुद ज़न काशू ! (बा० क०।५६)

तोटक वृत्त में प्रिय की प्रतीक्षा में रत काम-अधीरा उषा के मन की धड़कनें स्पन्दित हुई हैं :

कर आति सो पिय मि निकटो ! (बा० क० ।७७)

छन्द में इस टेक का प्रयोग कर उसे एक सरस गीत का रूप दे दिया गया है। यही बात कृति के संभवत: सबसे मधुर गीत `पिया म गच्छ मारणो` ! के और अन्य गीतों के बारे में कही जा सकती है। संस्कृत छन्द के आधारभूत ढाँचे के साथ टेक और अंतरा के प्रयोग से अत्यंत सुन्दर गीतों की सृष्टि हुई है।

शार्दूल वृत्त में अधिकतर शस्त्रों की झंकार — असि, मुसल, गदा और तोमर की टकराहट की ध्वनि अनुगुंजित है। युद्ध के लिए प्रस्थान करती हुई असुर सेना के इस वर्णन में युद्ध-वाद्यों की-सी लय का अनुकरण कितना प्रभावित करता है —

शुनेत रण असुरगण गय अगण रण ढेंढ़े
- - - - - - - - - - - - - - -
अरमरण सरकरण तेम धरण नर मढ़े
कहेत हिन शरद दिन दहन हिन् अस बला ! (बा० क० २६५)

प्रत्येक पंक्ति में प्रयुक्त दो या तीन अक्षरों के शब्दों का कुछ ऐसा श्रावणिक प्रभाव कानों पर पड़ता है कि लगता है मानों डंके पर चोट हो रही हो। नरकटका वृत्तम् में उषा को काम्य देह-छवि की स्मृति से पीड़ित अनिरुद्ध की कामाकुलता का चित्र असुरों और अनिरुद्ध के बीच संग्राम का वर्णन तथा फणिबद्ध अनिरुद्ध द्वारा आर्त स्वर में की गयो दुर्गा की स्तुति को गूंथा गया है। पर हर बार स्वर और व्यंजनों का ऐसा संयोग हुआ है जो अभिव्यंजित भाव को पकड़ लेता है। लघु और द्रुत गति बैताली छन्द में पराजित बाणासुर की पीड़ा मुखर हो उठी है — मानो अधिक शब्दों की गुंजाइश ही नहीं। सबसे अधिक बार प्रयुक्त छन्द वसन्ततिलका है। इसका मनोभावों अथवा घटना-प्रसंगों के वर्णन के लिए व्यवहार किया गया है। अनिरुद्ध के विरह में उसकी पत्नियों का विलाप इसी छन्द में है। यहां कवि ने इस टेक और अन्तर का विधान करके एक गीत का आधार बनाया है। संस्कृत छन्दों में कश्मीरी गीतों के प्रथम नमूने "बाणासुर कथा" में मिलते हैं। बाद को अरब-ईरानी संस्कृति के अत्यधिक प्रभाव के कारण इन छन्दों का प्रयोग अप्रचलित हो गया होगा।

सन्दर्भ - संकेत

१. हिन्दी साहित्य का आदिकाल , पृष्ठ ६१ ।
२. तुलसी आधुनिक वातायन से , पृष्ठ २०८ ।
३. उपरिवत् ।
४. दि मिथ आफ दि बर्थ आफ दि हीरो (अंग्रेज़ी अनुवाद), पृष्ठ ६ ।
५. एप्रिलगो मेना टू दि स्टडी आफ ग्रीक रिलिजन : जी० एस किर्क द्वारा `मिथ इट्स मीनिंग एण्ड फंक्शन्स इन एन्शियेण्ट एण्ड अदर कल्चर्स` में पृष्ठ २७२ पर उद्धृत ।
६. कार्ल युंग : मैन एण्ड हिज़ सिम्बल्स ।
७. तुलसी आधुनिक वातायन से, पृष्ठ २०८ ।
८. उपरिवत् ।
९. उपरिवत् , पृष्ठ २२६ ।
१०. उपरिवत् , पृष्ठ २२६ पर उद्धृत ।
११. उपरिवत् , पृष्ठ ११६ ।
१२. फोर्लिंग एण्ड फार्म , पृष्ठ २८५ ।
१३. प्रकृति और काव्य संस्कृत खण्ड, पृष्ठ १५७ ।
१४. द्रष्टव्य : प० ल० वैद्य द्वारा सम्पादित `हरिवंश पुराण` का संशोधित संस्करण : भूमिका ।
१५. गुरदीपसिंह खुल्लर द्वारा परिशोध (१५) में प्रकाशित अपने लेख `भारतीय इतिहास चेतना` में पृष्ठ २५ पर उद्धृत ।
१६. प्रकृति और काव्य (संस्कृत खण्ड), पृष्ठ १७५ ।
१७. तुलसी आधुनिक वातायन से , पृष्ठ १८६ ।
१८. `फिलॉसफी इन एन्यू की` में सुसान्ने के० लैंजर द्वारा, पृष्ठ १३४ पर उद्धृत ।
१९. ए हैण्डबुक ऑफ ग्रीक माइथॉलॉजी, पृष्ठ १५ ।
२०. जोसेफ टी० शिप्ले : डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिट्रेचर, पृष्ठ २७० ।

२१. जोसेफ टी० शिप्ले : डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर, पृष्ठ २७० ।

२२. उपरोक्त द्वारा , पृष्ठ २७० पर उद्धृत ।

२३. लिं० स० ८० (जिल्द ८, भाग २), पृष्ठ २५० ।

२४. उपरिवत् ।

२५. जेम्स स्कार्ला द्वारा सम्पादित 'मॉडर्न पोएट्स ऑन मॉडर्न पोएट्री' में पृष्ठ ३३ पर उद्धृत ।

-----

(४)

काव्य-सौन्दर्य के धरातल

सौन्दर्य-चेतना के आधार , बाणासुर कथा में नारी-सौन्दर्य का रूपायन, पुरुष रूप का बिम्बांकन , अतिमानवीय रूप का भावन , प्राकृतिक सौन्दर्य का अविकल्पन , भावलोक के विविध चित्र , प्रेम की भाव-स्थितियाँ , युयुत्सा के भाव-चित्र , क्रोध और भय की रंग छायाएं , वैचित्र्य का तत्व और हास्य , माध्यम का सौन्दर्य , बिम्ब-रचना और ऐन्द्रिक संवेदन , चाक्षुष बिम्बों की विपुलता , नाद-बिम्ब , अन्य राग-बोधों से सम्बंधित बिम्ब , संगीत-चेतना : श्रावणिक मूल्य , अलंकरण : यमक-क्रीड़ा , भाषिक सन्दर्भ : शैलीगत रूप ।

(४)

काव्य - सौन्दर्य के धरातल

सौन्दर्य-चेतना के आधार

अन्य कलाओं की भांति काव्य में भी सौन्दर्य-चेतना की स्थिति रूप और भाव दोनों की स्वीकृति में है । इन्हीं दो आधारों पर उसकी वस्तुपरक और भावपरक व्याख्याएं की गयी हैं । पर, काव्य-सौन्दर्य खण्डों में नहीं पूर्णता में निहित रहता है, अत: अविभाज्य होता है । इन दो के अतिरिक्त सौन्दर्य-चेतना का एक तीसरा पक्ष आस्वाद अथवा भोग का है । इस प्रकार रूप, भाव अथवा सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तथा भोग अर्थात् सौन्दर्य द्वारा उत्पन्न सुखानुभूति की प्रक्रिया - ये तीनों काव्य-सौन्दर्य के मूलाधार हैं । डॉ० रघुवंश इसी तथ्य को रेखांकित करते हैं जब वे कहते हैं कि सौन्दर्य की स्थिति को अपने काव्य में ग्रहण करने की कवि की प्रक्रिया अनुभूति, अभिव्यक्ति और रसानुभूति के तीन स्तरों से सम्बन्धित है ।[१] कवि विषय रूप वस्तु-जगत से प्रभाव ग्रहण करता है, अनुभूति सौन्दर्य के इसी मानसिक पक्ष की प्रभाव स्थिति है । संस्कृत काव्य-चिन्तकों ने आलम्बन और उद्दीपन की धारणाओं के माध्यम से कला-प्रक्रिया सम्बन्धी इस विचार को प्रस्तुत किया है । सुन्दर वस्तु इन्द्रिय-संवेद्य अर्थात्

ऐन्द्रिक-संवेदनों द्वारा आस्वाद्य होती है। इसी को सौन्दर्यतात्विक शब्दावली में सौन्दर्य का भोग कहा जा सकता है। भोग्य अर्थात् ऐन्द्रिक संवेदनों के माध्यम से ग्राह्य पदार्थों के संयोजन से, डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा के शब्दों में 'भोग्य-पदार्थों के विन्यास' में रूप की स्थिति है।[2] रूप काव्य अथवा कला में एक सुखद-अनुभूति अथवा 'सुखात्मक प्रभावशीलता', जिसे 'कलात्मक आनंद' की संज्ञा दी जाती है, को उत्पन्न करता है। अज्ञेय और डॉ० कुमार विमल सौन्दर्य-बोध को अन्ततः एक बौद्धिक-प्रक्रिया मानते हैं क्योंकि 'व्यापक अर्थ में रूप का अर्थ विन्यास,संयोजन, संगठन, संघटना अथवा व्यवस्थापन किया जा सकता है।'[3] भारतीय सौन्दर्यतात्विकों ने भी सौन्दर्य की भोग-क्रिया को 'जहद् जहद स्वरूपा' अर्थात् निर्वाचन-धर्मा माना है। 'हमारा मन चयन करके विभिन्न संयोगों से सौन्दर्य का चित्र पूरा करता है।'[4] 'रूप' ज्यामितिक , सजीव, और प्रतीकात्मक रूपों में दृष्टिगत होता है। ज्यामितिक रूप स्थिर होता है और स्थापत्य, वास्तुकला आदि में देखा जा सकता है। सजीव रूप गतिशील और परिवर्तनशील होता है और 'जीवन' में आविर्भूत होता है अर्थात् मानवीय और प्राकृतिक होता है। प्रतीक 'अपने रूप द्वारा अपने से भिन्न किसी सूक्ष्म अनुभूति को व्यक्त करता है।'[5] काव्य-सौन्दर्य में शब्द के माध्यम द्वारा रूप के ये तीनों भेद ग्राह्य और आस्वाद्य होते हैं।

'बाणासुर कथा' एक कथाकाव्य है अतः उसमें कवि की स्वानुभूति की अभिव्यक्ति न होकर कला-वस्तु 'एस्थेटिक आब्जेक्ट) के प्रति एक सौन्दर्यतात्विक दूरी (एस्थेटिक डिस्टन्स) मिलती है। इस विधा में कवि की मनःस्थिति सीधे नहीं एक कथात्मक आवरण ओढ़ कर सम्मुख आ सकती है और हाशियों में अपने आपको प्रकट कर सकती है। रूपाकार की सीमाओं के कारण कवि का ध्यान वस्तु-रूप काव्य-विषय के कलात्मक प्रस्तुतीकरण की ओर अधिक रहता है। काव्य-कृति कवि की किस मानसिक प्रेरणा की अभिव्यक्ति है, यह स्पष्ट नहीं होता। प्रबन्धात्मकता उसे वैयक्तिक से ज़्यादा निर्वैयक्तिक रूप देती है। कवि-व्यक्तित्व का प्रस्फुटन उसमें होता तो है पर अप्रत्यक्ष ढंग से। कवि द्वारा अपने काव्य के लिए किसी विशिष्ट विषय-वस्तु का निर्वाचन उसके बोध तथा संवेदना-दृष्टि

के स्तरों को उद्घाटित करता है। काव्यगत सौन्दर्य में हम उसकी सम्वेदनात्मक मानसिक स्थिति का प्रक्षेप पा सकते हैं। कथानक की 'परिस्थितियों और घटना-स्थितियों के अंकन की प्रक्रिया में कवि की सौन्दर्य चेतना यहाँ-वहाँ व्यक्त होती है। घटनाओं तथा भाव-स्थितियों का चयन स्वयं में एक कलात्मक कार्य है जिसमें सुन्दर और असुन्दर का बोध बना रहता है। यहीं कवि की व्यक्तिगत प्रतिभा, जिसे अभिनव गुप्त 'नवनिर्माणशालिनी प्रज्ञा' कहते हैं अपनी भूमिका निभाती है। काव्य में भाषा अथवा शब्द के माध्यम द्वारा भाव की अभिव्यक्ति होती है। 'शब्द' डॉ० रघुवंश के शब्दों में, 'भाव के रूपात्मक प्रतीक हैं। शब्द में अर्थ-सन्निहित है जो भाव-बिम्ब ग्रहण करने के पहले पर-प्रत्यक्ष के स्तर पर ध्वनि-बिम्ब ग्रहण करता है।' शब्दार्थ में भाव, रूप और ध्वनि-बिम्ब का सामंजस्य रहता है। 'सामंजस्य की कलात्मक व्यंजना ही काव्य का सौन्दर्य है।'

बाणासुर कथा में नारी-सौन्दर्य का रूपायन

इस पीठिका के साथ हम 'बाणासुर कथा' के काव्य-सौन्दर्य की अध्ययन-दिशाएं स्थिर कर सकते हैं। यह अध्ययन रूप-चित्रण तथा भाव-चित्रण के अतिरिक्त माध्यम के सौन्दर्य के आधार ग्रहण कर सकता है। वस्तुत: ये तीनों एक-दूसरे में गुम्फित हैं। प्रेम और युद्ध का काव्य होने के कारण हम 'बाणासुर कथा' में सबसे पहले प्रेम के केन्द्र में स्थित नारी-सौन्दर्य के रूपायन को लेते हैं। नारी के मांसल शरीर-सौन्दर्य, उसकी अंग-भंगिमाओं और यौवन-चांचल्य को उसमें एन्द्रिक धरातल पर उपस्थित किया गया है। उसकी काम्य देह-छवि के रति-उद्दीपक संस्कारों की मदिरता में इस काव्य-कृति की पंक्तियां डूबी हुई हैं। दैहिक सौन्दर्य के प्रति उसमें जो रस-लुब्ध दृष्टि मिलती है वह सहसा संस्कृत काव्यों के उत्कट शृंगार-चित्रों की याद दिलाती है। नायिका उषा का ऐसा ही 'एन्द्रिय ऊष्मा' से परिपूर्ण सुषमांकन इन पंक्तियों में देखा जा सकता है:-

उष नामू नव वय वर-सुन्दर

तिभवन रूप चढाये चित्र
मिगदिश शशि आनन गजगामिन
पीन पमोधर उरिजन वज्ज
वर्हि केश सुध अधर सा कामिन ।

पयोधर: वज्र से कठोर , पीन - सुडौल , मृग सी आँखें , चाँद-सा मुख, गज-सी चाल, मयूर-पंखों जैसे केश और ओठ सुधा-से मीठे - नायिका के माध्यम से कवि ने जो नारी-बिम्ब उभारा है वह कामिनी का है, रमणी का है ! यह रूप एन्द्रिय उत्तेजना को जन्म देने वाला है , पुरुष-चित्त को उत्पीड़ित-उद्वेलित कर देने वाला है । ऐसी देह-सुषमा जिसके लिए `हरिहरवज्जपाण` भी `गतलज्ज` होकर आकुल हो जाते हैं । उषा की देह-यष्टि की कामना से संतप्त अनिरुद्ध, जिसे अब तक उसकी बस एक झलक स्वप्न में मिली है, इस मारक सौन्दर्य का प्रभावांकन यों करता है -

राज विहंग गामिनि भुजंगिनि जन वलयि
पिय- पिय उत्तरंग रतिसंगस जात दिवा
देय कुरंगनेत्र निज अंग अनंग लयि ।

(भुजंगिनी की भाँति देह से लिपट जाती है वह हंसगामिनी ! अनंग प्रेरणा से वह कुरंगनेत्री मेरी देहरी पर कभी पांव धरेगी क्या ?)

ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं कवि अवतार भट्ट उषा की काव्य-काया की मदिर सौन्दर्य - कल्पना से रोमांचित-उत्तेजित हैं । सुखद स्पर्श-संवेदनों की एक अकुलाहट-सी इन रूपचित्रों में दौड़ती है । अनिरुद्ध की रूपासक्ति शारीरिक धरातल पर ही अधिकतर प्रकट हुई है और कहीं-कहीं तो भोगेच्छा का पर्याय मात्र बन कर रह गयी है । स्वप्न में देखी नायिका के देह-गठन की नायक के मन पर यह प्रभाव स्थिति कितनी तीव्र `एन्द्रिय ऊष्मा` लिए हुए है -

नयन-नयन बालि काम म्मथाने
वचन - अचन उन्दि मुत नाराच पूरे
कुच कुचन नामूले वट याखेत पाने ।

(बाला के नयन कामेच्छा से हृदय को मथ डालते हैं । वचन तो नाराचों की भाँति पूरे हृदय में गड़ जाते हैं । पत्थर से कठोर कुच कचोट कर रख देते हैं)

शास्त्रीय शब्दावली में जिसे 'नख-शिख वर्णन' कहेंगे, उषा की अंग-भंगिमा के सौन्दर्य-चित्रण में बहुत कुछ परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया गया है । कटि, उरोज, ग्रीवा, मुख, अधर, नासिका, केश, चरण सभी की सुषमा के प्रभाव-चित्र दिये गये हैं । कामशास्त्रीय आधारों पर किये गये इन सौन्दर्यांकनों को पुरुष की लुब्ध-दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है — कहीं-कहीं कालिदासीय सौन्दर्य-भावना फलमला उठी है ! नारी देह-यष्टि की कामना में झुलस रहा आलिंगनाधीर अनिरुद्ध का 'लम्पट-मन' किसी भी पुरुष का मन है । ऐसे स्थल सौन्दर्यानुभव के मूल में काम-वासना को मानने वाले सौन्दर्यशास्त्री जॉर्ज सान्तायन के मत की पुष्टि करते प्रतीत होते हैं । डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी केवल कामवासना को सौन्दर्य का निर्णायक मानने के पश्चिमी आग्रह को एकांगी बताते हैं । उनके विचार से सौन्दर्य "केवल विरुद्ध लिंग के प्रति कामासक्ति मात्र नहीं है । यह बात होती तो स्त्रियाँ भी स्त्री-सौन्दर्य को उतने ही आग्रह और अभिनिवेश के साथ चित्रित कैसे करतीं हैं जितना कोई पुरुष किया करता है ।"[८] 'बाणासुर-कथा' में भी पुरुष दृष्टि-बिन्दु से प्रस्तुत नारी-रूप के बिम्बों के अतिरिक्त नारी की दृष्टि से देखे गये नारी-रूप के शोभांकन भी हैं । चित्रलेखा और उषा द्वारा एक दूसरे के शरीर सौन्दर्य को अनेक उपमानों और विशेषणों में गूँथा गया है ।

अवयव-सौन्दर्य के अतिरिक्त उषा के लावण्यमय रूप के भी कुछ चित्र 'बाणासुर कथा' में अंकित हैं और ये चित्र स्थूल और मांसल नहीं है । लावण्य के विषय में डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा अपनी पुस्तक 'सौन्दर्य शास्त्र' में लिखते हैं— 'सजीव रूप में यदि अवयव इस प्रकार गुम्फित हैं कि उनमें तरलता, जीवन का ओज

और तरंग की प्रतीति होती है तो हमें रूप में `लावण्य` का अनुभव होता है ।[६] अवतार भट्ट ने उषा की देह-कान्ति को जहां छिटकी हुई चांदनी से अथवा फूलों से लदी लता से उपमित किया है वहां मांसल-सौन्दर्य को स्थूल जड़ता से मुक्त यही लावण्यमयी छबि उभरी है । पर अधिकतर रूप-चित्रों में उपभोग-प्रधान रसिकता और ऐन्द्रिय सौन्दर्य के आकर्षण की अधिक स्वीकृति है । अनिरुद्ध ने उषा की देह-वल्ली का रस लूटा है । कुल मिलाकर अवतार भट्ट द्वारा उषा के माध्यम से प्रस्तुत नारी सौन्दर्य के चित्र कांगड़ा शैली के चित्रों की कामिनियों की-सी रूप-छबि को उजागर करते हैं । अवतार भट्ट की नारियां शशिवदना, गजगमना, मधुकर-वयना, मृगनयनियां हैं । शोणितपुर के उपवन में काम-केलि में लीन नृत्यरता अप्सराओं का यही बिम्ब प्रस्तुत किया गया है –

गजगमना शशिवदना रुचिकर तेमा अच्छारसा
नच्चन तनि अलसो हरिणादिशी मधुकर वयना
- - - - - - - - - - - - - - - - - -
नीवर राव गुमन असितेकच तेन जन वयना ।

नारी रूप-वर्णन में कवि ने सौन्दर्यवाची विशेषणों का काफी प्रयोग किया है – शीमालि, नववयि, सुकुमारि । सर्वाधिक प्रयोग `वर` विशेषण का हुआ है : वाणासुरकथा की नारी वर-सुन्दरी , वर-नायिका, वररमणी, वरवनिता, वरकामिनी, वर-बाला है ।

पुरुष रूप का बिम्बांकन

पुरुष सौन्दर्य का भी नायक के रूप-चित्रण के माध्यम से शोभांकन हुआ है । यहां स्त्री के दृष्टि-बिन्दु से पुरुष रूप की प्रभाव-स्थिति दर्शायी गयी है । पुरुष देह का आकर्षण भी नायिका में `रति संग` और अनंग सुख की कामना जाग्रत करता है । पर यहां दैहिक आकर्षण के साथ भावात्मक सौन्दर्य भी चित्रित हुआ है । देह-सुषमा के ऐन्द्रिय बिम्बों के साथ पुरुषोचित गुणों का नारी मन

पर प्रभाव भी दिखलाया गया है –

रति संगस बिय अनंगस दिवा
यस कामिन देवा पिया ति दिवा
कर वाति सो पिय मि निकटो !

गुण - सागुर सिंग यखेत तनि
नवभिंग जनी सपने यो घटो !

उय निरिम ना ज़ातकृदि कमला
सखे नायुक वीर रमुण विकटो
ज़न मित्र शमो विनकमा कमला
करवाति सो पिय मि निकटो !

यहाँ अनिरुद्ध को उषा के मन में अमृतघट-सा प्रकट होने वाला, गुणसागर, मन-कमल के लिए सूर्य आदि कहा गया है। अन्य स्थलों पर भी उसके पुरुषोचित गुणों से सम्मोहित नारी-मन की प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी है – वह वीर-कुल दीपक है, तीनों लोकों में बुद्धिकुशल रणधीर है। भयंकर असुरवाहिनी से अकेले निहत्थे लड़ रहे अनिरुद्ध के वीर-बिम्ब में ओज-मिश्रित सौन्दर्य का अन्योन्याश्रय है। पुरुष सौन्दर्य के ऐसे अनेक रूपचित्र 'बाणासुर कथा' में अंकित हैं, जैसे – रणिज़न पंचबाण अनिरुद्ध शुशान मिलो ! (रण में भारी साँसें लेता हुआ वह(असुर सैना से) जा भिड़ा तो पंचबाण-सा लगता था)। शत्रु की शर-दृष्टि से ढका हुआ अनिरुद्ध उषा को ऐसा लगता है जैसे बादलों से ढका सूर्य ! उषा के लिए तो वह ऐसा कुवलय है जो रात को भी कभी मुंदता नहीं – गव रजनीयसति सो कुवलय अस्त ना बाले ! पुरुष का सौन्दर्य उसके दैहिक आकर्षण के साथ उसके शील में, गुणवत्ता में दिखाया गया है।

अतिमानवीय रूप की भावना

मानवीय रूप के अतिरिक्त `बाणासुर कथा` में अतिमानवीय अर्थात् दिव्य तथा अतिप्राकृतिक रूप का भी भावन हुआ है । शोणितपुर के सुन्दर नगरोद्यान में विलास-क्रीड़ारत शिव और पार्वती के सौन्दर्य का चित्रण लौकिक होकर भी मूलत: अलौकिक है । शिव यहाँ शशिशेखर हैं, पुष्पमाला, अरुण वसन, श्वेत-कुण्डल पहने हुए, मुख पर चन्दन का लेप किये हुए -

कलेत रसा शशि शेखुर परशेत वप पुष माला
अरुण वसन पैरेत मुखिचन्दुन कुण्डल श्वेते !

चित्रलेखा पार्वती का `दिव्य-रूप` शिव को रिझाने के लिए धारण करती है -

दिव्य-रूप विरचेत अतिमनुहर तेयि रञ्जी
लील रचेत वदना जगि जननी नमीस पखन्दा ।

पार्वती `जगिजननी` (जगजननी) हैं अत: उनके रूप को केवल `दिव्य` कहना ही उचित समझा है । केवल एक स्थल पर उनके नयनों का लघु-बिम्ब , उन्हें `बाष्प-नयन-आनना` कह कर प्रस्तुत किया गया है । इस शोभा वर्णन में मांसल मनोरागों का समावेश नहीं है । उसके प्रभाव को कवि ने केवल यह कह कर व्यक्त किया है कि वह असंख्य पापों को नष्ट करने वाला है -

प्रावुह शोभ तेन पाप अनंत नष्टे
दिव्ये स्नान हरफ़ो करवान विलास ।

कृष्ण के वीर और रौद्र रूप में अतिमानवीय और अतिप्राकृतिक का सम-तोलन है । उनके अंग-लक्षण, उनके विष्णुरूप का, उनका नख-शिख उनके निर्विकल्प सौन्दर्य का तथा वेशभूषा भावात्मक परिवेश का विधान करती है । कृष्ण को अनेक स्थलों पर कवि ने विष्णु नाम से संबोधित भी किया है । उनका यह रूप निर्विकल्प है, पवित्र है । उसके अतुलनीय स्वरूप को रेखांकित करने के लिए

शत-सहस्र संख्यावाची विशेषणों का प्रयोग किया गया है -

श्रीवत्सांगे सुधानो चतुरभुज महोबंगुलि रत्नवज्जा
वत्राजन सूर्य सास्से छय जन विमज्ये तृष तनी मुत उन्दा
सिद्धो सिंहास्य कूरो बहुबल समरि तस मज्जेत सज्जा !

यह कृष्ण का विराट पुरुष रूप अतिमानवीय है और अलौकिक भी - उनके मुखमण्डल की छबि सहस्रों सूर्यों की सी है। यह रूप आश्चर्य, रहस्य, आतंक, श्रद्धा आदि के भाव उत्पन्न करता है। इस सौन्दर्य की दिव्यता पर बल देने के लिए कवि ने समय-समय पर देवताओं और देवांगनाओं से आकाश से फूल बरसवाये हैं। सूत-मागधों से स्तुति करायी है। इस बात का बार-बार उल्लेख किया है कि इस रूप का वर्णन सुनने मात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं। कृष्ण का मुरलीवादक गोपीजनबल्लभ, पीताम्बरधारी रूप 'बाणासुर कथा' में नहीं मिलता। अमित आभा से युक्त उनका सहस्रमुखी अष्ट भुजायुक्त आतंककारी वीर रूप ही अधिक उभरा है -

- - - - - - - - - - - कृष्ण भट्टे
सोमार्क शक्क सदिशो विरचोन रूप
क्यों शीर्ष सास्स भुज अष्ट महादरट्टे
- - - - - - - - - -
सत्थो सुपत्रस - - - - - - - - -

हज़ार सिर- आठ भुजाओं वाला आकार, हाथ में शंख-चक्र, धनुष-बाण, चर्म, गदा, खड्ग लिए गरुड़ पर आसीन कृष्ण शोणितपुर को जा रहे हैं- विराट्स्वरूप की यह योजना कृष्ण के अवतारत्व का प्रदीप करती है। शारीरिक विराटता के अतिरिक्त अपरिमित ओज और वीरत्व के गुणों का भी उसमें गुम्फन हुआ है। युद्ध में बाणासुर की आत्मश्लाघापूर्ण ललकार सुनकर क्रुद्ध कृष्ण की रौद्र मुद्राओं का अंकन हुआ है -

एते वाक्य समूह किछासबरे बाणासुराने कृषि

क्रूरे ते जलौघ सागर जनी क्रोधे गने गूर्णिती
संपुत्रे गै नेत्र शोणित मरे कल्पावसाने तदि
जाने सूर्य य खेत मुत तदि ते तिलकें भय्येमिती !

(बाणासुर के ये वाक्य कृष्ण को मन में बहुत बुरे लगे । प्रलय समय के सागर की भाँति वे क्रोध से उद्वेलित हो उठे, आँखें आरक्त हो उठीं, लगा कि कल्पावसान की घड़ी आ गयी है । अनेक सूर्यों के समान वे अमित भय उपजाने लगे ।)

कृष्ण के तेज को यहाँ भी अनेक सूर्यों से उपमित किया गया है । उनकी अपरिसीम शक्ति, और निर्बाध पौरुष, शत्रु को भयातंकित कर देने वाली उनकी तेजोमय मुख-मुद्रा इस रूप की अलौकिक प्रभावशीलता को प्रतिष्ठित करती है ।

अलौकिकता की सौन्दर्य-तात्त्विक मीमांसा करते हुए डॉ० रमेश कुंतल मेघ लिखते हैं — ' जो लोक की परिधि से बाहर हो, या लौकिक कारण-न्याय से संचालित न हो वह अ-लौकिक (रस की 'अलौकिकता' से भिन्न) है । इस तरह अलौकिकता के दायरे में नियति या भव्य, जादू, अतिप्राकृतिक तथा अति-मानवीय आ जाते हैं । - - - - - - अलौकिकता असामान्य, विचित्र और चमत्कारपूर्ण होती है । यह अव्याख्येय है । धार्मिक काव्यों में जब यह देवताओं की शक्ति होती है तब ब्रह्माण्ड शुभ (कॉस्मिक गुड) का निमित्त होती है, तथा जब राक्षसों, प्रेतों, ऐन्द्रजालिकों के पास होती है तब ब्रह्माण्ड-अशुभ करने वाली होती है । दोनों ही पक्षों में अलौकिकता में रहस्यात्मकता निहित हुआ करती है । यह आश्चर्य, आतंक तथा रोमांच इन तीन दशाओं का आवरण फैलाती है ।'[10]

"बाणासुर-कथा" शुद्ध रूप से धार्मिक प्रेरणा अथवा प्रयोजन से लिखा काव्य प्रतीत नहीं होता, पर पौराणिक विषय-वस्तु के कारण इसमें धार्मिक छाया बहुत गहरी है । यहाँ कृष्ण की अलौकिकता का आधान ब्रह्माण्ड शुभ के लिए हुआ है । नारायण (कृष्ण) के विराट रूप का दिग्दर्शन कराने वाले तत्व अलौकिक ही हैं लेकिन यह अलौकिकता लोक की लौकिकता में अवतरित होती दिखायी गयी

है जिससे 'रहस्य, आश्चर्य और फलस्वरूप श्रद्धाविश्वास की वृद्धि होती है।'
अतिप्राकृतिक तत्वों का समावेश बाणासुर में भी किया गया है किन्तु वह इस
शक्ति का प्रयोग 'माया' के रूप में करके अनिरुद्ध को सर्प-पाश में बाँध डालता
है। 'बाणासुर कथा' में अलौकिकता पात्र और पाठक के बीच मनस्तात्त्विक दूरी
स्थापित करती है जिससे रहस्यमयता का वातावरण उत्पन्न होता है।

प्राकृतिक सौन्दर्य का अविकल्पन

मानवीय भावों की पार्श्वभूमि और मानवीय कार्यों की रंगभूमि के रूप
में प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रांकन कुछेक स्थलों पर 'बाणासुर कथा' में हुआ है।
काव्य में प्राकृतिक सौन्दर्य के सन्दर्भ पर डॉ० रघुवंश लिखते हैं - ' प्रकृति में विशाल
व्यापक सौन्दर्य है और काव्य सौन्दर्य का क्षेत्र है। काव्य प्रकृति के सौन्दर्य को
ग्रहण करता है। इस प्रकार - - - प्रकृति और काव्य का सम्बन्ध सौन्दर्य के
धरातल पर है।'[११] प्राकृतिक सौन्दर्य के ये धरातल 'बाणासुर कथा' में अधिक
नहीं उभरते। मन: स्थिति का उपयुक्त वातावरण उपस्थित करती हुई प्रकृति
शोणितपुर के उद्यान में कामकेलि-रत शिव-पार्वती और गंधर्वों- अप्सराओं की भीड़
के वर्णन में चित्रांकित हुई है।, जहाँ सरस वीणा-वादन हो रहा है, एक साथ
अनेकों वाद्य झंकृत हो रहे हैं और 'विधु-बाँधव' पारिजात फूलों से लदा हुआ
महक रहा है। कथा के अन्त में कृष्ण के बाणासुर को पराजित कर द्वारका
लौटने के बाद उषा और अनिरुद्ध को द्वारका के नगरोद्यान में मुक्त पवन के सरस
झोंकों के बीच क्रीड़ा करते हुए 'कामदेव के गीत' गाते हैं। पर ऐसे चित्रों में
प्रकृति के सौन्दर्य की झलकमर मिलती है, आभास भर होता है। कहीं-कहीं तो
बस प्राकृतिक स्थलों को एकाध विशेषण से युक्त कर उनका उल्लेख मात्र किया
गया है। अनिरुद्ध को ढूंढने गये दूत लौटकर कृष्ण से कहते हैं -

हे साम्ब अचल अरण्य मुत च्छाडे
द्रद कूरे उपवनाति महाशी माले

अर्थात्

हे स्वामी हमने अनेक अचल और अरण्य, अनेक सरोवर और महाशोभावान उपवन छान मारे। इसी भाँति रात के बाद प्रभात के आने को अभिधात्मक कथन-मात्र द्वारा वर्णित किया गया है -

वातो पभात हरिनाथ पूरिय कज्जे
घोर सा रात तत् काल गयि समत्!

(प्रभात हुआ, पूर्व से सूर्य निकला, वह घोर रात तत्काल बीत गयी!)

एकाध स्थल पर प्रकृति को दिव्य-रूप से भी मंडित दिखाया गया है -

अत्क्षण दिननाथे पान याखेत रत्था
वलोन गौ निमिषे वेश क्यो रुद्र सन्दि

(तभी सूर्य रक्त के समान लाल हो गया, उसने मानो निमिष भर के लिए रुद्र का-सा वेष धारण कर लिया)

प्रकृति के शकुन-परक, अनिष्ट सूचक, भयंकर रूप के 'बाणासुर-कथा' में अनेक चित्र अंकित हैं। 'मध्यकाल में', डॉ० रमेश कुंतल मेघ लिखते हैं, 'प्रकृति पर वैज्ञानिक विजय के स्थान पर तान्त्रिक और शकुन-मूलक विषय पर यकीन था। इसलिए मनुष्य और प्रकृति के रिश्ते रागात्मक और संघर्षमूलक नहीं हो सके। फलस्वरूप प्रकृति का चेतना के नाना स्तरों पर अविकल्पन मात्र हुआ है।'[१२] - - 'बाणासुर कथा' में प्रकृति द्वारा दैवी संकेतों के रूप में शकुनों और लक्षणों का विधान किया गया है। प्रकृति की विभिन्न दशाओं को भावी युद्ध की पूर्व सूचना के रूप में प्रस्तुत करके भावी कथास्थिति का पूर्व-निर्देश किया गया है। शिव से युद्ध का वरदान प्राप्त कर लौटा बाणासुर अपने सचिव को अपनी प्रसन्नता का कारण समझा ही रहा होता है कि भावी घटनाओं का संकेत देते हुए अनेक प्राकृतिक शकुन और लक्षण प्रकट हो जाते हैं - गरजकर, अत्यन्त वेग से विद्युत लोहगृह में स्थित ध्वज पर गिरती है और वह टूट कर गिर जाता है। धरती

काँप उठती है, वृक्ष और पर्वत संत्रस्त हो उठते हैं। इन्द्र घोर बर्षा करते हैं जो थमने का नाम ही नहीं लेती, मेघ जल नहीं रुक बरसाते हैं। सूर्य को भेदती हुई उल्का धरती पर गिरती है, विराट चैत्य-वृक्ष शत खण्ड हो जाता है, उससे लिपटी लताएं विच्छिन्न हो जाती हैं, सूर्य को राहु ग्रस लेता है, बाण का जन्म-नक्षत्र मंगल वातावरण को पीड़ित करता है। दक्षिण दिशा में धूमकेतु का उदय होता है। दिन और रात अविच्छिन्न गति से प्रबल प्रभंजन बहता रहता है। सूर्य को अत्यंत कृष्ण, नीलच्छय और लोहित रंगों का मंडल घेर लेता है।[१३] किन्तु असुर बाण इन कुलक्षणों को नहीं मानता, मदोन्मत्त के समान चेष्टाएं करता है, दैत्य-सुन्दरियों के साथ सुरापान में रत रहता है।[१४] पर तीक्ष्णबुद्धि मंत्री, कुम्भाण्ड, इन्हें 'उत्पात के लक्षण' मानता है और तुरन्त उसके मस्तिष्क में यह विचार कौंध जाता है —

पज़िनो सो वाक्य अपज़ो परमेश्वरानो
दपोन निवस भुय अवश्य युद्ध ! (४१)

(परमेश्वर का वाक्य झूठा नहीं हो सकता — उन्होंने नृप से कहा था कि युद्ध अवश्य होगा !)

शास्त्रीय शब्दावली में जिसे प्रकृति का आलम्बन रूप कहा जाता है उसके दर्शन 'बाणासुर कथा' में नहीं होते। किन्तु कवि ने प्रकृति के सौन्दर्य-कोश से मानवीय रूप के लिए विपुल उपमान बटोरे हैं, मानवीय सौन्दर्य में प्राकृतिक सौन्दर्य को प्रतिबिम्बित कर अनेक रूप-चित्रों की सृष्टि की है। उपमान योजना के लिए प्रकृति के प्रयोग के विषय में डॉ० रघुवंश ने लिखा है कि प्रकृति के नाना रूपों को उपमान रूप में ग्रहण कर कवि जिस प्रकार रूपाकार उपस्थित करता है, उसी प्रकार विभिन्न स्थितियों की चित्रमयी योजना भी करता है। प्रकृति के प्रत्येक रूप और स्थिति में हमारे अंतःकरण के समक्ष पर एक भाव स्थित हो गया है। इस कारण उपमानों की योजना से भावों की व्यंजना होती है।[१५] 'बाणासुर कथा' में प्रकृति का उपमान रूप में रूप-चित्रण और भाव-व्यंजना दोनों के लिए व्यवहार

हुआ है। नायिका उषा शशिवदना है, उसके केश मयूर-पंख-से हैं, हरिण-सी आंखें, मधुकर-से वचन हैं। अनिरुद्ध के गले में वह कुसुमलता के समान अपनी बांहें डालती है। चन्द्र ज्योत्सना-सी है उसकी देह-कान्ति; वह अनिरुद्ध के विरह-शोक में उसकी पत्नियों के मुख ऐसे होगये हैं जैसे रात के समय कमल! उसके बिना वे ऐसी मलिनाभ लगती हैं जैसे अंधेरी रातों में बिना चांद के तारिकाएं –

> चन्दे बिना यसेत नभ तारा
>
> असितय पछ निवासिन बहु रैन!

आकाश में उड़ रही कुरड़ियों की पांति की भांति वे आंखों से आंसुओं के बदले मानो रक्त टपका रही हैं (ये रूप-बिम्ब 'बाणासुर-कथा' में सीधे हरिवंश पुराण से लिये गये हैं)।

अनिरुद्ध के शोभांकन में भी प्रकृति से गृहीत उपमानों को संजोया गया है— सिंह के समान उसका तन है, नव-भृंग की भांति वह उषा के स्वप्न में प्रकट हुआ आदि। इन रूप-चित्रों में रूढ़ उपमानों का प्रयोग अधिक हुआ है। कई स्थलों पर रूप के साथ-साथ मुद्रा, भाव-स्थिति आदि के चित्रण के लिए भी प्रकृति-कोष से उपमान लिये गये हैं। युद्ध में पीठ पर ढाल और हाथों में परिघ लिए हुए अनिरुद्ध सूर्योदय के समान (शोभित) लगते हैं। जैसे क्रूर सिंह वन में हाथी को दबोचता है वैसे ही अनिरुद्ध बाणासुर पर झपटे। बाणासुर ने अनिरुद्ध पर जिस शक्ति से प्रहार किया वह आदित्य की भांति ज्वाजल्यमान थी। राक्षसों का घोर रूप ऐसा लगता है मानों बादलों से ढंका हुआ शैल; असुरों की शर-वृष्टि से ढंके अनिरुद्ध ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे बादलों से घिरा हुआ सूर्य! युद्ध में पराजित बाण स्पंदन सहित यों नीचे गिरता है जैसे कोई पहाड़ हो! उपमानों के अतिरिक्त उत्प्रेक्षाओं और रूपकों की भी कवि ने झड़ी लगायी है। प्राय: हर छन्द में जन (= जानो, जनु), यासेत आदि सादृश्य-सूचक सार्वनामिक विशेषणों का प्रयोग है। सखियों से घिरी हुई उषा तारों के बीच चंद्रमा है। वैशाख के महीने में अपने

महल में सोयी वह ऐसी लगती है कि मानो चन्द्र-ज्योत्सना छिटकी हुई हो। वह फूलों से लदी लता है जिसका रस अनिरुद्ध कोयल की भांति लूट चुका है। अनिरुद्ध की रूपाभा बालों और कमलों की सृष्टि करती है। उषा के लिए वह स्वयं एक ऐसा कुवलय है जो रात को भी मुंदता नहीं। असुर सेना के युद्ध-निनाद को सुनकर अनिरुद्ध यों उठ पड़ा जैसे कोई मस्त हाथी। इस प्रकार अंग-दीप्ति, रूपाभा, मुद्रा, भाव-दशा आदि के वर्णन-गुम्फन आदि के लिए कवि ने प्रकृति से उपमान लिये हैं। दो एक स्थानों पर इसके लिए मिथकीय प्रकृति को भी लिया गया है — नागपाश में बंधे अनिरुद्ध ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मैनाक पर्वत हों।

प्रकृति का एक और सौन्दर्यतात्विक प्रयोग `बाणासुर कथा` में काव्यात्मक कल्पित विश्वासों अर्थात् `कवि समयों` के रूप में हुआ है। राजशेखर की काव्य-मीमांसा में कवि समयों का स्पष्ट और विशद वर्णन है। उन्होंने कवि-समयों को जाति, द्रव्य, क्रिया और गुण के विभागों में विभाजित किया है; स्थिति के अनुसार उन्हें भौम, स्वर्ग्य, पातालीय वर्गों में बांटा है। अवतार भट्ट के काव्य में कमल का रात को अस्त होना, धूमकेतु के उदय से अमंगल होना, आकाश में अप्सराओं का नाचना, आकाश-गंगा का जल पीकर गरुड़ द्वारा अग्नि को बुझाना आदि कवि समय आये हैं।

नगर-वर्णन के एक लघु स्थिर-चित्र में भी अवतार भट्ट ने प्रकृति से उपमान लिया है — शोणितपुर ऐसा सुशोभित है कि सरोवर के बीच कमल खिला हो। नील, लोहित, कृष्ण, श्वेत, रक्तिम, स्वर्णिम, पीत आदि रंगों का उल्लेख `बाणासुर-कथा` में हुआ तो है पर कोई सूक्ष्म रंग-चेतना उसमें दृष्टिगोचर नहीं होती। नायिका उषा के कुचों की कंचन-दीप्ति से एक स्थल पर नायक को कामना-पीड़ित दिखाया है — संगे सुवर्न सदिशे कुच आकलेत ! अस्ताचलगामी सूर्य के रक्त वर्ण का एक स्थान पर रुद्र के वेश से सादृश्य दिखाया गया है —

अत् पाण दिननाथ पान या_लेत रत्या
अलोन मिमिथ गौ वेशक्यो रुद्र सन्दि !

शिव की वेश-भूषा के वर्णन में रंगों का उल्लेख भी हुआ है - बरुण वसन पैरेतें मुखि चन्दुन कुण्डल श्वेते ! (शिव बरुण वसन, श्वेत-कुण्डल पहने हुए हैं, मुख पर चन्दन का लेप है) ।कृष्णा की देह की नीलच्छय कांति की शोभा एक स्थल पर वर्णित है -

` शोभि ताम्रास पिट्ठ नीलच्छय सो गोविन्दा `

`असित कचो`` की सौन्दर्य-उल्लेख भी कवि बार-बार करता है । राक्षसों के घोर रूप का प्रभाव गहराने के लिए उन्हें `असितपट`-काले वस्त्र - पहने दिखाया गया है । कृष्णा, नीलच्छय और लोहित रंगों के मिश्रित रूप को भयंकर से सम्बद्ध किया गया है ।

भावलोक के विविध चित्र

रूप-सौन्दर्य (मानवीय और प्राकृतिक) के चित्रांकन के साथ-साथ कवि ने भाव-दशाओं,मन:स्थिति, संवेदना आदि का भी सौन्दर्य तात्विक चित्रण किया है । लघु कथा-काव्य होने के कारण इस के उदाहरण `बाणासुर-कथा` में बहुलता से उपलब्ध नहीं होते पर उनका इसमें अभाव भी नहीं है । ये भावदशायें पात्रों से सम्बद्ध हैं, कवि की निजी भावानुभूति की व्यंजना अगर हुई भी है तो हाशियों में । पात्रों के भावलोक की ये झांकियां सामूहिक और व्यक्तिगत, पारम्परिक और मौलिक दोनों रूपों में मिलती हैं । कृष्णा के द्वारका लौटने पर उमड़ते हुए जनोल्लास के चित्र सचमुच प्रभावशाली बन पड़े हैं -

विट्ठुक द्वारेक दूर-द्वार वलिवू वायुन शंख ध्वनि
शब्दा लोक बुनेत प्राव सरस आनंदविचे ते कमा
अग्रे अप्सारसा कुरंगनयना नच्चन्द चन्दानने
नाना गीत पठन्द गन्धर्व गिरि ताल्य सम्या शोभने
शूरो बाण ज़िनेत आव ता सुमना वपन्द जनी मना

शोभि तादास पिट्ठ सो नीलच्छय गोविन्द वतो जने
बिल्ले केशुव चाव द्वारिक् रसा नप्तास्मानो उषि
साते गाहेत गे वर्षण पुष ते शब्दा वज्जे गने
तिल्ले द्वारिकवासिन् गिरि वदो नु धन्य इति तुषि
पाने माघुब सामदेव सदिसो अस्ति असि सज्जने !

(दूर से द्वारिका के सज्जित द्वारों को देख कृष्ण ने (लोगों को सूचित करने के लिए) शंख बजाया । शंख का शब्द सुनते ही लोग उल्लसित होकर निकल पड़े । आगे-आगे कुरंगनयना चन्द्रानना अप्सरायें नाचती हुई चलीं । अनेक गीत गाते हुए गन्धर्व शोभनीय ताल पर सम देने लगे । क्रूर बाण को रण में जीत कर कृष्ण आये हैं – गरुड़ पर उनकी नीलवर्णी देह कैसी शोभित हो रही है – लोगों ने मन में कहा । केशव जब पौत्र और उषा को साथ लिये द्वारिका में प्रविष्ट हुए तो उन पर फूल बरसाये गये , संगीत के स्वर गूंज उठे । द्वारकावासी प्रसन्न हो कहने लगे हम धन्य हैं जो `सामदेव` के सदृश कृष्ण हमारे लौटे हैं ।) ऐसे ही उत्साह का प्रदर्शन पुरवासियों से कृष्ण के बाणासुर पर चढ़ाई करने जाते समय करवाया गया है – विप्र कृष्ण को (विजय का) आशीर्वाद देते हैं, भेरी, तूर्य, वेणु, कलाहल, डिण्डिम , झज्जिर आदि वाद्य बज उठते हैं, द्वारकावासियों के गीतों की शोभनीय ध्वनि से वातावरण मुखर हो उठता है, कृष्ण के गले में पुष्पहार पहनाये जाते हैं ।

प्रेम की भाव-स्थितियां

प्रेम की मनोदशा में नारी और पुरुष मन के चित्र अनेक रंगों में सृजे गये हैं । किशोरी रूपसी के मन में पुरुष के संग की कामना का उदय शिव और पार्वती तथा अप्सराओं - गंधर्वों के रस-विलास और काम-प्रमोदों को देखकर उषा की मन:स्थिति के माध्यम से दिखाया गया है । उषा मौन रहती है, कुछ कहती नहीं पर पार्वती उसके मन के भाव को जान लेती है । उनसे स्वप्न में

पति-दर्शन की बात सुनकर उषा का आनंद की अमृतमय बाढ़ में डूबना, किसी भी नव-वय किशोरी की मनोदशा का प्रतिनिधित्व करता है जो इस अवस्था में भावी के रंगीन सुख-स्वप्नों में खोयी रहती है। स्वप्न में अनिरुद्ध का उससे बलात् यौन संसर्ग उषा के मन में एक अपराध-भावना को जन्म देता है जो उसके यह जानते ही विलीन हो जाती है कि स्वप्न में जिस पुरुष ने यह कार्य किया है वह उसका भावी पति है। यहां उषा के मनोभावों में एकदम परिवर्तन दिखाया गया है—जो लड़की अभी तक स्वप्न में कौमार्य-भंग से इतनी घबरा गयी थी कि आत्म-हत्या की सोच रही थी, वही अब उसी पुरुष की उत्कट कामना से विह्वल हो उठती है। उसके बिना, उसे लगता है कि वह प्राण-त्याग करेगी। अपनी काम-विकलता में वह चित्रलेखा को उस अज्ञात वय-कुल-शील पुरुष को ढूंढ लाने को कहती है। इस मनोवस्था को कवि ने `कामदुखिय` (कामदुखिता) शब्द का प्रयोग कर सही नाम दिया है। अनिरुद्ध को भी इसी काम-दशा में बेचैन दिखाया गया है। उसके सम्बन्ध में तो यह कहा जा सकता है उसकी यह रूपासक्ति जीवस्ततीय है। उसे लगता है कि उषा की कमनीय काया ने, उसके नयनों ने, वचनों ने, कुचों ने, ग्रीवा ने, नासिका ने, अधरों ने, उसे जैसे बांध रखा है। प्रेम-तृप्ति, अर्थात् संयोग शृंगार का कोई विशेष चित्र नहीं मिलता। कथानक की इस स्थिति से सम्बन्धित अनेक पन्ने हस्तलेख से गायब हैं। फिर भी एक पद्य ऐसा अवश्य है जिसमें कवि ने नायक-नायिका को रस-विलास की मुद्रा में सरस-मदिरापान करते और `पंचशर के गीत` गाते अर्थात् काम-भोग में रत प्रस्तुत किया है:-

> पैरेत दिव्या अम्बर ता माला वदनस हरिचन्दुन लागेत
> वर-नायक उष रट्टेत नाला वदवान पंचशरान गीत।
> मणिमय मद्यपात्र उष गाहेत दयतवरस तस वातनेय
> वरसख चित्रलेख दाण-दाण वाहेत मणिकलशा सरसा फेरेय

द्वारका पहुंचने पर उनकी उपवन-क्रीड़ा का उल्लेख है; पर इस प्रकार के चित्रों में मिलन की मनोदशा अथवा भावस्थिति का उद्घाटन नहीं, केवल अभिधात्मक कथन मात्र है।

प्रेम के विरह-पक्ष का भावांकन दो स्थलों पर हुआ है। इनमें से प्रथम का अर्थात् `पूर्वराग` की अवस्था में एक दूसरे की अनुपस्थिति के कारण उत्पन्न विकलता और नैकट्य-कामना की अभिव्यक्ति के विषय में ऊपर कहा जा चुका है। दूसरा स्थल है अनिरुद्ध के अपहरण के बाद उसकी पत्नियों का विरह-विलाप। इस विलाप में प्रिय-पात्र के सहसा अनुपस्थित होने का मानसिक आघात तथा उससे उत्पन्न विषण्णता की स्थिति दिखलायी गयी है। युवतियां `त्रास` और `तामस` (जड़ता ?) से पीड़ित हैं। विरहदशा की तीव्रता का माफन आग में जलने की पीड़ा कहकर किया गया है -

वप दद्दोह तस विन सर नारा।

विरह-दग्ध युवतियों की चेष्टाओं और भावस्थितियों - शास्त्रीय शब्दावली में कायिक और सात्त्विक अनुभावों का वर्णन बहुत कुछ काव्यशास्त्रीय पद्धति पर ही किया गया है। सामूहिक भावदशाएं और व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएं दोनों चित्रांकित हुई हैं। अपने नववय प्रिय को अपने निकट न पाकर युवतियां हतबुद्धि और स्तंभित सी होकर समझ नहीं पातीं कि किसने उनके पति का हरण किया है।

नव वै गोपोह कैन पिया मुयै पिया !

(किसने हमारे नववय प्रिय को "हमसे" छिपा लिया, हम मरी जा रही हैं !)

एक स्त्री अपने प्रिय के रूप का स्मरण करती है, दूसरी उसके गुणों की प्रशंसा, तीसरी इस आशंका से भयभीत होती है कि कहीं उसने `वीरगति` प्राप्त न की हो। अन्त में उनके विरह-शोक को उन्माद की दशा तक पहुंचाया गया है जिसमें वे अपने वसन फाड़ डालती हैं, वेणीबन्धनों को काट डालती हैं, आधी रात को पागल-सी उसे खोजने निकल पड़ती हैं, उन्हें अपनी सुध-बुध नहीं रहती, गले से मणिहार फिसलकर गिर जाते हैं। इसी विक्षिप्तावस्था में वे कृष्ण

की वस्तुस्थिति की सूचना देती हैं। इस प्रकार मानसिक आघात, दुःख, रूप-स्मरण, गुण-प्रशंसा, आशंका, अस्तव्यवस्तता, उन्माद आदि की भावस्थितियों में नारी-मन की विरह-पीड़ा को व्यंजित किया गया है। प्रेम के इस पक्ष का भावांकन दैहिक संस्कारों से मुक्त नहीं तो उनका अतिक्रमण अवश्य करता है। काम-बुभुक्षा से अधिक यहां प्रणय का भावात्मक धरातल उभरा है।

हृदयराग के रूप में प्रणय-भाव की व्यंजना एक और स्थल पर हुई है। उषा के प्रेमालिंगन में बद्ध अनिरुद्ध को सहसा असुर सेना घेर लेती है तो वह मत्त हाथी-सा उठकर निहत्था ही उससे युद्ध करने को चल पड़ता है। उषा उसे यों निरस्त्र युद्ध में जाने से रोकती है। यह स्थिति कृति को संभवतः उसका सबसे सुन्दर गीत दे गयी है। यहां प्रेम-पात्र के लिए प्रेमिका की चिन्ता, दुश्चिन्ता, व्याकुलता, अनुराग आदि की भावनाओं की तहें खुली हैं। पिता के क्रोध की आशंका से भयभीत उषा इस कल्पना मात्र से कांप उठती है कि उसके सुधांशु-आनन प्रिय का युद्ध में अंग-भंग न कर दिया जाए –

गला सुधांशु आनना ज़ि अंग-मंग मारणे

- - - - - - - - - - - - - -

म्याने स पितस आनसे रोष चढ़ि महारणे !

अपने पिता के कोप से अपने प्रेमी की रक्षा की भावना उषा के नारी-हृदय के एक अत्यंत कोमल पक्ष को उद्घाटित करती है। पर जब कामिनी के कर्चों का पाश अनिरुद्ध को रोकता नहीं और वे भारी संख्या में असुर सैनिकों को हताहत कर विजयी होकर लौटते हैं तो गर्व और हर्ष की मिश्रित भावना उषा के मन में दौड़ जाती है। यह भावना उषा द्वारा गले के मणिहार की लड़ी तोड़कर अनिरुद्ध पर वारने और उसे अपनी कुसुमलता-सी भुजाओं में बांध लेने की बाह्य प्रतिक्रिया में संकेतित हुई है –

उषि चतुरोय चढ़ठेत गलहार मणिलड़

दयतिस बाल्वेत परिहार्यनतिकरणे
मुजयुग नाल बनेत ता टट्ठ कुसुमलू !

प्रेम के इन्द्रधनुषी रंग अपनी अनेक छायाओं में 'बाणासुर-कथा' में खिले हैं - उत्कण्ठा से लेकर दुश्चिन्ता, हर्ष और गर्व तक।

युयुत्सा के भाव चित्र

'बाणासुर-कथा' के कथा-तन्तु यदि एक छोर पर प्रेम से स्पन्दित हैं तो दूसरे छोर पर युद्धोत्साह से। काव्य के अथ में ही बाणासुर की उत्कट युयुत्सा सहसा उबलती हुई दिखायी गयी है। युद्ध के बिना जीवन का उसके लिए कोई अर्थ नहीं पर शिव से एक महायुद्ध का वरदान पाने पर असुर का आह्लाद शुद्ध रूप से वीरत्व की भावना नहीं युद्धोन्माद मात्र है। वीरत्व की सही भावभूमि पर अनिरुद्ध और कृष्ण स्थित दिखाये गये हैं। उषा के परिरम्भन में बंधे अनिरुद्ध की सहसा खूंख्वार असुर सैनिकों से घिरने पर जो प्रतिक्रिया दिखायी गयी है, उसकी संज्ञा है वीरता ! द्वार शत्रु खड़ा ललकारता हो और वह गलबांही में, वनिता के कर्चों में उलझा रहे यह उससे कैसे हो सकता है। स्वकर्म को नमन कर वह तो निहत्था ही शत्रु से जा भिड़ेगा -

धिक् - धिक् म्यानेस यादव जम्मस
वनति कचा मज्ज कथान युद्ध करा
नमित स्वकम्मस

उषे अथच्छोन हह थान !

(धिक्कार हो मेरे यादव जन्म को। री वनिता, मैं कर्चों में उलझा रहूं क्या (इस समय) या स्वकर्म को नमन कर निहत्था ही युद्ध करूं।)

वीर की दृष्टि यह नहीं देखती कि उसके शत्रुओं की संख्या कितनी है, उसे बस शत्रु की ललकारती हुई मुद्रा असह्य हो जाती है। हाथ में बस द्वार की

बर्गला लिए अनिरुद्ध का सम्पूर्ण शत्रुवाहिनी पर टूट पड़ने का वीर-बिम्ब काफी प्रभावशाली है । निश्चय से यहाँ अतिशयोक्ति से काम लिया गया है, पर अतिशयोक्ति भी एक काव्य-कौशल है जो किसी वास्तविकता की ओर इंगित करता है ।

भारतीय काव्यशास्त्र उत्साह को वीरत्व का मूल प्रेरक भाव (स्थायी भाव) मानता है, पर उत्साह के साथ निर्भयता की भी एक मनोभूमि होती है जिसमें वीरत्व अंकुरित होता है । अनिरुद्ध के युद्धोत्साह के पीछे यही मनोभूमि है । महारथ पर आसीन, महाधनु को टंकारता हुआ, अपनी सहस्र भुजाओं में पट्टिश, शूल, तोमर, परिघ , गदा आदि शस्त्रास्त्र लिये बाणासुर को आते देख निहत्थे अनिरुद्ध विचलित नहीं होते, हँस पड़ते हैं और उसी दिशा की ओर मुड़ पड़ते हैं -- तनुत्राण विहीन, अभय मन :-

घन्य सो नर तनुत्राण विहीनो कौनोय
- - - - - - - - - - - - - - - - -
बाल अजेय यो असरस बाणास आव अभयमन !

क्रोध और भय की रंग-छायाएं

कृष्ण में उत्साह और क्रोध - जिसे काव्य-शास्त्र रौद्र का केन्द्रीय भाव मानता है - दोनों का समतोलन है , दोनों एक-साथ उबल पड़ते हैं । कृष्ण की यह मनोदशा वाह्य-प्रतिक्रियाओं (अनुभावों):उनके रोम खड़े हो जाने और ससैन्य बाणासुर को मार डालने की घोषणा में संकेतित हुई है -

दप्पो हरे असुर बाण महागरुद्धो
मारान अज़ कटके सह बु अवश्य ! (२३६)

युद्ध में बाणासुर की दर्पोक्तियों के प्रतिक्रिया स्वरूप भी कृष्ण में क्रोध की स्थिति दिखायी गयी है -

एते वाक्य-समूह किष्णस चरे बाणा सुराने कृदि
कूरे जलौघ सागर जनी क्रोधोगने घूर्णितो

(बाणासुर के ये वाक्य कृष्ण को बुरे लगे । प्रलय काल के सागर की भांति उनका क्रोध उफन पड़ा ।)

शौर्य की नकारात्मक परिभाषा देते हुए कृष्ण बाणासुर को चुनौती देते हैं –

बाणा संग्रामि
थिक्कन ना तिम शुर
जिन उयं तू पुनामि
विखेत रण कूर !

`बाणासुर कथा` की पंक्तियों में क्रुद्ध बाणासुर के भी अनेक बिम्ब हैं । क्रोध तो उसका लगभग स्वभाव-गुण ही है । अविवाहिता उषा के शीलभंग का समाचार सुनकर असुर का अनिरुद्ध के प्रति क्रोध कुल के अपमान की चेतना से क्षुब्ध एक पिता का क्रोध है – यह उसके प्रबल अहम् को सबसे बड़ी चुनौती है । अत: वह ज़हरीले सांप-सा फुफकार उठता है और तुरन्त सारी असुर सेना को बुलाकर कुल को दूषित करने वाले अनिरुद्ध के वध की आज्ञा देता है । यहां क्रोध की तीव्रता को पहले उपमा (ज़हरीले सांप-सा ? क्रुद्ध) के माध्यम से इंगित किया गया है और फिर क्रोधी व्यक्ति की चेष्टा बाणासुर द्वारा असुर सेना को बुलाकर अनिरुद्ध के वध की आज्ञा द्वारा व्यंजित की गयी है । बाण को अनेक स्थानों पर क्रोध से भभकता हुआ दिखाया गया है । अनिरुद्ध द्वारा अपनी समस्त सेना को नष्ट-भ्रष्ट हुई देख वह क्रोध से जल उठता है –

नष्ट भ्रष्ट निज कटुक पश्येत
कोपे बाण जलो तत्काल !

पर `क्रोध से जल उठा` मात्र से क्रोध की पूर्ण व्यंजना नहीं होती । सारे काव्य में

बाणासुर के क्रोध से उसकी कन्या उषा भय-कम्पित रहती है ।

भय की स्थिति अनिरुद्ध के प्रहारों से विचलित भाग रही असुर-सेना के गति-चित्रों में अंकित है । चीखते-चिल्लाते हुए, घने उदरों से रक्त टपकाते हुए, रथ और घोड़े, अस्त्र और शस्त्र युद्ध-भूमि में ही छोड़ असुर भयातंकित हो अपने प्राण-बचाने को भाग खड़े होते हैं । वे इतने भयभीत हैं कि आत्म-निवासिन को अनिरुद्ध से लड़ने से कहीं बेहतर समझते हैं । भीत व्यक्ति भय के आलम्बन के सामने ठहर ही नहीं सकता ! यहाँ 'बाणासुर-कथा' में सामूहिक संत्रास की स्थिति दर्शायी गयी है ।

चिन्ता और आशंका की सीमा-रेखाओं का स्पर्श करता हुआ भय अनिरुद्ध को अकेले और निहत्थे असुर सेना से युद्ध न करने के अनुनय-अनुरोध में व्यंजित हुआ है । उषा को डर है कि भारी संख्या में आये असुर सैनिक अनिरुद्ध को मार डालेंगे, कि उसके पिता असुर बाण को महारण में भारी क्रोध बढ़ेगा जिसका परिणाम अनिरुद्ध के लिए भयंकर होगा । अपने प्रणयी के अमंगल की संभावना से भयभीत एक सुकुमार प्रेमी-हृदय की धड़कन यहाँ सुनी जा सकती है ।

शोणितपुर के निकट पहुँचने पर संरक्षक अग्नि के प्रभाव से बलराम जब अपने तथा कृष्ण और प्रद्युम्न के शरीरों को कंचनवर्णी हुआ देखते हैं तो वे भयभीत हो जाते हैं । ज्वर द्वारा फेंकी गयी भस्म की जलन से भी बलराम को भय लगता है कि कहीं उनके प्राण ही न निकल जाएं । दोनों अवसरों पर कृष्ण भय की स्थिति का निराकरण करते हैं ।

वैचित्र्य का तत्व और हास्य

हास्य के भी कुछेक उदाहरण मिलते हैं, पर उनमें उसका अभिधात्मक कथन पात्र है । जम्हाइयाँ लेते हुए, अर्द्ध-निद्रित तीन पैर और तीन सिरों वाले विचित्र प्राणी-ज्वर को युद्ध के लिए आते देख बलराम हँस पड़ते हैं । यह दैहिक वैचित्र्य-जनित साधारण कोटि का हास्य है । अनेक पताकाओं तथा किंकिणियों से युक्त

रथ में सवार, हज़ार हाथों में विभिन्न शस्त्रास्त्र लिए पर्वताकार बाणासुर को युद्ध-भूमि में आते देख अनिरुद्ध उसके इस आडम्बर पर हंस पड़ते हैं। इस हास्य में उपहास की ध्वनि है।

माध्यम का सौन्दर्य

काव्य में भाषा अर्थात् शब्द के माध्यम से भाव का संप्रेषण होता है। शब्द एक प्रकार से भाव के ही प्रतीक-रूप हैं - उनमें प्रारंभ से ही भाव की स्थिति होती है। कवि का अनुभव, उसका संप्रेष्य या कथ्य इन ध्वनि-प्रतीकों में भाव-की स्थिति के कारण ही अभिव्यक्ति का रूप धारण करता है। काव्य का शाब्दिक माध्यम, डॉ० रघुवंश के शब्दों में, 'अपनी विभिन्न शक्तियों से काव्य में वर्णित रूप और भाव दोनों की व्यंजना करता है। शब्द में अर्थ सन्निहित है जो भाव-बिम्ब ग्रहण करने से पहले पर-प्रत्यक्ष के स्तर पर ध्वनि-बिम्ब ग्रहण करता है।'[१६] संस्कृत के काव्य-चिन्तकों ने शब्द में भाव-रूप की स्थिति को शब्दार्थ के अभेद सम्बन्धी अपनी धारणाओं में स्पष्ट किया है। अतः काव्य में माध्यम अथवा अभिव्यक्ति का सौन्दर्य 'शब्द' का ही सौन्दर्य है जिसमें भाव अथवा रूप का सौन्दर्य भी सन्निहित है। काव्य-माध्यम का यह सौन्दर्य बिम्ब योजना, प्रतीक विधान अलंकरण, भावणिक-संगीतात्मक गुणों तथा काव्य भाषा से सम्बन्ध रखता है।

बिम्ब रचना और ऐन्द्रिक संवेदन

'बाणासुर कथा' की बिम्ब-योजना पर दृष्टिपात करने से पूर्व हम काव्य के सन्दर्भ में बिम्ब के स्वरूप और प्रयोग पर विचार करेंगे। बिम्ब, सार्त्र के अनुसार वस्तु के विषय में हमारी चेतना है। इलियट के अनुसार 'बिम्ब उस अनुभूति की गहनता का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसमें हम प्रवेश नहीं कर पाते।' स्टीफेन जे० ब्राउन को उद्धृत करते हुए डॉ० कैलाश वाजपेयी लिखते हैं कि साहित्य में बिम्ब से तात्पर्य होता है कलाकार की उस क्षमता से जिसके सहारे वह बीती हुई घटनाओं

और विषयवस्तु का रंग, ध्वनि , गति, आकार-प्रकार सहित देश-काल-परिस्थिति को ध्यान में रखकर शब्द-चित्रों में वर्णित कर देता है और यह शब्द-चित्र ठीक उसी प्रकार का होता है जैसा कि उस घटना या वस्तु का स्वरूप था ।[१७] ब्राउन के विचार में बिम्ब-चित्रण 'शब्दों में रूप खड़ा करना मात्र न होकर पाठक के विचार और मनोवेगों को उद्वेलित करने वाली कलापूर्ण प्रक्रिया है ।'[१८] संक्षेप में बिम्ब किसी अमूर्त वस्तु या अनुभव को मूर्त और सजीव बनाता है, उसकी मानसिक पुनरोत्पत्ति करता है । काव्य की रचनात्मकता का वह एक महत्वपूर्ण अंग है । बिम्ब-रचना द्वारा काव्य में चित्र-शिल्प का विकास होता है । काव्य मूलत: चित्रों की ही भाषा है । काव्य में उपस्थित घटना-स्थितियों, भावनाओं, संवेदनाओं के साथ बिम्ब हमारा चाक्षुष या दृष्टिगत सम्बन्ध है । बिम्बों के प्रयोग के सम्बन्ध में डॉ० कुमार विमल के विचार इसी दिशा में इंगित करते हैं । वे लिखते हैं - 'बिम्ब भावों को रूप देता है, कारण, वह भाव जगत में आयी हुई वस्तुओं या उनके आसंगों का कल्पना-शक्ति से निर्मित मानसिक चित्र हुआ करता है ।'[१९]

इन्द्रिय बोध के अनुसार बिम्बों के पांच प्रकार होते हैं - रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द से सम्बद्ध । पश्चिम के सौन्दर्य तात्विकों ने इसी आधार पर उनके विजुअल (चाक्षुष), ऑडिटरी (श्रावणिक), गस्टैटरी (आस्वादात्मक), वालफेक्टरी (गन्ध गुण से सम्बन्धित) और टैक्स्टाइल (स्पर्श्य) ये पांच भेद माने हैं । इनके अतिरिक्त थरमल अर्थात् शीत-ताप बोध सम्बन्धित बिम्ब , किनएस्थेटिक अर्थात् 'अंग-विश्राम-बोधक बिम्ब — बिम्बों के ये और दो भेद भी माने गये हैं । काव्य में चाक्षुष और श्रावणिक बिम्बों का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग मिलता है । सभी प्रकार के एन्द्रिय बिम्ब किसी न किसी मात्रा में दृष्टिगुण लिये होते हैं ।

काव्य बाह्य जगत् के प्रति हमारे संवेदनों को स्पन्दित करता है अत: बिम्ब-विधान कवि की सौन्दर्य-चेतना का निकष बन जाता है । 'बाणासुर-कथा'

में अनेक शब्द-चित्रों को बिम्बों का धरातल प्राप्त हुआ है। विस्तार की दृष्टि से उसमें आये अधिकांश बिम्ब सान्द्र हैं। वस्तु-बिम्बों के अंतर्गत 'प्रतिचित्रात्मक' और 'व्याप्ति-व्यंजक' दोनों प्रकार के बिम्बों को बाणासुर-कथा में युद्ध-वर्णनों में विशेषकर देखा जा सकता है, जैसे -

लागे बाहु सहस्रस बल विचे आयुध रोषे
पट्टिस, शूल, परिघ, गद, तोमार गणोजिनकाते
शक्रध्वज शतबुत महचे जन नभ-दोषे
बन्ने गो धा गुलि भुजानें ते महाते
वज्जन तत् महारथस पवना बहुशत बवले
किंकिनी ध्वज भुत पताकिन तेम अतिरचे
पश्येत त अनिरुद्ध बीरवरे हस्सोन लवले !

(हज़ार बलवती भुजाओं में सरोष (उसने) अस्त्र धारण किये - पट्टिस, शूल, परिघ, गदा, तोमर - कितनों को गिना जाए। भुजाओं में वह गोधांगुलियां पहने हुए था। लगता था सैकड़ों शक्र-ध्वज आकाश में लहरा रहे हों। उस महारथ से लगी सैकड़ों किंकिनियां बज रही थीं ; अत्यंत रक्तवर्ण की ध्वजाओं से वह युक्त था। यह देख कर वीरवर अनिरुद्ध हंस पड़ा !)

गत्यात्मक बिम्ब के द्वारा गतियुक्त वस्तुओं, स्थितियों अथवा दृश्यों का अंकन किया जाता है। भय के कारण युद्ध-भूमि से भाग रहे असुर सैनिकों का एक गति-चित्र है :-

चल्ले नाद रचेत त्रावेत् रथि गोडे त दवेक्ष्णा
श्वान्या कौच जानुबन्ध फरते नानास्त्र मयुयेकरा
मडे भास्देन प्रवान गने एषेन युद्धि पुना
हेलि चाय वनान् गुहान् महावीरेन्द्रे नष्टे पुना

(दानव चीखते-चिल्लाते हुए भागे-रथ , घोड़े , कवच, जानुबन्ध तथा

अनेक भयंकर अस्त्रों को छोड़कर, चिल्लाते हुए जो वे पुन: युद्ध करने आये तो उस महावीरेन्द्र ने उन्हें पुन: नष्ट कर दिया) ।

चाक्षुष बिम्बों की विपुलता

'बाणासुर कथा' में आये बिम्ब अधिकतर चाक्षुष प्रतीति पर आधारित हैं - उनमें दृष्टि द्वारा वस्तु अथवा रूप का भावन हुआ है । एक ऐसा ही बिम्ब उषा की रूपाभा का सुन्दर प्रभाव-चित्र प्रस्तुत करता है:-

रूप चढ़ू सकलि जगि अन्धर
वैशाखे भाशु शयनि निज मंदिर
कौमुद ज़न काशू !

यहां संसारभर में सर्वप्रशंसित उषा के रूपसौन्दर्य को 'चन्द्रज्योत्सना' में रूपायित किया गया है । एक अन्य स्थल पर नायिका का रूपांकन 'फूलों से लदी हुई लता' के बिम्ब द्वारा हुआ है । इसी भांति अनिरुद्ध की रूप-शोभा का चाक्षुष बिम्ब अंकित करती हुई यह पंक्ति है:-

कमलय इ कमलय रचू शोभाले
रजन कारि दिशो कमलय इ कमलय !

अर्थात (उसकी दृष्टि ने सब ओर कमलों ही कमलों की सृष्टि की । शत्रुओं से घिरे हुए अनिरुद्ध का दृश्य-गुण पर आधारित एक बिम्ब है:-

परिघ क्षोवक्षस दित तदि कोनोय सुमतेक्षण
उष आकलिस अभ्राज़न मान वलो !

शत्रु की शर-वृष्टि के बीच परिघ लिए हुए अनिरुद्ध उषा को ऐसे लगते हैं कि सूर्य को मेघों ने ढंक लिया हो । अनिरुद्ध की ओर बढ़ी आ रही असुर सेना मद-मस्त हाथियों के बढ़े आ रहे झुण्ड के रूप में बिम्बांकित हुई है । यहां असुरों

के विराट आकार के साथ-साथ उनके रंग का भी बोध होता है और साथ ही उनके दर्पीले स्वभाव का भी । उत्प्रेक्षा ने चित्र को विशेष सजीव बना दिया है । अनिरुद्ध के विरह में संतप्त उनकी पत्नियां कुरड़ियों की भांति आंखों से 'शोणित' बहा रही हैं । इस भाव-व्यंजक बिम्ब में 'शोणित' द्वारा विलाप करती हुई वनिताओं के हृदय की गहरी वेदना को मूर्तित करने का प्रयास किया गया है । एक और भाव-व्यंजक बिम्ब में क्रोध की तीव्रता को व्यंजित किया गया है — क्रोध में बाणासुर यों भभक उठा जैसे घी के पड़ने से यज्ञस्थल की अग्नि :-

आज्य अनेक उपरिपव्(?)रशेत्

यज्ञथलि ज़न अनुल विशाल !

एक स्थल पर युद्ध के लिए प्रयाण कर रही असुर-सैना को 'शरदकाल में बह रहे गरल नद' के रूप में चित्रांकित किया गया है :—

गरल नद ज़न शरद बहि - - - -

'बाणासुरकथा' में इस प्रकार के अधिकांश चाक्षुष बिम्ब तुलनात्मक हैं । इनमें तुलना के लिए विभिन्न पशु-पक्षियों, प्राकृतिक दृश्यों आदि को लिया गया है । विलाप करती हुईं अनिरुद्ध की पत्नियों की दशा की व्यंजना एक सुन्दर बिम्ब द्वारा की गयी है :-

वदन रजनी पंकज सर फुलिते तत्क्षण नयनु जला पूरेण !

अश्रुपूर्ण नयनों वाली उन वनिताओं की दशा ऐसी हो गयी थी जैसे सरोवर में खिले हुए कमल की रात्रि में । युद्ध में असुरों का आचरण पानी उछालते हुए समर्थ गजराज के बिम्ब द्वारा दर्शाया गया है :-

यसेत ते धमाते तोय गजेन्द समर्थे !

इस बिम्ब से गति का भी बोध होता है ।

चाक्षुष बिम्बों के चित्रात्मक सौन्दर्य का रंग-बोध से गहरा सम्बन्ध है। 'बाणासुर कथा' में रंग-बोध से युक्त कुछेक बिम्ब अवश्य आये हैं, पर उनकी संख्या बहुत कम है, और इनकी चर्चा की जा चुकी है। रंगों का प्रयोग का कवि की आंतरिक प्रकृति के साथ गहरा सम्बन्ध है, पर इस लघु-कलेवर कथा-काव्य में अवतार भट्ट को अपने रंग-परिज्ञान से पाठक को परिचित कराने के अवसर अधिक नहीं मिले हैं।

नाद-बिम्ब

'बाणासुर कथा' में जिन कवि-समयपरक और मिथकीय बिम्बों की सृष्टि हुई है उनका उल्लेख भी रूप के चित्रांकन के सन्दर्भ में हो चुका है। ध्वनि अथवा नाद-सम्बन्धी कुछेक बिम्ब भी हमारी विवेच्य कृति में मिलते हैं। बाणासुर द्वारा अनिरुद्ध के विरुद्ध प्रयुक्त शक्ति हुंहुंकार करती हुई चली गयी :-

लायून अनिरुद्धस ज़न बाणो
हुंहुंकार करनो गो तत् !

यहां 'हुंहुंकार' में ऐसी वर्ण-योजना है जिससे एकदम श्रावणिक बिम्ब का निर्माण होता है। कृष्ण से युद्ध करने आ रहा 'ज्वर' ऐसी भयंकर रणगर्जना करता है मानो सहस्रों मेघों का निर्घोष हो :-

यो स्वन मेघ सहस्रस सो विरचोन वानि !

अन्य राग-बोधों से सम्बन्धित बिम्ब

अन्य राग-बोधों का स्पर्श करने वाले बिम्ब भी हैं। रस को संवेदित करने वाले एक भावव्यंजक बिम्ब में अनिरुद्ध की स्वप्न में देखी छवि से रोमांचित उषा की मनोदशा मूर्तित हो उठी है -

बुय यो हृदया ज़न अमृत घटा !

-अमृत के घट की भाँति मधुर है अनिरुद्ध का रूप उषा के लिए !

व्यग्र और व्याकुल मन की शाँति का भाव व्यंजित करने के लिए एक सुन्दर थर्मल बिम्ब का प्रयोग हुआ है -

शुनेत उषि सर अनले दजि सुध वश्शुन ज़न वप्स पडोस

-चित्रलेखा की बात सुनकर आग में जली हुई उषा के शरीर पर मानों अमृत की वर्षा हुई ।

संगीत चेतना : श्रावणिक मूल्य

सामान्यतया यह माना जाता है कि काव्य-रचना में जब दृश्य-गुण या चित्रात्मकता की प्रधानता हो तो संगीतात्मकता घट जाती है और जब संगीतात्मकता की प्रवृत्ति अधिक हो तो बिम्बात्मकता घट जाती है । 'बाणासुर कथा' में बिम्बात्मकता और संगीतात्मकता का दृश्य-नादमय संगम है, पर अपनी संगीतात्मकता के कारण यह काव्य-कृति अधिक प्रभावित करती है । लय-तुक-अनुप्रास-यमक आदि पर निर्भर उसकी संगीत-योजना उसके कलात्मक सौन्दर्य का मुख्य आधार प्रस्तुत करती है । जाक मरितां के अनुसार संगीत-चेतना कवि के कलात्मक सहज ज्ञान (आर्टिस्टिक इन्ट्यूशन) का एक अंश है । भावानुसार कोमल तथा परुष वर्णों का चयन कविता में संगीत की मधुरिमा भरने के लिए अनिवार्य हो जाता है । इसी उद्देश्य से लय का प्रयोग भी होता है । कवि अवतार भट्ट ने भाव की गति के अनुसार जो लय-योजना की है, उस-पर कृति के छन्द-लालित्य के अन्तर्गत विचार किया जा चुका है । 'बाणासुर कथा' में शब्दों के उत्कृष्ट ध्वनि-मूल्य साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं कि उसका रचयिता अत्यन्त सूक्ष्म और श्रेष्ठ संगीत-चेतना से युक्त एक जागरूक कलाकार है । स्वर-मैत्री तथा व्यंजन-साम्य पर आधारित कोमल संगीत के अतिरिक्त वर्ण-समूहों की आवृत्ति में स्वर और व्यंजन दोनों के आंतरिक श्रावणिक मूल्यों को उद्घाटित करने वाला नाद-माधुर्य झंकृत है । भावों का

अनुसरण-सा करता हुआ यह संगीत सर्वत्र प्रवहमान है। शिव-पार्वती के मधुर केलि-विलास को चित्रांकित करने वाली इन पंक्तियों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है –

कर ताबत हर भयहर सरसे गिरिज सहितो
शोणितपुर वर - उपवन अन्धर नर-नाट केलि
दाणस रहो शशि शत-मुख धारेत तफ्ना सहितो
वर वनितन शत-गन्धर निपवर रहे तत् वेलि
अति वीणा पर वज्जन बहुशत तत्थल सरसे
मुरज मिर्दंग , पट्ह, कलहागण पुषशर सरनी !

यहां कर, हर, सरसे, अन्धर, नर, वर, पुषशर , सरनी, रुचिकर आदि शब्दों में 'अर' की आवृत्ति से एक ऐसे संगीत-प्रवाह की सृष्टि हुई है जो रति-भाव के अनुकूल मधुर वातावरण प्रस्तुत करता है। उपवन, वरवनितन, दाणस; मुरज, मिर्दंग; पट्ह, पुषसर ; में व्यंजन-आवृति पर आधारित अनुप्रास तथा अंतवर्ती तुक का नाद-सौन्दर्य है ! स्वर-आवृत्ति द्वारा भी तरल संगीत की सृष्टि इन पंक्तियों में हुई है -

गजगमना शशि वदना रुचिकर तेमा अच्छारसा
नच्चन तनि अलसो हरिणादिशा मधुकर वयना

यहां स्वर-ध्वनि 'आ' की आवृत्ति छन्द को मन्द लय देती हुई अत्यन्त कर्ण-प्रिय प्रभाव उत्पन्न करती है। सुमित्रानन्दन पंत के अनुसार 'काव्य-संगीत के मूल तन्तु स्वर हैं, न कि व्यंजन'। बाणासुर-कथा में दोनों का सम्मिलित सौन्दर्य उद्-घाटित हुआ है। जिन स्थलों पर प्रेम अथवा किसी कोमल-भावना की व्यंजना है वहां संगीत का नदी की लहरियों-सा उतार चढ़ाव है जो स्वर और व्यंजन दोनों की मैत्री का प्रभाव है ; जहां वीर तथा रौद्र भावनाओं का प्राबल्य है वहां स्वर और व्यंजनों का साहचर्य स्वयं अनुकूल लय-ताल की सृष्टि करता है। वैशाख महीने के उजले पक्ष की द्वादशी की रात। अपने स्वप्न-पुरुष की मधुर कल्पना में लीन

चंचल सखियों से घिरी उषा लेटी हुई है । इस प्रसंग की मृदुता-मधुरता को `लि` पर आधारित अनुप्रास ने कितने सौन्दर्य से मुखरित किया है –

चाको सकल सखे जन वलिहू
सर्व-सुर्टक वपाजन ललिहू
निवसि उल्ललिहू पर्यंकि विमनय !

मन्दाक्रान्ता की मन्द-बिलम्बित लय में नायिका को सखी द्वारा दिये जा रहे आश्वासन का प्रभाव `ह` और `ऊ` व `ए` की आवृत्ति द्वारा कितनी उपयुक्तता से इन पंक्तियों में ध्वनित हुआ है –

एतौ वालि हरिण नयनि सादरे तस वनौ विस्सि
स्ताठि हिमकर मुखि चित्रलेखि सकाशे
सतसोभागि उरतट उषिभू रेवान्त वनौ
माजि मा चू कृदफस अन उर शौक हि चन्द कौशू

तरंगायित रूप-सौन्दर्य के प्रभाव को `अंग` की पुनरावृत्ति नीचे दी गयी पंक्तियों में अधिक गहरा बनाती है -

पिय-पिय उचरंग रति-संगस जात दिवा
देयि कुरंग नेत्र निज अंग अनंग लयि !

एक ही शब्द की दो बार आवृत्ति और एक ही ध्वनि-समूह (अन्) की कई बार आवृत्ति द्वारा भी कवि ने सफलतापूर्वक संगीतात्मक प्रभाव उत्पन्न किया है –

दशन् – अशन् छेलि काम रुचि महाते
अधर – अधर बन्दा न वंश आसन दरपे
कचन – कचन कन्ता गौर कृष्णा नुहाते
नयन – नयन बालि बाण काम म्यथाने !

इन पंक्तियों का उच्चारण मात्र ही रूपासक्त और काम-पीड़ित मन की दशा को ध्वनित करता है।

बहिर्संगीत के साथ-साथ शब्दों की आंतरिक संगति भी 'बाणासुर-कथा' के शब्द चयन में देखने को मिलती है। कृति में सर्वत्र संस्कृत के शब्द-न्यास की मधुरता, मृसणता और सुघरता मिलती है।

तुक अर्थात् अन्त्यानुप्रास के प्रयोग में भी कवि की संगीत-चेतना व्यक्त हुई है। तुक की प्रभावशीलता के विषय में डॉ० कुमार विमल के शब्द उद्धरणीय हैं — '- - - - तुक या अन्त्यानुप्रास अथवा चरणान्त की अक्षर मैत्री से लय पर नियंत्रण करने और पदों के नाद-सौन्दर्य की वृद्धि में सहायता मिलती है।[२०] छायावादी कवि सुमित्रानंदन पन्त ने, जो काव्य-संगीत के विषय में अत्यधिक सचेष्ट कवि रहे हैं, 'पल्लव' की भूमिका में लिखा है — ' तुक राग का हृदय है, जहां उसके प्राणों का स्पन्दन विशेष रूप से सुनाई पड़ता है। राग की समस्त छोटी-बड़ी नाड़ियां मानो, अन्त्यानुप्रास के नाड़ी-चक्र में केन्द्रित रहती हैं। जहां से नवीन बल तथा शुद्ध रक्त ग्रहण कर वे छन्द के शरीर में स्फूर्ति का संचार करती रहती हैं। जो स्थल ताल में सम का है, वही स्थान छन्द में तुक का है।'[२१] तुक के सम्बन्ध में आज का कवि इतना रूमानी नहीं है, पर संगीतात्मक मूल्यों के प्रति विशेष रूप से सचेत कवि के लिए उसका विशेष महत्व है। 'बाणासुर-कथा' के रचयिता, अवतारभट्ट, ऐसे ही कवि प्रतीत होते हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि 'बाणासुर कथा' में शब्द-शब्द का भाव, ध्वनि और अर्थ की दृष्टि से उपयुक्त चयन द्वारा भाव और शिल्प की अनुकूलता उत्पन्न की गयी है। प्रबन्ध काव्य होते हुए भी "बाणासुर-कथा" में गीति-की-सी गुंजरणशीलता उसके काव्य-सौन्दर्य को अधिक प्रेषणीय बनाती है। आधुनिक कला-चिन्तक भी कविता में स्वर-संगति के महत्व से इनकार नहीं करते।

अलंकरण : यमक-क्रीड़ा

भाषा के अलंकरण में परम्परित काव्य-शास्त्र यमक को भी महत्वपूर्ण मानता है। मध्यकालीन कश्मीरी कविता में यमक के प्रयोग की प्रवृत्ति विशेष प्रबल थी जिसका अच्छा उदाहरण परमानंद की कविता प्रस्तुत करती है। `बाणासुर कथा` में यह प्रवृत्ति अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होती है। कई स्थानों पर तो पूरे के पूरे पद्य में यमक की क्रीड़ा है —

> करहिं कर वत्रे कार्य मि चित्रलेखे
> कर हिम्कर बत्रे सो दिवा जात मेलो
> कर हिम कर वत्रे देह च्छदोस लेखे
> कर हुम् कर वत्रे अज मि नार पेलो ।

कहीं डण्डा, कहीं कर-पल्लव, कहीं हिमकर-सा मुख, कहीं आरा — `करहिं कर-वत्रे` को अनेक अर्थों में खींचा गया है। अन्य आलंकारिक प्रयोगों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, आदि सादृश्य मूलक तथा अनुप्रास जैसे शब्द-संगीत में सहायक अलंकारों का उल्लेख `बाणासुर कथा` के काव्य-सौन्दर्य के विवेचन में हो चुका है।

भाषिक सन्दर्भ : शैलीगत रूप

`बाणासुर कथा` की भाषिक-संरचना पर भाषाशास्त्रीय दृष्टि से विचार आगे किया जा रहा है। उसकी आंतरिक प्रकृति के विषय में ध्वनि तथा अलंकरण आदि के सन्दर्भ ऊपर विचारित हो चुके हैं। उसकी शब्दावली, जैसा संकेतित हो चुका है, संस्कृत शृंगारिक काव्यों की-सी ललित, मसृण और श्रवण-मधुर है। इसका कारण विषय-वस्तु के रोमांसीय तत्वों में देखा जा सकता है। तत्कालीन बोलचाल की भाषा के कितने निकट इस कृति की भाषा रही होगी इस विषय में कुछ भी स्पष्ट नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें प्रयुक्त अधिकांश शब्द एकदम संस्कृत के तत्सम्-अर्द्धतत्सम शब्द हैं। बीच-बीच में लिच्वे, टिंग, टंज्ज,

सुचानी, श्यूरेत, फरोस आदि देशज शब्द भी गर्के गये हैं। कोड, प्राड, खाडेत आदि शब्द ग्रामीण भाषा के तत्वों का समावेश करते हैं। एक ही अर्थ के द्योतक अनेक शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति विशेष रूप से प्रबल है। सौन्दर्य और श्रेष्ठता के भाव का द्योतन `वर` विशेषण के अत्यधिक व्यवहार से किया गया है। हृदय-कमल, सुधामय अधर, गजगमना, शशिवदना, कुरंग नयना, भुजलतायें आदि आलंकारिक शब्द-प्रयोग अधिकतर पारम्परिक हैं। श्रेष्ठ संगीत-चेतना विद्यमान है किन्तु सूक्ष्म संकेतवत्ता दृष्टिगोचर नहीं होती। पौराणिक विषय होने के कारण उसमें धार्मिक भाषा की कुछेक विशिष्टताएं आ गयी हैं। धार्मिक भाषा में दृष्टान्तों, रहस्यात्मक संकेतों, प्रतीकों का प्रयोग सामान्य यथार्थता से भिन्न एक यथार्थता के उद्घाटन के लिए किया जाता है और जैसा कि पॉल टिलिच और रेण्डाल चार्ल्स मारिस का हवाला देते हुए डॉ० कुन्तल मेघ ने लिखा है ; धार्मिक कथन किसी नैतिक कार्य का निर्देश भी करते हैं अत: उनमें इस कार्य का आह्वान तथा उसके प्रति श्रद्धा भाव होता है।[22] बाणासुर कथा में पौराणिक-मिथकीय शब्द-प्रयोग अवश्य आये हैं, किन्तु किसी विशिष्ट कर्म की प्रेरणा अथवा निर्देश उसमें नहीं है, न दृष्टान्तों अथवा अन्यापदेश का प्रयोग। पर कृष्ण के हरि, नारायण, प्रभु, आदि सम्बोधन, शिव-पार्वती के केलि-विलास के लिए `नरनाटकेलि` का प्रयोग भाषा के धार्मिक धरातल पर प्रेषणीय हैं। इसी भांति अलौकिक पात्रों के कार्यों अथवा रूप-वर्णन के सन्दर्भ में उनके देखने अथवा सुनने से पापों के मिटने का संकेत धार्मिक भाषा के संस्कार को प्रकट करता है। इसी प्रभाव के अन्तर्गत बाण ब्रह्मास्त्र और वरुणास्त्र हो गये हैं, कृष्ण, विष्णु और हरि बन गये हैं। स्तुतियों और प्रार्थनाओं में भी धार्मिक भाषा का स्पष्ट रंग है। पर इसके बावजूद उसमें प्रतीकात्मक रहस्यवत्ता की प्रवृत्ति नहीं। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि धार्मिक संस्कारों के बावजूद बाणासुर कथा की भाषा मूल्यांकन के लिए कलात्मक मानदण्डों की मांग करती है, धर्मशास्त्रीय मानदण्डों की नहीं।

सन्दर्भ - संकेत

१. डॉ० रघुवंश : प्रकृति और काव्य (संस्कृत खण्ड), पृष्ठ २८ ।
२. डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा : सौन्दर्य शास्त्र, पृष्ठ ६६ ।
३. [illegible]
४. [illegible]
५. डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा : सौन्दर्य शास्त्र, पृष्ठ ६६ ।
६. प्रकृति और काव्य, पृष्ठ २६ ।
७. उपरिवत् , पृष्ठ ४७ ।
८. परिशोध (पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़), पृष्ठ १३ ।
९. पृष्ठ ७१ ।
१०. तुलसी आधुनिक वातायन से, पृष्ठ २६७ ।
११. प्रकृति और काव्य, पृष्ठ ३० ।
१२. तुलसी आधुनिक वातायन से, पृष्ठ २३५ ।
१३. बा० का० ।३३-३८.
१४. बा० का० ।४१
१५. प्रकृति और काव्य , पृष्ठ ३४ ।
१६. उपरिवत् , पृष्ठ २६ ।
१७. स्टीफेन जे० ब्राउन - वर्ल्ड ऑफ इमेजरी , पृष्ठ १-२ : डॉ० कैलाश वाजपेयी द्वारा अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प' के पृष्ठ ७८ पर उद्धृत ।
१८. उपरिवत् ।
१९. छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ १८६ ।
२०. उपरिवत् , पृष्ठ ४२ ।
२१. सुमित्रानंदन पंत : पल्लव : भूमिका , पृष्ठ ४० ।
२२. तुलसी आधुनिक वातायन से, पृष्ठ २८४ ।

-----

(५)

कश्मीरी भाषा : उद्गम और विकास-दिशाएं

विकास-यात्रा का प्रथम चरण : वैदिक युग , ग्रियर्सन की स्थापनाएं , कश्मीरी और पैशाची , कश्मीरी और दरद परिवार : सम्बन्धों की पुनर्परीक्षा , दरद और भारतीय आर्यभाषा : सम्बन्ध-सूत्र , कश्मीरी और दरद बोलियां : असमानताएं , ध्वन्यात्मक अन्तर , रूपात्मक अन्तर, कश्मीरी : भा० आ० भा० परिवार में स्थान , शब्दावली , ध्वनि-तत्व, कश्मीरी संख्यावाचक शब्दों की प्राचीनता , रूप-संघटना , कश्मीरी और अन्य न० भा० आ० भाषाएं : समानता के सूत्र , कश्मीरी एक विशिष्ट भाषा , कश्मीरी भाषा : विकास का लिखित साक्ष्य : `कुम्भ सम्प्रदाय` की भाषा , राजतरंगिणी के वाक्यांश , महानय प्रकाश : सर्वगोचर देश-भाषा , ललेश्वरी के `वाख्य` , शेख नुरुद्दीन के `श्लोक` , मध्यकालीन विकास , वर्तमान स्थिति : धर्म के आधार पर बोली-भेद ।

(५)

कश्मीरी भाषा : उद्गम और विकास-दिशाएं

विकास-यात्रा का प्रथम चरण : वैदिक युग

कश्मीर घाटी और किश्टवाड़ के लगभग १०,००० वर्गमील के क्षेत्र में बोली जाने वाली कश्मीरी भाषा कुछ नहीं तो इतनी प्राचीन अवश्य है कि उसकी विकास-यात्रा का प्रारम्भ भारतीय इतिहास के वैदिक युग से मान लिया जाए। इसका प्रमाण है कश्मीरी में उन भाषिक तत्वों का अस्तित्व जो ऋग्-वैदिक आर्यों की छान्दस भाषा में जीवित थे। इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं जॉर्ज ब्यूहलर जिनके अनुसार कश्मीरी उन बोलियों में से किसी एक से विकसित है जिनसे संस्कृत का निर्माण हुआ है। डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि १००० ई० पू० से भी पहले भारतीय आर्यों की एक शाखा जो ऋग्वेद की भाषा से साम्य रखने वाली बोलियां बोलती थी, कश्मीर और उसके समीपवर्ती पहाड़ी क्षेत्रों में आ बसी थी।[१] स्वयं ऋग्वेद से उपलब्ध भौगोलिक तथ्य कश्मीर के पर्वतों और नदियों का प्राचीन आर्यों की गतिविधियों से स्पष्ट सम्बन्ध स्थापित करते हैं। ऋग्वेद में पर्वत विशेष के नामों में हिमवन्त (हिमालय) का उल्लेख है जिसके एक शिखर मूजवन्त पर आर्यों की

उनका प्रिय पेय देने वाली सोमलता उगती थी । ज़िम्पर के अनुसार यह पर्वत-शिखर कश्मीर घाटी के दक्षिण-पश्चिम में स्थित था ।[२] नदियाँ प्रारम्भ से ही भारत के सांस्कृतिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग रही हैं । सप्तसिन्धु की जलधाराओं को नमन करने वाले ऋग्वैदिक कवि-मनीषी ने अपनी नदी-स्तुति में जिस वितस्ता का नाम बार-बार लिया है वह कश्मीर की वेथ ही तो है ! मरुद्-वृधा को, जिसे रॉथ और ज़िम्पर चिनाब और वितस्ता का सम्मिलित जल-प्रवाह मानते हैं[३], स्टीन ने कश्मीर की नदी मरुवर्दवान् के रूप में पहचान स्थिर की है ।[४] उत्तर से दक्षिण की ओर बहते हुए यह नदी किश्तवाड़ में चिनाब से जा मिलती है । इसी भाँति ऋग्वेद की प्रसिद्ध रसा नदी कश्मीर की ही वर्तमान शेवक है, जो सिन्धु की एक सहायक नदी है ।[५] सिन्धु की एक और सहायक वैदिक नदी 'श्वैती' को भी कश्मीर में प्रवाहित होने वाली गिलगित नदी से एकता मानी गयी है ।[६] इस प्रकार वैदिक - नदी-स्तुतियाँ जिस भू-खण्ड से हमें परिचित कराती हैं उसका निश्चय से कश्मीर भी एक अंग है । वैदिक साहित्य में अपनी भाषा की शुद्धता के लिए विख्यात उदीच्य जनों के उत्तरकुरु, उत्तरमद्र, मूजवन्त, महावृषल, गांधारि, बाह्लीक, काशि, केकय, और काम्बोज जनपदों का उल्लेख है । इनमें से उत्तरकुरु को, जिसे देवभूमि कहा गया है, ज़िम्पर कश्मीर में स्थिति मानते हैं ।[७] वैदिक युग के इन्हीं प्रतिभा के धनी उत्तरकुरु जनों की बोली को वर्तमान कश्मीरी भाषा का आदि-स्रोत कहा जा सकता है ।

कश्मीरी के वैदिक मूल की ओर ब्यूहलर के अतिरिक्त मार्जेन्स्टर्न, ब्लॉक, टर्नर, सिद्धेश्वर वर्मा, श्रीकण्ठ तोषखानी प्रभृति विद्वानों ने भी इंगित किया है । उस में ऐसे अनेक शब्द-रूप आज भी जीवित हैं जिन्हें सीधे प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा से सम्बन्धित माना जा सकता है और जो अन्य नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में उपलब्ध नहीं होते । उदाहरण के लिए कश्मीरी शब्द 'योदवय' को लिया जा सकता है जिसके लिए आर्यमूल की अधिकांश भारतीय भाषाओं में 'यदि' शब्द प्रचलित है । दोनों शब्द प्रा० भा० आ० भा० के हैं पर 'यो॒दवय' वैदिक

भाषा में `यद-उ-वय`[८] के रूप में मिलता है और अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है। इसी भाँति क० `अद्`, जिसका प्रयोग तब, तब फिर, तो, इसके बाद, अत: आदि अर्थों में किया जाता है ऋग्वैदिक भाषा में `अधा` के रूप में विद्यमान है (मोनियर विलियम्स, संस्कृत डिक्शनरी, पृष्ठ १६, खा० ३)। कश्मीरी `अचुन` - आना, घुसना, प्रवेश करना वैदिक अत्येति (ऋ पा० अच्वैति) से विकसित है।[९] अन्य किसी न० भा० आ० भा० में यह शब्द नहीं मिलता। ऋग्-वैदिक तक्ष् से विकसित कश्मीरी `तछुन` (= खुरचना, करेदना) और `छान` (= तरखान/तखान) शब्द अन्य भारतीय आर्य भाषाओं में मिलते।[१०] धौंकनी अथवा पशु की खाल के अर्थ में व्यवहृत कश्मीरी `खस्तु` शब्द सीधे वैदिक `बस्त` (- बकरी) अथवा `बस्ताजिन`[११] (बकरे की खाल) से यथावत् चला आया है। इसी भाँति वैदिक `प्रस्तर`, जिससे हिन्दी का `पत्थर` शब्द व्युत्पन्न है, कश्मीरी `पथर`, `पथुर` (= नीचे, भूमितल) में अपने मूल अर्थ में सुरक्षित है। ऋ० वै० पुष (पुष्यति = पनपना) से बने हैं क० पोशुन, पोशि शब्द[१२] जिनका प्रयोग `पूरा पड़ना`, `बने रहना` अर्थों के घोतन के लिए किया जाता है। इसी तरह से `फूल` के लिए कश्मीरी शब्द पोष सं० पुष्प से नहीं वै० पुष्य से विकसित हुआ है जिसका अर्थ है `एक पौधा विशेष`। पाली में भी इसका `पुस्स` रूपान्तर मिलता है जिसका अर्थ भी `फूल` ही है।[१३] ऐसे ही और भी अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिनमें मूल वैदिक का अर्थ, स्वरूप और ध्वन्यात्मक विशेषतायें सुरक्षित हैं। प्राचीनता की छाप लिए इस प्रकार के कुछ शब्दों के उदाहरण टर्नर के नेपाली कोश का हवाला देकर, डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा प्रस्तुत करते हैं[१४] -

`संस्कृत `कुलाल` से विकसित कश्मीरी `क्राल` (कुम्हार) शब्द इस भाषा का भारतीय आर्य भाषा की शब्दावली की एक प्राचीनतर परत से सम्पर्क दर्शाता है, क्योंकि कश्मीरी ही एकमात्र न० भा० आ० भाषा है जिसने एक प्राचीन शब्द अर्थात् कुलाल (= कुम्भकार) के अवशेष को सुरक्षित रखा

है। कुम्हार के लिए वैदिक शब्द कुलाल जैसा कि महीधर के प्रमाण पर सेंट पीटर्स को संस्कृत जर्मन कोष दर्शाता है, प्रथम बार वाजसनेयी संहिता में आया है। कुम्हार के लिए अधिक प्रचलित संस्कृत शब्द `कुम्भकार` वैदिक युग के बाद ही दृष्टिगोचर होता है, उदाहरणार्थ मनु० और महाभारत में (द्रष्टव्य मोनियर विलियम्स : संस्कृत-अंग्रेज़ी शब्द कोश)। दो भारतीय आर्य भाषाओं, नेपाली और सिंहली, ने संभवत: `कुलाल` का प्रभाव, ने० कुमाले (कुम्हार) और सिं० `कुम्बल` में सुरक्षित रखा है। इन शब्दों में `ल` संभवत: `कुलाल` के प्रभाव की ओर संकेत करता है (द्रष्टव्य टर्नर का नेपाली शब्द कोश)। अन्य न० भा० आ० भा० केवल सं० कुम्भकार से ही विकसित रूप दर्शाती हैं, यथा- गु० म० कुंबार, पश्चिमी पहाड़ी कुमार, हि० कुम्हार।

`कोछुर्व`, कछुआ, इस बात की ओर संकेत करता है कि प्राचीनतर संस्कृत रूप `कच्छप` - नहीं रहा होगा, क्योंकि उस स्थिति में कश्मीरी में अपेक्षित रूप होता `कोछव्`; किन्तु कोछुर्व का `ह` संकेतित करता है (जैसा कि `कछुवा` के संदर्भ में टर्नर ने इंगित किया है) कि यह शब्द कल्पित रूप *कक्ष्प - तक चला जाता है जो वैदिक रूप कश्यप से व्युत्पन्न हुआ होगा। कछुए के लिए `कश्यप` ही प्राचीनतर शब्द है और वाजसनेयी संहिता में आया है। `कच्छप` तो बाद में मनु० और महाभारत में आता है। कश्मीरी `ह` के सं० `क्ष` से सम्बन्धित होने का साक्ष्य अंछ्छ (आंख) < सं० अक्षि, मछि (मक्खी) < सं० मक्षिका जैसे उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

श्रीकण्ठ तोषखानी कश्मीरी के इतिहास के वैदिक युग से भी प्राचीन होने की संभावना की ओर इंगित करते हैं। उदाहरण के लिए वे कश्मीरी `रोस्त` और `सोस्त` शब्दों को लेते हैं जो सं० `रहित` और `सहित` के लिए प्रयुक्त होते हैं।[१५] रोस्त और सोस्त स्पष्टतया पूर्व-वैदिक शब्द हैं क्योंकि `स` का `ह` में परिवर्तन एक बाद की घटना मानी गयी है। हो सकता है कि कश्मीरी मूल भारोपीय भाषा से सम्बन्धित एक अति प्राचीन भाषा रही

हो । प्रो० श्रीकण्ठ तोषखानी को कश्मीरी में कई ऐसे शब्द मिले हैं जो लिथुआनी भाषा के शब्दों से साम्य रखते हैं । कश्मीरी के कुछ ध्वन्यात्मक तत्व भी उसकी अतिप्राचीनता को ध्वनित करते हैं । उदाहरणार्थ कश्मीरी स्वर-ध्वनियों ओ , उ॒ और ऊ॒ को लिया जा सकता है जो जर्मन ö , ü और ü ध्वनियों की भाँति उच्चरित होती हैं । जर्मन की ही भाँति कश्मीरी की एक प्रमुख ध्वन्यात्मक विशेषता है उसकी 'उम्लौट' पद्धति - अर्थात् परवर्ती स्वर-ध्वनि के प्रभाव से पूर्ववर्ती स्वर अथवा व्यंजन ध्वनियों में परिवर्तन। कश्मीरी में यह परिवर्तन शब्दान्त में स्थित 'मात्रा-स्वरों' (एक प्रकार से लगभग अनुच्चरित अथवा जपित स्वर अ , इ, उ, उ॒ , ऊ॒) के प्रभाव से निश्चित नियमानुसार होते हैं, उच्च स्वर निम्न-स्वरों में बदलते हैं, कंठ्य ध्वनियाँ तालव्यों में और दन्त्य, दन्त्य-संघर्षी ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं । मात्रा-स्वरों के साथ-साथ इस परिवर्तन में लिंग का भी हाथ होता है । कंठ्य अथवा दन्त्य वर्ग के कठोर अल्पप्राण तथा महाप्राण व्यंजन क्रमशः कठोर अल्पप्राण और महाप्राण तालव्यों अथवा दन्त्य-संघर्षी ध्वनियों में बदलते हैं ; कोमल व्यंजनों में भी इसी भाँति परिवर्तन होता है । इस प्रकार क , ख , ग च, छ , ज में बदल जाते हैं और त , थ , द ,न च़ , छ़, ज़, ञ में परिवर्तित होते हैं । उदाहरणार्थ पु० पोक (चला) का स्त्रीलिंग में पंच्य हो जाता है । इसी भाँति तोत (= गर्म , पु०) का तच (स्त्री०) , वोथ (उठा) का वछ (उठी), दोद (जला) का दज़ (जली) और तोन (पतला) का तञ हो जाता है ।

कश्मीरी स्वर-ध्वनियाँ ह्रस्व ए और ओ पहाड़ी तथा कुछ अन्य नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में तथा पाली में भी मिलती हैं । कश्मीरी की विशिष्ट व्यंजन ध्वनियाँ च़ , छ़ , ज़ में च़ तथा ज़ क्रमशः मराठी और असमिया में मिलते हैं । वस्तुतः ये भी मूल भारोपीय भाषा से कश्मीरी के प्राचीन-सम्बन्ध को साक्ष्यांकित करते हैं ।

मूल भारोपीय की भाँति वैदिक भाषा में भी स्वराघात का बहुत महत्व

था । वैदिक छन्दों का उदात्त, अनुदात्त और स्वरित् संगीतात्मक स्वराघात कश्मीरी ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत तथा विवाह आदि के अवसर पर स्त्रियों द्वारा किये जाने वाले `वनवुन` (मंगल-गीतों) में अब भी सुरक्षित है । वैदिक संगीतात्मक स्वराघात के ये रूप और किसी न० भा० आ० भा० में नहीं मिलते ।

कश्मीरी भाषा और वैदिक संस्कृत के सम्बन्धों को रेखांकित करने वाले इतने ही नहीं और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं । यहां केवल यह कहना अभिप्रेत है कि कश्मीरी भाषा के मूल वैदिक और पूर्व-वैदिक आर्य भाषा में खोजे जा सकते हैं ।

ग्रियर्सन की स्थापनाएं

कश्मीरी में वैदिक-संस्कृत के जिन तत्वों की ओर ऊपर संकेत किया गया है उन के बावजूद जब ग्रियर्सन उसे भारतीय आर्य भाषा परिवार से निष्कासित कर भारत-ईरानी परिवार के अधिक निकट ठहराते हैं तो आश्चर्य होता है । कश्मीरी को वियोगात्मक से पुन: संयोगात्मक रूप में परिवर्तित होती हुई आर्य भाषा का एकमात्र उदाहरण बताते हुए वे उसे मूल वैदिक से सम्बन्धित होने की संभावना की ओर इंगित तो करते हैं पर उसका भाषिक वर्गीकरण करते हुए वे उसे दरदजा भारत-ईरानी भाषा मानते हैं । दरद भाषाओं को वे प्राचीन भारत-ईरानी आर्यभाषा से उस बिन्दु पर पृथक् हुआ भाषा-समूह मानते हैं जब आर्यों का भारत में आगमन हुआ था । उनकी कुछ विशेषताएं प्राचीन भारतीय आर्यभाषा से मिलती हैं, कुछ ईरानी से और कुछ उनकी अपनी मौलिक विशेषताएं हैं । ग्रियर्सन इन भाषाओं के लिए `पैशाची` संज्ञा उचित समझते हैं पर इस शब्द के अप्रिय अर्थ के कारण `दरद` शब्द का ही प्रयोग करते हैं ।[१६] कश्मीरी के वर्गीकरण के संदर्भ में वे लिखते हैं[१७] कि कश्मीर दो हज़ार वर्ष तक संस्कृत अध्ययन का पीठ रहा है और यह असंभव है कि इस अवधि में यहां की भाषा पर आयातित भारतीय संस्कृति का प्रभाव नहीं पड़ा हो । इस भाषा पर भारतीय संस्कृति

का इतना गहरा प्रभाव रहा है कि खास भारतीय भाषाओं के अनेक रूप और मुहावरे उसने आत्मसात् कर लिये। पर इस सारी अवधि में पिशाच आदिवासियों की प्राचीन बोली उसका सुदृढ़ आधार रही है। कश्मीरी को शिणा-खोवारी आदि पैशाची भाषाओं के वर्ग में रखते हुए ग्रियर्सन निष्कर्षित करते हैं – "उस भाषा (कश्मीरी) में वे सभी तत्व मौजूद हैं जो पिशाच भाषाओं की अपनी विशेषता हैं और वे भी जो पैशाची और ईरानी में समान रूप से हैं।"[१८] यह मानकर भी कि ऋग्वेद की भाषा से साम्य रखने वाली कोई बोली बोलने वाले आर्यों की एक उपशाखा ईसा पूर्व १००० वर्ष कश्मीर में आ बसी थी, डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या भी ग्रियर्सन की ही स्थापना का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार[१९] वैदिक युग के बाद भी ब्राह्मण जाति के आर्य अपनी भारतीय-आर्य "बोलचाल की" संस्कृत और तत्पश्चात् प्राकृत आदि लेकर आये और कश्मीर तथा समीपवर्ती हिमालय-प्रदेशों में बस गये। मध्यदेश और उत्तरी पंजाब के भारतीय आर्य प्राकृतों और अपभ्रंश ने कश्मीरी की दरद आधार भूमि को गहराई से परिवर्तित किया। अत: यह कहा जा सकता है कि दरद आधारभूमि पर भारतीय आर्यभाषा के तत्वों की परत बिछाने के फलस्वरूप कश्मीरी भाषा जन्मी। पर कश्मीरी की यह दरद आधार-भूमि क्या थी इसके लिए संतोषजनक भाषिक साक्ष्य न तो ग्रियर्सन ही जुटा पाये हैं और न डॉ० चाटुर्ज्या ही। जहाँ तक डॉ० चाटुर्ज्या का सम्बन्ध है कश्मीरी को दरद भाषाओं से जोड़ने वाली उनकी घोषणा उनकी किसी मौलिक गवेषणा का परिणाम न होकर ग्रियर्सन की मान्यता की आवृत्ति मात्र है। इन दो प्रतिनिष्ठित भाषा तत्व वेत्ताओं के विचारों के परिणामस्वरूप कश्मीरी को एक दरद भाषा मान लेने वाली धारणा बद्धमूल-सी हो गयी है।

ग्रियर्सन अपने पैशाची, दरद और कश्मीरी के समीकरण से इतने मोहाविष्ट हैं कि प्रमाण के लिए अप्रचलित शब्दों और अपवादों के उदाहरण प्रस्तुत कर वे ज़बर्दस्ती कश्मीरी पर पैशाची की ध्वन्यात्मक और रूपात्मक विशेषताएं आरोपित करने का हठ करते हैं। कश्मीरी के सम्बन्ध में उनका निष्कर्ष-बिन्दु

यह है : "कश्मीरी एक मिश्र-भाषा है जिसका आधार पैशाची परिवार के दरद वर्ग की कोई ऐसी भाषा है जो शिणा से सम्बन्धित है। भारतीय संस्कृति और साहित्य का इस पर काफी सशक्त प्रभाव पड़ा है और इसकी शब्द-सम्पदा का अधिकांश भाग अब भारतीय मूल का है और उत्तर भारत की संस्कृत-वर्ग की भारतीय आर्य भाषाओं से सम्बन्धित है। पर, चूंकि इसकी आधार-भूमि, दूसरे शब्दों में इसके ध्वनि तत्व, इसके शब्द-रूप, इसका वाक्य-विन्यास इसका छन्द-विधान — सब पैशाची है। इसका उसी के अनुरूप वर्गीकरण किया जाना चाहिए, न कि संस्कृत वर्ग की एक भाषा[२०] के रूप में।"

ग्रियर्सन के कश्मीरी भाषा सम्बन्धी विवेचन से तीन मुख्य बातें उभर कर आती हैं — (१) कश्मीरी संस्कृत वर्ग के भारतीय आर्य-भाषा परिवार की सदस्या न होकर पैशाची अर्थात् दरद भाषा है ; (२) इस नाते वह ईरानी से काफी साम्य रखती है, यद्यपि उसकी कुछ अपनी विशेषताएं भी हैं और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं से कुछ समानताएं भी और (३) संस्कृत वर्ग की आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं से उसकी ध्वनि तत्व, रूप तत्व, वाक्य-विन्यास, छन्द-शास्त्र पर आधारित उसकी असमानताएं इतनी अधिक हैं कि उसे इस वर्ग के साथ नहीं रखा जा सकता। समय आ गया है कि ग्रियर्सन की इन स्थापनाओं पर पुनर्विचार किया जाए।

कश्मीरी और पैशाची

सबसे पहले हम इस धारणा को लेते हैं कि कश्मीरी का सम्बन्ध पैशाची से है जिसका दूसरा नाम दरद भाषा समूह है। ग्रियर्सन पिशेल की भांति हिन्दूकुश और भारत (अब पाकिस्तान भी) की पश्चिमोत्तर सीमा के बीच के क्षेत्र को प्राचीन पिशाच जनों का आदि निवास मानते हुए केकय (पश्चिमी पंजाब और व्राचड (सिन्ध) में उनकी बस्तियों का उल्लेख करते हैं। वहां से वे, ग्रियर्सन[११] के अनुसार, वर्तमान भील प्रदेश और गोवा तक फैल गये। कुछ प्राकृत वैयाकरणों

ने भी पश्चिमोत्तर भारत (अब पाकिस्तान), अफगानिस्तान से लेकर द्राविड़ प्रदेश तक पिशाचों को व्याप्त दिखलाया है। षड् भाषा चंद्रिकाकार पाण्ड्य, केकय, वाह्लीक, सह्य, नेपाल, कुन्तल, सुधेष्ण, भोज, गान्धार, हैव, कन्नोजन तक पिशाच भाषाओं का क्षेत्र माना है। मार्कण्डेय ने अन्त में 'केकेयं शौरसेनं पांचालमिति च त्रिधा' कहकर इसके क्षेत्र को सीमित कर दिया। हार्नले पैशाची को स्वतंत्र भाषा मानने के पक्ष में नहीं। उनके मत से तो द्राविड़ों द्वारा आर्यों की भाषा के विकृत उच्चारण का परिणाम है पैशाची। इस प्रकार पैशाची के क्षेत्र के विषय में कुछ भी निश्चय से नहीं कहा जा सकता। यदि इस सम्बन्ध में ग्रियर्सन के तर्क को मान भी लिया जाए तो भी यह प्रश्न अनुत्तरित रहता है कि क्या दरद और पिशाच एक ही जाति के नाम हैं? दरदों का न तो कोई लिखित इतिहास उपलब्ध है न कोई साहित्य, जबकि पैशाची भाषा ने 'बृहत्-कथा' जैसा ग्रन्थ दिया है जो 'बृहत्कथामंजरी' और 'कथा-सरित्-सागर' जैसी कृतियों में अब भी सांस ले रहा है। स्वयं ग्रियर्सन कहते हैं कि एक बार अपने पर्वतीय निवास में बस जाने के बाद दरद जाति के लोगों को सिकन्दर (३२७ ई० पू०) और तैमूर (१३९८ ई०) के आक्रमणों को छोड़ कर उन्हें प्रायः इतिहास ने अकेला छोड़ दिया[१२], तो फिर समय के किस बिन्दु पर उनकी बस्तियां केकेय और ब्राचड से लेकर मध्यदेश और गोआ तक फैल गयीं। क्षण भर के लिए यदि दरद और पिशाच को एक ही मान लें तो क्या पैशाची की वे ध्वन्यात्मक विशेषताएं कश्मीरी में मिलती हैं जिन्हें प्राकृत वैयाकरणों ने गिनाया है? ग्रियर्सन ने जो उदाहरण बटोर लाये हैं वे एक तो सभी कश्मीरी के नहीं अपितु अनेक दरदिस्तान की भाषाओं से लिये गये हैं, दूसरे कश्मीरी में दो-तीन फारसी शब्दों के उच्चारण को सम्पूर्ण भाषा की ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधि बना दिया गया है और तीसरे अपवादों को नियम मान लिया गया है। वररुचि, हेमचन्द्र आदि प्राकृत वैयाकरणों के अनुसार पैशाची में स्पर्श वर्गों के तीसरे और चौथे घोष व्यंजन पहले और दूसरे अर्थात् अघोष हो जाते हैं। कश्मीरी में एकाध अपवाद को छोड़कर यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। शताब्दियों से कश्मीर

की राजधानी सिरीनगर (श्रीनगर) ही रही है, सिरीनकर नहीं । कहीं `गुरु` को कोई `कुरु` कहता है या गच्छ को कच्छ । लल्लेश्वरी लिखती हैं – `गगन चय भूतल चय, चय दिन पवन तु राथ ।` `गगन का गकन होते नहीं सुना । एक नहीं, एक दो अपवादों को छोड़कर सभी शब्दों में आदि, मध्य अथवा अन्त्य `ग` ग ही रहता है । सं० घ का कश्मीरी में अल्पप्राणीकरण के कारण `ग` उच्चरित होता है, `क` नहीं ( मेघो > मेगो ; संभव नहीं)। और `द` `त` नहीं पदान्त में थ के रूप में उच्चरित होता है-- दामोदर के तामोतर होने का प्रश्न ही नहीं । + रात्रि > राथ, रक्त > रथ, गति > गथ, मति > मथ, पश्चात > पथ, प्रति > प्रथ आदि । अन्यत्र वह प्राय: सुरक्षित रहता है । बल्कि त > द के अनेक उदाहरण मिलते हैं – अन्त > अन्द, दन्त > दन्द ।

`बाणासुर कथा` में प्रयुक्त वर्तमानकालिक कृदन्त में भी न्त > न्द, की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, दप्पन्द, नश्यन्द, न्च्वन्द आदि । इसी भांति कश्मीरी में सं० ज का `ज़` हो जाता है, च नहीं – जल > ज़ल, जर्जरित > ज़जरिथ, जीव > ज़ुव, राजा > राज़, जन > ज़ोन, उज्जवल > वोज़ुल, जाल > ज़ाल आदि। कहीं-कहीं `ज` सुरक्षित भी रहता है जैसे जटा, जय, ज्योतिष, फारसी से आए हुए शब्दों में तो वह अनिवार्यतया `ज` ही रहता है – जलद, जानावार, जिस्म, जुरमाना, जुमल, जाहिल, जंग आदि । `ष` का उच्चारण श की ही भांति होता है पर ऐसा अन्य नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में भी है । श का स नहीं होता । इसी भांति र > ल के भी दो-चार उदाहरण मिल सकते हैं पर र और ल में अभेद की स्थिति केवल कश्मीरी में नहीं है । दूसरे, यह नियम सर्वत्र लागू नहीं होता ; र को सुरक्षित रखने की ही प्रवृत्ति अधिक प्रबल है – रक्त रथ, रोष रोशुन, रात्रि > राथ, तरुणं > तरुन, रंग > रंग, रुद्र > रुद, रोग रुग, रौप्य > रौप, रक्ष > रछ, गुरु > गर, रज्जु > रज़, रोपणं > रवुन आदि । ल का र में परिवर्तन तो कश्मीरी में बहुत ही कम होता है । ण

के स्थान पर न के उच्चारण की प्रवृत्ति आज हिन्दी आदि न० भा० आ०भाषाओं में भी दृष्टिगोचर होती है। `घ` का कश्मीरी में अल्पप्राण `द` होता है थ नहीं।

पैशाची की रूपात्मक विशेषताएं भी कश्मीरी में कहीं देखने को नहीं मिलतीं। उसमें अकारान्त शब्दों की पंचमी का एकवचन `आतो`और `आतु` नहीं होता, न `त्वा` प्रत्यय के स्थान पर तून, त्थून, अथवा द्धून होते हैं। `बाणासुर कथा` में पूर्वकालिक कृदन्त के प्रत्यय `त्वा` का `एत` और `इत` और आधुनिक कश्मीरी में `इथ` हो जाता है - ~~करित्वा~~ कृत्वा > करेत (बा०क०) करिथ (आ० क०), नमयित्वा > नमेत (बा० क०), नमथि (आ० क०), धारयित्वा > दारेत (बा० क०), दारिथ (आ० क०), समित्वा > समेत (बा० क०), समथि (आ० क०) आदि। वैयाकरणों द्वारा निर्देशित पैशाची की अन्य रूपात्मक विशेषताओं से भी कश्मीरी अछूती है। इसके विपरीत कश्मीरी की जो ध्वन्यात्मक और रूपात्मक विशेषताएं हैं उनका पैशाची के सन्दर्भ में कहीं उल्लेख नहीं मिलता। सबसे बड़ी बात यह है कि व्याकरणों में कुछेक उदाहरणों के अतिरिक्त पैशाची का लिखित साहित्य कहीं उपलब्ध ही नहीं, फिर किस आधार पर ग्रियर्सन कश्मीरी और उसका सम्बन्ध स्थापित करते हैं, स्पष्ट नहीं।

कश्मीरी और दरद परिवार : सम्बन्धों की पुनर्परीक्षा

अब रही बात कश्मीरी की एक दरद भाषा होने और उस नाते ईरानी और भारतीय आर्यभाषा के मध्य स्थित होने की बात। टर्नर, ब्लॉक, एमनू, मार्जेन्स्टियर्न आदि भाषा-शास्त्रियों ने तथाकथित दरद भाषाओं और ईरानी के सम्बन्ध की धारणा को ही गलत सिद्ध कर दिया है। उन्होंने मत व्यक्त किया है कि ये भाषाएं भी भारतीय आर्य-भाषा-परिवार के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। उनमें वैदिक संस्कृत के अनेक शब्द-रूप पूर्णतया सुरक्षित हैं। यही नहीं उनकी शब्दावली का मूलाधार भी वही है जो न० भा० आ० भाषाओं का है।

ग्रियर्सन ने दरदिस्तान कहे जाने वाले क्षेत्र की भाषाओं और काफिर वर्ग की भाषाओं को एक ही नाम के अन्तर्गत हाँका है। उनके विचारों से अपनी असहमति प्रकट करते हुए मार्जेंस्टिवर्न लिखते हैं[२३]:

"मैं इन विचारों से सहमत नहीं हूं। वास्तविक काफिर वर्ग की तुलना में दरद भाषाएं शुद्ध भारतीय-आर्य मूल की हैं और वैदिक से साम्य रखने वाली पूर्वकाल की किसी भाषा तक चली जाती हैं। इस वस्तुस्थिति को यह तथ्य बदल नहीं सकता कि दरद में अनेक ऐसे प्राचीन रूप सुरक्षित हैं जो बाद की भारतीय आर्य भाषाओं में लुप्त हो गये हैं, न महाप्राणीकरण का व्यापक स्तर पर हुआ लोप ही उसे बदल सकता है।"

मार्जेंस्टिवर्न के इस निष्कर्ष का उल्लेख करते हुए एमेनू विचार व्यक्त करते हैं[२४]:

"ग्रियर्सन ने (और उनसे पूर्व भी कुछ व्यक्तियों ने) यह दावा किया था कि ये दो (दरद और काफिर) भाषा-वर्ग भारत-ईरानी की एक तीसरी शाखा बनाते हैं क्योंकि 'भारतीय-आर्य भाषाओं के पश्चात्, किन्तु अवेस्ता में मिलने वाली ईरानी की सभी प्रतिनिधि विशेषताओं के विकास से पूर्व मूल धारा से अलग हुई थीं।' ग्रियर्सन की पुस्तक प्रकाशित होने के बाद मार्जेंस्टिवर्न ने जो सामग्री एकत्रित की उससे वे इस निष्कर्ष पर (जो ब्लूल ब्लॉक, बरो आदि को मान्य है) पहुंचे कि दरद भाषाएं (कश्मीरी, शिणा, सिंधु की कोहिस्तानी, खोवार, कलाश, पशइ, तिरही) भारतीय आर्य भाषाएं हैं, किन्तु ये भारतीय आर्य भाषाओं की मध्यकालीन विकास-अवस्थाओं से नहीं गुज़री हैं, जब कि, दूसरी ओर, काफिर भाषाओं (कती, वैगली, अश्कुन, प्रसुन और कुछ सीमा तक दमेली) की एक प्रकार से विशेष स्थिति है। साक्ष्य एकत्रित करने का कार्य अन्य समीपवर्ती ईरानी और भारतीय आर्य भाषाओं से काफिर भाषाओं में गृहीत शब्दों और अन्य दिशाओं अर्थात् काफिर भाषाओं से समीपवर्ती ईरानी और भारतीय आर्य भाषाओं में गृहीत शब्दों ने काफी जटिल बना दिया है।"

दरद और भारतीय आर्य-भाषा : सम्बन्ध सूत्र

इससे ग्रियर्सन के इस मत का खण्डन होता है कि कश्मीरी एक भारतीय आर्य-भाषा न होकर उससे प्रभावित और ईरानी की भी अनेक विशेषताओं से युक्त भाषा है। कश्मीरी में दरद भाषाओं के कुछेक शब्द अवश्य आ गये हैं पर शिणा आदि दरद भाषाओं में भी कश्मीरी के अनेक शब्द चले गये हैं। टी० ग्राहम बेले, जो उसी क्षेत्र में जन्मे, पले और बढ़े हुए, दरद भाषाएं जिनके लिए मातृभाषावत् थीं, अपनी पुस्तक 'ग्रैमर ऑफ दि शिणा लैंग्वेज' में स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि शिणा पर कश्मीरी का प्रभाव पड़ा है। गुरेज़ और तिलेल के लोग तो द्विभाषी हैं और कश्मीरी भी अच्छी तरह बोल लेते हैं। द्रास घाटी में शिणा, पुरीक और कश्मीरी तीनों भाषाएं बोली जाती हैं। यही नहीं पंजाबी तथा उर्दू के भी अनेक शब्द दरद भाषाओं में आ गये हैं। ग्रियर्सन ने प्रतिनिधि दरद भाषा के रूप में शिणा और कश्मीरी का साम्य दर्शाने के लिए जिन १२८ शब्दों को उदाहृत किया है उनमें से १०७ शब्द संस्कृत-मूल के हैं। इस सूची में से कुछ उदाहरण हैं —

शिणा	कश्मीरी	संस्कृत	हिन्दी
चुर्कों	चोक	चुक्र	चूक (खट्टा)
रोष	रुश	रोष	रोष
फतू	पत	पश्चात्	पश्चात्
सीञ	सीना	सेना	सेना
पफी	पोफ	पितृ: श्वसृ	फूफी
मा	मास	मातृ: श्वसृ (प्रा०मौस्सी, मौसिआ, मासिया)	मौसी, मासी
शरी	हरुद	शरद	शरद
कोन	कान	काण	काण

शिणा	कश्मीरी	संस्कृत	हिन्दी
बो॑	बोव	भू	भया (हुआ)
हछ	हच्छ (सिराजी कश्मीरी)	ऋक्ष	रोछ
दह	दौर	दंष्ट्रिका	दाढ़ी
मज्ज	मंज़	मध्य(प्रा०मज्झ)	मध्य, में
फू	फुस	फूत्कार	फूंक
नीलो	नील (न्यूल)	नील	नीला
जो-	ज़ें -	जीव	जी (ना)
बेयें (=दोनों)	बेंयि (=दूसरी बार)	द्वितीय(प्रा०बेइय)	दोनों, दूसरी बार
दानु	दून	धनु	धनुष
अटि	अडिज्य	अस्थि	हड्डी
फुत	फुट	स्फोटयति	फूट (ना)
शाँ	शाह	श्वास	साँस
ऊँट	ऊँठ (उच्चरित रूप वूंठ)	उष्ट्र	ऊँट
गुरी	गुरुट	गौर	गोरा
शिद्रलो	शतिल	शीतल	शीतल
कां	काव	काग	कौवा
गो	गाव	गौ	गाय
नट	नच़	नृत्	नाच
जो-	ज़ें-	जायते	जन्म लेना
देज़	दोह	दिवस	दिवस, दिन
मरैं	मार (मरुन)	मरण	मरना
मिर	मर		मर
शु	हून	शुन-	सून्हा (कुत्ता)

शिणा	कश्मीरी	संस्कृत	हिन्दी
शुको	होख	शुष्क	सूखा
कोन॑	कन	कर्ण	कान
बुज्याल	बुजुल (<सं० भूमि+जल)	भूमिचल	भूचाल
खाँ	खेँ	√खाद्	खा
ग्रां	ग्रोन (ग्रहुन)	ग्रहण	ग्रहण
मुख	मोँख	मुख	मुख
हस्तो	होस्त	हस्तिन्	हाथी
मुच-	मोकल-	मुच्यते	मुक्त
वछि	वच्छि	वक्षि	बाँख
दूर	दूर	दूर	दूर
अगुई	ओँगुंज्य	अंगुलि	उंगली
अमुश	मश	√मृश	भूलना
पा	पाद	पाद	पाँव
पछ	पछ	पक्ष	पक्ष, पखवाड़ा
दि-	दि	दद	दे
जछ	दछ	द्राक्षा	दाख
सोन	स्वन	स्वर्ण	सोना
बड्डो	बोड	वृद्ध	बड़ा
हत	अँथ	हस्त (पा० प्रा० हत्थ)	हाथ
तातो	तोत	तप्त	तता, तप्त
ग्रेस्तो (=परिश्रमी)	ग्रीस्तु (=किसान)	गृहस्थ	परिश्रमी, किसान
मार (आज्ञार्थक)	मार	मार	मार
माश	मोशि कोशेँ (=बच्चे की बोली)	माष	माषा

शिणा	कश्मीरी	संस्कृत	हिन्दी
पो(= नीचे गिराना)	पोव	√पत्	गिराना
पातो	पतुर	पत्र	पात, पत्ता
सिछ(आज्ञार्थक)	हेछ	√शिक्ष	सीख
ऑटि	वुठ	ओष्ठ	ओठ, होंठ
शॉन (=थोड़ा)	छोन	शून्य(=खाली)	छूछा
मनुज़	मोहन्युव	मनुष्य	मनुष्य
मोस	माज़	मांस	मांस
अई	आस	आस्य	मुंह
नन्गो	नोन	नग्न	नंगा
दुत	दुद दुद	दुग्ध	दूध
नाम	नाव	नाम	नाम
नोवु	नोव	नव	नया
राति	रात	रात्रि	रात
नातो	नस्त	नस्त	नाक
प्रोणों	प्रोन	पुराण	पुराना
दिश	दीश	देश	देश, स्थान
हल	अल	हल	हल
लय-	लब-	लभ्	ले (ना)
बड़्यार (=गर्व)	बर्जर	वृद्धि	बड़ाई
दशिनो	दछिन	दक्षिण	दायाँ
उथ	वोथ	उत्थित	उठा
सिगेल	स्यक-	सिकता	रेत
बि	ब्योल	बीज	बीज
रूप	रोप	रौप्य	रूपा, चाँदी

शिणा	कश्मीरी	संस्कृत	हिन्दी
गछ-(आज्ञार्थक)	ग्यव	√गछ	गा-
बे-	बेह	उपविश	बैठ
दुम	दुह	धूम	धुआं
हिन	शीन	हिम	हिम
पुच	पुत्र(पोतर)	पुत्र	पुत्र, पूत
जीव(=आत्मा)	ज़ु (ज़ुव)	जीव	जीव
शत	ह्रेकत (थ)	शक्ति	शक्ति
सूरि	सिरो	सूर्य	सूरज
मोरों	मोदुर	मधुर	मधुर
चेर	चट	चट्	काटना
पिछिलिको	पिशुल	पिच्छल	चिकना
अज़ो	अज़	अप (प्रा०अज्ज)	आज
गिरोम	गाम	ग्राम	गाँव
जिप	ज़्यव	जिह्वा	जीभ
दोंन	दन्द	दन्त	दान्त
नार	नार	नाड़ी	नाड़ी
कुत(= दीवार)	कुठ (= कमरा)	कोष्ठ	दीवार,कमरा
रो-	रिव-	रुदन	रो (ना)
ग्रैंन (=पत्नी)	गरिञ	गृहिणी	गृहिणी
दारी	दोर	द्वार	द्वारी,खिड़की
मा	मस	मद्य	मदिरा
साति	सुत्य	सहित	साथ
चह	त्रय	स्त्री	त्रिया-
छिन-	छेन	छिन्न	छिन्न
आंबा	अंब	आम	आं

स्वयं ग्रियर्सन द्वारा दी गयी यह सूची[२५] सूचित करती है कि ये शब्द कश्मीरी और शिणा दोनों भाषाओं को प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से दाय के रूप में प्राप्त हुए हैं। शिणा ही नहीं, अन्य दरद भाषाओं की शब्दावली भी संस्कृत मूल के शब्द-रूपों से भरी पड़ी है। इन भाषाओं में प्रा० भा० आ० भा० की अनेक ध्वन्यात्मक और रूपात्मक विशेषताएं भी सुरक्षित हैं। कश्मीरी और अन्य न० भा० आ० भाषाओं से भी इसी कारण वे कई दृष्टियों से साम्य रखती हैं। ऊपर की सूची में दिये गये शब्दों के अतिरिक्त कुछ और शब्द जो शिणा (एक प्रतिनिधि दरद भाषा के रूप में) और अन्य नव्य भारतीय आर्य-भाषाओं के सम्बन्ध सूत्रों की ओर इंगित करते हैं, ये हैं — । अगार । (=अंगार), । अगूट । (= अंगूठा) , । अगुरु । (= गुरु भारी, यहाँ आदि स्वरागम हुआ है), । अश्रातु ।(= अश्रुक), । आश्र । (= अश्रु) ,।बाग-बिवाडु । (= बाघ +बिडाल), । बागी । (= भाग), । बर- । (= वर, पति), । बरीस । (वर्ष, बरस), । बयार । (= विस्तर), । बती । (= बत्ती), । बच्छरि- । (= बछड़ा), । बयोइकि । (= बोना, खेती करना),। बिलोइकि। (= बिल्य +कृत:) , । बिष । (= विष - द्रष्टव्य मर्धन्य ष), । बिज़ ।, (= भीति), । बुड़िओइकि । (= बूड़ना, अस्त होना), । बुज्योइकि । (= कपड़ा बुनना), । चर्ह । (= चर्वा), । कटोइकि । (= कातना), । चीलु । (= चीर, कपड़े), । चोरिटु । (= चोर), । चुषोइकि । (= चूसना), । दुत । (= दूध), । एकलु । (= अकेला), । फीश। (= फेन), । गाल । (= घाव, घायल), । गण्ट । (= घण्टा), ।गिर । (गिरि , = चट्टान), । गुणी । (= गाँठ), । गुणि ।(= धागा), । गुणिया । (= गुणा), । दुगुणिया । (= दुगना), । गुड़ । (= गुड़), । हलिझी । (= हल्दी), । हंज़ । (= हंस), । हरोइकि । (= हरना, भूख-प्यास दूर करना), । हिन । (= हिम), । हीउ । (= हृदय, हिया),

। जीनु । (= जीवित), । कलि । - विशेषण (कलह करने वाला), । कलि बीहकि । (= कलह करना), । खेन । (= घाण), । क्रिये । (= कृमि, कीड़ी), । लश । (= लज्जा), । मणूक । (= मण्डूक, मेंढक), । मनु । (= मनुष्य, मानव), । मरुच । (= मिर्च), । मलु । (=मस्तिष्क), । मोस, मांस । (= मांस), । मुशरु । (= मिश्रित), । मुष्टके । (= मुष्टि, मुट्ठी), । मुठ । (= मुठ), । मुयि । (= मुवा, मरा), । ओन । (= अब, यहाँ ओ अत्यन्त ह्रस्व है), । पकु । (= पक्का - फल आदि), । पोथि । (= पोती), । रोग । (= रोग), । रोङ्ग । (= रंग), । सण्ड। (= साण्ड), । शेउर । (= श्वसुर, ससुर), । शेउ । (= श्वेत), । शिङ्ग । (= शृंग, सींग), । शीश । (= शीश), । सिवोकि । (= सींना), । सुरि । (= सूर्य का प्रकाश, धूप), । तल । (= तला), । तालु । (= तालु), । टेरु । (= टेढ़ा), । ठाकुर । (= नाई) — विशेष रूप से द्रष्टव्य, तु० हिन्दी नाउ ठाकुर, यो (= जौ), ज़ीगु (= दीर्घ) आदि। शब्दों की यह लम्बी सूची, जिसमें उर्दू और पंजाबी से उधार लिये हुए शब्द सम्मिलित नहीं हैं, केवल उदाहरण के लिए प्रस्तुत की गयी है। उद्देश्य केवल यह दिखलाना है कि न० भा० आ० भाषाओं और दरद वर्ग की भाषाओं के शब्द-गत आश्चर्यजनक रूप से समान है। शिणा और न० भा० आ० भाषाओं में रूप-साम्य के भी अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।[२६] शिणा में उत्तम पुरुष एकवचन के रूप आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के उत्तम पुरुष सर्वनाम के एकवचन के रूपों से काफी मिलते हैं - यथा म, मह (कर्ता०), मा (कर्म०), मट (सम्प्र०), मॅथ (करण= मुझसे, मेरे द्वारा), अधिकरण (मॅर = मुझमें, मज़ = मेरे ऊपर)। इसी प्रकार मध्यम पुरुष एकवचन के रूप 'तू' से बनते हैं। प्रश्नवाचक - अनिश्चयवाचक सर्वनाम - को (पु०), के (स्त्री०) (= कौन, कोई) भारतीय भाषाओं में अपने समानार्थक शब्दों के काफी समान हैं। संख्यावाचक

विशेषणों के विषय में भी यही कहा जा सकता है — एक, दु, चे (तीन), चार, पाँछ (पाँच), ष (छः), सत (सात), अँष (आठ), नौं (नौ), दह (दस), बीरह) (= बीस- तु० पं० बी), शल (= सौ), हजार, लँक (लाख)। आवृत्ति के द्योतन के लिए संख्यावाचकों के साथ गुणियाया (= गुणा) जोड़ा जाता है - दुगुणियाया (दुगना), दहगुणियाया (दस गुना)। कालवाचक क्रियाविशेषण अश (= आज), मौस (मास), बरिष (वर्ष), रात्यो (रात को) सूर्यो (दिन को) भी भारतीय - आर्य-भाषाओं से दरद के सम्बन्धों को रेखांकित करते हैं। शिणा में सप्ताह के दिवसों के नाम आश्चर्यजनक रूप से प्राचीन हैं —

आँदित (< आदित्य)	-	इतवार
चुदुर (< चन्द्र)	-	चन्द्रवार , सोमवार
अंगार (< सं० अंगार = मंगलग्रह)	-	मंगलवार
बोदु	-	बुधवार
बिरिस्फत	-	बृहस्पतिवार
शुकुर	-	शुक्रवार
शिम्शेर	-	शनिवार ।

स्थानवाचक क्रियाविशेषणों में कोनि (कहीं, कहाँ?), दूर (= दूर) कचि (सं० कक्षे , काछे), कान्यो (कहाँ से) मज़्हा (मध्य में), मुछी (सम्मुख), पार (उस पार), वापस आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में अपने समनानार्थक शब्दों से रूप-साम्य रखते हैं। संयोजक अव्यय 'अगर', 'लेकिन', 'या', 'यानि' आदि उर्दू से लिये गये हैं। सम्बोधन ए, ओ, कष्टव्यंजक करुणाव्यंजक— 'हाय' आदि भी भारतीय-आर्य ही हैं। सहायक और अस्तित्ववाची क्रियाएं हनुस, हनु, हनें, हनिस्क, हिन्दी हूं, है, हैं, होंगे के बहुत निकट हैं। यहाँ शिणा का सम्पूर्ण व्याकरण देना हमारा उद्देश्य नहीं, केवल यह अभिप्रेत है कि कश्मीरी ही नहीं अन्य नव्य भारतीय आर्य भाषाओं से भी दरद भाषाएं काफी साम्य रखती हैं। प्रश्न यह है कि तब फिर अकेली कश्मीरी को ही क्यों दरद भाषा

विशेषणों के विषय में भी यही कहा जा सकता है — एक, दु, चे (तीन), चार, पोंछ (पांच), ष (छः), सत (सात), अँष (आठ), नौं (नौ), दह (दस), बी(ह) (= बीस- तु० पं० बी), शल (= सौ), हज़ार, लँक (लाख)। आवृत्ति के द्योतन के लिए संख्यावाचकों के साथ गुणिया (= गुणा) जोड़ा जाता है - दुगुणिया (दुगना), दहगुणिया (दस गुना)। कालवाचक क्रियाविशेषण अश (= आज), मोस (मास), बरिष (वर्ष), रात्यों (रात को) सूर्यो (दिन को) भी भारतीय - आर्य-भाषाओं से दरद (भाषाओं) के सम्बन्धों को रेखांकित करते हैं। शिणा में सप्ताह के दिवसों के नाम आश्चर्यजनक रूप से प्राचीन हैं -

आदित (< आदित्य) - इतवार
चुदुर (< चन्द्र) - चन्द्रवार , सोमवार
अंगार (< सं० अंगार = मंगलग्रह) - मंगलवार
बोदु - बुधवार
बिरिस्फत - बृहस्पतिवार
शुकुर - शुक्रवार
शिम्शेर - शनिवार ।

स्थानवाचक क्रियाविशेषणों में कौनि (कहीं, कहाँ?), दूर (= दूर) कचि (सं० कक्षे , काछे), कान्यो (कहाँ से) मज़्हा (मध्य में), मुछी (सम्मुख), पार (उस पार), वापस आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में अपने समानार्थक शब्दों से रूप-साम्य रखते हैं। संयोजक अव्यय 'अगर', 'लेकिन', 'या', 'यानि' आदि उर्दू से लिये गये हैं। सम्बोधन ए, ओ, कष्टव्यंजक करुणाव्यंजक-- 'हाय' आदि भी भारतीय-आर्य ही हैं। सहायक और अस्तित्ववाची क्रियाएं हनुस, हनु, हनें, हनिस्क, हिन्दी हूं, है, हैं, होंगे के बहुत निकट हैं। यहां शिणा का सम्पूर्ण व्याकरण देना हमारा उद्देश्य नहीं, केवल यह अभिप्रेत है कि कश्मीरी को नहीं अन्य नव्य भारतीय आर्य भाषाओं से भी दरद भाषाएं काफी साम्य रखती हैं। प्रश्न यह है कि तब फिर अकेली कश्मीरी को ही क्यों दरद भाषा

वर्ग में हांक दिया गया है ! क्यों नहीं ग्रियर्सन और उनके अनुगामी भाषा-शास्त्रियों का ध्यान कश्मीरी और दरद भाषाओं की असमानताओं पर भी उसी तरह गया है जिस तरह उन्होंने उनकी समानता दर्शाने के लिए दूर की कौड़ियां एकत्रित की हैं । कश्मीरी, पैशाची , दरद, ईरानी - इन भ्रांतियों के कारण लगभग समानार्थक शब्द बन गये हैं । ग्रियर्सन की भांति शिणा को प्रतिनिधि दरद भाषा मानकर हम दरद और कश्मीरी की असमानताओं पर भी दृष्टिपात करेंगे । वे इतनी सामान्य नहीं हैं कि उनकी बिल्कुल उपेक्षा की जाए ।

कश्मीरी और दरद बोलियां : असमानताएं

यह ठीक है कि दरद भाषाओं और कश्मीरी दोनों के शब्द-स्रोत वैदिक संस्कृत में हैं, पर प्रा० भा० आ० भा० के जिन शब्दों को दरद भाषाओं ने अपनाया है उनमें से अधिकांश कश्मीरी की शब्द-सम्पदा के अंग नहीं । उदाहरण के लिए कश्मीरी के । पोञ । (मूलरूप `पाञ`) और । ज़ल । (दोनों का अर्थ है पानी), । दाञ । (=धान) और । गुर । (=घोड़ा) शब्दों को लिया जाए । ये क्रमश: संस्कृत के । पानिय । , । जल । , । धान्य । और । घोटक: । शब्दों से विकसित हैं किन्तु इनके समानार्थक शिणा शब्द । वह । , । ब्रीं । और । अश्प । क्रमश: सं० । वारि । , । ब्रीहि । और । अश्व । से विकसित हैं ।

ध्वन्यात्मक अंतर

कश्मीरी और शिणा की ध्वन्यात्मक विशेषताओं में भी काफी अंतर है । प्रमुख भेद ये हैं - (१) कश्मीरी की अ़ , आ़ , उ़ , ऊ़ स्वर-ध्वनियां शिणा तथा अन्य दरद बोलियों में नहीं हैं, न कश्मीरी की `उम्लौट` पद्धति ही उनमें है । (२) दरद बोलियों में ङ ,ण, ञ , न , म् सभी नासिक्य ध्वनियां विद्यमान हैं, कश्मीरी में केवल ञ , न और म् हैं । (३) दरद बोलियों में श, ष , स तीनों ऊष्म मिलते हैं , कश्मीरी में केवल श और स । (४) शिणा में

सभी तथाकथित तालव्य ध्वनियों के दो वर्ग मिलते हैं – स्पर्श और संघर्षी ; कश्मीरी में केवल च़ , छ़, ज़ उपलब्ध हैं , ज़ (ष का अघोष रूप) , ज़ह तथा मूर्द्धन्य ज नहीं । (५) अन्य भारतीय आर्य भाषाओं की तरह शिणा (तथा अन्य दरद बोलियों) में ट, ड, ड़ मूर्द्धन्य व्यंजन-ध्वनियां मिलती हैं । कश्मीरी में ड़ केवल ग्रामीण बोली में परिनिष्ठित कश्मीरी के `र` के स्थान पर प्रयुक्त होता है । (६) शिणा में अर्द्ध-स्वर य (य) की स्थिति काफी दुर्बल और ऍ के निकट है । कश्मीरी में `य` की स्थिति दृढ़ है । (७) कश्मीरी और दरद बोलियों में ध्वनि परिवर्तन की दिशाएं भी एक-सी नहीं हैं । सं० श, ष, स प्राय: कश्मीरी में `ह` में परिवर्तित हो जाते हैं किन्तु दरद भाषाओं में प्राय: सुरक्षित रहते हैं । उदाहरणार्थ –

शिणा । शूं । (= कुत्ता < सं० । शुन । , क० । हून । ; शि० । सिऱ । < सं० । शिक्ष । , क० । हैंछ । ; शि० । शरो । < सं० । शरद । , क० । हरुद । , शि० । शह्ल । < सं० । शृंखला । , क० । हांकल । , शि० । शुको । < सं० । शुष्क । , क० । होख । , शि० । विष । < सं० । विष । , क० । वेह । , शि० । बरिश । < सं० । वर्ष । , क० । वरी(ह) । ; शि० । शत । < सं० शक्ति, क० हेकत (ध) । पदारम्भ में सं० ह का कश्मीरी में प्राय: व हो जाता है , जबकि दरद भाषाओं में प्रारंभिक `ह` सुरक्षित रहता है : क० । वत्थु । , सं० । हस्त । , शि० । हत । , क० । वलुज । सं० । हल । , शि० । हल । , क० । वंज़ । , सं० । हंस । , शि० । हंज़ । संस्कृत 'त्र' का शिणा में `च़` हो जाता है जब कि कश्मीरी में वह अधिकतर सुरक्षित रहता है – सं० स्त्री > शि० चे़ह , क० त्रिय , सं० त्रीणि > शि० चे़ , क० त्रैं , सं० पौत्र) शि० पोच़ , क० पुतुर, सं० जामातृ > *जामात्र > शि० ज़ामोच़ , क० ज़ामतुर । सं० द्र का शिणा में ज़ हो जाता है, किन्तु कश्मीरी में `द्र` का द प्राय: सुरक्षित रहता है – सं० हरिद्रा > शि० हलिज़ , क० लेंदुर, सं० द्राक्षा > शि० ज़च्छ , क० दछ । सं० भ्र भी शिणा में ज़ में परिवर्तित होता है किन्तु कश्मीरी में नहीं – सं० भ्रातृ > शि० ज़ा , क० बोय ।

शिणा में अन्य न० भा० आ० भा० की भांति सं० `व` प्राय: ब में बदल जाता है, किन्तु कश्मीरी में `व` की स्थिति सुदृढ़ है - सं० वर्ष > शि० बरिश, क० वरी (ह), सं० विष > शि० बिष, क० वेह, सं० वत्स > शि० बछ़र, क० वोछ़। अन्त्य ब शिणा में प की भांति और द (ध) त की भांति उच्चरित होता है - गुलाप (गुलाब), गरीप (गरीब), फुलात (फौलाद), दूत (दूध)।

(८) शिणा में पूर्वकालिक कृदन्त तथा भाववाचक संज्ञाओं में, जिनके अन्त में आर अथवा अर हो, निम्न उठ रही तान का प्रयोग होता है, कश्मीरी में इस प्रकार की कोई ध्वन्यात्मक विशेषता नहीं।

रूपात्मक अन्तर

रूप-रचना की दृष्टि से तो कश्मीरी और दरद भाषाओं में विशेष अन्तर है। अन्य सूक्ष्म भेदों के अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण अन्तर ये हैं -

(१) शिणा के उत्तम पुरुष सर्वनाम (बहुवचन) तथा मध्यम पुरुष सर्वनाम (बहुवचन) पर कश्मीरी का प्रभाव है। प्रश्न वाचक `को` `के` को छोड़कर शिणा और कश्मीरी के शेष सर्वनामों में काफी भेद है। सब से उल्लेखनीय अन्तर इस सन्दर्भ में शिणा में अनिश्चय वाचक तथा संबंध वाचक सर्वनामों का अनस्तित्व है। इनके स्थान पर प्रश्नवाचक सर्वनामों का प्रयोग होता है या कभी-कभी संकेत-वाचक सर्वनामों का। कश्मीरी में अनिश्चयवाचक और सम्बन्धवाचक सर्वनाम का पृथक् अस्तित्व है।

(२) कश्मीरी में विशेषण विशेष्य के लिंग, वचन, कारक के अनुरूप होते हैं, शिणा में लिंग और वचन की अनुरूपता है, किन्तु कारक की नहीं।

(३) क्रम संख्यावाचक विशेषण कश्मीरी में `म` प्रत्यय लगाकर बनते हैं, शिणा में पुल्लिंग में `ओ` तथा स्त्रीलिंग में `ये` प्रत्यय जोड़े जाते हैं। पूर्ण संख्यावाचकों में

शिणा में बीस के बाद के अंक `ग` संयोजक अव्यय जोड़ने से बनते हैं, यथा बी ग एक (इक्कीस) , `तीस` के लिए बी ग दई - `बीस और दस` , `चालीस` के लिए दिब्यो - दो बीस , पच्चास के लिए दिब्यो ग दइ - दो बीस और दस, साठ के लिए चेब्यो - तीन बीस, अस्सी के लिए चारब्यो - चार बीस किन्तु सत्तर और नब्बे के लिए क्रमश: चेब्यो ग दइ और चारब्यो ग दई - `तीन बीस और दस` और `चारबीस और दस` का प्रयोग होता है। कश्मीरी पूर्ण-संख्या-वाचक विशेषणों में हिन्दी आदि नव्य भारतीय आर्य भाषाओं की भाँति `इक्कीस` के लिए अकुह, तीस के लिए त्रह, चालीस के लिए चतजी, पचास के लिए पंचाह आदि प्रयोग चलते हैं।

(४) शिणा में दो प्रकार के कर्मकारक का प्रयोग होता है। एक सामान्य और दूसरा मारने या पीटने (हाथ, छड़ी, चाकू आदि से) की क्रियाओं के साथ प्रयुक्त। इसे `द्वितीय कर्मकारक` कहा जा सकता है। प्रथम कर्म कारक मारने-पीटने की क्रियाओं के साथ व्यवहृत नहीं होता। कश्मीरी में अन्य नव्य भारतीय आर्यभाषाओं की भाँति एक ही कर्मकारक है।

(५) हिन्दी, पंजाबी आदि की भाँति कश्मीरी में भी कर्तृवाचक संज्ञा पुल्लिंग में `वोल` (= वाला) लगाकर बनती है। स्त्रीलिंग में वाज्येंन (= वाली)का प्रयोग होता है। लेकिन दरद बोलियों में ऐसा नहीं होता। शिणा में इसके लिए सहायक क्रिया का प्रयोग होता है - यथा — एक अछि हनु मुशा हनु - एक आंख-वाला आदमी है ; शेंएं अकुर हनि चेइ हनि — सफेद बालों वाली औरत है। कर्तृवाची संज्ञा बनाने के लिए शिणा में `साती` (= साथ , सहित) का भी प्रयोग होता है।

(६) शिणा में अधिकांश क्रियाएं `थोइकि` (= करना) बोइकि (होना), दोइकि (= देना) लगाकर बनायी जाती हैं। सकर्मक क्रियाओं में `थोइकि` और अकर्मक क्रियाओं में बोइकि का प्रयोग होता है। कश्मीरी में इनकी समानार्थक

`करुन` , `आसुन` `पुन` क्रियाओं का इस प्रकार और इतना व्यापक प्रयोग नहीं होता ।

(७) सार्वनामिक प्रत्ययों का कश्मीरी की तुलना में बहुत कम प्रयोग शिणा में होता है । केवल गुरेज़ी बोली में मध्यम पुरुष एकवचन और बहुवचन तथा अन्य पुरुष एकवचन में इसका प्रयोग कर्म के घोतन के लिए होता है । इसे कश्मीरी का प्रभाव भी माना जा सकता है । कश्मीरी में सिंधी की भाँति सार्वनामिक प्रत्यय काफी विकसित हैं ।

(८) कश्मीरी की छ-वर्गीय सहायक क्रिया के रूप शिणा आदि दरद बोलियों में नहीं मिलते । शिणा में इसके स्थान पर हिन्दी ` हूं, है, हैं` वर्ग की हानुस, हाने, हानु आदि सहायक क्रियाएं प्रयुक्त होती हैं ।

(९) शिणा में किसी क्रिया के भाव को प्रकट करने के लिए एक से अधिक शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है – क्रिया + संज्ञा अथवा क्रिया + विशेषण का । यह बात हिन्दी, पंजाबी जैसी नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में भी पाई जाती है, किन्तु कश्मीरी में यह अपेक्षाकृत कम प्रचलित है ।

(१०) इन असमानताओं के अतिरिक्त कारक-रूपों तथा काल-रचना आदि की दृष्टि से भी कश्मीरी और दरद भाषाओं में अन्तर है ।

कश्मीरी और दरद वर्ग की प्रतिनिधि भाषा शिणा (जिसे ग्रियर्सन कश्मीरी के सर्वाधिक निकट समझते हैं) में इन असमानताओं को रेखांकित करने में हमारा उद्देश्य ग्रियर्सन आदि भाषाशास्त्रियों द्वारा फैलायी गयी इस भ्रांति का निराकरण करना है कि कश्मीरी भी मूलतया दरद परिवार की एक भाषा है । ग्रियर्सन ने, जैसा कि ऊपर के विवेचन में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है, पैशाची, दरद, ईरानी आदि का एक विचित्र समीकरण प्रस्तुत किया है, जो भाषावैज्ञानिक निकष पर खरा नहीं उतरता । कश्मीरी में दरद भाषाओं से कुछ शब्दों के उधार लिये जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता।

किन्तु बस इसी एक आधार पर उससे दरदजा भी तो नहीं माना जा सकता, न भारतीय आर्य भाषा परिवार से उसका बहिष्कार भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से उचित ठहराया जा सकता है ।

कश्मीरी : भा० आ० भा० परिवार में स्थान

शब्दावली-

भारतीय आर्य-भाषा परिवार में कश्मीरी का स्थान क्या है, इसका निर्णय काफी अनुसंधान की अपेक्षा रखता है, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कश्मीरी कई दृष्टियों से एक विशिष्ट भाषा है । इस विशिष्टता का एक पक्ष तो यह है कि कि इसमें छान्दस से लेकर पाली-प्राकृत तक की अनेक भाषिक परतें स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं, साथ ही अन्य नव्य भारतीय आर्य-भाषाओं की विकास-दिशाओं को स्पष्ट करने में इसका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है । किसी भाषा की स्थिति के संबंध में शब्दावली पूर्णतया निर्णायक नहीं होती पर सामान्य व्यवहार में आने वाले शब्दों के आधार पर कश्मीरी को अब दरद और ईरानी अर्थात् भारतीय आर्यभाषा परिवार से बाहर की भाषा माना जाता है तो बेहद आश्चर्य होता है । वस्तुस्थिति तो यह है कि इसी प्रकार की शब्दावली कश्मीरी की भारतीय-आर्य प्रकृति को प्रतिबिम्बित अत: प्रमाणित करती है । उदाहरणतया शरीर और उसके अवयवों से सम्बन्धित शब्दों को लिया जाए । शरीर के लिए कश्मीरी शब्द स्वयं 'शरीर' ही है या 'तन' जो पुन: तत्सम है । कश्मीरी भाषा में मनुष्य का नख-शिख कुछ इस प्रकार होगा[२७] - बाल - वाल < सं० वाल ; सिर - कलु < सं० कपाल ; मुंह - चेहरा - मौख < सं० मुख या फिर 'बुथ' < सं० वक्त्र , या फिर तनिक पुराना शब्द शौण्ड < सं० शुण्ड ; मुंह (खाने के संदर्भ में) - आस < सं० आस्य ; माथे के लिए ड्यक < प्रा० *डीक - (गु० डक = गला, डोकु = सिर); आँख के लिए - अँछ्छ < सं० अक्षि ; नाक - नस्त < सं० - नस्त (हि० नथ

इसी से विकसित हुआ है); कान - कन < सं० कर्ण ; ओठ - वुठ < सं० ओष्ठ (प्रा० - ओट्ठो); जीभ - ज्यव < सं० जिव्हा ; तालु - ताल < सं० तालु ; दान्त - दन्द - < सं० दन्त ; गाल - गल < सं० गल्ल ; ठुड्डी - होंगञ < सं० हनु ; वक्षस्थल - वछ < सं० वक्ष ; पेट - 'यड' < प्रा० - ढीढ (पं० - टिढ), नाभि - नाफ < सं० नाभि , हाथ - अथ् < सं० हस्त (प्रा० - पा० , अप० - हत्थो), उंगली - ओंगुज्य < सं० अंगुलि ; अंगूठा - न्योठ < सं० अंगुष्ट (तु० शि० अगूटो) ; नाखून - नम < सं० नख ; जांघ = ज़ङ्ग < सं० जंघा , पांव - पाद < सं० पाद (अधिक प्रचलित शब्द है खौर < सं० खुर , सि० खुर) , तलुए - तलपोद < सं० पदतल , दाढ़ी - दार < सं० - दंष्ट्रिका , त्वचा - चम < सं० चर्म , हड्डी - अडिज्य < सं० - अस्थि , नाड़ी - नौर < सं० नाड़ी , रोएं - रुम < सं० - रोम आदि। अर्थात् सम्पूर्ण मनुष्य संस्कृतमय। इसी भांति शारीरिक अवस्थाओं और दशाओं से सम्बन्धित शब्द भी संस्कृत मूल के ही हैं - प्राण - जुव < सं० √जीव , जन्म लेना - ज्यौन < वै० सं० √जायते (प्रा० जा-अ-ए) ; जन्म - जनुम < सं० जन्म ; बूढ़ा - बुडु < सं० वृद्ध ; मृत्यु - मरन सं० मरण ; हंसी - असुन < सं० हास्य ; रोना - रिवुन < सं० रोदन ; उल्लसित होना - वोलसुन < सं० उल्लास ; लज्जा - मन्दछ < सं० मंदाक्षि । परिवेश अर्थात् आसपास सम्बन्धी शब्द : संसार - समसार < सं० संसार , स्थल - थल < सं० स्थल ; नभ - नब < सं० नभ ; बादल - ओबुर < सं० अभ्र ; सूरज - सिरी < सं० सूर्य (मुस्लिम कश्मीरी में अफ़्ताब < फा० आफताब का प्रयोग होता है), चांद - चंद्रम (जून शब्द भी प्रयुक्त होता है) सरोवर - सर < सं० सर ; नदी - क्वल < सं० कुल्या ; पथ - वथ < सं० वर्त्म ; वन - वन < सं० वन ; घर - गर < सं० गृह ; कमरा - कुठ < सं० कोष्ठ ; कोठरी - कुठर < सं० कोष्ठ ; मंजिल - पौर < सं० पुर (= नगर) नगर - नगर < सं० नगर ; द्वार - बर < सं० - द्वार ; खिड़की - दौर < सं० द्वार , पं० बारी ; बाड़ी - वौर < सं० वाटिका।

निकट के सम्बन्धियों का जहाँ तक सम्बन्ध है कश्मीरी के `मोल` (= पिता) तथा मोज्य (= माँ) शब्द दरद मूल के बताये जाते हैं, — किन्तु हिन्दुओं में अब भी आदर सूचक `प्यता` (= पिता) तथा `माता` का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त अन्य शब्द सीधे संस्कृत - मूल के हैं — बेटा - पोतुर < सं० पुत्र या गोबुर जिसे टर्नर सं० गर्भ रूप (= युवक, बहु० बच्चे) से विकसित मानते हैं — (तु० सिं० — गमरू पं० गमरू), माई - मोय < सं० मातृ , (कष्टवाड़ी में `माय`) ; बहन - बेंञ < सं० भगिनी (तु० गु० बेहेन अथवा बेन , बं० बोन) ; चाचा - पेंतर < सं० पितृव्य ; फूफी - पोफ < सं० पितृश्वसृ ; चचेरा - पितुर < सं० पितृव्यजात , गु० पितराइ , पितरायुं ; मामा - माम < सं० मातुलः ; मौसी - मास < सं० मातृश्वसृ (प्रा० मौस्सि, मौसिय) ; बहू - न्वश < सं० स्नुषा, (तु० पं० नूह) ; दामाद - ज़ामतुर < सं० जामातृ (पा० जामातर, प्रा० जामाउअ, म० जावइ , गु० जमाई, हि० जवाई) ससुर - ह्युहुर < सं० श्वशुर ; बहनोई - बेम < सं० भाम ; ननद - ज़ाम < सं० जामी (प्रा० जामि) ; ननदोई - ज़ामी < सं० जामीपति ; ननद की बेटी- ज़ामिश < सं० जामेय ; बहन का पुत्र - बेंन्थर < सं० भगिनीपुत्र ; साली - साळ < सं० स्यालि ; बन्धु - बान्धव - बन्द - बांदव < सं० बन्धु,बान्धव ; दैनिक व्यवहार से सम्बन्धित वस्तुएं भी इसी प्रकार संस्कृत मूल के शब्दों से अपनी संज्ञा ग्रहण करती हैं — कपड़े - पलव < सं० पल्लव (अन्य न० भा० आ० भा० में इसका प्रयोग केवल वस्त्रों के छोर अथवा दामन के लिए सीमित रह गया है), कपड़ा-क्पुर < सं० कर्पट ; ऊनी कपड़ा - पोट < सं० पट ; पलंग - प्रंग < सं० पर्यंक ; तकिया - शान्दगोन्ड < सं० - शयन + गण्डु ; बर्तन - बान < सं० भाजन (प्रा० भायण , गु० - भाणुं , म० भाणें , सि० भाणु); बत्ती - वत्थ < सं० वर्तिका ; तांबा - त्राम < सं० ताम्र ; सोना - स्वन < सं० स्वर्ण; चांदी - रोप < सं० रौप्य ; सूत - सुथर < सं० सूत्र ; बाट - परमान < सं० परिमाण ; तराजू - तकॅर < सं० तर्करी ; पानी - पोञ < सं० पानिय ; धान - दाञ < सं० धान्य ; चावल - तोमुल < सं० तण्डुल , दूध - दद < सं०

दुग्ध ; घी - ग्यव < सं० घृत ; धन - दन् < सं० धन (मुस्लिम कश्मीरी में दौलथ < फा० दौलत का भी प्रयोग होता है) ; रुपया - पैसा - धार < सं० दीनार ; उधार - दारि < सं० धारि ; भात - बतु < सं० भात ; साग - हाक < सं० शाक ; बैंगन - वाँगुन < सं० वार्तिगण ; पालक - पालक < सं० पालक्य ; चूल्हा - चूल < सं० चुल्ली ; ऊखल - वोखुल < सं० उलूखल ; लकड़ी - काठ < सं० काष्ट ; छुरी - छुर्य < सं० छुरिका ; रस्सी - रज़ < सं० रज्जु ; सूई - सुच़न < सं० सूचिका ; नौका - नाव < सं० नाव ; बड़ी भारवाही नाव - बॉहच़ < सं० वाहित्र , (हिं० बोहित); छकड़ा - छ़कड़ु < सं० शकट ; कुल्हा - कुल्यु < सं० कुल्हिका । हल - अल्बुअ < सं० हल । सामान्य पशु-पक्षी कृमि-कीटों आदि के बारे में भी यही बात लागू होती है - कुत्ता - हून < सं० शुन ; बिल्ला - ब्रोर < सं० बिडाल ; गाय - गाव < सं० - गौ , घोड़ा - गुर < सं० घोटक: , हाथी - होस्त < सं० हस्तिन् ; शेर - सुह < सं० सिंह (प्रा० सीह) गीदड़ - शाल < सं० शृगाल , सुअर - सोर < सं० शूकर ; छागल - छ़ावुल < सं० छागल: ; बन्दर - वान्दुर < सं० वानर: रीछ - हापुथ < सं० श्वापद , चिड़िया - च़र < सं० चातक: मैना - हार < सं० शारिका ; कौवा - काव < सं० काक ; कोयल - कुकिल < सं० कोकिल ; मुर्गा - कोकुर < सं० कुक्कुट: ; हंस - अंज़ < सं० हंस ; चकवा - चकुव < सं० चक्रवाक: ; गिद्ध - ग्रद < सं० गृध्र ; साँप - सरुप < सं० सर्प ; बिच्छू - ब्युच < सं० वृश्चिक ; (सं० 'च' सुरक्षित) ; कीड़ा - क्योम < सं० - कृमि ; मक्खी - मंछि < सं० मक्षिका , पिस्सू - प्युश < सं० प्लुषि ; केंचुआ - बुमसिन < सं० भूमिस्नु ।

उदाहरणों की यह सूची और भी बहुत लम्बी हो सकती है, यहाँ केवल यही दिखाना उद्दिष्ट है कि कश्मीरी में मनुष्य के कपाल से लेकर केंचुए तक के शब्द संस्कृत या कहें तो प्राचीन भारतीय आर्यभाषा से विकसित हैं, इसे केवल संस्कृत का गहरा प्रभाव कहकर टाला नहीं जा सकता । ये शब्द ऐसे हैं जिनमें उधार की गुंजाइश बहुत कम है ।

ध्वनि-तत्व :

संस्कृत और कश्मीरी में यह असामान्य समानता केवल शब्दावली तक ही सीमित नहीं है। ध्वन्यात्मक विशेषताओं और रूप-संघटना की दृष्टि से भी कश्मीरी को संस्कृत से बहुत कुछ दाय में प्राप्त हुआ है। [तोमुल (अनपके चावल) के सं० तण्डुल से सम्बन्ध की ओर इंगित करते हुए वे लिखते हैं - "कश्मीरी ही एकमात्र न० भा० आ० भा० है जो प्रारंभिक 'त' के द्वारा संस्कृत से अपने सम्पर्क का संकेत देती है। इस वर्ग की अन्य सभी भाषाओं में प्राय: प्रारंभिक 'च' मिलता है यथा - देसी चाउल, हि० चावल बं० चाउल, उ० चाउल, सि० चाउर, गु० चावल, ने० चामल। केवल असमिया साउल में शब्दारंभ में 'स' है जो 'च' का ही रूपान्तर प्रतीत होता है।"[२९] इसी प्रकार डा० वर्मा क० प्रिछुन (=पूछना) का उदाहरण देते हैं[३०] जो उनके अनुसार समीपवर्ती खरोष्ठी प्राकृत द्वारा साक्ष्यांकित अति प्राचीन 'प्रिच्छ' रूप को सुरक्षित रखने का एक उल्लेखनीय उदाहरण है। अन्य न० भा० आ० भा० में से अधिकांश में केवल 'पुछ' या 'पूछ' रूप ही उपलब्ध होता है। यही बात, उनके अनुसार क० प्रंग (= पलंग) में भी है। यद्यपि कश्मीरी में 'पलंग' शब्द भी मिलता है, पर डा० वर्मा उसे किसी समीपवर्ती क्षेत्र की भाषा से उधार लिया शब्द मानते हैं। " 'प्रंग' शब्द, जो सं० 'पर्यङ्क' शब्द से सम्बन्धित है, से ऐसा प्रतीत होता है कि कश्मीरी ही एकमात्र भारतीय आर्यभाषा है [कश्मीरी में, यह ठीक है कि कुछ स्वर ध्वनियाँ (अं - आं, उ ऊ) और कुछ व्यंजन ध्वनियाँ जैसे च़, छ़, ज़ (ज़ असमिया में मिल जाता है और 'च़' मराठी में) अन्य न० भा० आ० भाषाओं से अतिरिक्त हैं, पर जैसा कि प्रारम्भ में इंगित किया गया है, ये ध्वनियाँ संभवत: मूल भारोपीय भाषा से ही चली आई हैं। अन्य भारतीय आर्य भाषाओं की तुलना में कश्मीरी शब्द रूपों में प्रा० भा० आ० भा० की अनेक ध्वनियाँ प्राय: सुरक्षित मिलती हैं। इस सम्बन्ध में डा० सिद्धेश्वर वर्मा ने कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। कश्मीरी शब्द 'तीर' की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए वे इसे 'कुंजी' के लिए बौद्ध संस्कृत शब्द 'ताडक' से विकसित मानते हैं क्योंकि कश्मीरी र सं० प्रा० ड का परिवर्तन

कृपया -कोष्ठकों [illegible] अंश को पृ० २०३ पर ⊙/चिह्नांकित स्थान पर पढ़ें।

प्राय: होता है, सं० बिडाल से कश्मीरी `ब्रीर` का विकास यही दिखलाता है। इसी भाँति कश्मीरी] जिसने प्राचीन संस्कृत `र` को सुरक्षित रखा है। अन्यथा सं० में `पाल्ङ्ग`, हि० गु० म० पलङ्ग, सि० पलङ्ग, सिं० `पलक बन्द` पालथी मार कर बैठना) शब्द मिलते हैं। पाली और प्राकृत तक में `पल्लङ्ग` शब्द मिलता है।[31]

डा० वर्मा द्वारा उदाहृत शब्दों के अतिरिक्त और भी सैकड़ों ऐसे शब्द हैं जिनमें मूल प्रा० भा० आ० भा० के ध्वनि तत्व जीवित हैं। सं० `य` प्राय: सभी अन्य न० भा० आ० भा० में `ज` में रूपान्तरित हो जाता है, पर कश्मीरी में उसकी स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ है और एक भी उदाहरण ऐसा नहीं जिसमें य > ज परिवर्तन मिलता हो। इसी भाँति व > ब कश्मीरी में बहुत कम शब्दों में हुआ है। ग्रियर्सन इस प्रकार के उदाहरणों द्वारा कश्मीरी को ईरानी के अंक में डालना चाहते हैं, आश्चर्य है!

कश्मीरी संख्यावाचक शब्दों की प्राचीनता

कश्मीरी संख्यावाचक शब्द आश्चर्यजनक रूप से प्राचीनता की परतों को सुरक्षित रखे हुए हैं। ग्रियर्सन इस आधार पर भी उन्हें भारतीय-आर्यभाषा परिवार से निष्कासित करते हैं। उनके मत में कश्मीरी के संख्यावाचक शब्द इसलिए पैशाची (?)[32] हैं कि अन्य भारतीय आर्य भाषाओं से वे कुछ भिन्न हैं। वे इस महत्वपूर्ण तथ्य की उपेक्षा कर जाते हैं कि संख्यावाचक शब्दों में कश्मीरी संस्कृत के रूपों को बनाये रखे हैं। इस बात को डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा और[33] प्रो० तोषखानी[34] दोनों विशेष महत्व देते हैं। डॉ० वर्मा इनमें पाली की छाया देखते हैं और ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के अध्येताओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हैं।[35] कुछेक उदाहरणों द्वारा हम कश्मीरी संख्यावाचकों की इस विशेषता पर प्रकाश डालेंगे। न० भा० आ० भाषाओं में केवल कश्मीरी ने ही संख्यावाचकों में संस्कृत `द्वि` को (`दु` के रूप में) सुरक्षित रखा है, दुहोठ (सं० द्वाषष्ठि,

पा० द्वासट्ठी, प्रा० बासट्ठी), दुसत् थ (सं० द्विसप्तति , पा० द्वासत्तति), दुनमथ (सं० द्वानवति) । प्राकृत सहित अन्य सभी भारतीय आर्य भाषाओं में द > ब हो जाता है, यथा हिन्दी बासठ, बहत्तर, बानवे । इसी प्रकार क० शुनमथ में सं० `षण्णवति का `श` सुरक्षित है, जब कि अन्य भारतीय आर्य भाषाओं में श > छ हो गया है - हि० छियानवे, बं० छियानब्बे , सि० छहानवें आदि । जैसा कि डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या[३६] ने इंगित किया है इस संख्यावाचक शब्द में भारतीय भारतीय भाषाओं में अ के स्थान पर `आ` का प्रवेश हो गया है, किन्तु कश्मीरी में मूल संस्कृत की `अ` ध्वनि बनी हुई है । `सतथ` (=सत्तर) में भी कश्मीरी, डॉ० वर्मा के शब्दों में , `संस्कृत पाली योजना ` के निकट है न कि प्राकृत के जिसमें सप्तति का `त` `र` में परिवर्तित हो गया है । प्राकृत से लेकर अन्य सभी भारतीय भाषाओं में सं० त > र मिलता है - प्रा० सत्तरि, ने० सि० सत्तरि , बं० , हि० पं०, म० सत्तर । डा० वर्मा के अनुसार यदि इसे पाली के किसी रूप से उधार भी मान लिया जाए, तब भी यह प्राचीन रूप की सुरक्षा की प्रवृत्ति दर्शाता है ।

कश्मीरी कुनवुह (उन्नीस) भी सं० ऊनविंशति के स्थान पर पाली `एकूनविसम्` का स्पष्ट प्रभाव दर्शाता है और इसमें भी, मराठी `एकुनीस` को छोड़कर, कश्मीरी भारतीय आर्य भाषाओं में अकेली है ।

कश्मीरी `दह` (मुस्लिम कश्मीरी दाह) तथा `हथ` जो सं० `दश` और `शत` के पर्याय हैं, को लेकर ग्रियर्सन ने एकदम कश्मीरी के ईरानी (उनके शब्दों में `पैशाची`) होने की घोषणा तो कर दी पर वे यह भूल गये दश का दह प्राकृत में भी होता है (दश मुखो > दह मुहो) और मराठी में भी दहा शब्द मिलता है । इसका कारण मराठी अथवा कश्मीरी पर ईरानी अथवा दरद प्रभाव नहीं है क्योंकि अधिकांश दरद भाषाओं में सं० दश का `दश` रूप ही मिलता है- कलश - दश , खवारबतो , दश, गरवी दश, तोरवाली दश, शिणा दह, मैया `दश` । इसी भांति कश्मीरी में `सौ` के लिए `हथ` और `शत(थ)` दोनों का प्रयोग मिलता है - सात-सौ से ऊपर की संख्याओं के लिए अनिवार्यतया `शत` का ही

प्रयोग होता है । दरद भाषाओं में प्राय: श सुरक्षित रहता है अथवा हिन्दी आदि न० भा० आ० भा० की भाँति उसका `स` हो जाता है – कलश: `शीर`, गरबी: `सो`, `तोरवाली `सो`, मेया `शल`, शिणा `शल`।

रूप-संघटना :

रूप-संघटना की दृष्टि से भी कश्मीरी प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा से अपने विकास को प्रकट करती है । कश्मीरी सर्वनाम विशेषकर इस विकास-दिशा की ओर इंगित करते हैं । उत्तमपुरुष सर्वनाम (कर्ता० एक०) बु/अथवा बो को उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है । यह कश्मीरी का अपना विशिष्ट और स्वतंत्र रूप से विकसित सर्वनाम है । इसकी निष्पत्ति ब्यूहलर सं० भवत् से मानते हैं जिसके `भो` `भवति` `भवान` आदि रूप संस्कृत में संबोधन के तौर पर प्रचलित हैं ।[37] उत्तम पुरुष सर्वनाम के शेष रूप √अस्मद से ही विकसित हैं। इसी प्रकार कश्मीरी के अन्य पुरुष अथवा दूरवर्ती संकेतवाची सर्वनाम सु < सं० स: और स्व < सं० सा अपने प्राचीन स्वरूप को बहुत कुछ सुरक्षित रखे हुए हैं । इस सर्वनाम के शेष रूप √तद से विकसित हैं । कश्मीरी प्रश्नवाची सर्वनाम `कुस` (< सं० क:) भी संस्कृत और कश्मीरी के नैकट्य को रेखांकित करते हैं । निकट-वर्ती संकेतवाचक `यि` सं० √इदम् से व्युत्पन्न रूप है । कश्मीरी समूहवाचक सर्वनाम `सौरी` सं० सर्व० से विकसित है ।

ब्यूहलर का यह कथन कि कश्मीरी प्राचीन संज्ञारूपों से नये रूपों तक की विकास अवस्थाओं को अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में स्पष्टतया दर्शाती है[38], सत्य है । कश्मीरी संज्ञा-रूप बहुत कुछ संस्कृत विभक्तियों के अवशेषों का परिचय देते हैं । उदाहरणार्थ अकारान्त पुल्लिंग संज्ञाओं में करणकारक की विभक्ति `अन` < सं० – एन, एण से विकसित है – ज़ुरन (सं० चौरेण)। इसी प्रकार कर्म और सम्प्रदान में विभक्ति प्रत्यय `अस` < सं० अस्य > पा० अस्स का अवशेष है यद्यपि इन भाषाओं में इसका प्रयोग संबन्धकारक के रूप में होता है । अधिकरण की विभक्ति `उ` है भी स `ए` का ही दुर्बल रूप है (कश्मीरी में `ए` और

'ह' परस्पर विनिमेय हैं) : थलि < सं० स्थले (शिव छुय थलि थलि रोज़ान - ललेश्वरी); गरि < सं० गृहे । बहुवचन में करणकारक की विभक्ति 'अव' वैदिक 'एभि:' से नि:सृत है - चूरव < सं० चौरेभि: । कर्मकारक की बहुवचन की विभक्ति 'अन' सं० 'आणाम' से विकसित मानी जा सकती है । इसी प्रकार इकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों में करणकारक एकवचन की विभक्ति 'यि' सं० 'या' का अवशेष है — दीवियि < सं० देव्या ; कर्म तथा संप्रदान की विभक्ति 'यि' सं० 'या:' से विकसित है - दीवियि < सं० देव्या: । बहुवचन में कर्मकारक की विभक्ति 'यि' सं० 'ह:' का विकास है तथा करण की 'यव' सं० 'ईभि:' का - दीविय < सं० देवि: , दीवियव < सं० देवीभि: ।

अधिकांश कश्मीरी क्रियाएं संस्कृत धातुओं से विकसित हैं, यद्यपि उनका गणों के आधार पर विभाजन नहीं किया जा सकता । कश्मीरी क्रियारूप, जैसा ब्यूह्लर का कथन है, क्रिया की धातु से संस्कृत के अनुसार ही विकसित होते हैं । कश्मीरी के द्वारा उनकी स्थिति स्पष्ट नहीं की जा सकती ।[39] ब्यूह्लर का० देखुन (= देखना) के सामान्य भूतकालिक रूप ड्यूठ < प्रा० दिट्ठो < सं० दृष्टित: , तथा 'पुन' (= देना) के भूतकालिक रूप द्युत < *दित्तो (गु० दीधो) < सं० दत्त: के इस संदर्भ में उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । वस्तुत: यह स्थिति कश्मीरी क्रिया-पदों की काल-रचना में सर्वत्र मिलती है । सामान्य वर्तमान (अन्य पुरुष एकवचन) के रूप 'ह' प्रत्यय लगाने से बनते हैं जो सं० 'ति' का अवशेष है — सं० । करोति । > का० । करि । , सं० । अत्येति । > पा० । अच्चेति । , प्रा० । अच्चेइ । (= सबको पीछे छोड़ता है) > कश्मीरी । अचि ।[40] ; सं० वलति > प्रा० । वलइ । > का० । वलि । , सं० । वयति । > प्रा० । वयइ । > का० । वयि । , सं० । मिनति । (= मापता है) > पा० मिनति , प्रा० मिणाइ > का० मेनि आदि । यहां ध्यातव्य यह है कि वर्तमान निश्चयार्थ के ये रूप भविष्य की ध्वनि भी देते हैं जो कश्मीरी की अपनी विशेषता है । सामान्य भविष्य (अन्य पुरुष) एकवचन) के रूप भी इसी प्रकार 'ह' प्रत्यय लगाकर बनाए जाते हैं जो सं० 'ष्यसि' का अवशेष है - सं० मरिष्यसि > का० मरि,

सं० विगलिष्यसि > वेंगलि , विसारयिष्यसि > वेंसरि आदि । आज्ञार्थक (मध्यम पुरुष एक०) के रूप बिल्कुल सं० के-से हैं - सं० । गच्छ । > क० गच्छ, सं० लिख > क० लेख , सं० आनय > क० अन, सं० कुरु > क० कर, सं० उतिष्ठ > क० अव्वथ , सं० उपविश > क० बेह आदि ।

कश्मीरी पूर्वकालिक कृदन्त सं० `त्वा` के रूप को सुरक्षित रखे हुए हैं- क० गंछ़ित(थ) < *गच्छित < सं० गच्छित्वा । इसी भांति क० । करिथ । । *करिच । < सं० । करित्वा ।, क० । थविथ । < सं० । स्थापयित्वा । , क० । वंसिथ । < सं० । हसित्वा । आदि ।

कश्मीरी क्रियार्थक संज्ञा `उन` का विकास सं० अनं अथवा `अणं` से माना जा सकता है - सं० । मरणं । > क० । मरुन । , सं० । वपणं । > क० । ववुन । , सं० । रोपणं । > । रुवुन । । सं० तरणं । > क० तरुन । इसी भांति सं० । पेषणं । > क० । पिहुन । , सं० । वेठस्न । > क० । वटुन । आदि

कश्मीरी क्रिया-विशेषण एकदम संस्कृत की प्राचीन गन्ध लिये हुए हैं ।

(१) कालवाचक — काल के लिए कश्मीरी शब्द `काल` ही है अथवा समय (फारसी के प्रभाव से `वक्त` भी प्रचलित है) । क० कर < सं० कर्हि , क० येलि < सं० यर्हि , तैलि < सं० तर्हि , क० पत < सं० पश्चात् , क० अद < वैदिक संस्कृत अधा , क० तामथ < सं० तावत् , क० याम < सं० यावत् , क० अज़ < सं० अद्य (प्रा० अज्ज), प्रथ दोह < सं० प्रति दिवस , प्रथ वरीय् < सं० प्रति वर्ष, गरि-गरि (= घड़ी - घड़ी) < सं० घटिका आदि ।

(२) स्थानवाचक - येति (= यहां) < सं० अत्र, येति (= यहां) < सं० यत्र, तति < सं० तत्र , कोत (= कहां ?) < सं० कुत: , कति (= कहां परा) < सं० कुत्र आदि ।

(३) रीतिवाचक - किथ (= कैसे) < सं० कथं, तिथ (= वैसे) < सं० तथा,

यिथ् (- जैसे)   सं० यथा आदि ।

(४) स्वीकृति सूचक - निषेध वाचक — आम्र (सं० आम्), अव् (सं० आम), न (तत्सम), मा (तत्सम) ।

संयोजक अव्ययों में तु (= और) सं० तथा से विकसित है । `ति` का प्रयोग सं० अपि के अर्थ में होता है । ग्रियर्सन इसे सं० इति से इसकी व्युत्पत्ति दिखलाते हैं ।[४१] हेत्वर्थ अव्यय `ओद् वय` जैसा पहले कहा जा चुका है, वैदिक सं० के यद्युवय रूप से व्युत्पन्न है । अन्य व्याकरणिक रूपों पर पड़ी संस्कृत की छाया को भी स्पष्ट देखा जा सकता है ।

कश्मीरी और अन्य न० भा० आ० भाषाएं : समानता के सूत्र

इस सारी विवेचना से इतना तो साफ हो ही जाता है कि कश्मीरी प्रा० भा० आ० भा० से विकसित एक भाषा होने के नाते अन्य नव्य-भारतीय आर्य भाषाओं से निकट का सम्बन्ध रखती है । इसी नैकट्य को दृष्टि-वृत्त में लाने का प्रयास मेरा रहा है । ग्रियर्सन का कथन कि कश्मीरी का ध्वन्यात्मक विकास अन्य भारतीय आर्यभाषाओं से नितान्त भिन्न दिशाएं ग्रहण करता है भ्रामक अर्द्ध-सत्य है । कश्मीरी, जैसा कि ऊपर दर्शाने का प्रयास किया गया है संस्कृत-पाली के कई ध्वनि तत्वों को सुरक्षित रखती है और कुछ उसकी अपनी ध्वन्यात्मक विशेषताएं हैं, पर अन्य भारतीय भाषाओं से इस दृष्टि से भी उसकी कई समानताएं हैं । आगे `बाणासुर कथा` की भाषिक विशेषताओं पर विचार के अन्तर्गत इन समानताओं पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाएगा । यहां इतना ही कहना यथेष्ट है कि कश्मीरी में प्रा० भा० आ० भा० से न० भा० आ० भा० तक के ध्वन्यात्मक परिवर्तनों की विभिन्न परतें साफ देखी जा सकती हैं । उदाहरण के लिए सं० नापित के लिए कश्मीरी में `नाविद` और `नाहद` (तु० हि० नाई) दोनों शब्द मिलते हैं जो वस्तुत: विकास की दो अवस्थाओं के परिचायक हैं । कश्मीरी में सिंधी और पंजाबी की तरह क्षतिपूर्ति दीर्घीकरण

प्राय: नहीं होता - संस्कृत । कर्ण । > क० । कन । , पं० । कन । किन्तु हिन्दी । कान । ; संस्कृत । सप्त । > क०। सथ । , पं० । सत । किन्तु हिन्दी ।सात । ; सं० । अद्य । > क० । अज़ । , पं० । अज । किन्तु हि० । आज । ; सं० । शृंग । > क० । ह्यंग । , पं० । सिंग । किन्तु हिन्दी । सींग । ; सं० । हस्त । > क० । अथ ।, पं०। हथ । किन्तु हि० । हाथ ।; सं० । अक्षि । > क० । अछ़ि । , पं० । अक्ख , किन्तु हिन्दी आंख आदि । इसका कारण कश्मीरी अथवा पंजाबी पर दरद अथवा ईरानी प्रभाव नहीं, जैसा कि ग्रियर्सन हमें विश्वास करने को कहते हैं, अपितु इन भाषाओं का मूल संस्कृत-पाली - प्राकृत के निकटतर होना है । वेदों और धम्मपद के युग से कश्मीरी और पंजाबी में सैकड़ों शब्द उसी रूप में उच्चरित हो रहे हैं । किन्तु क्षतिपूर्ति दीर्घीकरण का कश्मीरी में बिल्कुल अभाव हो, ऐसी भी बात नहीं । इस प्रवृत्ति के कुछ उदाहरण हैं - सं० । रात्रि । > क० । राथ । , हि० । रात । ; सं० । पंचम । > क०। पाञ्छ़ । हि० । पांच । ; सं० । अष्ट । क० । आंठ । हि० । आठ । ; सं० । उष्ट्र । > क० । वूंठ । , हि० । ऊंट । ; सं० शूकर । > क० । सौर ।, हि० ।सुअर । - संभवत: अंतिम दो उधार के शब्द हैं, पर और भी उदाहरण मिलते हैं । सघोष महाप्राण घ, ध, भ, फ व्यंजनों के अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति कश्मीरी में मिलती है पर इसे सिन्धी, राजस्थानी आदि में भी देखा जा सकता है और सिंहली में भी । जहां तक रूप-रचना का सम्बन्ध है, कश्मीरी और अन्य भारतीय आर्यभाषाओं में समानता के कई बिन्दु हैं जिन्हें ग्रियर्सन ने गौण सम्पर्क कर टालने की कोशिश की है । कश्मीरी में भी अन्य नव्य भारतीय आर्य-भाषाओं की भांति दो लिंग - पुल्लिंग और स्त्रीलिंग तथा दो वचन - एकवचन और बहुवचन मिलते हैं । कर्मकारक बहुवचन के रूप `न` अथवा `अन्` विभक्ति प्रत्यय लगाकर बनते हैं । हिन्दी की बोलियों में भी विकारी रूप के साथ इस कारक में `अन` का प्रयोग होता है - सखियन को, लोगन को । गुजराती में `नें` और पंजाबी में `नूं` का प्रयोग होता है । करणकारक के लिए भी कश्मीरी विभक्ति प्रत्यय `अन` ही है जिसे सं० `एण` से व्युत्पन्न माना जा सकता है और जो हिन्दी `ने` , प० ने या ए के अर्थ में प्रयुक्त होता है । अधिकरण

का परसर्ग `मंज़` (< प्रा० मज्फ < सं० मध्य) हिन्दी `में` की याद दिलाता है। इसी भाँति `प्यठ` को हिन्दी पर और तल की पंजाबी थले से समानता द्रष्टव्य है। सम्बन्ध कारक पुल्लिंग में हिन्दी का, के तथा स्त्रीलिंग में मराठी चीं की कश्मीरी `उक` `बक्य` और `बच्य` से समानता देखी जा सकती है। इसी कारक के लिए पुल्लिंग एकवचन में `सुन्द` और `हुन्द` और बहु० में सन्द्य और हुन्द्य का प्रयोग होता है। सिन्धी में भी इसी कारक के लिए `सन्दो` का परसर्गवत् प्रयोग होता है। पंजाबी में `हन्दा` अथवा हुन्दा मिलते हैं और हुन्दा-सन्दा भी। बीम्स `सन्दा` का प्रा० सन्त: का पंजाबी रूपान्तर मानते हैं,[४२] ब्यूहलर कश्मीरी `सुन्द` को श्युण्ड से निष्पन्न![४३] इसी कारक के लिए कश्मीरी में मनुष्यों के सन्दर्भ में `उन` विभक्ति प्रत्यय का व्यवहार होता है (`उक` अप्राणियों और वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होता है)। इसके समानांतर गुजराती में `नो` मिलता है - बापनो घर! कहा जा सकता है कि न० भा० आ० भाषाओं में कारक-परसर्गों के अनेक रूप कश्मीरी में विभक्ति प्रत्ययों अथवा परसर्गों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। कश्मीरी और सिन्धी में एक और रूप-संघटना विषयक समानता है और वह है दोनों भाषाओं में सार्वनामिक प्रत्ययों का प्रयोग। सार्वनामिक प्रत्यय का सर्वनाम का स्थानापन्न होता है। सिंधी में इन का प्रयोग क्रियापदों, कुछ संज्ञा-शब्दों और परसर्गों के साथ होता है।[४४] कश्मीरी में केवल क्रियाओं के साथ। इन प्रत्ययों द्वारा अकर्मक क्रियाओं में कर्ता के पुरुष, लिंग और वचन का तथा सकर्मक क्रियाओं में कर्म के पुरुष, लिंग और वचन का संकेत मिलता है। दो सार्वनामिक प्रत्ययों का भी एक साथ प्रयोग होता है जिनमें क्रिया के कर्ता और कर्म दोनों का संकेत रहता है। उदाहरणार्थ - मारुन (= मारना) के एकवचन में सार्वनामिक प्रत्ययों से युक्त ये भूतकालिक रूप हो सकते हैं - मोरुम (मैंने मारा उसे - पु०) मारम (मैंने मारा उसे - स्त्री०) ; मोरमस (मैंने मारा तुम्हें - पु०), मारमस (मैंने मारा तुम्हें - स्त्री०), मोरथन (तुमने मारा उसे - पु०), मारथन (तुमने मारा उसे - स्त्री०), मोरनस (उसने मारा मुझे - पु०), मारनस (उसने मारा मुझे - स्त्री०), मोरनस (उसने मारा

तुम्हें - पु०), मोरनस (उसने मारा तुम्हें - स्त्री०), मोरुन (उसने मारा उसे - पु०), मोरुन (उसने मारा उसे - स्त्री०), यहाँ `म`, `स` `थ` `न` `स` सार्वनामिक प्रत्यय हैं । इस सम्बन्ध में `बाणासुर कथा` की भाषा के अध्ययन के अन्तर्गत भी विचार होगा ।

क्रियार्थक संज्ञा बनाने के लिए कश्मीरी में `उन` प्रत्यय मूल क्रिया के साथ जोड़ा जाता है । (सि० बणु , म० णों , राज० णो , गढ़वाली वणू , हि० ना के साथ इस प्रत्यय का साम्य स्पष्ट देखा जा सकता है । कश्मीरी की छ- वर्गीय सहायक क्रिया अनेक भारतीय आर्य भाषाओं से उसका सम्बन्ध सूत्र जोड़ती है जिनमें उड़िया, बंगला, मैथिली, कुमाँऊनी, गढ़वाली, पूर्व-राजस्थानी, गुजराती आदि सम्मिलित हैं । कश्मीरी में इसका प्रयोग केवल वर्तमानकाल के लिए होता है । कश्मीरी भूतकालिक सहायक क्रिया के √अस से विकसित रूप मराठी में भी देखने को मिलते हैं ।

कश्मीरी : एक विशिष्ट भाषा

कश्मीरी की भाषिक विशेषताओं के इस अध्ययन के आलोक में ब्यूह्लर का यह कथन कि भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण की दृष्टि से कश्मीरी का सर्वाधिक महत्व है[४५], बिल्कुल सत्य प्रतीत होता है । दो बातें मुख्य रूप से निष्कर्षित होती हैं । पहली यह कि कश्मीरी भारतीय आर्यभाषा की विभिन्न विकास-अवस्थाओं का रहस्य अपने में छिपाये हुए है । दूसरी बात यह कि कश्मीरी अन्य भारतीय आर्यभाषाओं में विशिष्ट स्थान रखती हुई भी अपनी आंतरिक संरचना और प्रकृति की दृष्टि से उनसे निकटता से सम्बन्धित है । प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का संश्लेषणात्मक गठन और आधुनिक भारतीय आर्यभाषा का विश्लेषणात्मक रूप — दोनों की विशेषताएं उसे प्राप्त हैं । डा० सिद्धेश्वर वर्मा के शब्दों में कहें तो भाषिक युगों — `वैदिक, बौद्ध-संस्कृत, पाली, खरोष्ठी प्राकृत[४६] की विभिन्न परतें यह भाषा दर्शाती है ।

कश्मीरी भाषा : विकास का लिखित साक्ष्य

किस युग विशेष में कश्मीरी ने अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित किया इस पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त सामग्री आज उपलब्ध नहीं है। क्षेमेन्द्र-ग्यारहवीं शताब्दी के कश्मीर की अद्वितीय साहित्यिक प्रतिभा- `देशभाषा` के अस्तित्व की ओर इंगित करते हैं। महाकवि बिल्हण अपनी जन्मस्थली की याद से रोमांचित हो उन स्त्रियों की बात करते हैं जो मातृभाषा के साथ-साथ प्राकृत और संस्कृत भाषाएं बोल लेती थीं। इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि बिल्हण के ग्राम की स्त्रियां जिस `मातृभाषा` को बोलती थीं वह संस्कृत और प्राकृत से भिन्न थी। क्षेमेन्द्र और बिल्हण से पूर्व ६वीं शताब्दी की एक नाट्य कृति मिलती है – जयंत भट्ट द्वारा लिखित `आगमडम्बर` जिसे डॉ० राघवन और प्रो० अनंतलाल ठाकुर ने सम्पादित किया है। इसमें संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत का भी प्रयोग हुआ है। कुछेक स्थलों पर समानता की प्रतीति के बावजूद (जैसे बालिए वण्णोहि, सं० बालिके वर्णय, आ० क० बालिए वन ; बिइए ; सं० द्वितीये, आ० क० बॅयि ; मए, सं० मया, आ० क० म्यें आदि। इस प्राकृत से कश्मीरी का सम्बन्ध नहीं है। दसवीं शताब्दी के महान् दार्शनिक और काव्य-चिन्तक अभिनव गुप्त के `तंत्रसार` में प्राकृत के तैंतीस पद्य मिलते हैं जो कहीं-कहीं महानय प्रकाश की भाषा से साम्य रखते प्रतीत होते हैं, पर `होहि`, `दिक्खइ`, `बं`, `जो` जैसे अनेक प्रयोग सिद्ध करते हैं कि उसकी भाषिक प्रवृत्तियां ध्वन्यात्मक और रूपात्मक दृष्टि से कश्मीरी के प्रतिकूल हैं। इसी आधार पर महेश्वरानंद की `महार्थमंजरी` की प्राकृत को भी वह भाषा नहीं माना जा सकता जिससे कश्मीरी का विकास हुआ है।

`कुम्म सम्प्रदाय` की भाषा

कश्मीरी भाषा का पहला लिखित साक्ष्य वस्तुत: ग्यारहवीं शताब्दी ~~स्वात्मा~~ रचित `कुम्म सम्प्रदाय` नाम की कृति के ७४ साधना-सूत्रों और उनकी व्याख्या-वार्तिका में खोजा जा सकता है। इसमें कश्मीर के एक

तत्कालीन तांत्रिक-हठयोगी सम्प्रदाय की साधना-पद्धति को स्पष्ट किया गया है। `कश्मीरी` का प्रयोग बीच-बीच में हुआ है, सर्वत्र नहीं —

माव समावे सव अविनाशी
सफल समावन वि उप्पन्न ।
ते अज निरवधि अगम प्रकाशी
हदस्स दिष्टि काचिविपच्छन्न ।।[४७]

विगलनि शुचि अ आशु अ स्वरूपा
विविध पदार्थ साधु कवलेत ।
आशयु चिति सदा नीरूपा
विच्चो विजू विर्थ प्रघटेत ।।[४८]

यह भाषा `महानय प्रकाश` की भाषा से बहुत साम्य रखती प्रतीत होती है, यद्यपि है उससे काफी पहले की । कश्मीरी की कुछ ध्वन्यात्मक और रूपात्मक प्रवृत्तियां जो इसमें उपलब्ध होती हैं आगे चलकर `महानय प्रकाश`, `बाणासुर-कथा` और `सुखदुख चरित` में अधिक स्पष्ट होती हैं यथा त्य > च्च (वृत्या: > विच्चो), ऋ > इ (पृथ्वी > पिथिवी), रेफ का लोप (प्रच्छन्न > पच्छन्न), व्यंजन समूह में एक वर्ण का लोप और दूसरे द्वारा उसे आत्मसात् करने की प्रवृत्ति - उत्पन्न > उप्पन्न , स्त्रीलिंग-संज्ञा-रूपों में अन्त्य `आ` का ह्रस्वीकरण — कथा > कथ, `ई` प्रत्ययान्त द्वारा स्त्रीलिंग रूपों का निर्माण : अम्लान — अम्लाञी (तु० लल्लेश्वरी: पुषञी) कश्मीरी सम्बन्धवाचक सर्वनाम `यस` (जिसे) का प्रयोग आदि ।

राजतरंगिणी के वाक्यांश

`क्रम सम्प्रदाय` के बाद बारहवीं शताब्दी में इतिहासकार कल्हण की `राजतरंगिणी` में कश्मीरी के दो-तीन वाक्यांश मिलते हैं[४९] — (१) स्नानपटति छुह ना (अर्थात्, तुम्हारे पास स्नानपट यानी लंगोट भी नहीं है क्या),

(२) रंगस हेलु दिण्णा (अर्थात् रंग नाम के व्यक्ति को हेलु ग्राम दिया) तथा (३) हर्षदीवस तुयु (अर्थात् हर्षदेव जैसा)। तीनों में कश्मीरी भाषा की तत्कालीन स्थिति के संकेत मिलते हैं - पहला और तीसरा वाक्यांश तो यथावत् आधुनिक कश्मीरी के प्रयोग हैं। इसके बाद का आलेख 'महानय प्रकाश' है।

महानय प्रकाश : 'सर्वगोचर देशभाषा'

१२वीं-१३वीं शताब्दी की कृति शितिकण्ठ के 'महानय प्रकाश' में रचयिता के शब्दों 'सर्वगोचर देश भाषा' में नुति रची गयी है — 'यथोचित रचितां नुतिं सर्वगोचरया देशभाषया विरचयितुमाह'।[५०] यहाँ 'देश भाषा' शब्द विशेष रूप से ध्यातव्य है, आगे चलकर इसका प्रयोग 'बाणासुर कथा' के लेखक अवतार भट्ट भी करते हैं। 'अट्ठारस देस भासा' का उल्लेख कुवलयमाल कहा, राजप्रश्नीयसूत्र, औपपातिक सूत्र, विपाक सूत्र आदि में मिलता है, क्या कश्मीरी भी उनमें से एक थी ? जो हो, 'सर्वगोचर देशभाषा' में रची गयी इस कृति की 'नुतियों' का तांत्रिक साधना से सम्बन्ध है। डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या और प्रो० पुष्प इसे १३वीं शताब्दी की कृति मानते हैं जबकि ग्रियर्सन इसे १५वीं शताब्दी में खींच ले जाते हैं। जैसा कि इस प्रबन्ध में अन्यत्र स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है, इस रचना का भाषिक स्तर काफी पुराना मालूम पड़ता है। उसे अधिक से अधिक बारहवीं-तेरहवीं शती के मध्य की कृति माना जा सकता है। ग्रियर्सन ने इसकी भाषिक प्रवृत्तियों का 'दि लैंग्वेज ऑफ महानय प्रकाश' में विस्तृत विवेचन करते हुए यह स्वीकार किया है कि इसमें प्रयुक्त शब्दावली शुद्ध-रूप से भारतीय आर्य है।[४८] इसका कारण वे कृति के विषय और कृतिकार के संस्कृत पण्डित होने में खोजते हैं। पर शितिकण्ठ 'सर्वगोचर देश-भाषा' शब्दों का प्रयोग केवल पण्डितों की मण्डली में समझी जाने वाली भाषा के लिए नहीं कर सकते थे। यह ठीक है कि तांत्रिक शब्दावली का प्रयोग कहीं-कहीं उसे तत्सम की रंग-छाया भी प्रदान करता है पर तत्कालीन कश्मीरी की वास्तविक स्थिति को भी यह कृति निःसंदेह सूचित करती है। तांत्रिक दर्शन के मुख्य सूत्रों को सर्व-

साधारण के लिए बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से ही शितिकण्ठ ने देशभाषा को अपनी विचाराभिव्यक्ति का माध्यम चुना होगा। 'महानय प्रकाश' की भाषा कश्मीरी के प्रारंभिक विकास के अन्वेषण के लिए बहुत महत्व रखती है। उसकी संरचनात्मक विशेषताएं उसे अपभ्रंश की-सी भंगिमा प्रदान करती हैं –

देवत ड्डाकक किशी परन राजि
जग घस्म्परन भैरन मशोत ।
नन्त शव गासव नेराजि
शपवात्रो आशयतशोत ।। १।३ ।।

यसु यसु जन्तुस संविद यस यस
नील पीत सुख: दुख स्वरूप।
उदयिस दव समात्रो समरस
कम कम्पन तस - तस अनुरूप ।। ३।२ ।।

'महानय प्रकाश' की भाषा से संकेत मिलता है कि प्राचीन भारतीय आर्यभाषा से कश्मीरी का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ है। उसे वैयाकरणों द्वारा लक्षित प्राकृत-अपभ्रंश के सुपरिचित भेदों के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

ललेश्वरी के 'वाख्'

शितिकण्ठ के 'महानय प्रकाश' के बाद १४वीं शताब्दी की कवयित्री ललेश्वरी के 'वाख्यों' अर्थात् पदों में कश्मीरी कविता की पहली धड़कन सुनायी देती है। तुलसी के 'रामचरितमानस' की भांति ललेश्वरी के 'वाख्' सामान्य कश्मीरी जन के लिए काव्य, नैतिक उपदेश, दर्शन शास्त्र और आचरण संहिता सब कुछ एक साथ हैं। कहा जा सकता है कि कश्मीर की लोक-संस्कृति श्वासोच्छ्वास में इस महान् लोकप्रिय कवयित्री की वाणी का रस घुला है। ललेश्वरी ने शैव-दर्शन को सरस काव्य में गूंथा है, पर इस दार्शनिक-आध्यात्मिक पक्ष के अतिरिक्त

उनके `वाख्य` एक तीव्र सामाजिक चेतना और विसंगति-बोध से अनुप्रेरित अनुप्राणित हैं। धर्म के बाह्याचारों और समाज के रूढ़ मूल्यों के विरुद्ध चुनौती का अकुण्ठ स्वर उनकी वाणी में गूंजा है। भक्ति के रहस्यवादी पक्ष ने उनके पदों को मार्मिकता प्रदान की है। उनके काव्य के दो उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं -

आसा बोल पंरिनम सासा
म्यें मनि वासा खेदना ह्यये।
यदुवय शंकर बख्चु आसा
मंकुरिस स्वासा मल क्याह् प्यये।

(चाहे कोई हजारों अकथनीय बोल कहे, मेरे मन में तनिक भी खेद नहीं होगा यदि मैं शंकर की भक्त होऊँ। भला राख से कभी मुकुर मलिन हुआ है!)

गगन च़य भूतल च़य
च़य धन पवन तु राथ
अर्घ चन्दुन पोष पोञ्र च़य
च़य छुख सकल तु लागि़जिय क्याह्।

(तू ही गगन है, तू ही भूतल, तू ही दिन, पवन और रात है। अर्घ्य, चन्दन, पुष्प और जल भी तू ही है तू सभी कुछ है, फिर तुझ पर क्या चढ़ाया जाए।)

यह भाषा आधुनिक कश्मीरी के बहुत निकट है। इन पदों की वास्तविक भाषा का सन्धान आज संभव नहीं।

शेख नुरुद्दीन के `श्लोक`

१४वीं शताब्दी के ही एक और लोक-प्रतिष्ठित कवि हैं। शेख नुरुद्दीन अथवा `नुन्दर्योश` जिन्होंने कश्मीर में मुस्लिम `ऋषि` परम्परा की स्थापना

की थी । उनकी कविता मनुष्य और ईश्वर के रहस्यवादी प्रेम-सम्बन्धों को रेखांकित करती है और आचरण की शुद्धता तथा शुचिता का उपदेश देती है । धार्मिक मिथ्याडम्बर के प्रति विरोध का स्वर भी उसमें मुखर है । `रिशिनामा` में संकलित उनके पद लल्लेश्वरी के `वाख्यों` की भाँति बहुत बाद में उनके शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध किये गये । उनकी भाषा की भंगिमा भी लल्लेश्वरी के पदों की-सी है-

यिमय छुब मन्मथ मारन त॒
तिमय बाल्न त॒ लागन दास ।
सहज़ यिम साछिबस गारन त॒
तिमय सूरय व्यन्दन सास ।।

इस उद्धरण में आये संस्कृत-मूल के शब्द विशेष रूप से ध्यातव्य हैं और ध्यातव्य है यह बात कि इन पदों को `श्लोक` की संज्ञा दी गयी है ।

मध्य-कालीन विकास

पंद्रहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में अनेक कश्मीरी कृतियों के रचे जाने का उल्लेख श्रीवर ने किया है जिनमें पण्डित नोत्य सोम का ज़ैनचरित (ज़ैन-उल-आबिदीन का जीवन चरित्र), योधभट्ट द्वारा रचित `ज़ैन प्रकाश` (ज़ैन-उल-आबिदीन के जीवन पर आधारित एक नाटक) तथा कवि अवतार भट्ट द्वारा लिखित `ज़ैन विलास` सम्मिलित हैं ।[५१] पर अवतार भट्ट की `बाणासुर-कथा` के अतिरिक्त इस युग की और कोई कृति आज उपलब्ध नहीं है । पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की एक कृति उपलब्ध है - `गणक प्रशस्त` द्वारा रचित `सुख दुःख मोह माया जाल चरितम्` जिसमें कवि अपने किसी मित्र को संसार की असारता समझाता हुआ ज्योतिष, वैद्यक, गारुड़ और मदनशास्त्र आदि के सम्बन्ध में अपने ज्ञान का परिचय देता है । भाषिक प्रवृत्तियाँ `बाणासुरकथा` से बहुत साम्य रखती हैं, पर चिकित्साशास्त्र के घरेलू नुस्खों आदि में दैनिक व्यवहार की शब्दावली का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग हुआ है । `बाणासुर कथा` की ही

भांति इसमें भी प्रयुक्त अधिकांश छन्द संस्कृत के हैं – वसन्ततिलकम, शार्दूलम्, रथोद्धतम् , मालिनीवृतम् आदि – कुछ कश्मीरी के अपने छन्द भी हैं – थद्दी, फुरी, द्विफुरी , दुक्कटिका । इनमें थद्दी, फुरी और दुक्कटिका का प्रयोग 'बाणासुर कथा' में भी हुआ है । यह तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है । क्योंकि यह तत्कालीन कश्मीरी की छन्द-प्रकृति पर प्रकाश डालने के साथ-साथ कश्मीरी और संस्कृत के पारस्परिक नैकट्य की पुष्टि करता है । ग्रियर्सन कश्मीरी के छन्दविधान को ईरानी घोषित कर इस भाषा को भारतीय आर्य परिवार से निष्कासित करने का एक और कारण प्रस्तुत करते हैं । 'सुख-दुख चरित' की भाषा का एक उदाहरण है –

> छो शास्त्र गणो काते कोमो भुज्ज
> ज्योतिष गोरुड, वैदक मुद्द
> सार सार गाछेनस पजि
> हंस यसे ते जलो मज्जा दुद्द ।

'कुम्भ सम्प्रदाय' , 'महानय प्रकाश' , 'बाणासुर कथा' और 'सुख-दुख चरित' कश्मीरी भाषा के मध्यकालीन विकास को उसकी क्रमागत स्थितियों में प्रस्तुत करते हैं । उनकी भाषिक विशेषताओं का अध्ययन प्रारंभिक कश्मीरी की व्याकरणिक संरचना और काव्यरूपों के अन्वेषण के लिए विशेष महत्व रखता है । एक आधुनिक भाषा के रूप में कश्मीरी का प्रथम पदक्षेप 'बाणासुर कथा' में देखा जा सकता है । उसकी भाषा का अध्ययन आगे प्रस्तुत किया जा रहा है। १६ वीं शताब्दी की कवयित्री हब्बा खातून और १८वीं शती की अरिणमाल ने कश्मीरी गीतकाव्य का पुनर्विकास किया पर यहीं से कश्मीरी ने फारसी के छन्दोविधान को अपनाना शुरू किया । भाषा भी धीरे-धीरे संस्कृत रूपों को सुरक्षित रखने वाली 'हिन्दू कश्मीरी' और फारसी के गहरे प्रभाव से युक्त 'मुस्लिम कश्मीरी' का रूप धारण करती जा रही थी । १६वीं शती के महमूद गामी की गज़लें और परमानंद के 'राधास्वयंवर' 'सुदामाचरित' और 'शिवलग्न'

आदि काव्यों में इन दोनों भाषा शैलियों के दो ध्रुवान्तों को देखा जा सकता है। आज भी ये भेद बने हुए हैं।

वर्तमान स्थिति : धर्म के आधार पर बोली-भेद

मुस्लिम कश्मीरी की विशेषता केवल फारसी शब्दों का बाहुल्य नहीं- संस्कृत मूल के कुछ शब्द मुसलमानों में अधिक प्रचलित हैं और फारसी से गृहीत कुछ शब्दों का हिन्दू प्रयोग करते हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा बोली गयी बोलियों को कुछ उच्चारणगत अंतर भी पृथक् करते हैं। यह पार्थक्य केवल थोड़े शब्दों तक सीमित है, व्यापक नहीं। शब्दावली और उच्चारणगत इन अंतरों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं —

शब्दावलीगत अंतर

हिन्दू कश्मीरी	मुस्लिम कश्मीरी	हिन्दी
पोञ	आब	पानी
सिरी	अस्ताब (अफ्ताब)	सूर्य
सोपुन	खाब	स्वप्न
भर्ता	खानदार (अथवा खावन्द)	पति
गुर्म	अरिस	पसीना
माहरा	हज़	महाराज(आदर सूचक)
वोहरवोद	ज़ादोह	जन्मदिन
शुक्रवार	जुमाह	शुक्रवार
पाप	ग्वनाह	पाप
मैजि	नाटं	मांस
नरक	जाहनम	नरक
पांजामु	येज़ार	पाजामा

शूच	पास	पवित्र
नैथुर	सान्दर (निकाह)	विवाह

उच्चारणगत अंतर : स्वर

हिन्दू कश्मीरी	मुस्लिम कश्मीरी	हिन्दी
रुस	रिस	रैसा
टुस	टिस	दौड़(ना)
दह	दाह	दस
गांठ	गांठ	चील
फस	फेस	पीस
मांज्य	मौज	माँ

उच्चारण गत अंतर : व्यंजन

हिन्दू कश्मीरी	मुस्लिम कश्मीरी	हिन्दी
क्रूर	क्यूर	कुवां
ब्रोर	ब्योर	बिल्ली
होखुर	होफुर	ससुराल

ग्रियर्सन हिन्दुओं द्वारा प्रयुक्त बोली को अधिक शुद्ध मानते हैं ।

क्षेत्रीय दृष्टि से ग्रामीण और नागरिक भेदों के अतिरिक्त कष्टवाड़ी, पोगुली, सिराजी, रामबनी को कश्मीरी की बोलियां माना जा सकता है ।

सन्दर्भ - संकेत

१. डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : लैंग्वेजिज़ एण्ड लिट्रेचर्स आफ मार्डन इण्डिया (कलकत्ता), पृष्ठ २५६ ।
२. `दि वैदिक एज` में ए० डी० पुलस्कर द्वारा अपने `आर्यन सैटलमेण्ट्स इन इण्डिया` शीर्षक निबन्ध के पृष्ठ २४१ पर उद्धृत ।
३. ए० डी० पुलस्कर द्वारा `दि वैदिक एज` में पृष्ठ २४३ पर उद्धृत ।
४. उपरिवत् ।
५. द्र०- वैदिक साहित्य और संस्कृति - डॉ० बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ४६७ ।
६. उपरिवत् ।
७. द्र० `दिवैदिक एज` में ए०डी० पुलस्कर का निबन्ध `आर्यन सैटलमेण्ट्स इन इण्डिया` , पृष्ठ २५८ ।
८. द्र०- मोनियर विलियम्स : संस्कृत डिक्शनरी , पृष्ठ ८४४ , आ०३० ।
९. द्र० - टर्नर : ए कॅम्पैरेटिव डिक्शनरी आफ मार्डन इण्डो-आर्यन लैंग्वेजिज़ ।
१०. उपरिवत् ।
११. उपरिवत् ।
१२. उपरिवत् ।
१३. उपरिवत् ।
१४. डा० सिद्धेश्वर वर्मा : दि एण्टिक्विटीज़ आफ कश्मीरी - ऐन एप्रोच (ट्रांजैक्शन्स आफ दि लिंग्विस्टिक सर्कल आफ इण्डिया का रिप्रिण्ट), पृष्ठ ४ ।
१५. `दि डालास्स` अगस्त १९६७ : `सम इम्पॉर्टेण्ट आस्पेक्ट्स ऑफ कश्मीरी एज़ ए लैंग्वेज` , पृष्ठ ५० ।
१६. ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया (जिल्द ८, भाग २ - १९६८, पुनर्मुद्रण), भूमिका , पृष्ठ १ ।
१७. लिं० स० इं० (जिल्द ८, भाग २), पृष्ठ २४१ ।

१८. उपरिवत् , पृष्ठ २४२ ।
१९. लैंग्वेजिज़ एण्ड लिट्रेचर्स आफ माडर्न इण्डिया, पृष्ठ २५६ ।
२०. लिं० स० इं० (जिल्द ८, भाग १) ।
२१. उपरिवत् : भूमिका , पृष्ठ ३ ।
२२. उपरिवत् , पृष्ठ ८ ।
२३. ब्रजबिहारी काचरू द्वारा अपनी पुस्तक (माइमोग्राफ) " ए रैफ्रेन्स ग्रैमर आफ कश्मीरी " में पृष्ठ १५ पर उद्धृत ।
२४. उपरिवत् , पृष्ठ १५-१६ पर उद्धृत ।
२५. इन शब्दों के संस्कृत पर्याय प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक ने दिये हैं ।
२६. शिणा के उदाहरण टी० ग्रैहम बेले की पुस्तक "ग्रैमर आफ दि शिणा लैंग्वेज" से लिए गये हैं ।
२७. अधिकतर शब्दों की व्युत्पत्ति के लिए टर्नर की "कम्पैरिटिव डिक्शनरी आफ माडर्न इण्डो-आर्यन लैंग्वेजिज़" की सहायता ली गई है ।
२८. दि एण्टिक्विटोज़ आफ कश्मीरी-एन एप्रोच , पृष्ठ ४ ।
२९. उपरिवत्, पृष्ठ ५ ।
३०. उपरिवत् ।
३१. उपरिवत् ।
३२. लिं० : स० इं० (जिल्द ८, भाग २) ।
३३. दि एण्टिक्विटोज़ आफ कश्मीरी - एन एप्रोच, पृष्ठ ५ ।
३४. "दि लालारुख" : अगस्त १९६७ , पृष्ठ ५०-५१ ।
३५. दि एण्टिक्विटोज़ आफ कश्मीरी - एन एप्रोच , पृष्ठ ५-६ ।
३६. दि औरिजन एण्ड डेवलेप्मेण्ट आफ दि बंगाली लैंग्वेज , पृष्ठ ३०० ।
३७. रिपोर्ट आफ टूर इन सर्च आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स मेड इन कश्मीर, राजपुताना एण्ड सेण्ट्रल इण्डिया, पृष्ठ ८७ ।
३८. उपरिवत ।
३९. उपरिवत, पृष्ठ ८६ ।
४०. कम्पैरिटिव डिक्शनरी आफ माडर्न इण्डो-आर्यन लैंग्वेजिज़ ।

४१. दि लैंग्वेज आफ महानय प्रकाश , परिच्छेद २७४ ।
४२. ए कम्पैरिटिव ग्रैमर आफ दि मार्डन लैंग्वेजिज़ आफ इण्डिया, पृष्ठ २६१ ।
४३. ब्यूह्लर : टूर इन सर्च आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स, पृष्ठ ८६ ।
४४. लक्ष्मण सुबचन्दानो : प्रोनामिनल सफिक्सिज़ इन सिन्धो : इण्डियन लिंग्विस्टिक्स, १६६२ (पुनर्मुद्रण) ।
४५. टूर इन सर्च आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स , पृष्ठ ८६ ।
४६. दि एण्टिक्विटोज़ आफ कश्मीरी : स्न एप्रोच , पृष्ठ ७ ।
४७. कुम्प सम्प्रदाय - सूत्र ६१ की वर्तिका ।
४८. उपरिवत - सूत्र ५२ को वर्तिका ।
४६. कल्हण : राजतरंगिणी , ५।३६६.
५०. महानय प्रकाश : (जम्मू कश्मीर राज्य, शोध विभाग) : सम्पा० पं० मुकुन्दराम शास्त्री, पृष्ठ ६ ।
५१. श्रीवर : जैनराजतरंगिणी, पृ ४।३७-३६.

:: द्वितीय खण्ड ::

(१) बाणासुर-कथा की भाषिक विशेषताएं

(२) पाठशोध और अर्थ-सन्धान

(३) बाणासुरकथा : मूलपाठ

(४) हिन्दी भाषान्तर

(५) शब्द-सम्पदा

(६) सहायक-साहित्य

:: १ ::

बाणासुर कथा की भाषिक विशेषताएं

पुरानी कश्मीरी : लल्लेश्वरी की भाषा और बाणासुरकथा, महानय प्रकाश की भाषिक प्राचीनता, महानय प्रकाश और बाणासुरकथा : संबन्ध-सूत्र, बाणासुरकथा की भाषिक संरचना, देश्यभाषा का संदर्भ, फारसी से भिन्न भाषिक प्रकृति, अन्य भाषाओं के शब्द, ग्राम-गिरा का रस, बाणासुरकथा और आधुनिक कश्मीरी, बाणासुरकथा और भा०आ०भा० की विकास-दिशाएं, अनुलेखन पद्धति, ध्वन्यात्मक विशेषताएं, स्वर : स्वर-लोप-स्वर-संकोचन, स्वर-विपर्यय, स्वर परिवर्तन, 'ऋ' की परिवर्तन दिशाएं, व्यंजन : व्यंजन लोप, व्यंजन परिवर्तन, 'ष' और 'श' की स्थिति, व्यंजन-समुदाय, अर्द्ध-स्वरों से संयुक्त व्यंजन-समूह, 'र' से संयुक्त व्यंजन, ऊष्म ध्वनियों से संयुक्त व्यंजन समूह, संधि, रूप-संघटना : संज्ञा-रूप, लिंग-विधान, वचन, कारक : कर्मकारक के रूप, करणकारक के रूप, संप्रदान कारक के रूप, अधिकरण के रूप, अपादानकारक रूप, संबोधनकारक के रूप, परसर्गों का प्रयोग, पूर्व-सर्ग, निर्विभक्तिक प्रयोग, विशेषण : संख्यावाचक विशेषण : (अ) पूर्ण संख्यावाचक, (आ) अपूर्ण संख्यावाचक (इ) क्रम संख्यावाचक; पुरुषवाचक सर्वनाम : उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष अथवा दूरवर्ती संकेतवाचक, निकटवर्ती संकेतवाचक, सम्बन्धवाचक सर्वनाम, अनिश्चयवाचक

सर्वनाम , प्रश्नवाचक सर्वनाम , निजवाचक सर्वनाम , परस्पर सम्बन्धबोधक सर्वनाम , समूहवाचक सर्वनाम , सार्वनामिक विशेषण : प्रकारवाचक , परिमाणवाचक , क्रियापद : वर्तमानकाल , आज्ञार्थ क्रियारूप , वर्तमानकालिक कृदन्त , घटमान वर्तमान , भूतकाल के रूप , अकर्मक क्रिया : वर्ग १ - वर्ग २, सकर्मक क्रिया : वर्ग १ , वर्ग २ , वर्ग ३ , पूर्ण अथवा पुराघटित भूत , पूर्वकालिक कृदन्त , भविष्यत् काल के रूप : वर्ग १ , वर्ग २ , क्रियार्थक संज्ञा , सहायक और अस्तित्ववाची क्रिया , संयुक्त क्रिया , ध्वन्यात्मक क्रियाएं , अव्यय : क्रिया-विशेषण , कालवाचक क्रिया-विशेषण , अवधि-वाचक , स्थानवाचक क्रियाविशेषण , रीतिवाचक क्रियाविशेषण, स्वीकृति सूचक , निषेधवाचक, संयोजक अव्यय : सम्बन्धवाचक : समुच्चयबोधक - विस्मयादिबोधक ।

:: १ ::

बाणासुरकथा की भाषिक विशेषताएं

पुरानी कश्मीरी : लल्लेश्वरी की भाषा और 'बाणासुरकथा'

'बाणासुरकथा' के उत्कृष्ट काव्य-मूल्य उसे प्रारम्भिक कश्मीरी कविता की एक शीर्षस्थ उपलब्धि बना देते हैं। इतिहास के एक ऐसे संक्रमण-युग में रचित जब कश्मीर के सांस्कृतिक क्षितिज को ईरानी-पश्चिम एशियाई रंगों में रंगा जा रहा था, यह कृति- कश्मीरी काव्य के उस रूप से परिचित कराती है जिसके दर्शन ('सुख दु:ख चरित की डीठ़कर') बाद में नहीं होते। साथ ही यह एक ऐसा दर्पण भी प्रस्तुत करती है जिसमें झांकने पर कश्मीरी भाषा की अपनी विकास-प्रक्रिया की उस अवस्था में देखा जा सकता है जब वह प्राकृत-अपभ्रंश की झिल्ली से बाहर निकल रही थी या कह सकते हैं, निकल चुकी थी। इस अवस्था को 'पुरानी कश्मीरी' का नाम दिया जा सकता है जिसका रूप उस समय बिल्कुल नया था। प्राय: इस संज्ञा को १४वीं शताब्दी की कवयित्री लल्लेश्वरी के पदों की भाषा के लिए सुरक्षित रखा जाता है, पर लल्लेश्वरी की भाषा का वास्तविक स्वरूप वह कदापि नहीं है जिसमें वे आज उपलब्ध हैं। वह क्या था इसे आलोकित करने का आज कोई आधार हमारे पास नहीं है,

पर 'बाणासुर कथा' की भाषा से एक शताब्दी पुराना तो वह था ही। अपने वर्तमान रूप में इन पदों का भाषा-स्तर बहुत आगे का है - आधुनिक कश्मीरी के अत्यन्त निकट। कारण, जैसा कि 'बाणासुरकथा' के परिचय-प्रसंग में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है, यह है कि ये पद श्रुति-परम्परा से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आये हैं। हर पीढ़ी अनजाने में इन पर अपने भाषिक प्रभाव लादती रही है और आज उनका मूल रूप शताब्दियों की भाषिक पर्तों के नीचे दब गया है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया इतनी सूक्ष्म और धीमी रही है कि वह कब प्रारम्भ हुई और समय के किन बिन्दुओं पर उसने क्या रूप ग्रहण किये यह पता लगाना आज असंभव है। इसके विपरीत 'बाणासुरकथा' जब रची गयी तभी लिपिबद्ध भी हुई अत: उसकी भाषा को लेकर इस प्रकार की गड़बड़ी की कोई गुंजाइश न रही। पंद्रहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में कश्मीरी भाषा की स्थिति को स्पष्ट करने वाला आज वह हमारे पास एकमात्र आधार है। उसके अध्ययन से भाषाशास्त्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण अनेक ऐसे तथ्य उपलब्ध होते हैं जिनसे कश्मीरी के उद्‌गम और विकास की बेहद उलझी (और उलझायी गयी) गुत्थियों को सुलझाने में पर्याप्त सहायता मिलती है और साथ ही पुरानी कश्मीरी का व्याकरणिक ढांचा भी बहुत कुछ स्पष्ट होता है। इस दृष्टि से 'बाणासुरकथा' एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाषाशास्त्रीय दस्तावेज़ है जो अपने छोटे से कलेवर में एक सम्पूर्ण युग की भाषिक प्रकृति और प्रवृत्तियों को समेटे हुए है।

महानय प्रकाश की भाषिक प्राचीनता

कश्मीरी भाषा के प्राकृत-अपभ्रंश रूप की झलक शितिकण्ठ के 'महानय प्रकाश' में मिलती है यद्यपि उसमें संस्कृत की तत्सम शब्दावली के प्रयोग की प्रवृत्ति भी अत्यन्त प्रबल है। कल्हण की राजतरंगिणी में प्रयुक्त एक कश्मीरी वाक्यांश और 'कुष्ण-सम्प्रदाय' में उपलब्ध कुछेक छन्द अतिरिक्त 'बाणासुरकथा' से पूर्व प्रयुक्त कश्मीरी के स्वरूप को स्पष्ट करने वाला यही एकमात्र उपलब्ध

अभिलेख है । ग्रियर्सन जिन्होंने 'बाणासुरकथा' का अध्ययन निश्चय से नहीं किया था, 'महानय प्रकाश' को बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी से लेकर १५वीं शताब्दी के अंत (अर्थात् 'बाणासुरकथा' के भी बाद) में ले जाने का हठ करते हैं[१] जिससे उत्पन्न भ्रम अभी तक दूर नहीं हो सका है । दोनों कृतियों से एक-एक उद्धरण देकर हम उनके भाषिक-स्तरों की काल की दृष्टि से सापेक्षिक स्थिति को स्पष्ट कर सकते हैं —

तव्यु आदिवन्न कुहरानभु उदयो
तस अंग लग्ग पवनाजो ~~भम~~ ऊम ।
उभय निप्पारिशा पावकु वप्यो
सेदु सलिल आशाजो भूम ॥
(महानय - प्रकाश, २१५)

शुनेत वनो कुम्भाण्डे बाणस
वनोत् मंगत कित विनाश ।
युद्ध महादुस्राह २ पानस चल
देवा अर्य वयन मा माष ॥
(बा० क० । ३२)

'महानय प्रकाश' से लिये गये उद्धरण में अपभ्रंश की उकारान्त प्रवृत्ति तव्यु, नभु, पावकु, सेदु शब्दों में स्पष्ट देखी जा सकती है । आदिवन्न, अंगलग्ग, अम, आदि शब्द प्राकृत और अपभ्रंश का स्वरूप लिये हुए हैं, उभय, सलिल, उदयो, तत्सम-अर्द्ध-तत्सम शब्द-प्रयोग हैं और पवानाजो (पवन को), आशाजो (आशा को) में वर्तमान कश्मीरी के सम्बन्धकारक स्त्रीलिंग के पूर्वरूप के दर्शन होते हैं ।

दूसरा उद्धरण भाषा की दृष्टि से स्पष्टतया इससे बाद का और वर्तमान कश्मीरी के शब्दरूपों और वाक्य-गठन के अधिक निकट प्रतीत होता है । इसमें

वनो, अनोत, मंगेत, कित , अयं शब्द थोड़े से ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ आधुनिक कश्मीरी में प्रचलित हैं । `बाणस`, `पानस वल` आदि प्रयोग बिल्कुल आज के-से हैं । `बाणस` (= बाण से, बाण को) संस्कृत बाणस्य > पा० बाणस्स से व्युत्पन्न है । `कुम्भाण्डे` (= कुम्भाण्ड ने) में करणकारक की विभक्ति `ए` है जिसके स्थान पर आज अन् (< सं० स्न) का प्रयोग होता है, जैसे `कुम्भाण्डन` , बाणन आदि । `वयन` में प्राकृत की ध्वन्यात्मक विशेषता `च` के लोप और `य` की श्रुति में साफ झलकती है । वर्तमान-कश्मीरी रूप है `वचन` जो तत्सम् ही है केवल `च` का उच्चरित रूप `च़` है । युद, महादुस्सह, विनाश आदि शब्द संस्कृत के हैं । इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि `महानय प्रकाश` की भाषा `बाणासुर कथा` की भाषा से काफी पुरानी है। बाद की तो वह हो ही नहीं सकती । कश्मीरी संयोगात्मक और वियोगात्मक दोनों प्रकार की भाषा है -- `महानय प्रकाश` में `बाणासुरकथा` की तुलना में उसका संहिति प्रधान रूप ही अधिक उभरा है । पंद्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध की भाषा का स्वरूप सुलतान हसनशाह (१४७२-८४ ई०) के समय में रचित `सुख-दुःख मोहमाया जाल चरितम्` (संक्षेप में `सुख-दुःखचरित्`) में देखा जा सकता है जो `बाणासुर कथा` में प्रयुक्त भाषा-रूप से पूर्ण साम्य रखता है । वस्तुत: दोनों की भाषा एक ही है ।

महानय प्रकाश और बाणासुर कथा : सम्बन्ध सूत्र

`महानय प्रकाश` का भाषा-स्तर अपेक्षाकृत प्राचीन तो है पर उसकी अनेक ध्वन्यात्मक और रूपात्मक विशेषतायें परवर्ती `बाणासुरकथा` में सुरक्षित हैं । कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं -- कर्ताकारक स्त्री एक० में -- -आ > -अ (पूजा > पूज) ; इ > अ (अँस्ति > अस्त), नायिका > नायक - प० प्र०, नायुक - बा० क०), अधिकरण एक० के रूपों में ए > अ (प्राणे > प्राण), ए > इ (हृदये > हृदयि), स्वर-विपर्यय (यदि > यिद) ; मध्यग च का लोप और य की श्रुति (लोचन > लोयन,

वचन > वयन), -ठ > -ढ (हठ > हढ - म० प्र० , हढु - बा० क०), अन्त्य 'त' का लोप (यावत् > याव), द का लोप और य की श्रुति (उदयतव्य > उयवाओ - म० प्र०, उदयी - बा० क०), -म- > -व- (गमनं > गवन), क्त > त (शक्ति > शत) प्त > त (सप्त > सत- म० प्र०, सत (न) - बा० क०), -प्त- > त (अवाप्तम् > वाती), न् + म् > म्म (जन्म > जम्मु - म० प्र०, जम्म - बा० क०), द्य > ज्ज (सम्पद्यते > सपज्जि), ध्य > ज्ज (मध्यात् > मज्जा), संयुक्ताक्षरों में 'रेफ' के लोप की प्रवृत्ति (वर्ण > वन्न, क्रोध > कोध, चक्र > चक्क , चन्द्र > चन्द , प्रकृति > पकिति - म० प्र०, पकित - बा० क०), ज्व > ज (ज्वलन् > जलेन - म० प्र० , जलन् - बा० क०), द्व > ज (द्वौ > जु) , स्ख > ख (स्खलित > खलितो), ह्म > म्म (ब्रह्मा > बम्मु - म० प्र०, बम्मा - बा० क०) ; ऋ > इ (तृण > तिन), , पृथ्वी > पिथिव - म० प्र० , पिथिवु - बा० क० , प्रकृति > पकिति - म० प्र० , पकित - बा० क० आदि ध्वन्यात्मक परिवर्तन दोनों कृतियों में समान रूप से मिलते हैं। इसी भाँति रूप-रचना के क्षेत्र में भी कुछ साम्य है। करण कारक पु० एक० की विभक्ति दोनों में 'ए' है - यही विभक्ति अधिकरण पु० एक० के लिए भी प्रयुक्त हुई है ; करणकारक स्त्री०एक० के अन्त्य 'आ' वाले प्रातिपदिकों के साथ 'इ' विभक्ति प्रत्यय जोड़ा गया है। अपादान कारक पु० एक० के रूप दोनों कृतियों में अ अन्त्य प्रातिपदिकों में 'आ' प्रत्यय जोड़ने से बने हैं जो संस्कृत 'आत्' का घिसा हुआ रूप है (उदाहरण : मज्जा > मध्यात्)। कतिपय सर्वनामों के भी कुछ रूप एक-से हैं - मि, चि, सु, सो, सा, ते, तेन, इह, यो, कु आदि। क्रियापदों में भी काफी समानता है यद्यपि महानय प्रकाश में अधिक क्रिया-रूप उपलब्ध नहीं। 'बाणासुरकथा' की भाषिक विशेषताओं की विस्तृत चर्चा आने वाले परिच्छेदों में की जायेगी, यहां यही कथ्य है कि इस काव्य-कृति में उन भाषिक कड़ियों को ढूंढा जा सकता है जो दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं के अंत तक की कश्मीरी भाषा को एक विकास-क्रम में जोड़ती हैं।

बाणासुरकथा की भाषिक संरचना

'बाणासुर कथा' की भाषिक संरचना एक साथ संस्कृत (तत्सम- अर्द्ध-तत्सम), पाली - प्राकृत - अपभ्रंश और इनसे बाद के तत्वों को वहन करती है। इनमें संस्कृत के तत्सम्- अर्द्धतत्सम् शब्दों का अंश सर्वाधिक है जिससे यह घोतित होता है कि कश्मीरी असंशय संस्कृत परिवार की एक पुरानी और प्रमुख सदस्य-भाषा है। इस कृति में प्रयुक्त लगभग हर शब्द का विकास प्राचीन भारतीय आर्यभाषा स्तर से नवीन भारतीय आर्यभाषा के प्रारम्भिक स्तर तक की विभिन्न अवस्थाओं में देखा जा सकता है।प्राय: तत्सम् - अर्द्धतत्सम संस्कृत शब्दों को कश्मीरी ध्वनि-नियमों तथा विभक्तिक प्रत्ययों व परसर्गों के साथ गूंथ दिया गया है मानो वे कश्मीरी के बिलकुल अपने शब्द हों, जैसे - पितस, पदिस, रणि, वेदवान, निगदन, अतिवेगे, वरवनितन, वररमणि, पश्याह, कलोत् आदि। एक ही अर्थ के घोतक संस्कृत तथा पुरानी कश्मीरी दोनों के शब्दों का भी काफी प्रयोग किया गया है, यथा- सहस्र - सास ; स्मरेत् - सरेत् ; उपविष्टे - बिट्ठो ; त्यजेत् - त्रावेत् ; सह-साते ; मध्ये - मञ्ज ; कोपे - चखि ; वनो - निगदी ; उपरि - पिट्ठ आदि। अनेक कश्मीरी शब्द भी एकाधिक रूपों में मिलते हैं — ताव, ताम ; दौ , ब्यास ; कू, कुसो, इह, यि आदि। इनमें से एक रूप अपेक्षाकृत पुराना है तो दूसरा उससे कुछ नया, एक स्थिर दूसरा अस्थिर जिससे यह घोतित होता है कि भाषा निर्माण की प्रक्रिया में है और अभी उसके सभी शब्द-रूप स्थिर नहीं हो पाये हैं। यह इस प्रकार की भाषा है जिसे डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा के अनुसार जर्मन में 'गानगिग' (चल रही) कहते हैं।

देश्य भाषा का सन्दर्भ

'बाणासुर कथा' के समापन-अंश में अवतार भट्ट ने उसकी भाषा को 'देश्य' कहा है - 'देश्यो अवतार भट्टे विरचीन रमणी आख्य - - - ।'

उनसे पूर्व शितिकण्ठ ने 'महानय प्रकाश' को भाषा को 'सर्वगोचर देशभाषा' कहा था । प्रश्न यह उठता है कि कश्मीरी के सन्दर्भ में इस 'देश्य' अथवा देशी भाषा से क्या तात्पर्य लिया जाये । भरत ने 'देसीमत' शब्द को परिभाषित करते हुए यह विशेषण उन शब्दों के लिये सुरक्षित रखा जो संस्कृत तत्सम-तद्भव शब्दों से भिन्न हों । हेमचन्द्र ने उन शब्दों को 'देशी' कहा जो प्रकृति-प्रत्यय नियमों के आधार पर सिद्ध नहीं हो सकते ।[2] चण्ड ने भी देशी का प्रयोग इन्हीं अर्थों में करते हुए उन शब्दों को 'देशी-प्रसिद्ध' की संज्ञा दी जो संस्कृत अथवा प्राकृत से उद्भूत न हों ।[3] रुद्रट ने तो इस प्रकार के शब्दों के संस्कृत से बहिष्कार तक की माँग की ।[4] इस प्रकार देशी का प्रयोग वैयाकरणों ने उस शब्द के लिए किया जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत या प्राकृत से न दिखलायी जा सके । हेमचन्द्र ने 'नाममाला' में इन शब्दों की एक सूची प्रस्तुत की । किन्तु 'देशी' के विषय में यह मत तथ्य की ओर इंगित करता प्रतीत नहीं होता । पी० एच० वैद्य को उद्धृत करते हुए डा० तगारे कहते हैं कि इस प्रकार के अनेक शब्दों को संस्कृत मूल से व्युत्पन्न दिखाया जा सकता है ।[5] पिशेल का भी यही मत है, 'देश्य अथवा देशी वर्ग में भारतीय विद्वान् परस्पर-विरोधी तत्व सम्मिलित करते हैं । वे इन शब्दों के भीतर वे सब शब्द रख लेते हैं जिनका मूल उनकी समझ में संस्कृत में नहीं मिलता । संस्कृत भाषा के अपने-अपने ज्ञान की सीमा के भीतर या शब्दों की व्युत्पत्ति निकालने में अपनी कम या अधिक चतुराई के हिसाब से देश्य शब्दों के चुनाव में - - - नाना मत हैं । कोई विद्वान् एक शब्द को देशी बताता है तो दूसरा उसे तद्भव या तत्सम श्रेणी में रखता है । इस प्रकार देशी शब्दों में ऐसे शब्द आ गये हैं जो स्पष्टतया संस्कृत मूल तक पहुंचते हैं किन्तु जिनका संस्कृत में कोई-ठीक-ठीक अनुरूप शब्द नहीं मिलता - - - ।'[6]

'देशी' अथवा 'देश्य' का प्रयोग केवल शब्दों के ही लिए नहीं किया गया है । जैसा कि डा० तगारे ने स्पष्ट किया है, इस शब्द का प्रयोग प्रदेश विशेष की भाषा अथवा बोली के अर्थ में भी किया गया है ।[7] पादलिप्त

ने `तरंगावई कहा` को प्राकृत को `देसीवयण` कहा है।[८] `पउमचरिउ` के रचयिता स्वयंभू[९], महापुराणकार पुष्पदन्त[१०], पासणाह चरिउ के लेखक पद्मदेव[११] और `नेमिनाहचरिउ` के कृतिकार लक्ष्मणदेव[१२] ने अपनी- अपनी कृतियों की भाषा को `देसी` कहा है। `लीलावई कहा` की महाराष्ट्री प्राकृत भी उसके रचयिता कोऊहल के शब्दों में `देशी भाषा` ही है।[१३] तेरहवीं शताब्दी के महाराष्ट्री कवि ज्ञानेश्वर भी अपनी भाषा को `देशी` मानते हैं।[१४] इससे यह स्पष्ट होता है कि नववीं शताब्दी से ही प्राकृत-अपभ्रंश के कृतिकार `देशीभाषा` शब्द का प्रयोग अपनी कृतियों में प्रयुक्त स्थानीय भाषा या बोली के लिये करते आये हैं। निष्कर्ष को डॉ० तगारे के शब्दों में प्रस्तुत करते हुए कहा जा सकता है कि `देशी भाषा` सामान्यतया प्रान्त विशेष में बोली जाने वाली भाषा को कहा जा सकता है, वह चाहे महाराष्ट्री हो, प्राकृत हो अथवा अपभ्रंश या फिर कोई नव्य-भारतीय आर्य-भाषा।[१५] इन्हीं अर्थों में अवतार भट्ट द्वारा प्रयुक्त `देश्य` शब्द को लिया जा सकता है। तत्कालीन कश्मीर की वास्तविक जन-भाषा है। उसमें लोकरस की ताज़गी है, मिठास है। यदि उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य है तो उसे कश्मीरी भाषा की तत्कालीन स्थिति ही घोतित होती है। उसमें प्राकृत-अपभ्रंश का सौन्दर्य भी है पर वह स्वयं उनसे बहुत आगे निकली हुई भाषा है। उसमें नव्य भारतीय आर्यभाषा कश्मीरी का प्रारम्भिक रूप निखर उठा है। `कलिकाल सर्वज्ञ अभिमान मेरु` कवि स्वयंभू का रूपक उधार लें तो कह सकते हैं कि प्राकृत अपभ्रंश और संस्कृत उसके दो किनारे हैं जिनके भीतर से वह `सुध नद` की भाँति प्रवहमान है :—

सुघनद जन कण्ठा वहवन्ये![१६]

उसके माधुर्य का एक घूण्ट पीने पर कवि विद्यापति की भाँति गीत - मुखर हो गाया जा सकता है —

देसिल वयना सब जन मिट्ठा!

फारसी से भिन्न भाषिक प्रकृति

`बाणासुर कथा` को भाषाशास्त्रीय प्रकाश वृत्त में रखकर उसकी विशेषताओं को स्पष्ट करने से पूर्व दो-एक बातें और उसके विषय में कही जानी आवश्यक है। जिस युग में इस काव्य-कृति की रचना हुई थी वह कश्मीर में फारसी के अभ्युदय का काल था। इतिहासकार श्रीवर ने स्वयं अवतार भट्ट को `शाहनाम देश ग्रन्थाब्धि पारग:`[२७] कहा है। इससे यह अपेक्षा की जा सकती थी कि `बाणासुर कथा` में भी फारसी शब्दों का बाहुल्य नहीं तो पर्याप्त प्रयोग अवश्य होगा, पर दो-एक शब्दों — `बन्दर`, `आबाद` के अतिरिक्त कुछ भी हमारे हाथ नहीं लगता। `बन्दर` शब्द को भी यदि सं० `अंतर` से उद्भूत मान लिया जाए तो फारसी के नाम पर उसकी पंक्तियों में लगभग शून्य ही मिलता है। इसका कारण यही हो सकता है कि फारसी भले ही राजसिंहासन और कचहरी की गद्दी पर दृढ़ता से आसीन हो गयी थी, तत्कालीन कश्मीर के जन-साधारण ने उसे अपनी मातृभाषा का स्थानापन्न नहीं बनने दिया था और न उसके रूप की शुद्धता को नष्ट होने दिया था। अवतार भट्ट दरबार में प्रतिष्ठित और प्रशंसित कवि थे, फारसी-मिश्रित कश्मीरी के प्रयोग से उन्हें सुल्तान और उसके अमीरों से और भी अधिक प्रशंसादान मिल सकता था, पर उन्हें दरबार में तालियां पाने के लिए भाषा का सौन्दर्य बिगाड़ना शायद स्वीकार्य न था। कश्मीरी में कुछ ऐसा अवश्य था जो फारसी की प्रकृति से मेल न खाकर संस्कृत के अधिक निकट था और कवि अवतार भट्ट को अपनी मातृभाषा की इस प्रकृति की अच्छी पहचान थी। यहां यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि कृति के विषय का धर्म से सम्बन्ध होने और स्वयं कवि के संस्कृत विद्वान् होने के कारण `बाणासुर कथा` में फारसी का प्रवेश नहीं हो सका है, पर यह तर्क बहुत हल्का है। १८वीं शताब्दी के कवि प्रकाशराम कुर्यग्रामी, जिन्होंने कश्मीरी को उसकी प्रथम रामायण दी, निर्द्वन्द्व रूप से अपने स्पष्टतया धार्मिक काव्य में फारसी शब्दों की भरमार करते हैं। फिर `बाणासुर कथा` सही अर्थों में धर्म अथवा भक्ति-प्रेरित कृति न होकर प्रेम, सौन्दर्य और युद्ध की भावभूमि पर स्थित कथा-काव्य है। डा० मुहीबुल हसन ने उसे `कश्मीरी का

प्रथम लौकिक (सैक्युलर) काव्य कहा है । उसके वर्षों बाद १५वीं शताब्दी के अंतिम चरण में `गणक प्रशस्त` ने भी अपने `सुख-दु:ख मोह-माया जाल चरितम्` में इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है जो यह सिद्ध करता है उस समय तक फारसी `कारकूनों` को दरबारी नौकरी दिलाने वाली भाषा भले ही हो, लोक-मानस पर उसका प्रभाव नगण्य था ।

अन्य भाषाओं के शब्द

`बाणासुर कथा` में दो-एक दरद-मूल के शब्द भी आये हैं । ये हैं `माजि` और `मालो` :-

`माजि मा चु कृदयस अन शोकहि चन्द कोशु ।`[१८]

(माँ के हृदय को शोकाकुल न बना हे चन्द्रिके !)

`पश्येत् मालो - - - ।` (पिता को देखकर)[१९]

इन इक्के-दुक्के शब्दों को छोड़कर, जैसा पहले भी संकेतित किया गया है, `बाणासुर कथा` की भाषा शुद्ध-रूप से मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के यात्रान्त-बिन्दु पर नव्य भारतीय आर्यभाषा का उठा हुआ प्रथम चरण है ।

ग्राम-गिरा का रस

अवतार भट्ट कश्मीर के लार परगना के शालपुर गाँव के रहने वाले थे, अत: उनकी कृति में ग्रामीण कश्मीरी के प्रयोग अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होते हैं :-

राज़ुन सखन प्राड तु बाठे - -

([illegible])

राम काम ति लाढित तेम लस - - - ([illegible])

वसे गच्छी कोड निराश पने ([illegible])

वरनायुक उष रट्टेत नाला दपवान पंचशरान् गीत (२०५)

ग्रामीण कश्मीरी में परिनिष्ठित (श्रीनगर और उसके आस-पास बोली जाने वाली) कश्मीरी का `र` प्राय: `ड` में परिवर्तित हो जाता है। प्राड (= प्रतीक्षा कर), खाडेत (= बढ़ाकर), कोड (= किधर) में यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। इसी भाँति `दयवान` (= कहते हैं। का `दयान` के स्थान पर प्रयोग हुआ है। ग्राम-गिरा की यह छाया साक्ष्य प्रस्तुत करती है कि `बाणासुर कथा` की भाषा लोक-जीवन से निकट से सम्पृक्त थी, शहरी बोली के कृत्रिम संस्कारों से मुक्त!

बाणासुर-कथा और आधुनिक कश्मीरी

`बाणासुर कथा` में प्रयुक्त बहुत से शब्द आज की कश्मीरी में उन्हीं रूपों अथवा थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ प्रचलित हैं। सम्बोधन के रूप तो आश्चर्यजनक रूप से आज भी वही हैं — किषणा, कुम्भाण्डा, माधवा, बाणा, वृषभवाहनो आदि। ऐसे शब्द-प्रयोगों की संख्या भी काफी अधिक है जो आज बिल्कुल अप्रचलित और विस्मृत हैं। आज शीघ्र के अर्थ में कोई `जवे` का प्रयोग नहीं करता न अत्यंत अथवा अत्यधिक के लिए `मुत` का। इसी भाँति कहंगत (= किस प्रकार, कैसे), याछेत (= जैसे), काछेत (= कैसे), कलेत, कलो (= देखकर, देखा) जैसे शब्द जिनका प्रयोग अवतार भट्ट बहल्ले से करते हैं वर्तमानकालीन साहित्यिक अथवा बोल-चाल की कश्मीरी से सर्वथा विलुप्त हो गये हैं। एक ही क्रिया के लिए अनेक समानार्थक शब्दों का प्रयोग `बाणासुर-कथा` की एक प्रमुख भाषिक-प्रवृत्ति है। `कहता है` के अर्थ में प्रयुक्त वदिस, निगदिस, दप्प्य, वाचि, गिरि, वनी आदि शब्द इसका अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इनमें से आज दप्पी और वनी ही किंचित परिवर्तन के साथ विभिन्न रूपों में प्रयुक्त होते हैं। `सब` अथवा `सारे`, `सभी` के लिए वर्तमान कालीन कश्मीरी शब्द है `सोरी`, किन्तु `बाणासुर कथा` में

सर्वत्र प्राकृत प्रभावापन्न `सवृव , सबुबव` का व्यवहार हुआ है जो आज की कश्मीरी में कहीं प्रयुक्त नहीं होता । `सुन` के लिए व्यवहृत `शुन` और `मुज्ज` (उच्चरित रूप `बुज्ज़) में से केवल दूसरा `बोज़` के रूप में प्रचलित है । अनेक कश्मीरी शब्दों के पूर्वरूप `बाणासुर कथा` में उपलब्ध होते हैं जिससे उनकी व्युत्पत्ति और विकास पर प्रकाश पड़ता है । इस संदर्भ में कश्मीरी भाषा की सहायक और अस्तित्ववाची क्रिया `छु` के विभिन्न रूपों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है । `बाणासुरकथा` में उपलब्ध रूप हैं छाो , छिास, छाोह, छ , छियिय, छाोम आदि जिनके वर्तमानकालीन रूप हैं — छु , छुयस, छुस, छि, छिय, छुम आदि । बाणासुर-कथा के छ-वाले रूप यह स्पष्ट कर देते हैं कि यह सहायक क्रिया सं० `छि` से ही विकसित हुई है । इसी भाँति कालवाचक अव्यय तात्र अथवा ताम और यात्र , ताव (< तावत्) और याव (< यावत्) के रूप में मिलते हैं जो संस्कृत मूल के अधिक निकट हैं । प्राकृत-अपभ्रंश रूप में आये अनेक शब्द आज अपने संस्कृत मूल के फिर से निकट पहुँच गये हैं । उदाहरण के लिए मवा के स्थान पर मर्चा, किप के स्थान पर क्रपा , ति (= तीन) के लिए त्रै , वयन के लिए वचन, वन्न (< सं० वर्ण) के स्थान पर वरुन (अंतिम दो शब्दों का आज अर्थ-संकोच हो गया है) आदि अनेक शब्द गिनाये जा सकते हैं। अन्य नव्य भारतीय आर्य भाषाओं की भाँति `बाणासुर कथा` में प्रयुक्त अधिकतर प्राकृत-पाली-अपभ्रंश शब्द पुनर्तत्समीकरण की प्रक्रिया से गुज़रने के कारण वर्तमान-कालीन कश्मीरी में भिन्न रूपों में उपलब्ध हैं । इस पर विचार करते हुए बीम्स इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि भारत में बौद्धधर्म के ह्रास के बाद ब्राह्मणवाद के पुनरोदय का यह परिणाम है । `अपने धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा के उपक्रम में ब्राह्मणों ने, जैसा कि स्वाभाविक था, पवित्र संस्कृत भाषा को वापस लाया ।`[२०] संस्कृत भाषा के साथ उसके साहित्य को भी फिर महत्व मिला और धीरे-धीरे इस सबके व्यापक प्रभाव से अनेक शब्द अपने शुद्ध संस्कृत रूप में फिर से प्रचलित हुए । एक बार प्रारम्भ होने पर यह प्रक्रिया वर्तमान समय तक अबाध गति से चलती रही । तत्सम् रूपों को पुन: प्राप्त इन शब्दों में भी बाद में परिवर्तन हुए पर उन नियमों

के आधार पर नहीं जो प्राकृतों के युग में प्रचलित थे।

'बाणासुर कथा' में व्यवहृत क्यो, क्योन्, क्योह्स (= हिं० किया) के स्थान पर आज की कश्मीरी में कोर का प्रयोग इस संदर्भ में एक दिलचस्प उदाहरण है। मुसलमानों द्वारा बोली जाने वाली कश्मीरी में आज भी रेफ के लोप और उसके स्थान पर य श्रुति की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, यथा — 'कूर' (= कुआं) के स्थान पर क्यूर, ब्रोर (= बिडाल) के स्थान पर 'ब्योर' आदि, पर 'करुन' (= करना) के भूतकालिक रूप आज दोनों सम्प्रदायों द्वारा बोली जाने वाली कश्मीरी में इस प्रवृत्ति का अनुसरण नहीं करते। कहा जा सकता है कि 'बाणासुर कथा' में उर्मे पाली-प्राकृत, अपभ्रंश और वर्तमान कालिक अनेक भाषिक परतें मिलती हैं। उसकी तत्सम् बहुलता का यह भी एक रहस्य है। आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक कश्मीर संस्कृत पाण्डित्य और प्रतिभा के एक महत्वपूर्ण पीठ के रूप में स्थापित हो चुका था। इस युग में कश्मीर ने संस्कृत को अनेक शीर्षस्थ काव्य-चिन्तक और कृतिकार दिये। इसी कालावधि में शैव दर्शन अपने उत्कर्ष के चरम को प्राप्त हुआ और उसके चिन्तन-सूत्रों को लेकर विचार और व्याख्या के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई। इस सांस्कृतिक-बौद्धिक परिवेश का प्रभाव इतना प्रबल था कि वह १५वीं शताब्दी के बाद तक भी काफी व्यापक रूप से बना रहा। अवतार भट्ट के युग में संस्कृत की अवसान बेला में भी जन-चित्त से वे संस्कार धुले-पुंछे नहीं होंगे जो महान शैवाचार्यों और दिग्गज काव्य-चिन्तकों से उसे दाय में मिले थे।

बाणासुरकथा और भा० आ० भा० की विकास दिशाएं

'बाणासुर कथा' के भाषिक-संदर्भ में एक और ध्यातव्य बात है कुछ ऐसे शब्द-रूपों का प्रयोग जो आज कश्मीरी में नहीं हिन्दी आदि अन्य आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में प्रचलित हैं। कृति में इनके संस्कृत तत्सम और कश्मीरी रूप भी विद्यमान हैं। जैसे, √पत् का प्राकृत रूपान्तरण पढ जो हिन्दी में 'पढ़'

रूप है कंसि ।

इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'बाणासुरकथा' भाषा-विकास के अध्येता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा रोचक है । १५वीं शताब्दी की कश्मीरी का दुर्लभ नमूना तो वह प्रस्तुत करता है ही नव्य भारतीय आर्य-भाषाओं के पारस्परिक सम्बन्ध-सूत्रों को समझने की दिशा में भी इसका अध्ययन उपादेय सिद्ध हो सकता है । इस पीठिका के बाद 'बाणासुर कथा' की भाषिक विशेषताओं का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है ।

अनुलेखन-पद्धति

'बाणासुर कथा' का एकमात्र उपलब्ध हस्तलेख कश्मीर की प्राचीन लिपि शारदा में है जिसे ऑरेल स्टीन ने 'देवनागरी की बड़ी बहन'[२१] कहा है । डॉ० भोलानाथ तिवारी १०वीं शती के आसपास कुटिल लिपि से इसका विकास मानते हैं ।[२२] फारसी भाषा और उसकी लिपि को सरकारी स्तर पर अपनाने के बावजूद मुस्लिम शासनकाल में भी इस लिपि का प्रयोग स्वयं मुसलमान करते रहे हैं । १५वीं से १६वीं शताब्दी तक की ऐसी कई कब्रें मिली हैं जिन पर ऊपर शारदा-लिपि में और नीचे फारसी लिपि में लिखा गया है ।[२३] श्रीनगर के संग्रहालय में शेख मख्दूम हम्ज़ा का १५७७ में भोजपत्र पर लिखा हुआ एक वसीयतनामा है जो फारसी भाषा और लिपि के साथ-साथ संस्कृत में शारदालिपि में लिखा गया है । ऑरेल स्टीन ने १६८१ में फारसी और संस्कृत दोनों भाषाओं में लिखित एक बिक्री-पत्र का उल्लेख किया है जिसमें संस्कृत के लिए शारदा लिपि का ही प्रयोग हुआ है ।[२४] धीरे-धीरे इस लिपि का प्रयोग कम होता गया और आज यह एक छोटे से (पुरोहित) वर्ग तक ही सीमित रह गयी है । ग्रियर्सन इसे कश्मीरी की विशिष्ट ध्वनियों के अनुलेखन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त लिपि मानते हैं क्योंकि इसमें, निश्चित और स्थिर ध्वनियों के लिए निश्चित और स्थिर लिपिचिह्न हैं ।[२५] कश्मीरी की सबसे बड़ी ध्वन्यात्मक विशेषता है उसकी विशिष्ट और अपेक्षाकृत

जटिल स्वर-पद्धति जो अन्य भारतीय भाषाओं में (पहाड़ी आदि को छोड़कर) प्राय: नहीं पायी जाती । उदाहरणार्थ शब्द के अन्त में लगभग अनुच्चरित अथवा जपित इ तथा उ स्वरों का प्रयोग । ये स्वर, जिन्हें कश्मीर के हिन्दू वैयाकरण `मात्रा-स्वर` कहते हैं, स्वयं लगभग अनुच्चरित रहकर भी पूर्ववर्ती स्वर को प्रभावित करते हैं । ब्यूह्लर इन्हें प्राचीन ओ या उ तथा ई का अवशेष मानते हैं ।[२६] मूल शब्द के साथ प्रत्यय जुड़ने पर ये स्वर शब्द के मध्य में भी आते हैं और पूर्ववर्ती स्वर को प्रभावित करते हैं । शारदा लिपि में इन मात्रा स्वरों के लिए इ , उ के सामान्य मात्रा चिह्न ही प्रयुक्त होते हैं किन्तु उनके नीचे हलन्त चिह्न लगा दिया जाता है और पूर्ववर्ती स्वर के परिवर्तित स्वरूप को दर्शाने के लिए उसके ऊपर खड़ी पाई (।) का चिह्न लगा दिया जाता है । वस्तुत: ये `मात्रा स्वर` शुद्ध स्वर न होकर इ, उ के मात्र श्रावणिक प्रभाव हैं । इनका इतिहास देते हुए ग्रियर्सन ने संस्कृत `कृत:` शब्द के विकास का उदाहरण दिया है ।[२७] संस्कृत `कृत:` का अपभ्रंश में `करिउ` हो गया जिससे पुरानी कश्मीरी का `करु` शब्द बना । अपनिहिति के कारण इसका उच्चारण `कउर` के रूप में हुआ जिससे वर्तमान-युगीन कश्मीरी का कोर शब्द विकसित हुआ । शारदा में इसके पुराने हिज्जे ही सुरक्षित रखे गये किन्तु शब्दान्त में आने वाले `उ` की जपित अथवा लगभग अनुच्चरित स्थिति दर्शाने के लिए शारदा का हलन्त चिह्न लगा दिया गया । इसी भाँति कश्मीरी करि (करि) < अप० करिइ, करे < अप० करिआ ।

`बाणासुरकथा` के उपलब्ध हस्तलेख में इन ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए ऊपर उल्लिखित शारदा लिपि-चिह्नों का प्रयोग नहीं मिलता यद्यपि हलन्त का प्रयोग शब्दान्त में हुआ है । इससे उसमें `मात्रा-स्वरों` की स्थिति का पता नहीं चलता ।

`मात्रा स्वरों` के अतिरिक्त कश्मीरी में एक अत्यन्त ह्रस्व `अ` का भी प्रयोग होता है । ॵ , ॖ तथा ॗ भी कश्मीरी के अपने विशिष्ट स्वर हैं

जो जर्मन ö, ü तथा ü की-सी ध्वनि देते हैं और शब्द के मध्य में `इ` अथवा `ई` की स्थिति से प्रभावित होते हैं। इन स्वरों तथा मध्यकालीन आर्य-भाषाकाल में विकसित ह्रस्व ऍ तथा ऑ के लिए भी `बाणासुर कथा` के लिपिकार ने किसी विशेष चिह्न का प्रयोग नहीं किया है ऍ के लिए `इ` (चि, मि) का प्रयोग हुआ है। इससे इन स्वर-ध्वनियों के उस समय की कश्मीरी में सही उच्चरित रूप का पता नहीं चलता। कश्मीरी स्वर-ध्वनि ऊ॒ को सीधे ऊ की मात्रा द्वारा व्यक्त किया गया है, जैसे क्रूड, शूल आदि शब्दों में। इन शब्दों को `क्रोड, तथा शील के रूप में भी लिखा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान कश्मीरी स्वर-ध्वनि ऊ॒ प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की `ई` ध्वनि से विकसित हुई है प्राचीन `ऊ` से नहीं। जीवन > जूवन भी इसी दिशा की ओर संकेत करता है।

प्रा० भा० आ० भाषा की ऐ ध्वनि का कश्मीरी* में सर्वत्र आ हो जाता है, पर यहाँ उसे `ऐ` अथवा `ए` ही रखा गया है जैसे `पैरंत`, `एम` आदि में। कहीं-कहीं `ऐ` की मात्रा का प्रयोग `अय` अथवा अयि को ध्वनित करने के लिए हुआ है — `बाणस निकटी गै समस्ते`। (तुलनीय हिं० जै)। पाली-प्राकृत की भांति कश्मीरी में `औ` स्वर नहीं केवल `ओ` है। संस्कृत तत्सम् शब्दों में आने वाली इस स्वर-ध्वनि का भी कश्मीरी में `ओ` के रूप में ही उच्चारण किया जाता है। `बाणासुर कथा` के हस्तलेख में उसे `औ` ही रहने दिया गया है। कहीं-कहीं उसका प्रयोग `अव` को व्यक्त करने के लिए किया गया है — गौ चतुरो लाहास चहेत तदा समरे, अबला गलौ|वजू तामसे भिह तासे, असे लच्छी कोह निराश पने!

य तथा व श्रुति कश्मीरी की एक प्रमुख ध्वन्यात्मक विशेषता है जिसके प्रभावान्तर्गत `इ` तथा `उ` का उच्चरित रूप `इ` तथा `उ` हो जाता है। लिपि-चिह्न विशेष के अभाव में `बाणासुर कथा` में मूल इ तथा उ का ही प्रयोग हुआ है, जैसे `इ भूपाल विचार कटि ना सहाय`। अनेक स्थलों पर `इ` तथा `यि` दोनों का प्रयोग हुआ है।

अनुस्वार का प्रयोग 'बाणासुरकथा' में म्, न् तथा ञ् तीनों अनुनासिक ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए हुआ है। यथा, बासुं (बासुम्) वदुं (वदुम्), वंथिय (वन्थिय), ञंय (वीञ्)। कई शब्दों के लिए अनुस्वार तथा नासिक्य व्यंजन दोनों का प्रयोग किया गया है — नु, नुम्, संसमवान। चंद्रबिन्दु का प्रयोग नहीं मिलता।

ऋषि शब्द 'रिषि' रूप में भी एक स्थल पर लिखा मिलता है। घ, ध, भ — ये सघोष महाप्राण व्यंजन कश्मीरी भाषा में नहीं हैं। संस्कृत से गृहीत अथवा विकसित शब्दों में इनके स्थान पर अल्पप्राण ग, द, ब का प्रयोग होता है। 'बाणासुरकथा' के अनुलेखन में इनके महाप्राणत्व और अल्पप्राणत्व को ध्यान में नहीं रखा गया और कभी एक रूप में तो कभी दूसरे रूप में लिखा गया है, यथा गरि - घरि, बु - भु, बुत - भुत, बुय - भुय, पबात - पभात, धारेंं - दारेण, दरि - धरि आदि। 'बन्दर' शब्द सब कहीं 'बन्धर' के रूप में लिखा मिलता है। किन्तु 'मागद' तथा गुर्मितो में ध और घ अपने सही कश्मीरी उच्चारण के अनुरूप ही द और ग रूप में लिखे गये हैं। इसी संदर्भ में एक दिलचस्प उदाहरण है : सं० 'कुह्यते' से विकसित 'भुज्जे' शब्द और उसके विभिन्न रूपों में सर्वत्र अल्पप्राण (ब) का महाप्राण (भ) के रूप में प्रयोग। संभवत: सघोष महाप्राण अक्षरों के अल्पप्राणीकरण की कश्मीरी प्रवृत्ति के प्रति अत्यधिक सचेत होने के कारण लिपिकार ने ऐसा किया है।

कश्मीरी हस्तलेखों में स्वरों के अनुलेखन में जो व्यापक गड़बड़ पायी जाती है उसकी ओर ब्यूह्लर ने इंगित करते हुए लिखा है कि इसके कारण इ, ओ तथा उ को एक दूसरे से पृथक् करके पहचानना कठिन हो जाता है।[२८] पंडित इ के लिए ऐ तथा ए के लिए इ और उ के लिए ओ लिखते थे। वस्तुत: कश्मीरी हस्तलेखों में शब्दों के लिखित और उच्चरित रूपों में सदा अंतर रहा है। 'महानय प्रकाश' की भाषा पर विचार करते समय ग्रियर्सन ने 'वातु' और 'वोत' के संदर्भ में इस प्रवृत्ति की ओर इशारा किया है। उनका यह कथन सही है कि १६वीं

शताब्दी के अन्त तक ईश्वर कौल द्वारा कश्मीरी वर्तनी सम्बन्धी प्रयोग स्थिर करने तक शब्द में अपनिहिति आदि प्रेरित ध्वन्यात्मक परिवर्तन को दर्शाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता था और उच्चारण पाठक पर ही छोड़ दिया जाता था।[२६] यह स्थिति कमोबेश आज भी कश्मीरी के लिए प्रयुक्त फारसी लिपि में बनी हुई है। `बाणासुर कथा` में भी स्वरों का प्राय: एक दूसरे के स्थान पर बेफिक्रक प्रयोग हुआ है। कहीं `सु` मिलता है तो कहीं `सो`, कहीं `साय` है तो कहीं `सोय`! कहीं `थेम` का प्रयोग है तो कहीं `एम` या `इमि` का! कहीं कुछ निश्चित नहीं है!

छ का प्रयोग दो-एक स्थलों को छोड़कर सर्वत्र `च्छ` के रूप में हुआ है, शब्दारम्भ तक में — च्छिजेत, महाच्छले, च्छोनात्, च्छोनेत्, च्छाडे आदि कुछ उदाहरण हैं।

मूर्द्धन्य `ण` ध्वनि कश्मीरी में नहीं है, उसके स्थान पर सर्वत्र दन्त्य `न` का व्यवहार होता है। `बाणासुर कथा` में दोनों मिलते हैं। प्राय: संस्कृत तत्सम् शब्दों में `ण` को लिपिकार ने `ण` ही रहने दिया है किन्तु अनेक स्थलों पर `न` में भी रूपान्तरित कर दिया है। कई शब्दों में एक स्थान पर `ण` का प्रयोग हुआ है तो दूसरे स्थान पर `न` का, यथा — त्रिवर्ण - तिवरन, परेन - परेण, पणमेत - पनमेत, नारायणाने, बाणसुराणे। इस प्रकार ण और न के प्रयोग में स्थिरता नहीं मिलती।

श, स और ष तीनों ऊष्मों का प्रयोग `बाणासुरकथा` में मिलता है यद्यपि कश्मीरी में ष और श में कोई अन्तर नहीं। श और स के प्रयोग में सर्वत्र एकरूपता नहीं है। पहले ही पद्य में `सिव` आया है तो २१८ वें पद्य में शिव; २१६ वें पद्य में शुम्भ- निशुम्भ, सुम्भ - निसुम्भ हो गये हैं। शारदा में स और ष तथा स और म का लिखित रूप लगभग एक जैसा होने के कारण उनमें भेद करना प्राय: कठिन हो जाता है। हमारी विवेच्य कृति के हस्तलेख

में लिपिकार ने अनेक स्थलों पर 'च' बिल्कुल श जैसा लिखकर काफी गड़बड़ पैदा की है।

व्यंजन-द्वित्व के प्रयोग में भी बड़ी अनियमितता है — कहीं लिपिकार ने द्वित्व को रहने दिया है तो कहीं उसका सरलीकरण कर दिया है, जिससे इस प्रकार के अनेक शब्द दो रूपों में लिखे मिलते हैं — अक्कस - अकु, अकेस - अक; मुञ्जेत, मुजेत ; चट्टेन, चटेन ; विकट्टी, विकटी ; निकट्टी, निकटी ; सब्ब, सब आदि।

अनेक शब्द दो से अधिक रूपों में लिखे गये हैं — यसेत, यासेत, यसेत ; मया, मर्वा, मत्रा (स) ; असुर, असर, अस, असरु।

कश्मीरी स्पर्श-संघर्षी व्यंजनों — च़, छ़, ज़ की लिपि-चिह्न के अभाव में च, छ और ज के रूप में ही लिखा गया है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि वर्तनी की एकरूपता बनाये रखने का लिपिकार का प्रयत्न नहीं है। कौन-सा प्रयोग तत्कालीन कश्मीरी के संदर्भ में सही है और कौन-सा नहीं यह बतलाना कठिन हो जाता है। विभिन्न स्वर अथवा व्यंजन ध्वनियों के तत्कालीन उच्चरित रूप पर भी कोई प्रकाश नहीं पड़ता। हम केवल वर्तमानयुगीन कश्मीरी की ध्वन्यात्मक विशेषताओं को अनुमान द्वारा उस युग की भाषा में विद्यमान मान सकते हैं।

ध्वन्यात्मक विशेषताएँ

स्वर :- मध्यकालीन तथा नव्य भारतीय आर्य भाषाओं की प्राय: सभी स्वर ध्वनियां 'बाणासुर कथा' में मिलती हैं। अनुस्वार और चंद्रबिन्दु में केवल प्रथम विद्यमान है। विसर्ग केवल एक-दो बार 'पुन:' शब्द में प्रयुक्त हुआ है। कश्मीरी के विशिष्ट स्वर अ, आ, उ, ऊ, ओ आदि को ध्वनित करने के लिए लिपि चिन्हों का प्रयोग नहीं किया गया है किन्तु उनकी स्थिति को

स्वीकार करना ही ठीक है क्योंकि पंद्रहवीं शताब्दी के बाद सहसा उनका प्रकट होना संभव नहीं । उ और ऊ के लिए तो साफ उ और ऊ का प्रयोग किया गया है । ऐ और औ को उच्चारण की दृष्टि से अ और औ अथवा अ+य् और अ+व् मान लिया जा सकता है । ऊपर अनुलेखन पद्धति के प्रकरण में इस पर थोड़ा बहुत विचार किया जा चुका है ।

स्वर-लोप : आदि स्वर-लोप के कुछ उदाहरण 'बाणासुरकथा' में मिलते हैं - आदि अ का लोप : अवाप्तम् > वाती ; इ का लोप: इति > ति ; उ का लोप उपविष्ट > बिट्ठो (प्रा० उवविट्ठा, बिट्ठा, अप० बइठा, मै० बैठब, भो० बैठब, पु० अव० बइठब, हिं० ख० बो० बैठा, का० क० ब्यूठ), ए का लोप : एकादश > काह

स्वरागम : पूर्व > पूरिय, कर्हि > कर

स्वर-संकोचन : अय् तथा अव् के क्रमशः ऐ (कभी ए) तथा औ में परिवर्तन को स्वर-संकोचन का उदाहरण माना जा सकता है । यह प्रवृत्ति हिन्दी तथा उसकी उपभाषाओं में भी देखी जा सकती है - नैन (नयन), निहचै (निश्चय), जै (जय) ; भौन (भवन, पौन (पवन), धौल (धवल) आदि । 'बाणासुर कथा' से कुछ उदाहरण हैं : गै (का० क० गय < सं० गता:), करने (का० क० करनय), गौ (गव < सं० गत:) आदि !

स्वर-विपर्यय : यदि > यिद

स्वर-परिवर्तन :

१. अ > आ : सफल > साफल ; सहस्र > सास्र ; निभृत > निभरा ; अभ्र > अभरा ; रक्षका > राछे, सहित > साते, दुस्सह > दुसाये, त्रिय > त्रिया (छन्दानुरोध के कारण) ; प्रिय > पिया, नश्यते > माहेन ।

२. व > इ : दत्त: > दित्ती ; यर्हि > यिल्ले ; तर्हि > तिल्ले ; यत्र > यति ; तत्र > तति ; केशव > केशिव (संभवत: लिपिकार की भूल)

३. व > उ : तपोधन > तपोधुन ; जनक > जनुक ; शशिशेखर > शशिशेखुर ; निकट > निकुट ; अनल > अनुल ; आनन > आनुन ; लग्न: > लुग्गी ; यक्ष > यक्षु ; वर्षण > वर्षुण ; नन्दन > नन्दुन ; संरक्षक > संरक्षुक, चंचल > चञ्चुल ; तामस > तामुस ; विनय > विनुय ; गरुड़वाहन > गरुड़वाहुन ; नारद > नरुद ; माधव > माधुव ; आश्चर्यम् > आश्चुर ; कटक > कटुक ; इन उदाहरणों से यह प्रकट होता है कि 'बाणासुरकथा' में स्वर-मध्यग् अ को उ हो जाने की प्रवृत्ति है - विशेषकर कर्ताकारक एकवचन में। बा० क० में भी बालक > बालुक, रक्षक > रक्ष्युक, तक्षक > तक्ष्युक में यह प्रवृत्ति दिखती है।

४. अ > ऊ : नगर > नगरू ; उदय > उयूय ; काश > काशू ; शोभनम् > शोभू ; शम > शमू।

५. अ > ए : दद > देतं ; अयम् > एम् ; गन्धर्व > गन्धरे ; तत्र > तते ; यत्र > यते ; निर्गत: > निरेत (र अत्यन्त दुर्बल, ह के निकट ; बा० क० में ह में रूपान्तरित) ; समस्त > समस्ते ; विषम > विषमे ; तमेव > तेमय ; पारयित्वा > पारेत (र दुर्बल, ह के निकट) ; गोपयित्वा > गोपेत ; मारयित्वा > मारेत ; कृत्वा > करेत आदि।

६. अ > ऐ : वयस > वैसि, नववय > नववै।

७. अ > औ : प्राकृत-पाली की भाँति प्रातिपदिक को ओकारान्त करने की प्रवृत्ति 'बाणासुरकथा' में काफी प्रबल है। कई स्थानों पर ऐसा केवल छन्दानुरोध के कारण किया गया है। कुछ उदाहरण हैं — स > सो, प्रथम > पथमो, चतुर > चतुरो, विषम > विषमो, कठिन > कठिनो, दुर्मद > दुम्मदो, दृष्टित: > दिट्ठो (बा० क० दृयूठ), सदृश: > सदिशो, पीडित: > पीडितो,

मिश्र: > मिश्शी , दीन > दोनी , तीक्ष्ण: > तिक्ली (पा० तिक्खा, प्रा० तिक्खो , कु० तिखो , नै० तिखो , हि० तीखा, ललेश्वरी की कश्मीरी तुर)

८. द > दं : दद > देतं

९. आ > अ : महाराष्ट्री, जैन महाराष्ट्री , अर्द्ध मागधी, जैन-शौरसैनी प्राकृतों तथा अपभ्रंश की भाँति बलाघात के अभाव में `आ` का ह्रस्वीकरण कश्मीरी में भी होता है । `बाणासुरकथा` में यह प्रवृत्ति विशेषरूप से आकारान्त स्त्री० कर्ता० एक० में पायी जाती है । उदाहरण — पूजा > पूज , सुधा > सुध, माता > मात, दुहिता > दुहित , लता > लत , प्रभा > पभ , उषा > उष , गिरिजा > गिरिज , सुता > सुत , बाला > बाल आदि । कुरंगनयना , गजगमना , शशिवदना, माला, रात आदि शब्दों में मूल `आ` सुरक्षित रहा है । स्त्रीलिंगवाची शब्दों में `आ` के ह्रस्वीकरण की यह प्रवृत्ति महानय प्रकाश में भी मिलती है ।

१०. आ > इ : बेला > बेलि , उषा > उषि , गिरिजा > गिरिजि, नगजा > नगजि , गिरा > गिरि , दुर्गा > दुर्गि । कर्म० स्त्री० एक० में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है ।

११. आ > ऊ : वलयिता > वलि़चू , मरिता > मरि़चू , शोभावान > शोभूवान , कुसुमलता > कुसुमल़चू , कीदृश > किशू ।

१२. इ > अ : कहिं > कर ; रहिता > रस्ती , वनिते > वनति , समेति (वै०) > समेत (पा० समेति , प्रा० समेट , सिंगा समोळकि , बा० का० सपिधि), कंसारि > कंसार, नरपति > नरपत , दिनपति > दिनपत (तुलनीय बा० का० गनपत) ; कुदृष्टि > कुदिष्ट , राशि > राश , दृष्टि > दृष्ट , नायिका > नायका , कृषि > रिष , मद्रकालि > मद्रकाल,

रश्मि > रश्म , बुद्धि > बुद्ध , अग्नि > अग्न (आ० क० अंगुन) तारिणि > ताररिण , वज्रपाणि > वज्रपाण , शक्ति > शव ।

१३. इ > ए : पूर्वकालिक कृदन्त के रूपों में इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं - ~~कथयित्वा > कथेत (वर्ड मतसायो / कड़िस्वत / बथमत करते)~~, स्मरित्वा > सरेत , रचयित्वा > रचेत , मारयित्वा > मारेत , धारयित्वा > धारेत, पश्यित्वा > पश्येत आदि । इसके अतिरिक्त कुछ और उदाहरण हैं : कृषिवर > कृषेवर, कोटि > कोटे , इमे + अपि > एमय , शक्रादि > शक्रादे , संपत्ति > संचरे, देवि > दिव्ये आदि । यहाँ यह इंगित करना आवश्यक है कि कश्मीरी में इ और ए परस्पर विनिमेय हैं , आज भी देवता का उच्चारित रूप दिवता और देवि का दीवे है ।

१४. ई > अ : स्त्रीलिंगवाची `ई` प्रत्यय बाणासुरकथा में (और आधुनिक कश्मीरी में भी) अ में परिवर्तित हो जाता है - सरस्वती > सरस्वत , सती > सत , रमणी > रमण , गौरी > गौर , आदि ।

१५. ई > इ : वाणी > वानि

१६. ई > उ : जीव > जुव (सि० जिउ , पं० जिउ , कु० ज्यू , ज़ीउ , बं० जीउ , म० जिउ , हि० जीउ, आ० क० जुव)

१७. ई > ऊ : स्वामी > सामू , जीवन > ज़ूवन , शील > शूल , क्रीड़ा > क्रूड़ , पृथ्वी > पृथिवू (म० प्र० पिथिव) ।

१८. ई > ए : देवी > दिवे , आनीत > अनेत ।

१९. उ > अ : त्रिभुवन > तिभवन , शम्भु > शम्भ , बकुलस्य > भवलेस , वसु > वस (आ० क० वोश) , मृत्यु > मित्य , कुतः > कतो, असुर > असर, सनु > सन (आ० क० संपुर), रिपु > रिप, वरुणास्त्र > वणास्त्र , विष्णु > विष्ण ।

२०. उ > आ : प्रभु > पभा (सं०)

२१. उ > इ : *उत्प्लुत्य > पलित्

२२. उ > ऊ : करुणामय > करुणि , सुवर्ण > सूवन्न , √तुड > तुलार ।

२३. उ > ए : रुदति > रेवान्

२४. उ > ओ : त्रुट्यते > छोट् (प्रा० तुट्ट , पा० तुट्ट , ने० टुट्टो , हि० टुट्टा , टूटा , गु० टुट्टुं , टुट्टुं ; प० पहाड़ी टुटवो) , तुष्यति > तोषो ।

२५. ऊ > ई : नूपुर > नीवर

२६. ऊ > उ : तूष्णीं > तुष्णी

२७. ऊ > ओ (वो) : शून्य > छोन् (छोन्)

२८. ऋ की परिवर्तन दिशाएं — प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के स्वर ऋ का लोप अशोक कालीन अभिलेखों से ही प्रारम्भ हो चुका था । ब्लाक इन अभिलेखों तथा प्रारंभिक प्राकृतों के अध्ययन के पश्चात् इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि ऋ का अ में रूपान्तरण दक्षिण-पश्चिम की विशेषता थी ।[३०] पिशेल ने विस्तार से प्राकृत वैयाकरणों का हवाला देते हुए ऋ > अ, इ, उ रूपान्तर पर विचार किया है ।[३१] डॉ० तगारे के अनुसार पाली और प्राकृतों की भांति अपभ्रंश में भी ऋ अ, इ और उ में परिवर्तित हो जाता है । उनके अनुसार शब्दारम्भ में आने वाले ऋ > अ पूर्वी- अपभ्रंश से अधिक पश्चिमी- अपभ्रंश में प्रचलित था । ऋ > इ पूर्वी अपभ्रंश की एक विशेषता है । पश्चिमी अपभ्रंश में इसका प्रयोग ४२ प्रतिशत से ६६ प्रतिशत तक बढ़ गया था ।[३२] 'ऋ' के परिवर्तन की ये प्रवृत्तियाँ वस्तुत: वैदिक काल से ही प्रारंभ हो गयी थीं । 'बाणासुरकथा' में भी ऋ का

अ , इ , उ में परिवर्तन हो जाता है। अनेक स्थलों पर उसे सुरक्षित भी रखा गया है यथा कृषे , कृचि, वृष्टि , सदृशो आदि में । एक स्थल पर (बा० क०। २००) उसे रि के रूप में लिखा गया है — रिषि । तृण > त्रिन में भी उसे इस रूप में व्यवहृत किया गया है । `बाणासुर कथा` से ऋ के रूपान्तरण के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं —

(१) ऋ > अ : दृढ़ > दडो (महाराष्ट्री ; अर्धमागधी, जैन-महाराष्ट्री , शौरसेनी और मागधी में दृढ़ > दढ़ मिलता है, कश्मीरी में ढ़ अथवा ढ व्यंजन नहीं है अत: ड का प्रयोग हुआ है ; वर्तमान कश्मीरी रूप है दोर) ; नृत्यन्ति > नच्चन् (पा० नच्चति , प्रा० नच्चइ , पं० नच्चणा, ल० नच्चण, म० नाचणें, गु० नाचवुं , हि० नाचना) ।

(२) ऋ > आ : गृहीत्वा > गाहेत , अपहृत: > हारी

(३) ऋ > इ : कृष्णा > किषण , अदृश्य > अदिश्य, तृण > तिन , उत्कृष्ट > उकिष्ट (म० प्रा० उक्किट्ठ), मृत्यु > मित्य (हि० मीचु) , मृदंग > मिदंग , मृदु > मिदु , नृप > निप, कृपा > किप, पृष्ठ > पिट्ठ (हि० पीठ , अ० पिठि, पं० पिट्ठ, गु० पिठा), दृष्टि दिट्ठो (प्रा० दिट्ठि , हि० दीठ, दीठि और डीठ , पं० डिट्ठ, गु० दिट अथवा दिठ , म० दीठ), वृथा > विथा, गृह > गिह । ये उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि पू० अप० की भाँति `बाणासुरकथा` में भी ऋ > इ की प्रवृत्ति प्रबल है ।

(४) ऋ > उ : शृणु > शुन (हिं० सुन)

२९. ए > अ : एक > अक्क , वाघते > वज्जन ।

३०. ए > इ : वनिते > वनति (सं०), देवि दिव (सं०) । अधि-करण कारक की ए विभक्ति `बाणासुरकथा` में अनेक स्थलों पर `इ` में परिवर्तित

हुई है – रणे > रणि , समरे > समरि , गृहे > गरि , करे > करि, संग्रामे > संग्रामि , लोके > लुकि ।

३१. ओ > उ : मनोहर > मनुहर

३२. औ > ए : रौदिता > रेवान्

३३. औ > उ : कौमार्य > कुमार

व्यंजन

'बाणासुरकथा' में प्रा० भा० आ० भाषा के ळ और क्ष को छोड़कर प्राय: सभी व्यंजन लिखित रूप में उपलब्ध हैं । किन्तु, जैसा कि अनुलेखन पद्धति पर विचार करते समय स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है , सघोष महा-प्राण व्यंजन घ , ध , भ कश्मीरी में अपना प्राणत्व खोकर ग, द, ब के रूप में उच्चरित होते हैं । अत: 'बाणासुरकथा' में लिपिकार ने जहाँ कहीं घ, ध , भ का प्रयोग किया है, वहाँ उन्हें ग , द , ब मानना ही उचित है । कुछ स्थलों पर इन व्यंजनों का वास्तविक उच्चरित रूप ही दिया गया है (गनों , दुरन्दुर , मागद, बु) , पर अन्यत्र अल्पप्राण व्यंजनों को भी महाप्राण रूप दिया गया है , जैसे सं० बुध्यते , प्रा० बुज्झ से विकसित 'भुज्ज' (= सुन) शब्द के विभिन्न रूपों में । इस शब्द का वर्तमान कश्मीरी उच्चरित रूप है 'बोज़' । इसी भाँति मूर्द्धन्य 'ण' ध्वनि कश्मीरी में नहीं है , उसके स्थान पर सर्वत्र 'न' का प्रयोग होता है । अत: 'बाणासुरकथा' में आये 'ण' को भी 'न' मानना ही उचित है ।

संस्कृत च, छ, ज का कश्मीरी में सर्वत्र च़, छ़ , ज़ हो जाता है जो कश्मीरी की अपनी व्यंजन ध्वनियाँ हैं । लिपि-चिन्ह के अभाव में 'बाणासुरकथा' में ये ध्वनियाँ च, छ , ज के रूप में ही लिखी मिलती हैं, अत: उसमें इनके अस्तित्व का केवल अनुमान किया जा सकता है ।

व्यंजन-लोप : प्राकृत की भाँति `बाणासुरकथा` में च, त, द, प के लोप के कुछ उदाहरण मिलते हैं । ऐसे स्थलों पर य अथवा व की श्रुति हो जाती है :-

(१) वचन वयन (प्रा० वयण , पु० बं० बअअण, बं० बैन, मै० बैन, पु० अव० बयन , पु० गु० वयण, हि० बयन, बैन) ।

लोचन > लोयन (प्रा० लोअण, हि० लोयन)

(२) गत: > गो (गव), अर्पित: > अप्पू , यहाँ त का लोप और प का द्वित्व हुआ है ।

(३) वाद - > वाय- (वायोन , वायान, वायेत), रुदति > रैवान ।

(४) अवाप्तम् > वातो ; प्रापयति > पावेह , पावूव (पा० पापेति , प्रा० पावइ , पु० अव० पावइ , पु० मार० पावाँ , गु० पावुं , म० पावणें, हि० पाना , आ० क० प्रावुन), तावत् > ताव, यावत् > याव ।

(५) स्थापयित्वा > थावेत में प के अतिरिक्त आदि स् का भी लोप हो गया है । यह परिवर्तन भी प्राकृत के अनुकूल है । तक्षशिला के शासक पटिक के ताम्रपत्र में भी प्रतिस्थापयति > प्रतिथवेति : " पति की अप्रतिथंवित भगवत शक मुनिस शरिरं प्रतिथवेति " ।

(६) पश्चात् > पत , पता में `श्च` का लोप हुआ है ।

(७) उपविष्ट : > बिठ्ठो में प्रारंभिक उ के साथ प का भी लोप हुआ है ।

व्यंजन-परिवर्तन

(अ) स्वतंत्र व्यंजन : `बाणासुर कथा` में प्राय: शब्दारम्भ में स्थित स्वतंत्र व्यंजन सुरक्षित रहे हैं । य > ज आ० क० की भाँति `बाणासुरकथा` में भी नहीं मिलता । प > ब का उदाहरण उपविष्ट > बिठ्ठो और सर्व > सब्ब में मिलता है ।

बकारण व्यंजन द्वित्व की प्रवृत्ति अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होती है, यथा त्रिज्जुन, बट्ठेत, चल्ले, विन्नत, हस्सेत, हस्सो, बक्क आदि । इन्हीं शब्दों में ये व्यंजन अन्यत्र सरल अवस्था में भी मिलते हैं । पद-मध्य तथा पदान्त में स्वतंत्र व्यंजनों के परिवर्तन की निम्नलिखित दिशाएं `बाणासुरकथा` में मिलती हैं -

१. -क > -ख : (बा) शंका > शंख (बा० क० शंख)

२. ट > ड : बट्ट > बड्ड , घोटका: > गौडे (हिं० घोड़े)

३. ठ > ड : हठ > हड्ड

४. त > ड : सं० √पत् > पड्ड , पडोस (प्रा० पड , हिं० पड़ना, प० पडणां , गु० पडवुं , सिं० पडणु , ब० पड़िबा । वर्तमान कश्मीरी में यह रूप लुप्त हो चुका है । उसमें √पत् से विकसित रूप हैं पत्‌य, पेयि जो `बाणासुरकथा` में भी पिव, पिय आदि रूपों में विद्यमान हैं)

५. त > द : वर्तमानकालिक कृदन्त में यह परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है यथा , करन्ति > करन्द , पठन्ति > पठन्द आदि । इसके अतिरिक्त सं० अंत से नि:सृत `अन्दि` शब्द में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है ।

६. त > च (चृ) : स्त्रीलिंगीय संज्ञाओं में यह परिवर्तन मिलता है । `बाणासुरकथा` से कुछ उदाहरण हैं : लेखिता > लेखिचू , ललिता > ललिचू , भरिता > भरिचू , वलिता > वलिचू (तुल० बा० क० बटुच , कुच , कुच , लल्लेः० बंसुच) ।

७. थ > ह : प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में पदमध्य अथवा पदान्त में ख, घ, थ, फ, भ महाप्राण ध्वनियां सामान्यतया ह में परिवर्तित हो जाती हैं । कश्मीरी में यह प्रवृत्ति नहीं है, किन्तु `बाणासुरकथा` में इसका एक उदाहरण मिलता है -

नाथ: > नाहो (सो ग़ि निपे नाहो उलमचे) । ऐसा प्रतीत

होता है कि यह शब्द प्राकृत से सीधे ग्रहण किया गया है अथवा लिपिकार की असावधानी से आया है । अन्य सब स्थलों पर 'नाथ' शब्द ही मिलता है ।

८. न् > ल : उन्मत्त: उलमत् ('न' का 'ल' में परिवर्तन कश्मीर में अशिक्षित वर्ग की बोलचाल में आज भी होता है)

९. प > व , ब : इसके उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं ।

१०. ळ > ड का एक महत्वपूर्ण उदाहरण 'बाणासुरकथा' में मिलता है : बळि > बडि । वैदिक भाषा में ऴ , ड ध्वनियां एक-दूसरे के काफी निकट थीं । पाली और आ० भा० आ० भाषाओं में मराठी में ऴ अथवा ळ ध्वनि सुरक्षित है । ब्लाक ऴ और ड का मूल ण में मानते हैं । ऴ और ड का सम्बन्ध वैदिक भाषा के क्रीळ से सं० क्रीड़ के विकास में देखा जा सकता है। इसी भांति, सं० ताल > गु० ताड, हि० ताड , ताल में ल , ळ , ड के सम्बन्ध-सूत्र दृष्टिगोचर होते हैं । 'बाणासुरकथा' में बलि के स्थान पर बडि का सर्वत्र प्रयोग कहीं इस बात की ओर संकेत तो नहीं करता कि कश्मीरी में कभी वैदिक ऴ (ळ) ध्वनि विद्यमान थी ।

११. श, ष , स – तीनों ऊष्म ध्वनियां 'बाणासुरकथा' में व्यवहृत हुई हैं, पर ष को व्यवहारत: श से भिन्न नहीं माना जा सकता । उसका प्रयोग केवल तत्सम शब्दों में हुआ है, यद्यपि वहां भी कहीं-कहीं उसे श के साथ गड्ड-मड्ड कर दिया गया है । अधिकांश शब्दों में श सुरक्षित रहा है पर कहीं-कहीं वह स अथवा ह में भी परिवर्तित हुआ है ।

(१) श > स : शिव > सिव, शुम्भ - निशुम्भ > सुम्भ -निसुम्भ

सदृश: > सदिसो

ष > स : हर्षयते > हरसे

(२) श > ह : सं० श के ह में रूपान्तरण की प्रवृत्ति कश्मीरी

में काफी प्रबल है जिसके आधार पर ग्रियर्सन ने इसे ईरानी से संबन्धित भाषा माना है । 'बाणासुर कथा' में इस प्रकार के उदाहरण बहुत कम हैं – दश > दह, एकादश > काह, नाशन् > नाहेन , (श > ह प्राकृतों में भी देखने को आता है : दहमुहो (रावणवहो) , नव्य भा० आ० भा० में असमी तथा मराठी में भी यह रूपान्तर मिलता है । हिन्दी-ग्यारह, बारह आदि संख्यावाची शब्दों में भी यही प्रवृत्ति काम करती है) ।

(३) श > च्छ (छ) का भी एक उदाहरण मिलता है : शून्य > छ्यौन् (का० क० छौन्) – युद्ध करा नमैत स्वकम्पस उथ अथ|छौन इह थान ।

१२. ह > अ : आ० क० में प्रारंभिक ह प्राय: अ में परिवर्तित हो जाता है । 'बाणासुरकथा' में ऐसा केवल कुछ ही स्थलों पर हुआ है, अन्यत्र 'ह' सुरक्षित रहा है । ह के अ में परिवर्तन के उदाहरण हैं – हस्तात् > अत्था , हसति > असिस ।

१३. ह > य : दुस्सह > दुस्साये

१४. ह > व : बहुलस्य भवलेस

क्ष और श की स्थिति :

प्राचीन भा० आ० भाषा के संयुक्त अक्षर क्ष ने अपने विकास-क्रम में दो दिशायें ग्रहण कीं (१) क्ष > छ (अथवा च्छ) (२) क्ष > ख (अथवा क्ख) । कश्मीरी भाषा में पदमध्य अथवा पदान्त में आने वाला क्ष प्राय: छ में परिवर्तित हो जाता है और प्रारम्भ में आने वाला ख में । डॉ० तगारे के अनुसार क्ष > छ की प्रवृत्ति दक्षिणी अप० में अपेक्षाकृत अधिक थी ।[३३]

'बाणासुरकथा' में सामान्यतया क्ष सुरक्षित रहता है यथा, सहायक क्रिया के विभिन्न रूपों – क्षि, क्षे, क्षिस, क्षोम आदि में तथा

वेक्ष, यक्ष, लक्ष, रक्षि, क्षामे, क्षावूम आदि शब्दों में। पर, कई स्थलों पर वह छ और क्ख में परिवर्तित हुआ है। कुछ उदाहरण हैं –

(१) क्ष > छ, छ: √क्षुट् > छोट्, अक्षि > अच्छि, कांक्षयति काऽ छान

(२) क्ष > क्ख : तीक्ष्ण > तिक्खी

'ज्ञ' का उच्चारण आधुनिक कश्मीरी में ग् + ञ् के रूप में होता है। 'बाणासुरकथा' में यह तत्सम शब्दों में यथावत् सुरक्षित है। तद्भवों में कुछ स्थलों पर ज तथा ञ में परिवर्तित हो गया है –

(१) ज्ञ > ज : ज्ञान > जान, जानि, जानी, जानह ; परिज्ञान > पर्जनाह

(२) ज्ञ > ञ : आज्ञा > आञ ।

व्यंजन-समुदाय

प्राकृत और अपभ्रंश की भांति 'बाणासुरकथा' में संयुक्त व्यंजन स्थिर नहीं रह पाये हैं। प्राय: पहले व्यंजन का लोप हो जाता है और दूसरा उसे आत्मसात् कर लेता है। कभी-कभी दूसरा व्यंजन ही लुप्त होकर पहले में समा जाता है। इस प्रकार की स्थिति में व्यंजन-द्वित्व की प्रवृत्ति काम करती है। नासिक्यों में ञ और ङ का (संस्कृत और प्राकृत की ही भांति) परस्पर संयुक्त अवस्था में रहना असंभव है, इसी भांति ण और न का मेल भी नहीं हुआ है। व्यंजन समुदायों के ध्वन्यात्मक परिवर्तन की प्रवृत्तियां और उनके उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं –

१. क् + त > च : शक्ति > शचि, शच ; रक्त > रच, रत्था ; भक्ति > भचि; मुक्त: > मुची ।

२. त् + क > क : उत्कृष्ट > उक्किष्टे (प० प्र० में उक्किष्ट)

३. ग् + ध् > द्ध : दग्ध > दद्धो , दद्धीस

४. ङ् + ग > ग्ग : सङ्ग > सग्ग

५. व > व्व : मवा > मव्वा (मव्वा)

६. त् + प > प्प : उत्पादयते > उप्पदावो

७. प् + त > त : अवाप्तम् > वातो

८. प् + त > व : सुप्तः > सुवो , सप्त > सव

९. प् + त > व्व : सुप्ति > सुव्वि

१०. प् + स > च्छ, छ : अप्सरस् > अच्छारसा (पा० अच्छरा, प्रा० अच्छरा, अच्छरसा, पु० अवधी अछरी)

११. नासिक्य युक्त संयुक्त व्यंजन :

(अ) यदि नासिक्य संयुक्त व्यंजन का पहला वर्ण है –

(१) न् + त > न् + द : अन्त > अन्दि, करन्ति > करन्द
पठन्ति > पठन्द

(२) नासिक्य सुरक्षित रहता है : कम्प (तत्सम्)

(३) म् + प > प : सम्पदयते > सपज्जि , संपन्न :> सपुन,
सपन्नोह

(आ) यदि नासिक्य संयुक्त व्यंजन का दूसरा वर्ण है –

(१) नासिक्य सुरक्षित रहता है : अग्नि > अग्न (आ० क० अंगन)

(२) नासिक्य पूर्ववर्ती वर्ण में मिल जाता है : लग्न: > लग्गी, लग्गेस, लग्गोह आदि ।

(३) नासिक्य का द्वित्व और अन्य वर्ण का लोप हो जाता है :
ग् + न > न्न : नग्न: > नन्नो, नन्नीय
ह् + म > म्म : ब्रह्मा > बम्मा

(४) त् + म > प : आत्मन् > पाण (प्रा० अप्पा, हि० आप, सिं० पाणु)

(५) नासिक्य + नासिक्य : न् + म > म्म : जन्म > जम्म

(६) नासिक्य + रेफ : इस पर आगे विचार किया जायेगा ।

११. अर्द्ध-स्वरों से युक्त व्यंजन-समूह

(अ) अर्द्ध-स्वर य :

(१) त् + य > च्च : नृत्य- > नच्च, नच्चेत, नच्चन्द (पा० नच्च, प्रा० णच्च, पं० नच्च)

(२) द् + य > ज्ज : अद्य > अज्ज (पा० अज्ज, प्रा० अज्ज, अप० अज्जु ऊं० पं० अज्ज, मे०, मो० अव० हि० खड़ीबोली आज, गु० आज, म० आज); नद्या: > नज्ज ; वादयन्ति > वज्जन ; वादयित्वा > वज्जेत (पा० वज्जति, प्रा० वज्जइ, प० पहाड़ी बाजउ, कु० बाजना, अ० बाजिबो, बं० बाजा अथवा बजिन्ना, मे० बाजना, अव० बाजइ, गु० वाजिउ, म० वाजणें)

(३) ध् + य > ज्झ : मध्य > मज्झ (प्रा० मज्झ, हि० मांझ

अथवा मंफ - , बा० क० मंज़) ; *बुध्यित्वा > मुज्जेत (उच्चरित रूप बुज्ज़ेत), बुध्यते > मुज्जे (उच्चरित रूप बुज़्ज़े), मुज्जीम , मुज्जीन आदि (पा० बुज्झति, प्रा० बुज्झइ)

(४) ह् + य > ज्ज : दह्यति > दज्जि , दज्जेत (उच्चरित रूप दज़्ज़ि)

(बा) अर्द्ध स्वर व :

(१) त् + व > त, च (चु) : त्वं > तु , चु (उच्चरित रूप चु), त्वा > चि (उच्चरित रूप च्ये)

(२) त् + व > त : छित्वा > छिजेत ; बाणासुरकथा में सर्वत्र पूर्वकालिक कृदन्त `त्वा` का `एत` में परिवर्तन हुआ है ।

(३) द् + व > ब : द्वितीय > प्रा० बेइय > भिय, भिह (उच्चरित रूप बेयि)

(४) द् + व > दु : द्विजनौ > दुज्जनै

(५) द् + व > ज : द्वौ > जु (उच्चरित रूप ज़ु)

(६) ध् + व > धु : ध्वजगृह > धुजगिह

(७) ज् + व > ज : ज्वल् > जलन, जलो

१२. र से संयुक्त व्यंजन

प्राकृत और अपभ्रंश की भाँति `र` के लोप की प्रवृत्ति "बाणासुरकथा" में प्रबल है (आधुनिक कश्मीरी में र प्राय: सुरक्षित रहता है) । रेफ संयुक्त व्यंजन के अन्य वर्ण से पूर्व स्थित हो अथवा बाद में, दोनों स्थितियों में उस वर्ण का द्वित्व हो जाता है ।

(व) जब रेफ अन्य व्यंजन से पूर्व हो और लुप्त हो जाये ।

(१) र् + क > क्क : अर्क > अक्क

(२) र् + ग > ग्ग : मार्गे > मग्गे

(३) र् + ज > ज्ज,ज : दुर्जन: > दुज्जन, अर्जक > अजैत

(४) र् + त > त : कार्तिक > कतकिय

(५) र् + व > व : भर्वा > भवा

(६) र् + थ > त्थ : समर्थ: > समत्थो , अनर्थ: > अनत्थ

(७) र् + ध > ड : वर्धयते > बढो

(८) र् + नासिक्य ण (न) > न्न : वर्ण > वन्न (पा० वण्ण, प्रा० वण्ण) ; सुवर्ण > सुवन्न, वर्णन वन्नी > वन्नाय , सुपर्ण > सुपन्न (स), आकर्ण > आकन्नेत , रक्षणार्थ > रक्षनाथे

(९) र् + प > प्प : दर्प > दप्प , अर्पित > अप्पू

(१०) र् + नासिक्य म > म्म : कर्म > कम्म , मर्म > मम्म , वर्प > वप्प , दुर्मद: > दुम्मदो

(११) र् + ल > ल्ल : दुर्लभा > दुल्लभ

(१२) र् + व > व्व : सर्व > सव्व , पर्वत > पव्वत

(१३) र् + श > श्श : विमर्श विमश्शा

(१४) र् + ष (श) > श्श : वर्षण > वश्शुन

(१५) र् + ह > ल्ल : यर्हि > यिल्ले , तर्हि > तिल्ले (यहां स्वर-विपर्यय द्रष्टव्य है)

(आ) रेफ संयुक्त व्यंजन से पूर्व हो पर उसका लोप न होकर स्वरागम हो-

(१) निर्गत:> निरेत , निरि , निरिम

(२) पूर्व > पुरिय

(३) आश्चर्य > आश्चुर

(४) स्पर्शयित्वा > परशेत (आ० क० फश, पा० फस्स, आरवेल फरा, अप० परस, हि० परस, पं० परसणा, सिं० परसु)

(५) हर्षयति > हरसे

(६) कर्हि > कर

(इ) रेफ संयुक्त व्यंजन का दूसरा वर्ण हो और उसका लोप हो -

(१) क् + र > क : क्रोधे > कोधे , क्रूर > कूरो , कुर

(२) क् + र > क्क : चक्र > चक्क, शक्र > शक्क

(३) ज् + र > ज्ज : वज्र > वज्ज

(४) त् + र > त, थ : त्रासेण > तासे , त्रि-> ति- , अत्र > अति , तत्र > तथे , तथि ; यत्र > यथि, यति , यथे ।

(५) द् + र > द : इन्द्र > इन्द , उपेन्द्र > उपेन्द , चन्द्र > चन्द , नागेन्द्र > नागेन्द

(६) द् + र > द : निद्रायति > निदि (पा० निदायति , प्रा० निदाअदि , निदाइ , आ० क० नेन्द्रि)

(७) प् + र > प : प्रकारेण > पकारि ; प्रणमामि > पणमा; प्रति > पति ; प्रभा > पभ ; प्रभी > पभा (सम्बो०) ; प्रिय > पिय, पिया ([illegible]) , प्रिया > पिया ; प्रलापेण > पलापि, प्रसंगे > पसंगे, प्रसादेण > पसादे ; प्रसिद्धा > पसिद्धो ; प्रहार > पहार

(८) म् + र > म : भ्रम > भमि , भमवान (पा० मामेति , प्रा० भामेइ)

(६) श् + र > श्श, श : मिश्र > मिश्शी, श्रृणु > शुन , नमाश्रये > नमाशये

(ई) जहाँ र संयुक्त व्यंजन का दूसरा वर्ण हो किन्तु लोप होने के स्थान पर स्वरागम हो -

(१) बग्रे > बगरि , बगरा

(२) बभ्रात् > बभरा

(३) स् + र > स्स : सहस्र > सास्स (बा० र० सास)

१३. ऊष्म-ध्वनियों से संयुक्त व्यंजन-समूह

प्राय: ऊष्म व्यंजन का लोप हो जाता है - विशेषकर पदारम्भ में । कहीं-कहीं ऊष्म सुरक्षित रहता है और दूसरे वर्ण का लोप हो जाता है । ऐसी स्थिति में मुख-सुख के लिए स्वर-भक्ति होती है ।

(अ) जहाँ ऊष्म वर्ण लुप्त हो जाता है -

(१) ष् + ट > ट्ठ : दृष्ट > दिट्ठो (पा० दिट्ठा , प्रा० दट्ठा , दिट्ठा , देट्ठा , गु० दीठुं , अव० दीठा , बा० क० ड्यूठ); उपविष्ट > बिट्ठो

(२) ष् + ठ > ट्ठ : पृष्ठ > पिट्ठ , निष्ठ > निट्ठ

(३) स् + ख > ख : स्खलित > खलिता (पा० खलति, प्रा० खलइ)

(४) स् + त > थ : स्तन > थन (पा० थन - प्रा० थण, बा० क० में गाय आदि के संदर्भ में प्रयुक्त)

(५) स् + त > त्थ : हस्तात् > वत्था

(६) स् + थ > थ : स्थल > थल (पा० थल, प्रा० थल, ल० थल, पं० थल, कु० थल, व० थल, बं० थल, गु० थल, म० थ , हि० थल बा० क० थल) ; स्थान > थान (पा० थान , प्रा० थाण) ; स्थापयित्वा > थावेत

(७) स् + न > न : स्नेह > नेह (प्रा० णेह - , सि० नेहु , नींहु , लं० नेहुं , पं० नेहं , नींह , नेहुं , व० नेहा , ब० नेह , म० नेह, नेहु , भोज० नेह , हि० नेह , गु० नेह)

(८) स् + प > प : स्पर्शयति > परशेत

(९) स् + फ > फ : स्फोटयिष्यसि > फोटिय (बा० क० फुटिय्)

(ख) जहाँ ऊष्म सुरक्षित रहता है , किन्तु दूसरा वर्ण लुप्त हो जाता है :-

(१) श् + य > श : पश्य > परश् , पश्नी, पश्शेत

(२) श् + य > शु : अवश्यम् > वशुम्

(३) श् + व > शु : परमेश्वर > परमेशुर

(४) ष् + प > ष : पुष्प > पुष (बा० क० पोष)

(५) स् + म > स : स्मर- > सर, सरेत (पा० सर- , प्रा० सर-)

(६) स् + व > स : सरस्वती > सरस

(ग) जहाँ व्यंजन समुदाय लुप्त हो जाता है -

(१) पश्चात् > पत

(२) उच्छिष्ट- > उत् -

१४. संधि :

'बाणासुरकथा' में संधि के कुछेक उदाहरण मिलते हैं, यद्यपि अधिक नहीं – गयिस्ता = गयि+ ता ; युद्धाभिलाषे = युद्ध + आभिलाषे, वायोन्निज = वायोन +निज ; नमाधरि = नभ + धरि ; तदाश्रये = तत् + आश्रये ; नभाश्रये = नभ + आश्रये ; इन्द्रादि = इन्द्र +आदि युद्धालस्ते = युद्ध + आलस्य +ते ; वरांगणि = वर + अंगणि , नानास्त्र = नाना +अस्त्र; आनंदास्र = आनंद + अस्र (अश्रु)

रूप-संघटना

संज्ञा-रूप :

'बाणासुरकथा' की कश्मीरी में प्राचीन भारतीय आर्यभाषा तथा नव्य भारतीय आर्य-भाषाओं की भाँति स्वरान्त और व्यंजनान्त दोनों प्रकार के प्रातिपदिक विद्यमान हैं। अपने विकास के मध्यकाल में भारतीय आर्यभाषा में पदान्तिक व्यंजनों का अस्तित्व समाप्तप्राय हो गया था और उनका स्थान स्वरों ने ले लिया था। यह स्थिति ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी की कश्मीरी कृति 'महानय प्रकाश' में देखी जा सकती है जिसमें, जैसा कि ग्रियर्सन ने लक्षित किया है, अ[३४] तथा उ अन्त्य प्रातिपदिकों के प्रयोग की प्रवृत्ति विशेष रूप से प्रबल है। 'बाणासुरकथा' में इसके विपरीत व्यंजनान्तों का बाहुल्य है, यहां तक कि संस्कृत की अनेक तत्सम-अर्द्धतत्सम अकारान्त मूल-संज्ञायें भी अपनी अन्त्य स्वर-ध्वनि को खो बैठी हैं और व्यंजनान्त हो गयी हैं यथा, विनाश्, पाप्, तप्, रूप, नभ् , तेज्, रण्, गण्, व्याल्, क्रोध् , रज्, शोणित्, उपवन्, पाताल्, आकाश् , वन् , नाद्, नद्, रथ्, देव्, दानव्, तप्, जय्, लोभ्, काल्, नयन्, दशन्, ज्वर्, कुच्, बाण्, रोष्, मेघ्, शूल्, [illegible], सन्देश्, वचन्,

दिन्, कोप् आदि । कुछ शब्द वाक्य में अपनी स्थिति अथवा अन्य शब्दों से सम्बन्ध के अनुसार बलाघात के कारण अन्त्य अ से पुनः युक्त हुए प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ, `अत् दाण् बाणासुराने राछे` ([illegible]) में `दाण` की `ण` हलन्त है किन्तु `चिन्ते ते दाण-दाण अवे विमरशा` ([illegible]) में अजन्त। इसी भाँति `अनोत् पंगेत् कित विनाश् ([illegible]) तथा `गव्हि विनाश समये विपरीत बुदे` ([illegible]) में विनाश का `श` क्रमशः स्वर-विरहित तथा स्वर-सहित है। `ध्वज` शब्द `यत् दाण् अक लोह ध्वज् पत्थर सो पतितो` ([illegible]) में व्यंजनान्त है तो `किंकिणी ध्वज भुत् पताकिन्` ([illegible]) में स्वरान्त। व्यंजनान्तों के अतिरिक्त अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए तथा औ अन्त्य प्रातिपदिक भी `बाणासुरकथा` में मिलते हैं। उदाहरण निम्नांकित हैं –

अन्त्य अ – अवश्य, अक्क, अरण्य, अज्ज, अग्न, कम्म, चम्म, जम्म, मम्म, चक्क, शक्क, यज्ञ, पक्ष, लक्ष, दिव्य, स्वप्न, कण्ठ, गंग, पुष्प, शब्द, पज्ज आदि।

अन्त्य आ – राजा, भता, घण्टा, पवित्रा, देत्या, रत्या, कलशा, अपरा (पु०); ललना, सेवा, सेना, कन्या, वनिता, उल्का, वीणा (स्त्री०)।

अन्त्य इ – हरि, शशि, रवि, पाणि, पकारि (पु०); केलि, असि, ध्वनि, पुष्टि, शक्ति, भक्ति, रति, गिरि, नासि (स्त्री०)। इनमें `पाणि` तथा शचि, `पाण` और `शच` रूप में भी मिलते हैं।

अन्त्य ई – ई अन्त्य प्रायः सभी प्रातिपदिक स्त्रीलिंग से सम्बन्ध रखते हैं। उदाहरण: रजनी, धरणी, किंकिनी, भैरी, जननी, द्वादशी, वाणी, भवानी आदि। ये सभी शब्द संस्कृत तत्सम अर्द्धतत्सम हैं – यह यहाँ ध्यातव्य है।

अन्त्य उ – बाहु, विष्णु, विधु, मधु, प्रभु, कष्टु, कालु, जानु,

मधु, रघु, -धनु आदि (पु०) । इनमें से अधिकांश शब्द अकारान्त रूप में भी मिलते हैं । मधु, कष्टु, कालु, रघु आदि में अन्त्य उ संभवत: विशिष्ट कश्मीरी स्वर उ् है जिसके स्थान पर लिपिचिन्ह के अभाव में उ का प्रयोग किया गया है ।

अन्त्य ऊ - साधू, कामू, काशू, नगाडू (पु०) ; लज्जू, विघू , वलिबू , मरिबू, ललिबू, लबू आदि । इन शब्दों में भी अन्त्य ऊ कश्मीरी स्वर-ध्वनि ऊ् का स्थानापन्न है ।

अन्त्य ए — अन्धे, विहंगे, पसंगे, समत्थे, विधाने, क्रूरे आदि । संबोधन के स्त्रीलिंगीय रूपों में इसका प्रयोग बहुत हुआ है – बाले, उषे , सुकुमारे आदि ।

अन्त्य ओ — शब्दान्त में 'ओ' का प्रयोग अनेक प्रातिपदिकों में मिलता है जिसके मूल में प्राकृत का प्रभाव अथवा छन्दानुरोध प्रतीत होता है – स्निग्धो, गम्भीरो, क्रूरो, पथमो, कान्तो, सिद्धो, शुद्धो, तिक्खो, पसिद्धो, सितो, शिथिलो, गूढो, कुटिलो, घनो, विकटो, समत्थो, चतुरो आदि । सबके सब पुल्लिंग प्रातिपदिक हैं ।

लिंग-विधान

'बाणासुरकथा' के लिंग-विधान का आधार वैयाकरणिक और नैसर्गिक दोनों है । नपुंसक लिंग अन्य पश्चिमोत्तरीय न० भा० आर्य भाषाओं की भांति पुल्लिंग में समाविष्ट है ; अत: प्रातिपदिक या तो पुल्लिंग रूप में मिलते हैं या स्त्रीलिंग रूप में । संस्कृत के स्त्रीलिंग वाची प्रत्यय आ, इ तथा ई कुछ तत्सम शब्दों में यथावत् विद्यमान हैं, जैसे माला, कन्या, ललना, सन्ध्या, उल्का, रति, वसुमति, क्षिति, ध्वनि, केलि, रजनी, वाणी, भवानी, धरणी आदि में, किन्तु 'अ' में रूपान्तरण की प्रवृत्ति अधिक प्रबल है : सं० -आ > -अ : उषा > उष , बाला > बाल, माया > माय, लीला > लील , दुहिता > दुहित,

शारदा > शारद, आशा > आश, क्रीड़ा > क्रूड , क्रीड , प्रभा > पभ , नायिका > नायुक, पूजा > पूज , -सुता > -सुत, लता > लत (कहीं-कहीं लता भी मिलता है); सं० -इ > -अ — शक्ति > शच (कहीं-कहीं शचि भी), बुद्धि > बुद , अंजलि > अंज्जल, रश्मि > रश्म, रात्रि > रात, वृष्टि > वृष्ट , दृष्टि > दिष्ट , कल्याणि > कल्याण ; सं० -ई -अ — सरस्वती > सरस्वथ, सखी > सख, रमणी > रमण, कुमारी > कुमार, गौरी > गौर, वेणी > वेन, तारिणी > तारिण, कौमुदी > कौमुद । प्राय: यह अन्त्य अ भी लुप्त होकर इन शब्दों को व्यंजनान्त बना देता है । 'महानय प्रकाश' तथा वर्तमानकालीन कश्मीरी में भी इस प्रकार के स्त्रीलिंगवाची शब्दों की यही स्थिति है । कामिन् , गजगामिन् आदि शब्दों में ई प्रत्यय के लोप से ये शब्द व्यंजनान्तों में रूपान्तरित हो गये हैं । कुछ स्त्रीलिंग रूप -तू < ता प्रत्यय लगा कर भी बनाये गये हैं यथा भरितू < भरिता , वलितू < वलिता , ललितू < ललिता (कुसुम) लतू < कुसुमलता । कुरंगनेत्री > कुरंगनेत्रु में भी 'उ' प्रत्यय का प्रयोग हुआ है । गिरि < गिरा में अन्त्य आ इ में बदल गया है । बाल, अबल, सख, (वर)रमण, कुमार, गौर,(वर) नायुक जैसी स्त्रीलिंगीय संज्ञाओं में पुंल्लिंग की भी भ्रांति हो सकती है लेकिन इस प्रकार की गड़बड़ केवल कर्ताकारक एकवचन में ही संभव है, संबोधन, कर्म, करण, संबन्ध , अधिकरण कारकों में स्त्री और पुरुषवाची संज्ञारूपों में भेद स्पष्ट दिखाई देता है ।

वचन :

'बाणासुरकथा' में अन्य नव्य भारतीय आर्यभाषाओं तथा वर्तमानकालिक कश्मीरी की भांति केवल दो ही वचन-एकवचन और बहुवचन मिलते हैं । अनेक पु० संज्ञाओं में कर्तृकारक एकवचन और बहुवचन के रूप समान हैं, यथा —

पु० एकवचन	बहुवचन
देव	देव

पुं० एकवचन	बहुवचन
दैत्य	दैत्य
लक्षण	लक्षण
किन्नर	किन्नर
वस्त्र	वस्त्र
दानव	दानव
पद	पद
शूल	शूल
तोमार	तोमार
नाराच	नाराच
बाण	बाण
शर	शर
वाक्य	वाक्य
युवत्	युवत्
मुसल	मुसल
गद्	गद्
वीर	वीर
निप	निप (वर)
पाप	पाप
सुर	सुर
बबल	बबल

बहुवचन प्रकट करने के लिए कहीं-कहीं ग्रन्थकार पुं० एकवचन शब्दों में ु की अन्त्यु स्वर-ध्वनि जोड़ी गयी है - यथा रिपु , सिद्धु, गन्धर्वु, देवु, नागु, यक्षु , पन्नगु आदि । यह `उ` जैसा पहले संकेत किया गया है , कश्मीरी स्वर-ध्वनि उ़ है जिसका प्रयोग उपयुक्त लिपिचिन्ह के अभाव में किया गया है । इनका स्थलों पर मध्यम अथवा अन्त्य `उ` को `अ` में परिवर्तित कर बहुवचन के

रूप बनाये गये हैं, यथा असुर - असर, शत्रु - शत्र । कहीं-कहीं अन्त में 'आ' जोड़कर एकवचन का बहुवचन बनाया गया है : अधर — अधरा , दैत्य - दैत्या, असुर - असुरा आदि । बहुत संभव है कि इसके मूल में केवल छन्दानुरोध ही । गोढे, राक्षे , जाले , गणे आदि में बहुवचन का 'एकारान्त' रूप है, पर इन्हें कर्ताकारक से अधिक कर्मकारक के रूप में माना जा सकता है ।

कर्ताकारक स्त्रीलिंग शब्दों के कुछ बहुवचनीय रूप इस प्रकार हैं : कामिन्यु (= कामिनियाँ), वनिच,वनिता (= वनिताएं), पताकिन (= पताकाएं), धेनी (= धेनुएं), कामधेनी (= कामधेनुएं), नद्यू (= नदियाँ, सं० नद्य:), अच्छारसा (= अप्सराएं, सं० अप्सरा:), पिया (= प्रियाएं) ।

कुछ शब्द केवल बहुवचन में 'बाणासुरकथा' में आये हैं, किन्तु उनके एकवचन रूप भी अनुमानत: वही हैं । ये शब्द हैं – पुष्प, कुसुम, पुष , पद्म , विप्र, कर, व्याल , गीत, मनुष्य आदि ।

इन रूपों के अतिरिक्त अनेकता, अधिकता अथवा बहुत्व का भाव व्यक्त करने के लिए निम्नलिखित शब्दों का भी प्रयोग हुआ है –

गण : असुरगण, दण्डिमागण , यादवगण, रौद्रगण, घण्टा-
जालगणे, पिशाचगनु, वीरगण आदि ।

भुत् : अरण्यभुत्, ध्वजभुत्, दानवभुत्, पन्नगु भुत् आदि ।

सब्ब : सब्ब दानव, सब्ब यादव, सब्ब देव ।

बहु : बहु सूत मागदु, बहुशैल ।

कारक :

कश्मीरी संस्कृत की भांति संहिति प्रधान भाषा है तो अन्य नव्य भारतीय आर्य-भाषाओं की भांति विश्लेषणात्मक भी । ग्रियर्सन इसे संश्लेषणात्मक से

विश्लेषणात्मक रूप में परिवर्तित होती हुई आर्यभाषा का एकमात्र उदाहरण मानते हैं।[३५] वाक्य में संज्ञा और क्रिया तथा संज्ञा और संज्ञा के सम्बन्ध को प्रकट करने के लिए उसमें कारक-विभक्तियाँ और परसर्ग दोनों का प्रयोग होता है। `बाणासुरकथा` में कश्मीरी का संहिति प्रधान रूप अधिक मिलता है अत: उसमें परसर्गों से कुछ अधिक कारक-विभक्तियों का व्यवहार हुआ है। भूतकाल की कुछ अवस्थाओं को छोड़कर कर्त्ताकारक निर्विभक्तिक रूप में ही मिलता है। पुल्लिंग-स्त्रीलिंग, एकवचन- बहुवचन के संदर्भ में कर्त्ताकारक का अध्ययन प्रस्तुत किया जा चुका है। भूतकालिक क्रिया से संज्ञा का सम्बन्ध करणकारक की विभक्ति `ए` द्वारा व्यक्त हुआ है अत: उस पर विचार करणकारक के अंतर्गत ही किया जायेगा। अधिकरणकारक में पुल्लिंग संज्ञाओं की विभक्ति भी `ए` है। इस प्रकार तृतीया और सप्तमी को अपभ्रंश की भाँति एक समूह में रखा जा सकता है। डॉ० तगारे[३६] ने भी तृतीया और सप्तमी को विभक्तियों का एक समूह माना है।

कर्मकारक के रूप

पुल्लिंग एकवचन : संस्कृत की सप्तमी की विभक्ति `अस्य` > पा० `अस्स` से नि:सृत `अस` `बाणासुरकथा` में कर्मकारक पुल्लिंग एकवचन के विभक्ति-चिन्ह के रूप में व्यवहृत है। वर्तमानकालीन कश्मीरी में भी यही प्रयोग चलता है। `बाणासुरकथा` से कुछ उदाहरण हैं — आचार्यस, बहुशास्त्रज्ञस, ज्ञानसमुद्रस, जगिनाथस, बाणस, श्रीकण्ठस, निपस, कम्पस, कुलस, मुहस, कृष्णस, भयस, तिनस, निशिबुदस, सुबदस, वीरस, शक्कस, बाडिपुत्रस, महेशस, परमेशस, परमाथस, दामोदरस आदि।

इकारान्त प्रातिपदिकों में इस विभक्ति के प्रयोग से पूर्व `इ` का रूपान्तरण `ए` में हो गया है : हस्ति- हस्तेस, तिदशपति - तिदशपतेस, राजकवि - राजकवेस।

`पितस` में विभक्ति लगने से पहले `पिता` के अन्त्य `आ` का ह्रस्वी-

करण हो गया है । `वैष्णावस` में प्रातिपदिक `विष्णु` का ही रूप बदल गया है अवधि अथवा दूरी के घोतन के लिए भी इस विभक्ति का कर्मकारक के अर्थ में प्रयोग हुआ है, यथा `निमिषस` , `काह-सास्स योजनस` में । `सामूस` में `अस` के स्थान पर केवल `स` कारक-चिन्ह के रूप में जोड़ा गया है ।

पुल्लिंग बहुवचन

कर्मकारक पुल्लिंग बहुवचन के रूप प्रातिपदिक में `अन्` अथवा `आन्` विभक्ति प्रत्यय जोड़ने से बने हैं – पादकमलन् (= चरण कमलों को), देव-दैत्यन् , फणादेवपदान् , असुरगणान्, वीरवरान् ।

`राजकवीन` में प्रातिपदिक के साथ केवल न की `विभक्ति-चिन्ह` के रूप में जोड़ा गया है ।

स्त्रीलिंग एकवचन

कर्मकारक के स्त्री० एक० के रूप `इ` विभक्ति को ग्रहण करते हैं, यथा : बालि, हरिणनयनि, विस्सि, उषि , अबलि, चित्रलेखि, दैत्यसेनि, हिमकर मुखि, श्रुति आदि ।

स्त्री० बहुवचन – वरवनितन

करणकारक के रूप

पु० एकवचन : करणकारक पु० एक० का `बाणासुरकथा` में `ए` विभक्ति-चिह्न है । यह विभक्ति-चिह्न अपभ्रंश में भी ए अथवा एं रूप में मिलता है[२६] और संभवत: संस्कृत की तृतीया विभक्ति `एण` का अवशेष है । ब्लाक और टर्नर[२७] अपभ्रंश और अवहट्ठ की विभक्ति `ए` अथवा `एँ` की यही व्युत्पत्ति मानते हैं । ब्रज, गढ़वाली आदि भाषाओं में भी करणकारक के लिए `ए` अथवा `एँ` विभक्ति का प्रयोग होता है । `बाणासुरकथा` में करणकारक की यह

करण हो गया है । `वैष्णावस` में प्रातिपदिक `विष्णु` का ही रूप बदल गया है अवधि अथवा दूरी के द्योतन के लिए भी इस विभक्ति का कर्मकारक के अर्थ में प्रयोग हुआ है, यथा `निमिषस` , `काह-रास्स योजनस` में । `सामूस` में `अस` के स्थान पर केवल `स` कारक-चिन्ह के रूप में जोड़ा गया है ।

पुल्लिंग बहुवचन

कर्मकारक पुल्लिंग बहुवचन के रूप प्रातिपदिक में `अन्` अथवा `आन्` विभक्तिक प्रत्यय जोड़ने से बने हैं - पादकमलन् (= चरण कमलों को), देव-दैत्यन् , फणादेवपदान् , असुरगणान्, वीरवरान् ।

`राजकवीन` में प्रातिपदिक के साथ केवल न को `विभक्ति-चिन्ह` के रूप में जोड़ा गया है ।

स्त्रीलिंग एकवचन

कर्मकारक के स्त्री० एक० के रूप `इ` विभक्ति को ग्रहण करते हैं, यथा : बालि, हरिणनयनि, विस्सि, उषि, अबलि, चित्रलेखि, दैत्यसेनि, हिमकर मुखि, द्युति आदि ।

स्त्री० बहुवचन - वरवनितन

करणकारक के रूप

पु० एकवचन : करणकारक पु० एक० का `बाणासुरकथा` में `ए` विभक्ति-चिह्न है । यह रूप में मिलता है और संभवत: संस्कृत की तृतीया विभक्ति `एण` का अवशेष है । ब्लाक और टर्नर ३७ ...

यह विभक्ति-चिह्न अपभ्रंश में भी ए अथवा एं रूप में मिलता है ३६

अपभ्रंश और अवहट्ठ की विभक्ति `ए` अथवा `एं` की यही व्युत्पत्ति मानते हैं । ब्रज, गढ़वाली आदि भाषाओं में भी करणकारक के लिए `ए` अथवा `एं` विभक्ति का प्रयोग होता है । `बाणासुरकथा` में करणकारक की यह

विभक्ति `से` , `द्वारा` के अर्थ को तो प्रकट करती ही है, `ने` के अर्थ में भी प्रयुक्त हुई है जिसे हिन्दी में कर्ताकारक के परसर्ग के रूप में व्यवहृत किया जाता है। यों बीम्स[३८] और केलाग[३९] `ने` को करणकारक के अंतर्गत ही रखते हैं।

`ने` के अर्थ में `ए` विभक्ति के प्रयोग के कुछ उदाहरण ये हैं — शुनेत वनो कुम्भाण्डे बाणस ([redacted]) च्यानो जनुक बडि दानुव कूरो कृष्णो पाताल [redacted] ([redacted]) चतुरे मारेन काते रणि ([redacted]) एत ज्वरे कृष्णास द्द मुष्टि मसुम ह पोनस बति जलवानो ([redacted]), वायोन शंख पुन: गोविन्दे ([redacted]), यत् क्षण पद्मदेवे [redacted] पिवान दिट्ठो ([redacted]) पाँजन्यास्त्र लायोन महेशस नारायणे ([redacted]), वत् क्षण अनिरुद्दे के शवस पाद वन्दे ([redacted]) शिव पुत्रे सह लायोन शव बला ([redacted])

`से` , `द्वारा` के अर्थ में प्रयुक्त `ए` विभक्ति के उदाहरण - करे([redacted]), दन्तघाते ([redacted]), पदो ([redacted]), पद्दे ([redacted]), भुज सास्से ([redacted]), तपोबले([redacted]), बुद्धिबले ([redacted]), बुद्धिगुणे ([redacted]), आनंदे ([redacted]), पलावे ([redacted]), पसादे([redacted]), अतिवेगे ([redacted]), करवत्रे ([redacted]) , रथि ([redacted]), अत्था ([redacted]) में यद्यपि क्रमश: अधिकरण के विभक्ति-चिन्ह `आ` का प्रयोग हुआ है पर इन्हें भी करणकारक पु० एकवचन के अंतर्गत रखा जा सकता है।

स्त्री० एकवचन :

स्त्रीलिंग एकवचन में `ने` के अर्थ को विभक्ति-प्रत्यय `इ` के द्वारा व्यक्त किया गया है — अचलसुति ये पत्र दप्पो ([redacted]) ; एतो बालि हरिणनयनि सादरे वस वनो विस्सि ([redacted]) ; ततक्षण गिरितनयि तत् जानेत दर्पोन वाक्य हितो ([redacted]) रेवान चिट्ठन तदा उष चित्रलेखि ([redacted]) ; तत् क्षण वरबालि पान मारेत चरित ([redacted]); वरकान्ति सरेत रूप शुद्दी ([redacted]), उषि चतुराय चट्ठेत गलहार पणिलबु ([redacted]) ; बालि पश्येत भवा कुवलयनि ([redacted])।

`से` , `द्वारा` के अर्थ का द्योतन भी स्त्री० एक० में `इ` प्रत्यय जोड़कर ही किया गया है — बौरमायि ([redacted]), दयि ([redacted]), वाचि([redacted]), आज्ञि([redacted])।

करणकारक बहुवचन के रूप

पुल्लिंग शब्दों में इस कारक के लिए बहुवचन में `उ` विभक्ति-चिन्ह का प्रयोग मिलता है, पर इस प्रकार के उदाहरण बहुत कम हैं – पुनाह पुनाह पूजैत सुष वयनु ([illegible]), दिट्ठोंम ना नयन्नु ([illegible]) ।

स्त्रीलिंग बहु० का इस संदर्भ में कोई उदाहरण नहीं मिलता ।

वर्तमान कालीन कश्मीरी में `ने` के अर्थ में `अन्` विभक्ति-चिन्ह का प्रयोग होता है जो `एण` से ही नि:सृत प्रतीत होता है – रामन (रामने), कृष्णन (कृष्ण ने) । स्त्री० एक० में `बाणासुर कथा` की भांति `ह` अथवा `यि` प्रत्यय विभक्ति के रूप में जोड़े जाते हैं – दुर्गि (दुर्गा ने), उषायि (उषा ने) । यहां यह ध्यातव्य है कि स्त्रीलिंग वाची संज्ञाओं में अन्त्य `आ` का विभक्ति जुड़ने से पूर्व ह्रस्वीकरण हो जाये तो `ह` का प्रयोग होता है – जैसा `बाणासुर कथा` में भी है ; यदि अन्त्य `आ` का ह्रस्वीकरण नहीं हुआ हो तो `यि` प्रत्यय जोड़ दिया जाता है । `यि` और `ह` कश्मीरी में उच्चारण की दृष्टि से एक माने जा सकते हैं ।

संप्रदानकारक के रूप :

संप्रदान कारक के अंतर्गत `बाणासुरकथा` में पुल्लिंग एकवचन के कुछ प्रयोग मिलते हैं । पाली की भांति यहां भी संस्कृत के सम्बन्धकारक की विभक्ति `अस्य` से विकसित `अस` को व्यवहृत किया गया है और वर्तमानकालीन कश्मीरी में भी होता है । `बाणासुरकथा` से कुछ उदाहरण हैं – बट्ठेत मुजयेन बाम्नस दिचे ([illegible]), पणिमय मपपात्र उप गाढेत वयस्तवरस तस वातनेव ([illegible]), अनोत पारिजातु दिवाशक्कस ([illegible]) – – राज्यस दिति सुत सब थावेत ([illegible]) ; रतिसंगस [illegible] भिय अंगस दिवा ([illegible]) गीत करेन परमेशस ([illegible])

है । बरवनितन ([illegible]) को स्त्रीलिंग बहु० का एक उदाहरण माना जा सकता

अपादानकारक के रूप

अपादानकारक पु० एक० के लिए `आ` विभक्ति-चिन्ह व्यवहृत हुआ है जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के अपादानकारक के विभक्ति-प्रत्यय `आत्` (भयात्) से संभाव्य है — - - - के रछोत विष्णु भया - - ([illegible]), हारलू औसर्दक नाला ([illegible]) ; उप निरिमना जात कृदि कमला ([illegible]) संसमवानरव शिपवान अनो उदरा ([illegible]) , किच्छी ध्यायेत उन्दा ज्वर अतिविषमी वैष्णवी उत्पदावी ([illegible]), उच्चारनवान व्योमा ([illegible]), जलवान कज्येह सुक गगना ([illegible]), ततक्षण आकाशा दिव आदि पसिद्धो ([illegible]) , कलेत ते मयु लग्गी सर्वभूतान यत्रा ([illegible])। - - - गेहि अनिरुद्धति द्राया मच्चा यक्षेत तेम - - ([illegible]) पुष्पवर्षनै सुक नभा-सये ([illegible]), कडी कशाडेत देहे ([illegible]) में अधिकरण के विभक्ति-चिन्ह हैं , `ए` का प्रयोग हुआ है, पर इन्हें अपादान के अन्तर्गत ही रखा जा सकता है ।

अपा० बहु० के कुछ उदाहरण ये हैं — निजनयनु शोणित मोचेन ([illegible]) सकलु दिसवु गव शरवर्षुन तस शिरि ([illegible]), द्राय अनेक गुहु घ णि हरि यादव काते ([illegible]), इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि बहु० के लिए `उ` की विभक्ति-चिन्ह के रूप में अन्त्य वर्ण से जोड़ा जाता था । वच्छा रत नजु ते रोमस तदा पोरे पशा आसवे ([illegible]) में `अस` प्रत्यय अपादान के रूप में प्रयुक्त है, जैसा वर्तमानकालीन कश्मीरी में होता है ।

संबंधकारक के रूप

संबंधकारक के रूप पु० एक० में `आनी` और अन तथा स्त्रीलिंग एक० के रूप `अनि` `जोड़` कर बनाये गये हैं, यथा — पंजि ना सो वाक्य अपजो परमेश्वरानी ([illegible]) इन्दानी एह कार्य गोविन्दा ([illegible]) , उषि बाणासुरनि पुति ([illegible]) । किन्तु अनिरुद्धानेस शयानस ([illegible]) में `नेस` का प्रयोग है जिसे वर्तमानकालीन `निस` विभक्ति-चिन्ह ही माना जा सकता है । कश्मीरी भाषा में, जैसा पहले संकेत किया जा चुका है, इ और ए परस्पर विनिमेय हैं । `संग्रह

वज्रवातीय पापान् ([illegible]) में `आन्` षष्ठी की विभक्ति के रूप में आया है । वर्तमान कश्मीरी रूप है `पापन्` ।

संबंधकारक पु० बहु० में `आने` और `अनि` विभक्ति-प्रत्ययों को जोड़ा गया है – अत् द्य ण बाणासुराने राक्ष ([illegible]), कुम्भाण्डाने उत्तर मुज्बेत ([illegible]) रुद्राणो अनुचर महाअग्न ([illegible]), - - - नारायणाने अनेम चिये विशेष चरित्र ([illegible]) । कृष्णानि पद शुनेत कूरे ([illegible]) संबंधकारक स्त्री० बहु० का एक उदाहरण उपलब्ध है – बाणासुराज्ञ देज्ञी अस्त ([illegible]) । यहाँ `आज्ञ` का `की` के अर्थ में व्यवहार किया गया है । संबंधकारक के आन, आने, अनि, आनो, आज्ञ आदि विभक्ति-प्रत्यय संस्कृत षष्ठी बहुवचन की विभक्ति `आणाम्` से विकसित हुए प्रतीत होते हैं ।

अधिकरण के रूप

`बाणासुरकथा` में सं० अधिकरण कारक की विभक्ति `ए` सुरक्षित है । अपभ्रंश के कारक-चिह्न `ह` के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं । `में` और `पर` के अर्थ में । उच्चारण की दृष्टि से दोनों एक दूसरे के बहुत निकट हैं । आधुनिक बोलचाल की कश्मीरी में `ह` का प्रयोग होता है – वति (= रास्ते में), घरि (घर में) ; किन्तु कविता में छन्दानुरोध के कारण `ए` का प्रयोग भी होता है । "बाणासुर कथा" से कुछ उदाहरण हैं – राज्ये ([illegible]) वैशाखे ([illegible]), देशे ([illegible]) वनले ([illegible]), महारणे ([illegible]), युद्दे ([illegible]), सुरगे ([illegible]), गगने ([illegible]), वने ([illegible]), स्वप्ने ([illegible]), समरि ([illegible]), मनसि ([illegible]), हृदयि ([illegible]), यज्ञयति ([illegible]), मनि ([illegible]), परि ([illegible]), रणि ([illegible]) । शोके ([illegible]), कोपे([illegible]), क्रोधे ([illegible]) आदि भाववाचक संज्ञाओं के साथ `ए` विभक्ति करण अथवा अधिकरण दोनों का अर्थ दे सकती है । इसी भाँति रथि ([illegible]) का `रथ पर` के साथ-साथ `रथ के द्वारा` अर्थ लिया जा सकता है [illegible] और इसे करणकारक का उदाहरण भी माना जा सकता है । `पर`, `के ऊपर` अथवा `में` के अर्थ में `अस` का , वर्तमान कालीन कश्मीरी की भाँति,

प्रयोग हुआ है – गरुडस ([redacted]), वैनतेयस ([redacted]), तादास([redacted]), सर्पस् ([redacted]), वररथस ([redacted]), [redacted] ([redacted]), कृदयस ([redacted]), लोकस ([redacted]) आदि। यहाँ वैनतेयस, गरुडस, वररथस, तादास आदि में कर्मकारक की स्थिति भी मान ली जा सकती है। `वैनतेय को चढ़कर`, `गरुड़ को चढ़कर`, `वररथ को चढ़कर`, `तादा को चढ़कर` – इनका हिन्दी में अक्षरश: अनुवाद होगा। वर्तमान-कालीन कश्मीरी में भी यही प्रवृत्ति है, `घोड़े पर` के लिए `गुरिस` (= घोड़े को) का प्रयोग होता है।

अधिकरणकारक बहुवचन में `पर` के अर्थ में `अन` अथवा `आन` विभक्ति-प्रत्यय जोड़े गये हैं, जो पुन: कर्मकारक बहुवचन के भी प्रत्यय हैं – रथान चढ़ेत([redacted]), तुंगसखुन ([redacted]), तुरगान, गजान, विमानन ([redacted])। इन्हें `के द्वारा` का अर्थ ग्रहण कर करणकारक के अंतर्गत भी रखा जा सकता है।

संबोधन के रूप :

पुल्लिंग एकवचन अकारान्त शब्दों में अन्त्य अ को दीर्घ करके संबोधन का रूप दिया गया है। अन्त्य `ओ` का प्रयोग भी एकाध स्थल पर हुआ है। संबोधन के यही रूप वर्तमानकालीन कश्मीरी में भी प्रचलित हैं। `बाणासुरकथा` से कुछ उदाहरण – कुष्माण्डा ([redacted]), बाणा ([redacted]), देवा ([redacted]), भूपा ([redacted]), निपा ([redacted]), किष्णा ([redacted]), सुता ([redacted]), वीरा ([redacted]), ईश्वरा ([redacted]), दानवा ([redacted]), शंकरा ([redacted]), पिया([redacted]), गरुडा ([redacted]), गोविन्दा ([redacted]) आदि। पपा ([redacted]), दैत्यपमा ([redacted]) में उकारान्त `प्रभु` के लिए भी अन्त्य `आ` का प्रयोग किया गया है। सामू ([redacted]) में सम्बोधन और कर्ताकारक का रूप एक ही है। इकारान्त `हरि` को संस्कृत की भांति सम्बोधन में `ए` अन्त्य बना दिया गया है – हरे ([redacted])। किन्तु असुरभूपाता (= असुर भूपति -[redacted]), भूपाल (= भूपति - [redacted]) में इकारान्त पु० संज्ञा को सम्बोधन में आकारान्त बना दिया गया है।

स्त्रीलिंग एकवचन संज्ञाओं में सम्बोधन में संस्कृत की भाँति `ए` अन्त्य रूपों का सर्वाधिक प्रयोग हुवा है ; कहीं-कहीं `ह` का प्रयोग भी मिलता है - उष ([illegible]) चित्रलेखे ([illegible]) , वरलने ([illegible]), सखे ([illegible]), बालेवर रमणी मिगनयने ([illegible]), कम्बुगले शशिवदने ([illegible]), शोमाले ([illegible]), बाणदुहिते ([illegible]), सुभगे ([illegible]), वरसिंहरथे ([illegible]), चण्डतेजवदने ([illegible]), दुर्गे ([illegible]), जनिने ([illegible]), वनति ([illegible]), उषि ([illegible]), सख ([illegible]), गिरिराजनन्दन, सरस्वत, गौर, प्रकाल ([illegible]) आदि में मूल संज्ञाओं के अन्त्य आ तथा `ई` के लोप से सम्बोधन के रूप बने हैं। `तारिण` और `कल्याण` में भी सम्बोधन में मूल संज्ञा का अन्त्य `ह` लुप्त हो गया है।

परसर्गों का प्रयोग

यह संकेतित किया जा चुका है कि कश्मीरी संयोगात्मक और वियोगात्मक दोनों प्रकार की भाषा है। संयोग-वियोगात्मक होने के कारण उसमें विभक्तियों के साथ-साथ आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की भाँति परसर्गों का भी प्रयोग होता है। `बाणासुर कथा` में जिन शब्दों का परसर्गवत् प्रयोग हुवा है, वे उदाहरण सहित नीचे दिये जा रहे हैं।

१. अंदर : इसका प्रयोग अधिकरण के अर्थ में सम्बन्ध कारक के रूपों में हुवा है- हरिवंशस अन्दर वंथिय ([illegible]) , शंगोय मबलेस विमवस अन्दर ([illegible]), शोणितपुर वर-उपवन [illegible] अन्दर नर-नाट केलि ([illegible]) , रूप बहु सकलि जगि अन्दर ([illegible]), अपर ती हम्पीस अन्दर मा दी, ([illegible]) नाव यो शोणितापुर अन्दर ([illegible]), वेलावन अन्दर परवानी ([illegible]) ।

२. उप्परि : अधिकरण कारक के अर्थ में प्रयुक्त -अम्बस शिटि उप्परि सुरमीतस ([illegible]) ।

३. कारणी : इसका सम्प्रदान के रूप में एक स्थल पर व्यवहार किया गया है - चन्द्रमुकुटा तुष्यीत भिकारणी ([illegible]) ।

४. तले : संबन्धकारक के साथ अधिकरण के रूप में व्यवहृत – गोपेत पान तले अश्वान ([redacted]) ।

५. निकटि, निकटो : अधिकरण के अर्थ में संबन्ध कारकीय रूपों के साथ प्रयुक्त – नववें नमेतोक्षि गिरिजे निकटि ([redacted]), उषि निकटि दिट्ठोक अक वीर ([redacted]), बाणस निकटो गें समस्ते ([redacted]), रथस निकट वातो - - - ([redacted]), यसो उषि निकटि विशेष ([redacted]) ।

६. निश्शा, निश्शे, निश्शि : इसका प्रयोग भी अधिकरण के अर्थ में संबन्ध कारक के रूपों के साथ हुआ है – सुवी रातस वनितन निश्शा ([redacted]), के व ति गे तरुणोन्दस निश्शो ([redacted]), जलनै श्वेत छत्र निशि ([redacted]) ।

७. पिट्ठ : अधिकरण के अर्थ में प्रयुक्त : बाणोपादन पिट्ठ [redacted]; चतुरो वप्पू ([redacted]), शोभि तारास पिट्ठ नीलच्छय - - - ([redacted]) ।

८. मज्ज – संबन्धकारक के रूपों के साथ अधिकरण के अर्थ में प्रयुक्त । मज्ज प्रा० मज्झ सं० मध्य (आ० क० मंज़) । [redacted] मज्ज ([redacted]), - - ज्वरे मुसुलायथे पहरोन उरिमज्ज ([redacted]), हलधर पिव अमूल जन संगामस मज्ज ([redacted]), नारस मज्ज ([redacted]), वनति बवा मज्ज कथान ([redacted]) ।

९. सन्दि : इसका प्रयोग एक स्थल पर सम्बन्धकारक के परसर्ग के रूप में हुआ है । आधुनिक कश्मीरी में `सुन्द` और `हुन्द` प्रयोग चलते हैं । पु० बहु० के लिए सन्दि का प्रयोग होता है । सिन्धी और पंजाबी में भी यह परसर्ग प्रयुक्त होता है । बीम्स पंजाबी `सन्दा` का प्रा० सन्तो < सं० सन्ता : < √अस् से विकास मानते हैं जिसका अर्थ है `होना` । ४० संज्ञा के सम्बन्धकारक का रूप इस शब्द ने शनैः शनैः ग्रहण किया है । `घोड़ा जो [redacted] है` `जो मेरा घोड़ा` बन जाता है । `बाणासुरकथा` में एक उदाहरण स्त्रीलिंग का भी है [redacted] (आ० क० सुन्द) – वेश क्यो रुद्र सन्दि ([redacted]), (पु०) ; एश सत कदि शियि बाण [redacted] ([redacted]) – (स्त्री०) ।

१०. समीप : यह भी अधिकरण कारक के अर्थ में संबन्ध के रूपों के साथ प्रयुक्त परसर्ग है – वाते किष्ण समीप युद्ध करणि ते दैत्ये कोधे फ्ने (१/६६), आसे ते तत् थल शम्भ समीद तुपटे - - - - (१६) ।

११. सहितो, साते, स्सानो : सम्बन्धकारक के साथ प्रयुक्त और 'के साथ' अर्थ के द्योतक – कर तावत हर मथतर सरसे गिरिज सहितो (७७) साँते यदोत फ्रिास मु परमेशस करवान क्रीड़ उथे (५२), - - - तू सह मत्रास शशिवेशस रमह जवे हर्थे (६८), हर गिरिजि स्सानी गाँ अदिश पवा (७७), मणि सहिचा ज़न तेम त्रट्टेन (१८० – सहित का स्त्रीलिंग रूप), कृष्ण वदो सोहित सहित बान्धवान् (२०८); अन्तान्तरे सह कृषे वर कृष्ण मट्टे - - - (२१४), अंगिरसे सहिते त्रिता दह (२४४), गरुडे स्सान जाय तेम नारस (३०४) इसी संदर्भ में एक स्थान पर 'संग' का प्रयोग भी हुआ है – वैरि संग एम दग्रु नि परे (२४७) ।

१२. हेते : हेते एक स्थल पर सम्प्रदान के परसर्ग के रूप में 'के लिए' का द्योतन करता है – विन्दारक हेते नरलोकस वितरी असि सहसा नर जम्म (२६१) !

पूर्व-सर्ग :

सम्बोधन के पूर्व सर्ग के रूप में 'हे' और 'हि' का प्रयोग मिलता है – हे साधु असल अरण्य मुत च्छाडे (२२४), माजि मातृ हृदयस बन उर शोक हिए चन्द कोशु (६६) ! हे बालि, अबल सुति ये पव ददपी (७७) ।

निर्विभक्तिक प्रयोग

विभक्ति चिन्हों अथवा परसर्ग रहित मूल संज्ञा रूप का प्रयोग 'बाणासुर कथा' में अनेक स्थलों पर हुआ है । कर्ताकारक के अर्थ में भूतकालिक क्रिया के संदर्भों को छोड़कर सर्वत्र मूल रूप ही व्यवहृत हुआ है । कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं–

१. प्रद्युम्न अरयाल दिव मारे काते रणि (३०७)

१०. समीप : यह भी अधिकरण कारक के अर्थ में संबन्ध के रूपों के साथ प्रयुक्त परसर्ग है - वाते किष्ण समीप युद्ध करणि ते दैत्ये कोधे फते (२/८८), आसे ते तत् पल शम्भ समीप तुपटे - - - - (८८) ।

११. सहितो, साते, स्सानो : सम्बन्धकारक के साथ प्रयुक्त और 'के साथ' अर्थ के द्योतक - कर तावत हर भ्यतर सरसे गिरिज सहितो (४४) साति यदोत ग्रास मु परमेशस करवान क्रीड़ उथ (४४), - - - तू सह मत्रास शशिवेशस रमह जवे हर्थे (४४), हर गिरिजि स्सानी गौं अदिश पवा (४४), मणि सहिवा ज़न तेम ग्रट्टेन (४४४ - सहित का स्त्रीलिंग रूप), कृष्ण वदो सोहित सहित बान्धवान् (४४४); अवान्तरे सह कृष्ण वर कृष्ण मट्टे - - - (४४४), अंगिरसे सहिते त्रिता दह (४४४), गरुडे स्सान जाय तेम नारस (४०४) इसी संदर्भ में एक स्थान पर 'संग' का प्रयोग भी हुवा है - वैरि संग एम दशु नि घरे (४४०) ।

१२. हेते : हेते एक स्थल पर सम्प्रदान के परसर्ग के रूप में 'के लिए' का द्योतन करता है - विन्दारक हेते नरलोकस वितरी असि सहसा नर जम्म (४४४) !

पूर्व-सर्ग :

सम्बोधन के पूर्व सर्ग के रूप में 'हे' और 'हि' का प्रयोग मिलता है - हे साधु असल अरण्य भुत कहाडे (४४४), माजि माधु कृदयस अन उर शोक हि, चन्द कोशु (४४) ! हे बालि, अबल सुति ये पव दपी (४४) ।

निर्विभक्तिक प्रयोग

विभक्ति- चिन्हों अथवा परसर्ग रहित मूल संज्ञा रूप का प्रयोग 'बाणासुर कथा' में अनेक स्थलों पर हुवा है । कर्ताकारक के अर्थ में भूतकालिक क्रिया के संदर्भों को छोड़कर सर्वत्र मूल रूप ही व्यवहृत हुवा है । कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं-

१. प्रद्युम्न अराल दिव मारें काते रणि (४४४)

२. तति किष्ण रथेय कुशलो युद्धति बाहवि ([redacted])

३. दिट्ठोह फणीन्द्र स्वान सो ताम्र तची ([redacted])

४. चक्रधर वायोन्मिज शंख ([redacted])

५. शब्द शुनेत सकल जना निशि निद्र तरावु ([redacted])

कर्म के रूप में :

१. बाण जिनव मवलो संग्रामा ([redacted])

२. गरुडा जिनव तु अग्न विशाल ([redacted])

३. हेलि गच्छव सो शत्र मारणि ([redacted])

४. त्रावेत शूल, गद तोमार ति किरात ([redacted])

५. स्नेन समस्त दानव कोनेय वा पान गने ([redacted])

६. परशेत वप पुष माला ([redacted])

७. शूरो बाण जिनेत बाव ([redacted])

८. ताहेत ज्वर रट्टोन उय कचो ([redacted])

९. यत् दाण चन्द्रचूड स्वातो कलेत किण्णी ([redacted])

करण के रूप में :

१. आकाश मार्ग सहसा गौ सो अवश्य ([redacted])

२. पदा वाव बहु शैल ति फिरे ([redacted])

३. तुण्डाग्र नख पक्ष पाद पहर ([redacted])

अपादान के रूप में :

१. गौ बद नभ निरेतण णो बक्क ([redacted])

२. आकाश सुर कामन्धु तेन शिरि सत्पुष्प वर्ष गने ([redacted])

३. त्रावेत सहस्रायुध रणाथल-- ([redacted])

अधिकरण के रूप में :

१. बासे ते तत् थल शम्भ समीप तुष्टे ([redacted])

२. वैशाखे माशू [illegible] निज मंदिर (४४)
३. वदन जि उत्थ वेदाव [illegible] गेह (४४०)
४. वदा लायैन चंचल जन बाणस वनिरुद्धे बाण रणथान (४४४)
५. बहु पाताल वत्थे (४४४)
६. दाणोय सो धरणितल पितृता जुव निट्ठो (४४०)
७. येम बढ़िन नभ जबे (४४४)
८. गौ क्षणा ललिता पिव भूमि उदाचो (४४८)
९. म्याने नेहे रणथल पमा रक्षता बाण तीथे (४४८)

संबन्ध के रूप में :

१. उत्पात् लक्षण गनेय नाथा ना रिखवो (४५)
२. जगिजननी उष पाद जू वन्देत - - (४४)
३. गच्छि विनाश समये विपरीत बुद्ध (४४)
४. हे वनिता पिया दुःख मरेन (४४४)

विशेषण

`बाणासुरकथा` में विशेषण सामान्यतया संज्ञापदों के लिंग, वचन, कारक से प्रभावित हैं, पर इसके व्यत्यय के भी उदाहरण हैं। `विमले राज्ये` (४४) ,वयने विषद्दे (४४४), पर्वताकारे योधे (४४४), क्रोधे गने (४४४), धर्मराज्ये सुशुद्धे (४४४), बाल वजेय (४४४), वीरस तस वनिरुद्धस (४४४), बालिकिरण नयनि (४४), सुकुमारे वरछवे (४४) में विशेषण विशेष्यों के अनुरूप ढले हैं - इस दृष्टि से यहां संस्कृत की परम्परा का पालन हुआ है। कुछ अकारान्त स्त्री० संज्ञाओं और विशेषणों का कर्ताकारक में पु० संज्ञाओं और विशेषणों से भेद करना कठिन हो जाता है यथा, सुकुमार बाल (४४), वर-सुन्दर (४४) में। यहां विशेषण और विशेष्य उभयलिंगी प्रतीत होते हैं।

अकारान्त पु० और नपु० संज्ञाओं के कर्ताकारक एकवचन और बहुवचन के रूप `बाणासुरकथा` में सामान्यतया समान हैं, किन्तु बहुवचन में विशेषणों के

रूप भिन्न हैं — तीक्ष्णी बाण (....), घोरे शूल (....), वस्त्र उकिष्टे (....), सिते पुष्प (....), असिते कच (....), शुद्धे गीत (....), कुछ उदाहरण हैं। यहाँ यह भ्रम होने की संभावना है कि विशेष्य एकवचन में है और विशेषण बहुवचन में। सबसे अधिक व्यवहृत विशेषण है `वर`, जो अपरिवर्तनीय है— वरसल वरसुन्दर, वररमणी, वरनायक, वर-कामुक, वर कामिन, वीरवरी, कुबेवर आदि कुछ उदाहरण हैं। इसका प्रयोग श्रेष्ठता के भाव का द्योतन करने के लिए हुआ है। इसके बाद `महा` और `क्रूर` सर्वाधिक बार प्रयुक्त हुए हैं।

`अति` और `बहु` का प्रयोग परिमाण के द्योतन के लिए हुआ है। तुलनात्मक श्रेणियों को व्यक्त करने के लिए केवल एक स्थान पर `तर` का प्रयोग हुआ है — लायोन कष्टतर शत्रस नागपाश (....)। समता के भाव को प्रकट करने के लिए समी, सदिशी, सदिस आदि का प्रयोग मिलता है — सौमार्क शक्क सदिशी विरचीन रूप (....), विदुर सदिशीयो भि पंजरी सर्प किती (....), गंधर्वनगर सदिशी (....), प्रेतराट सदिस (....)।

संख्यावाचक विशेषण

कश्मीरी संख्यावाचक शब्द आश्चर्यजनक रूप से संस्कृत और पाली-प्राकृत संख्यावाचकों की अनेक ध्वन्यात्मक विशेषतायें सुरक्षित रखे हुए हैं। डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा उन्हें पाली के अवशेष मानते हैं।[४१] `बाणासुर कथा` में निम्नलिखित संख्यावाचकों का प्रयोग हुआ है :—

(अ) पूर्ण संख्यावाचक विशेषण :

१. अक्क, एक- < प्रा० एक्क, अप० एक्क। आधुनिक कश्मीरी उच्चरित रूप `अख`। अक्कोस - अक्क, अक्के, अकेस आदि रूपों में भी प्रयुक्त।

२. दु-, जु, ज़ु < सं० द्वौ। आ० क० रूप ज़ु (तुलनीय जर्मन ज़्वे)। द्वय के रूप में भी प्रयुक्त।

३. ति- , त्रि, त्रि- < सं० त्रीणि । `त्रियि` रूप में भी प्रयुक्त ।

४. चौर (`चारों ओर से` के अर्थ में प्रयुक्त) < सं० चत्वारि, आ० कश्मीरी रूप चोर ।

५. पांच , पंच - < सं० पंच । आधुनिक कश्मीरी रूप पांछ् ।

६. `शियि` रूप में उपलब्ध ।

७. `सतन` के रूप में उपलब्ध । आ० कश्मीरी रूप सत < पा० प्रा० अप० सत < सं० सप्त ।

८. अष्ट - < तत्सम् रूप में उपलब्ध ।

१०. दह < सं० दश । तत्सम `दश` रूप में भी उपलब्ध । आ० क० रूप `दह` (तु० मराठी दहा) ।

११. काह सं० एकादश । आधुनिक कश्मीरी रूप भी `काह` ।

१२. तत्सम् `द्वादशी` रूप में उपलब्ध । आ० क० रूप `बाह` (तु० हि० बारह)। `भाह्` (आ० क० बाह्य = द्वादशी) रूप में भी उपलब्ध ।

२६. `षड्विंशे` रूप में उपलब्ध । आ० क० रूप शतवुह (उष्म ध्वनि सुरक्षित) ।

३२. द्वात्रिंश (तत्सम) । आ० क० रूप दोयित्रह (मूल द सुरक्षित) ।

१००- शत , आ० कश्मीरी रूप हथ , शत । सात सौ से ऊपर की संख्याओं के लिए `शत` का प्रयोग होता है ।

१०००- सहस्स, सास्स , सास (विकास की तीनों अवस्थाओं में उपलब्ध) सं० सहस्र । तत्सम रूप भी प्रयुक्त । आ० क० रूप `सास` (हिन्दी `हज़ार` की अपेक्षा मूलरूप के अत्यंत निकट) ।

१,००,००० - लक्ष (तत्सम) । आ० क० रूप `लछ` ।

१,००,००,००० - कोटि (तत्सम) । आ० क० रूप `करोड` ।

(आ) अपूर्ण-संख्यावाचक :

अड- < सं० अर्द्ध । आ० क० रूप `अौड` ।

(इ) क्रम-संख्यावाचक :

पथमी < सं० प्रथम ।

(ई) समुदाय वाचक

युगल, द्वय (तत्सम्) ।

सर्वनाम

कश्मीरी सर्वनामों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अनेक प्राचीन रूपों को सुरक्षित रखे हुए हैं, जो अन्य नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में आज प्रचलित नहीं । `बाणासुर कथा` में आये सर्वनाम कश्मीरी और प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के नैकट्य को और भी दृढ़ता से साक्ष्यांकित करते हैं । कुछ सर्वनाम एक से अधिक रूपों में प्रयुक्त हुए हैं , यथा - तु - तू , सो - सु , कु-कुसी । पुरुषवाचक सर्वनामों में प्रथम अथवा उत्तम पुरुष के रूप, सम्बन्ध कारक को छोड़ , लिंग से अनुशासित नहीं । यही बात मध्यम पुरुष पर भी लागू होती है ।

उत्तम पुरुष

उत्तम पुरुष कर्ता० का सर्वनाम बु अथवा बी कश्मीरी का अपना विशिष्ट तथा स्वतंत्र-रूप से विकसित सर्वनाम है जिसका प्रयोग किसी अन्य नव्य भा० आ० भा० में नहीं मिलता । `बाणासुर कथा` में यह `बु` और `भु` दोनों रूप में उपलब्ध है । कश्मीरी में संघोष महाप्राण व्यंजन-ध्वनि `भ` न होने के

कारण इसका वास्तविक उच्चरित रूप `बु` ही माना जा सकता है। ब्यूह्लर इसकी व्युत्पत्ति सं० भवत् < √भू (= होना) से मानते हैं[४२], संस्कृत में इसका प्रयोग `भो` , `भवति` , `भवान` आदि रूपों में मिलता है।

उत्तम पुरुष : एकवचन	बहुवचन
अविकारी - कर्ता : मु, बु (= मैं)	असि (उच्चरित रूप अस्य)
	असे , असो (= हम)
विकारी — कर्म, करण, सम्प्र० : मि (उच्चरित रूप `म्ये` जो आ०का० में भी प्रचलित है) ।	असि
संबन्ध : म्यानी, म्यानेस, म्याने म्यान्यि, म्योन (पु०)	सानी

उत्तम पुरुष सर्वनाम के ये रूप सं० √अस्मद् के रूपों से विकसित माने जा सकते हैं।

मध्यम पुरुष

एक०	बहु०
अवि० — कर्ता : त्र , तु (आ०का० च़)	तुसि (आ० का० तौहि)
वि०- कर्म,करण,सम्प्र० : चि, चियये (उच्चरित रूप च्ये)	
संबन्ध : पु०- च्यानी, च्याना (आ०का०च्योन)	च्याने

इनके अतिरिक्त आदरसूचक रूप `तुयि` (= आपने, आ० का० तौहि) भी एक स्थल पर प्रयुक्त हुआ है। ग्रियर्सन कश्मीरी मध्यमपुरुष सर्वनाम च़ का विकास तिव़ से कल्पित करते हैं और मानते हैं कि इसी `तिव़` का `ति` `च़` में परिवर्तित हो गया है।[४३] पर इसका कोई सशक्त आधार दृष्टिगोचर नहीं होता।

`बाणासुरकथा` में `चू` और `तू` दोनों रूप मिलते हैं, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि तत्कालीन कश्मीरी में दोनों रूप प्रचलित रहे होंगे। चू (उच्चरित रूप च़) की व्युत्पत्ति इसी तू < प्रा० तु ह्म, पा० तु वम < सं० त्वम् से संभाव्य है। त > च (च़) परिवर्तन कश्मीरी ही नहीं अन्य भारतीय आर्य भाषाओं में भी होता है (तण्डुल > चामल > चावल)। डॉ० चाटुर्ज्या और डा० सक्सेना तू को सं० त्वम् से व्युत्पन्न मानते हैं [44], डॉ० वर्मा त्वया से। `बाणासुरकथा` में `त्वा` की उपस्थिति इस ओर संकेत करती प्रतीत होती है कि मूल रूप `त्वम्` ही रहा होगा।

अन्य पुरुष अथवा दूरवर्ती संकेतवाचक

कश्मीरी अन्य पुरुष सर्वनामों की विशेषता, जिसकी ओर ब्यूहलर ने भी संकेत किया है [45], उनका अन्य न० भा० आ० भाषाओं में आये विकारों से गुज़रे बिना मूल संस्कृत रूपों को जीवित रखना है। `बाणासुरकथा` में आये इन सर्वनामों पर यह बात विशेष रूप से लागू होती है - उसमें स्त्रीलिंगवाची अन्य पुरुष सर्वनाम `सा` (आ० क० सो) यथावत् प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार `तैम` भी।

सर्वप्रथम हम √तद् से विकसित दूरवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम के रूपों को लेते हैं :

पुल्लिंग एक०　　　　　　　　　　　　　　बहु०

कर्ता - सु, सो (= वह, सं० सः, सो, पा, प्रा० सो, आ० क० सु)　　　　तै, तैम (आ०क० तिम)

सोय, सोयै, सोए (- वही, सं० सोऽपि > सोइ > सोय, अथवा सं० सो + एव > सोए, सोय; आ०क० सुय)　　　　तैमय (आ०क० तिमय)

कर्म, सम्प्र० : तस, तस्स (पा० तस्स, सं० तस्य (सप्तमी)

करण : तैन　　　　तैन

संबन्ध : तासाम (आ०क० तसुन्द)

स्त्रीलिंग एक०		बहु०
कर्ता - सा (सं०सा, आ०क०सो)		तेमा (आ०क०तिम)
साय(सा+एव साए, साय;	
आ० क० सोय (= वही))		तेमाय (आ०क०तिमय)

शेष रूप पुंल्लिंगवत् ।

आ० क० तिम, तिमय, तिमु आदि में 'इम' की स्थिति ब्लाक सीधे रूपे (आ० क० यिम,यिम) से सम्बन्धित मानते हैं। 'उसने' के अर्थ में 'बाणासुर-कथा' में तेयु (पु०) और तेयि (स्त्री०) का प्रयोग मिलता है जिन्हें सं० त+एव से व्युत्पन्न माना जा सकता है। अप्राणिसूचक 'उस' के अर्थ में तत्, तय (कर्म०) का प्रयोग हुआ है जो सं० √तद् (नपुं० कर्ता० एक०) से व्युत्पन्न है। इसका अधिकतर प्रयोग समय और स्थान के संदर्भ में हुआ है।

निकटवर्ती संकेतवाचक

संस्कृत एष् √एतद् से सम्बन्धित निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम के ये रूप 'बाणासुरकथा' में मिलते हैं - एशु , एह, ए। एशु कर्ताकारक स्त्री० एक० है और सं० एषा से इसकी व्युत्पत्ति संभाव्य है। यहां सं० ष का श हो गया है जो कश्मीरी में इस का उच्चरित रूप है। इसके एह < एष (= यह), एस्य तथा एहुय (सं० एष+ एव से विकसित, आ० क० यिहोय = यही) रूप भी उपलब्ध हैं। यहां सं० ष (श) का ह में रूपान्तरण हो गया है जैसा प्राय: कश्मीरी में हुआ करता है। ए का प्रयोग भी अनेक स्थलों पर हुआ है जो 'एह' का ही घिसा हुआ रूप है - एष > एह > ए। इन सर्वनामों का प्रयोग अधिकतर अप्राणिसूचक संज्ञाओं के लिए हुआ है।

संस्कृत √इदम् से विकसित रूप हैं इह, इ, एम, एमय, अमेन और येमा। इह (= यह , आ० क० यिह) कर्ताकारक पु० एकवचन है। एक स्थल पर इससे

कर्म का भी काम लिया गया है – कुम्भाण्डा चतुरो इह मार। `इ` का प्रयोग भी `इह` के ही अर्थ में हुआ है – इ भूपाल विचार करि ना सदाय। वर्तमान रूप `यि` है जो उस समय भी उच्चरित रूप रहा होगा। एम (आ० क० यिम= ये), एमय (आ० क० यिमय = ये ही) इस सर्वनाम के कर्त्ताकारक बहुवचन के रूप हैं। `अमेन`, `एमेन` का कर्म कारक अथवा संबन्धकारक (बहु०) के रूप में प्रयोग हुआ है। सं० इमान (द्वितीया बहु०) से इसका विकास संभव है। `अ` और `ए` उच्चारण की दृष्टि से कश्मीरी में परस्पर विनिमेय हैं अत: अमेन और एमेन एक ही सर्वनाम के दो लिखित रूप हैं। एमा (= ये) का प्रयोग स्त्री० बहु० में एक स्थल पर हुआ है। आधुनिक कश्मीरी रूप है यिमु। इसका विकास स्पष्टतया सं० इमा: से हुआ है।

काल तथा स्थान के संदर्भ में `इस` के अर्थ में `इत्` का प्रयोग हुआ है।

नुम् (आ० क० नोम्) अधिक समीपवर्ती ये (लोग) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ग्रियर्सन इसका संबन्ध सं० सार्वनामिक मूल √एन से जोड़ते हैं। ब्लाक भी इसे प्रा० करण अणेण < सं० एन से विकसित मानते हैं। वे प्राकृत में कर्त्ता को छोड़ अन्य कारकों के विकिरण `इणा-` को कश्मीरी सर्वनाम नोम् (बहु०) में देखते हैं।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम

कश्मीरी सम्बन्धवाचक सर्वनाम के विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें संस्कृत √यद् से विकसित सार्वनामिक रूपों का आरम्भिक य पूर्णतया सुरक्षित रहता है, हिन्दी आदि न० भा० आ० भा० की तरह `ज` में परिवर्तित नहीं होता। `बाणासुरकथा` में आये इस सर्वनाम के रूप मूल संस्कृत रूपों के और भी निकट हैं। कर्त्ताकारक पु० एक० है `यो` (सं० य:)। बहुवचन येम (आ० क० `यिम`) पर सं० प्रथमा बहु० ये का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। महानय संबन्धकारक एक० यस < पा० यस्स < सं० यस्य के विकास-क्रम में है।

प्रकाश में भी यह `यसु` के रूप में उपलब्ध है – यसु - यसु जन्तुस (यस्य यस्य जन्तोह)[४६] । करणकारक का रूप `येन` मिलता है जो बिना किसी परिवर्तन के सीधा संस्कृत का तत्सम रूप है । आधुनिक कश्मीरी में यह रूप प्रचलित नहीं है । इसके स्थान पर येँम्य का प्रयोग होता है । महानय प्रकाश में भी यह उपलब्ध है ।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

केञ्च , किञ्च , केचा, केच, कोञ्च – `बाणासुरकथा` में इन अनिश्चयवाचक सर्वनामों का प्रयोग है । केचा , केच व्यक्तियों के लिए `कुछ` के अर्थ में व्यवहृत हुए हैं और सं० केचित् से विकसित हैं । इनको व्युत्पत्ति सीधे केच से भी मानी जा सकती है । वर्तमानकालीन कश्मीरी रूप है केंछ़ जो अशो० में उपलब्ध किछि, केछ रूपों से बहुत समानता रखता है । `केञ्च` , `किञ्च` भी `कुछ` के ही अर्थ में व्यवहृत हुए हैं और सं० किञ्चित् , किञ्च (शिलालेखी प्रा० किंचि) के रूप को सुरक्षित रखे हुए हैं । `कोञ्च` , `कोई` के अर्थ में आया है और पाली कोचि से सम्बन्धित प्रतीत होता है । कस्सि, कस्सिव < कस्यापि (आ० क० कोंसि) `किसी` , `किसीको` के अर्थ में प्रयुक्त है ।

प्रश्नवाचक सर्वनाम

`बाणासुरकथा` में उपलब्ध प्रश्नवाचक सर्वनाम भी संस्कृत से दाय में प्राप्त हुए प्रतीत होते हैं ।

१. कर्ताकारक एकवचन पुल्लिंग : कु, कू, कुस, कुसो (= कौन) सं० क: से विकसित हैं । आधुनिक कश्मीरी में भी कु, कुस, कुसू रूप प्रचलित हैं । इसका कर्म-सम्प्र० एक० रूप `कस` भी मिलता है जो आज की कश्मीरी में यथावत् प्रचलित है (पा० कस्स, सं० कस्य (सप्तमी)) । `कमे` किसने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । `के` का भी प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है । वर्तमानकालिक कश्मीरी रूप है कंम्य । संबन्धकारक का रूप है कंसानी (= किसका) जिसका वर्तमान रूप

है `कसुन्द` ।

२. `क्योंकर` , `किसलिए` , `कैसे` के अर्थ को प्रकट करता है `कैन` जो तत्सम है और सीधे संस्कृत से `बाणासुरकथा` में चला आया है ।

३. `क्यात्` अप्राणिसूचक प्रश्नवाचक है और क्या के अर्थ में आया है । `क्यात्` सुख दुखचरित` में भी मिलता है । `क्या` का प्रयोग भी `बाणासुरकथा` में हुआ है । कामताप्रसाद गुरु संस्कृत किम् से हिन्दी `क्या` की व्युत्पत्ति मानते हैं [४७] और प्लाट्स कोहश: से [४८] – सं० कोहश: > प्रा० कइहो > केहो > किहा > किआ > क्या । डॉ० भोलानाथ तिवारी सं० `कस्य` से इसका विकास मानते हैं । [४९] `क्यात्` का `त्` कहां से आया है, स्पष्ट नहीं ।

४. कुछ स्थानों पर `किशू` का प्रयोग हुआ है जो संस्कृत कोहश: से विकसित हुआ है । यह रूप पुरानी गुजराती `किसिउ` और पुरानी मारवाड़ी `किसो` से तुलनीय है । इसी अर्थ में `किहो` का प्रयोग भी एकस्थल पर हुआ है जो संभवत: `किशू` से ही श के ह में रूपान्तरण से व्युत्पन्न है । आज की कश्मीरी में यह `क्यहो` रूप में प्रचलित है जिसमें `हो` मध्यम पुरुष का सार्वनामिक प्रत्यय है ।

५. कैसे, किस प्रकार, क्योंकर के अर्थ में `कव` और `कवा` का प्रयोग मिलता है जिसकी सं० √कव से व्युत्पत्ति संभव है ।

निजवाचक सर्वनाम

`बाणासुरकथा` में उपलब्ध निजवाचक सर्वनाम हैं : निज, पान , पाने, पानय, पानस, पाना । `निज` स्पष्टतया सं० तत्सम है । पान, पाने, पानय, पाना का प्रयोग `स्वयं` , `स्वयमेव` के अर्थ में हुआ है । वर्तमानकालीन कश्मीरी में ये रूप यथावत् प्रचलित हैं । पानस (= अपने, अपने को) सम्बन्ध कारक का रूप है । पाना में केवल छन्दानुरोध के कारण अन्त्य अ का दीर्घीकरण किया गया है । पाने और पानय आधुनिक कश्मीरी के `पानय` सर्वनाम के ही दो लिखित

रूप हैं। `पान` का विकासक्रम सं० आत्मन् से इस प्रकार दिखाया जा सकता है—
सं० आत्मन् > पा०, प्रा०, अप० अप्पा, अप्पाणो (कर्ता०), अप्पाणम् (कर्म)
> क० पान।

परस्पर सम्बन्ध बोधक सर्वनाम

इसका एक उदाहरण पोन-पानस (= अपने-आपसे) `बाणासुरकथा` में उपलब्ध है — सचित पोन पानस दप्पे।

समूह वाचक सर्वनाम

इसके अंतर्गत सं० सर्व: से विकसित `सव्व`, `सव्वव` को रखा जा सकता है। सव्वव का प्रयोग `सबने` के अर्थ में हुआ है। आधुनिक कश्मीरी के ये रूप प्रचलित नहीं हैं। इनके लिए `सारी`, `सार्यंव` का प्रयोग होता है जो पुन: सं० सर्व: से ही व्युत्पन्न हैं।

सार्वनामिक विशेषण

निम्नलिखित सार्वनामिक विशेषण `बाणासुरकथा` में व्यवहृत हुए हैं:—

प्रकारवाचक : `तेथोय` (= वैसा ही - पु० एक०, आ० क० व्युथुय) तेथिय (= वैसे ही पु० बह०, आ० क० तिथिय), एथोय (= ऐसा ही - पु०एक० आ० क० इथुय) - प्रकारवाचक सार्वनामिक विशेषणों के ये रूप `बाणासुरकथा` में उपलब्ध हैं। इनकी व्युत्पत्ति सं० तथैव से मानी जा सकती है।

परिमाणवाचक : अनिश्चित संख्या के द्योतन के लिए कात्य, काते, केते, (आ० क० कूत्य), सार्वनामिक विशेषणों का प्रयोग हुआ है। इन्हें कियत अथवा कति से उद्भूत माना जा सकता है। - कियत, पा० कित्तिक, प्रा०कित्तिय, ऊं० किती, प० कित्ति, हि० कित्ता।

क्रिया-पद

'बाणासुरकथा' में उपलब्ध क्रिया-रूप संस्कृत गणों का आधार लिए हुए नहीं हैं, किन्तु प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की क्रियाओं में उनका उद्गम खोजा जा सकता है। बल्कि अधिकांश क्रियाएं तो मूल तत्सम रूपों के बहुत ही निकट हैं। कथा भूतकाल में वर्णित है अत: भूतकाल के रूप सर्वाधिक प्राप्य हैं। वर्तमान और भविष्यत् की क्रियाएं कथा-वर्णन के अन्तर्गत ही व्यवहृत हुई हैं, अत: अतीत में हुई घटनाओं की ओर संकेत करती हैं। अधिकांश क्रिया-रूप आधुनिक कश्मीरी के क्रिया-रूपों से साम्य रखते हैं, अथवा उनके पूर्व-रूप हैं। कई रूप आज अप्रचलित भी हो गये हैं। प्राय: एकही क्रिया प्राचीन, प्राचीनतर और नवीन रूपों में उपलब्ध है। क्रिया की काल-रचना में अन्य न० भा० आ० भा० की भांति मौलिक तथा कृदन्ती रूप दोनों का प्रयोग हुआ है। सिंधी की भांति कश्मीरी की एक महत्वपूर्ण रूपात्मक विशेषता है क्रियाओं के साथ सार्वनामिक प्रत्ययों का प्रयोग। यह विशेषता 'बाणासुरकथा' में भी विद्यमान है। ये प्रत्यय सर्वनाम के पुरुष, कारक और वचन के अनुसार रूप ग्रहण करते हैं। आधुनिक कश्मीरी में इनके रूप इस प्रकार बनते हैं –

कारक	उत्तम पुरुष	मध्यम पुरुष	अन्य पुरुष
कर्ता० एकवचन	स	ख	न (कभी कभी) स
कर्म एकवचन	म	थ	स
संबन्ध और सम्प्र०एक०	म	य	स
करण एकवचन	म	थ (कभी कभी य)	न
बहुवचन के सभी रूप	कुछ नहीं	ख	ख

'बाणासुरकथा' में इनका स्वरूप आने वाले परिच्छेदों में स्पष्ट हो जायेगा।

वर्तमान काल

सामान्य वर्तमान (वर्तमान निश्चयार्थ) उत्तम पुरुष एकवचन के रूप `बाणासुरकथा` में बहुत कम उपलब्ध हैं। `पणमा सरस्वथ तिभवन मातं तथा `ए करा मु विधाने` में `पणमा` ( सं० प्रणमामि ) और `करा` (सं०करोमि) को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। मध्यम पुरुष का कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं।

वर्तमान निश्चयार्थ के अन्य पुरुष के रूप भविष्यत का अर्थ लिये हुए हैं, या कहा जा सकता है कि भविष्यत्‌निश्चयार्थ के रूपों का वर्तमान के अर्थ में प्रयोग हुआ है। महानय प्रकाश की भाँति यहाँ भी इस हेतु `इ` प्रत्ययांश को मूलक्रिया से जोड़ा गया है जो सं० `ति` का अवशेष है। उदाहरण के लिए `ह भूपाल विचार करि ना सदाय` में `करि` सं० करोति से विकसित है (तुलनीय अप०करइ)। कुछ अन्य उदाहरण हैं - दप्पि, वसि, गणि, रछि, बहि, रहि, चिन्ति, निवसि, च्यियि।

इस प्रकार की क्रियाओं का एक और वर्ग क्रिया के साथ सार्वनामिक प्रत्यय जोड़ने से बनता है - `नाथवदिस गच्छिय क्या वाचि` अर्थात् नाथ (उससे) कहते हैं कि कहो क्या चाहिए (तुम्हें) ! इसी भाँति निगदिस, आकलिस आदि का भी प्रयोग हुआ है।

अन्य पुरुष बहुवचन में `अन` अन्त्य का प्रयोग किया गया है जो सं० `न्ति` का अवशेष प्रतीत होता है - बदन, धरण, फिरन, भरन, सटन, नकका, निगदन, प्रच्छन, परशन आदि कुछ उदाहरण हैं। यहाँ भी वर्तमानकाल में भविष्यत्‌का अर्थ ध्वनित होता है।

आज्ञार्थ क्रियारूप

मौलिक काल के उदाहरण `बाणासुरकथा` में आज्ञार्थ क्रिया-रूपों में भी देखे जा सकते हैं। मध्यम पुरुष एकवचन में मूलक्रिया प्रायः बिना किसी विकार

से व्यवहृत हुई है । वद, शुन, चड़, पश्य, भुज, थेह, च्छाड, प्राड, गच्छ,मार, उट्ठ, कर, च्छिव, सर, मंग, उलु (उच्चरित रूप वोल) आदि अनेक उदाहरण प्राप्य हैं । कहीं-कहीं — विशेषकर प्रार्थना या अनुरोध के द्योतन के लिए-सार्वनामिक प्रत्ययों का भी प्रयोग किया गया है — दैं (आ० क० दितम् - मुझे दो), आसुं (उच्चरित रूप आसुम्), देम (आ० क० दिम्), वहुं (उच्चरित रूप वहुम् - मुझ से वह), बन्धुन (उसे बान्ध), करुम (मुझे - मुझपर - करो) नेतस (उसे लेजा अर्थात् उसके लिए लेजा), रछुम (मेरी रक्षा करो), सिजुं (मुझे (मेरे लिए) भेजो) । अनुरोध की ध्वनि 'ता' प्रत्यय वाले रूपों में भी है — रक्षाता, कर्ता, देता, नेता । ग्रियर्सन के अनुसार यह आज्ञार्थ का शिष्ट रूप है । नकारात्मक आज्ञार्थ के भी कुछ रूप 'बाणासुरकथा' में उपलब्ध हैं — मा मर, मा भाव, मा (चु) अन (शौक) । 'गिरा' (= वाणी) का क्रियारूप में प्रयोग एक दिलचस्प उदाहरण है — 'वर गिरि' - (वर कह)।

मध्यम पुरुष बहु० के दो उदाहरण मिलते हैं — गच्छेव, करेव, जिनका आज की कश्मीरी में उच्चरित रूप हैं गच्छिव, करिव । अन्य पुरुष बहु० के भी दो उदाहरण — ग्वारेन, वेहेन उपलब्ध हैं ।

वर्तमानकालिक कृदन्त

वर्तमानकाल के रूप वर्तमानकालिक कृदन्तों द्वारा भी निर्मित हैं ।वर्तमान निश्चयार्थ बहुवचन के रूप 'अन्द' प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं । जैसे - सरेत सा चन्द आनन गलन्द जुव, वन्देत पादयस पूज करन्द, अग्रे अच्छारसा कुरंगनयना नच्चन्द चन्दानना, शुद्ध गीत पठन्द । इसी भाँति फेरन्द, नश्यन्द, आक्रन्द, आदि भी व्यवहृत हुए हैं । 'बाणासुरकथा' में इस कृदन्त रूप का प्रयोग प्राकृत और अपभ्रंश से तत्कालीन कश्मीरी का नैकट्य प्रदर्शित करता है । डॉ० तगारे ने अपने हिस्टॉरिकल ग्रैमर ऑफ अपभ्रंश में दर्शाया है कि 'अन्ति' का प्रयोग ईसा की छठी शताब्दी से ही प० अप० में होने लगा था ।[५१] पिशेल प्राकृत में भी इसके अस्तित्व की ओर संकेत करते हैं ।[५२] डॉ० भोलानाथ

कश्मीरी में त > द परिवर्तन द्रष्टव्य है ।

तिवारी इस कृदन्ती प्रत्यय की शृंखला को मूल भारोपीय भाषा तक ले जाते हैं। उनका कथन है कि `न्त`, `न्द` (अन्त, अन्द) रूप में यह हित्ती, ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच, अवेस्ता आदि में भी मिलता है।[५३] हिन्दी के चन्द, गोरख, विद्यापति, कबीर आदि कवियों में `अन्त` रूप के प्रचुर प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं।

घटमान वर्तमान : घटमान वर्तमान के रूप `बाणासुरकथा` में `आन` और `वान` प्रत्यय लगाने से बनाये गये हैं। सहायक क्रिया का प्रयोग भी हुआ है। वर्तमानकालीन कश्मीरी में भी घटमान वर्तमान के रूप क्रिया-धातु में `वान` जोड़ने से बनते हैं और सहायक क्रिया का प्रयोग भी अनिवार्यतया होता है। `बाणासुरकथा` से कुछ उदाहरण हैं — वनान, परशान, दपवान, सरवान, वेधावान, ममवान, चल्लवान, करवान आदि। रमवानो, रमवाना, ममवानो आदि में आकारान्त औकारान्त रूप छन्दानुरोध के कारण हैं।

भूतकाल के रूप

भूतकाल के रूप `बाणासुरकथा` में भूतकालिक कृदन्तों के प्रयोग से निर्मित हैं। अकर्मक क्रियाओं में ये कृदन्ती-रूप कर्ता के लिंग और वचन के अनुरूप हैं और सकर्मक क्रियाओं में कर्म के लिंग-वचन के अनुरूप। सार्वनामिक प्रत्ययों का प्रयोग भूतकालिक क्रिया-रूपों में भी कश्मीरी की संश्लेषणात्मक प्रवृत्ति के अनुसार हुआ है जिससे इन क्रिया-रूपों की विविधता `बाणासुरकथा` में दृष्टिगोचर होती है। इन क्रिया रूपों के अनेक वर्ग बनते हैं जिनके उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :-

वर्ग १

अकर्मक क्रिया : उत्तम पुरुष, पु० एक० : गोस निराशे मुकर - निष्ठ ([illegible]), रौकिणीय दरिप गिरि दप्तोस गोविन्दो ([illegible]) वातीस ति निकुट ([illegible])। उत्तम पुरुष स्त्रीलिंग : एकवचन — मुथिस कित कुदयि अन्तर मुत लेसे ([illegible]), वाडुस पु पाणो अरज़ छयो ([illegible])।

उत्तम पुरुष : पुल्लिंग : बहुवचन - वाते शोणितापुर एनिश्शी ([illegible]), वाते यिद वसे अग्रस निकट्टो ([illegible]) ।

उत्तम पुरुष स्त्रीलिंग बहुवचन - नववे गोपे कैन पिया मुये पिया ।

मध्यम पुरुष का कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं । सर्वाधिक उदाहरण अन्य पुरुष के मिलते हैं -

अन्य पुरुष : पु० : एकवचन - तुष्येत आव जवे बाणासुर ([illegible]), करतावत् गौ रुद्रस निश्शी ([illegible]), द्राव पुन: अति चिचे शुडै ([illegible]), तरवर अक पिव धरणीतल कम्प उयो ([illegible]) कोपे बाण जलो तत्काल ([illegible]), - - वातो तवोय नरुद मृषे - - - ([illegible]) चाव यो शोणितपुर महावीर ([illegible]) - - - अम्ब तोषी अतिहित विनये ([illegible]), क्यो शीर्ष सास्स भुज अष्ट महा दरट्टे ([illegible])

अन्य पुरुष : स्त्री० : एक० - शव गयि भूतल जलवान ([illegible]), पोरु रूपसा रात तत्काल गयि समत ([illegible]) ।

अन्य पुरुष : पु० बहु० - पत अदा अबल आय पदाते ([illegible]), वाते समीप निपबाणास तत्थान ([illegible]), निपपुरा द्राय आनंदविचे ([illegible]), बाणास्त्र निकटो ने समस्से ([illegible]) किञ्चत गय गगनि ([illegible]), किञ्च आकाश सत्थे ([illegible]) । चल्ले रसातले मये - - - ([illegible]) ।

अन्य पुरुष : स्त्री० बहु० - द्राया मच्या यखेत तेम - - - ([illegible]) । अधिकांश उदाहरणों में संस्कृत के भूतकालिक कृदन्त 'त' का लोप हो गया है और उसका स्थान अर्द्ध-स्वर 'य' अथवा 'व' ने ले लिया है यथा, गव < गत:, आव < आगत:, आयि < आगता, पिव < पतित:, उयो < उदित:, क्यो < कृत: आदि में । किन्तु वाती सं० अवाप्त में वह सुरक्षित है ।

उत्तम पुरुष पुल्लिंग एकवचन में 'अोस', स्त्रीलिंग में इस, ऊस (उच्चारित रूप ऊस जो 'इस' के बहुत निकट है), पुल्लिंग बहु० में 'ए', स्त्रीलिंग बहु० में

`ऐ` ; अन्य पुरुष एक० में `अव` , `ओ` , `औ` (जो उच्चारण की दृष्टि से `अव` ही है), स्त्री० एक० में `अयि` ; पु० बहु० में `ए` , ऐ (अय), आय, स्त्री० बहु० में `आया` प्रत्यय प्रयुक्त हुए हैं। `गव` और `गयि` का प्रयोग `गया` , `गयी` के अतिरिक्त `हुआ`, `हुई` के अर्थ में भी हुआ है।

वर्ग २.

क्रिया के साथ सार्वनामिक प्रत्यय जोड़कर भी सामान्य भूतकाल (अकर्मक) के रूप बनाये गये हैं। उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :-

उत्तम पुरुष एक०पु० : वलोम त्रास (७५)
मध्यम पुरुष एक० पु० : मासोय ना उंय ताव युदे - - - (१६३)
अन्य पुरुष एक० पु० : दर्द उयोस दिनपत वदरा (२२३),
सुध अश्तुन ज़न वपस पछोस (६४),
निजपुरतोष वछोस (६४)।

मध्यम पुरुष स्त्रीलिंग का भी एक उदाहरण मिलता है — वदिस ज़ि शास्त गयिय दयि म्यान्यि (१७२)।

ऊपर उल्लिखित उदाहरणों में `म`, य (`ओय`, `इय`), स सार्वनामिक प्रत्यय हैं और म्यें, तस और च्ये का प्रतिनिधित्व करते हैं, अत: यहाँ अलग से सर्वनामों का प्रयोग नहीं किया गया है, वे क्रिया-रूप में ही अंतर्भुक्त हैं।

सकर्मक क्रिया : सकर्मक क्रिया के भी भूतकाल में सार्वनामिक प्रत्ययों रहित और सहित दो रूप मिलते हैं। इन्हें हम वियोगात्मक और संयोगात्मक रूप कह सकते हैं। मध्यम पुरुष के रूप अनिवार्यतया सार्वनामिक प्रत्ययों सहित हैं।

वर्ग १.

उत्तम पुरुष पु० एक० : - - - सो पिट्ठो ना कॆनिव (२१४), पाने पठो पुछापिलाये (३०), चिन्दारकछेते नरलीकस वितरो असि सहसा नर जम्म (२१०)

`ऐ` ; अन्य पुरुष एक० में `अव` , `ओ` , `औ` (जो उच्चारण की दृष्टि से `अव` ही है), स्त्री० एक० में `अयि` ; पु० बहु० में `ए` , ऐ (अय), आय, स्त्री० बहु० में `आया` प्रत्यय प्रयुक्त हुए हैं । `गव` और `गयि` का प्रयोग `गया` , `गयी` के अतिरिक्त `हुआ`, `हुई` के अर्थ में भी हुआ है ।

वर्ग २.

क्रिया के साथ सार्वनामिक प्रत्यय जोड़कर भी सामान्य भूतकाल (अकर्मक) के रूप बनाये गये हैं । उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :-

उत्तम पुरुष एक०पु० : <u>चलोम</u> त्रास (७५)
मध्यम पुरुष एक० पु० : <u>मासोय</u> ना उंय ताव युद्दे - - - (१६३)
अन्य पुरुष एक० पु० : दर्द <u>उयोस</u> दिनपत वक्षा (२२३),
सुध अश्रुन ज़न वपस पहोस (६४),
निज़पुरतोष चहोस (६४) ।

मध्यम पुरुष स्त्रीलिंग का भी एक उदाहरण मिलता है — वदिस ज़ि आस्त गयिय दयि म्यान्यि (१७२) ।

ऊपर उल्लिखित उदाहरणों में `म`, य (`ओय`, `इय`), स सार्वनामिक प्रत्यय हैं और म्यें , तस और च्यें का प्रतिनिधित्व करते हैं, अत: यहाँ अलग से सर्वनामों का प्रयोग नहीं किया गया है, वे क्रिया-रूप में ही अंतर्भुक्त हैं ।

<u>सकर्मक क्रिया</u> : सकर्मक क्रिया के भी भूतकाल में सार्वनामिक प्रत्ययों रहित और सहित दो रूप मिलते हैं । इन्हें हम वियोगात्मक और संयोगात्मक रूप कह सकते हैं । मध्यम पुरुष के रूप अनिवार्यतया सार्वनामिक प्रत्ययों सहित हैं ।

वर्ग १.

उत्तम पुरुष पु० एक० : - - - सो पिट्ठो ना कैनिव (२१४), पाने पठो पुशापिलावे (३०), विन्दारकहेते नरलीकस वितरो असि सहसा नर जम्प (२१०)

उत्तमपुरुष पु० बहु० : हे सामू अबल अरण्य मुतच्छाडे ([illegible]), मारे मि तैम चक्का-- - ([illegible]), जिनै तिदिश गणगन्थर केलि ([illegible]) ।

मध्यम पुरुष पु० एक० : दिट्ठोत् चि सवापे ([illegible]), मुजवन बहिपुत्रस तुय च्छेदोथ चक्के ([illegible]), वाचि दरपीत ना स्मरीत मनसि अनीत ना कर्मणा ([illegible]) ।

मध्यमपुरुष पु० बहु० : ज़िनैत असर काते पाद वन्देय शक्के ([illegible]), मारेत बतिष्ठे दानव मुत बदयि ([illegible])।

अन्य पुरुष पु० एक० : लायी ब्रह्मकितोय अस्त्रावर सो बाणे दितिनन्दने ([illegible]), दैत्या पुन: स्मरेत ब्रह्म शिरास्त्र लायो ([illegible]), उरग्यू वलो सकल तस अवसर ([illegible]), एतो बालि हरिणानयनि सादरे तस वनो विस्सि ([illegible]) ।

अन्य पुरुष पु० बहु० : एतै वाक्य-समूह कृष्णास ज़रे बाणासुराने कृदि ([illegible]), लागे बाहुसहस्रस ज्वलितो आयुध रोषे ([illegible]) ; परिहारे तैन अस्त्र उकिष्टे([illegible]), चट्ठेत मुज येम अग्नस दिचे ([illegible]), महावीरेन्द्र नष्टे पुन: ([illegible]) ।

अन्य पुरुष स्त्रीलिंग एक० : अतृ दाण तैन किष्ठै पुन: भेरी वज्जावू ([illegible]), येन बसि पावू त्रय लोकस ([illegible]), चित्रलेखि स्वज्यू तैयि रात ([illegible]) ।

सार्वनामिक प्रत्ययों से युक्त भूतकालिक सकर्मक क्रिया-रूपों के भी दो वर्ग किये जा सकते हैं । प्रथम वर्ग में वे क्रियाएं रखी जा सकती हैं जिनमें एक ही सार्वनामिक प्रत्यय जुड़ा है और जिनमें क्रिया द्वारा केवल कर्ता सूचित होता है, दूसरे वर्ग में वे क्रियाएं जिनमें एक से अधिक सार्वनामिक प्रत्यय जुड़ा है और जिनमें कर्ता के अतिरिक्त क्रिया द्वारा कर्म भी सूचित होता है ।

वर्ग २.

उत्तम पुरुष पुल्लिंग एकवचन : पाने रचीम ब्रह्मान्य पान्द ([illegible]), निगदीम सहसा दैप संग्राम हुरो ([illegible]) , मुज़्योम ना बयनु सो पिय कव ज़ाना ([illegible]) ।

उत्तम पुरुष स्त्री० एक० : सफ़्ने बाल दावूम के सबद़ी ([redacted]) ।

मध्यम पुरुष एकवचन के उदाहरण वर्ग १ में दिये गये उदाहरणों के समान हैं । मध्यमपुरुष एकवचन के रूपों के साथ सार्वनामिक प्रत्यय 'त' (थ) अनिवार्यतया जुड़ता है ।

अन्य पुरुष पु० एक० : इसके सर्वाधिक उदाहरण 'बाणासुरकथा' में उपलब्ध होते हैं जिनमें से कुछ दिये जा रहे हैं — दिचौन तिभवन राज्य अदा तस ([redacted]) दुषौन कुल ठेवाह रस्ती एत उषि वज़ नाहौन शूल ([redacted]), लायौन कष्टतर शक्स नागपाश ([redacted]), स्मरौन् ता आव गरुड बलविवी ([redacted]), यान रचौन् पुष्पुलायुधे तुमुलस तत् मज्ज ([redacted]), तत् ताव ज्वरे भस्मायुधे पहरौन उरि मज्ज । सण गिरि तनयि तस जानेत दर्पौन वाक्य हितो ([redacted]) ।

अन्य पुरुष पु० बहु० : दिचेन पार्श्वस चतुर्भुत अंगने मयूर कम्पो रणे ([redacted]) लायेन मवले पट्टिस तोमर शक्ति शूल मुद्गर ज़ल्वाने ([redacted]), नाहेन समस्त दानव फेनि ([redacted]), खेन समस्त दानव कौनेय वा पान गने ([redacted]) ।

अन्य पुरुष स्त्री० एक० : फुनाह फिरेत असरे तेन बाणी बहुन घोर रूप सा शव ([redacted]) ; लायुन अनिरुद्धस ज़न बाणस हुंकार दाणे गो तत ([redacted]); अनिरुद्धे ज़ानेत एवान्थे फिरेत च्छला करि रट्टन साय ([redacted])।

अन्य पुरुष स्त्री० बहु० - मुच्यरेत सदिश्य अचवेनस । असिते किन ज़नु तेमा पटेन ([redacted]) ।

इन उदाहरणों में उत्तम पुरुष पु० और स्त्री० एकवचन में 'म', मध्यम पुरुष में 'त' अथवा 'थ', अन्य पुरुष में पु० तथा स्त्री० एकवचन तथा बहुवचन में 'न' सार्वनामिक प्रत्ययांश प्रयुक्त हैं । म संस्कृत 'मया' तथा 'त' सं० 'त्वया' का प्रतिनिधित्व करता है । अन्य पुरुषवाची 'न' को ग्रियर्सन 'तेन' से व्युत्पन्न मानते हैं[54], टर्नर 'न' अथवा 'अन' को सं० अनेन० तथा कृष्णेदिक 'अन' से सम्बन्धित मानते हैं ।[55]

वर्ग ३

इस वर्ग के अन्तर्गत सामान्य भूत के उन क्रिया-रूपों को लिया जा सकता है जिनमें एक से अधिक सार्वनामिक प्रत्यय जुड़े हैं जो कर्ता और कर्म दोनों का संकेत देते हैं ।

१. दिचेमय (= मैंने दिये तुम्हें) : मधिर्वंशे मंगछ अंय - अंय वर / दिचेमय सकले हत काल ([illegible]) । यहाँ `म` उत्तम पु० कर्ता एक० का और `य` मध्यम पु० सम्प्र० एक० का प्रतिनिधित्व करता है ।

२. क्यामस (= मैंने किया उसे) : हर असिस ज़िक्यामस वज्व : `म` उत्तम पु० कर्ताकारक एक० तथा `स` अन्य पुरुष सं० प्र० एक० का प्रतिनिधित्व करता है ।

३. मज्जोनस , हरोणास (= उसने भंग किया उसका , उसने हरा उसका (शील)) : मज्जोनस नववय वर-रमणि, कोमार हरोणास ससेत ओलमनि ([illegible]) ।

४. क्योहस (= उन्होंने किया उसके साथ (युद्ध)) : अपसस (असरू) मिलो ता क्योहस युद्ध ।

५. रट्ठोक (= उन्होंने पकड़ा उसे) : रट्ठोक वर-कामुक उपि निशा ।

६. च्छोनोहिस (= उन्होंने पहनाये उसे) : कुसुम च्छोनोहिस निकटो एतु([illegible]) ।

७. रछुनस (= उन्होंने उसे रची) : माय रछुनस पुनाह विधाने ([illegible]) ।

८. करनस (- उसने मुक्ति (दूषित) किया) दूषण करनस ([illegible])

पूर्ण अथवा पुराघटित भूत :

पूर्ण अथवा पुराघटित भूत के रूप `बाणासुरकथा` में `आव` प्रत्यय जोड़ कर बनाये गये हैं । आधुनिक परिनिष्ठित कश्मीरी में `ओव` का प्रयोग होता है किन्तु ग्रामीण बोली में अब भी `आव` प्रत्यय ही लगता है । कई स्थलों पर

इस प्रत्यय के जुड़ने से पूर्व 'य' श्रुति होती है। इस संदर्भ में उत्तम पुरुष पुल्लिंग बहुवचन का केवल एक उदाहरण आया है — 'आयाय' (= हम आये थे) : यत् युद्स आयाय सो विरची हत दाय (२०२९)। शेष सभी रूप अन्य पुन्य पुल्लिंग एकवचन के हैं। उदाहरणार्थ —

१. नेयाव (= लिया था) : असे मालेयमाने अहुक निप महापद नेयाव चूरो (२६८९)

२. ़ायाव (= घुसा था) : चतुरो पलित रसातल ़ायाव (२२४८)।

३. वा़ाव (= पहुँच गया) : बाणासुर निजगिह वा़ाव (२७८२)।

४. मज्भाव (= बान्धा था) : ब्याना जनुक बढि दानव चूरो किषणो पाताळि मज्भाव (२८१६)।

पूर्वकालिक कृदन्त :

'बाणासुरकथा' में उपलब्ध पूर्वकालिक कृदन्त के उदाहरण आधुनिक कश्मीरी की भाँति सं० 'त्वा' की 'एत' अथवा 'हत' (उत) प्रत्यय में सुरक्षित रहे हुए हैं। यह पहले भी संकेतित हो चुका है कि कश्मीरी में ए और ह परस्पर विनिमेय हैं। वर्तमानकालीन कश्मीरी में 'इथ' प्रत्यय भूतकालिक कृदन्त के लिए प्रयुक्त होता है। ग्रियर्सन इसे सं० 'इत्वा' अथवा 'त्वा' प्रत्यय से व्युत्पन्न मानते हैं।[५६] ब्यूह्लर का भी यही विचार है।[५७] 'बाणासुरकथा' में इस कृदन्त का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। महानय प्रकाश में भी इस कृदन्त का यही रूप है (धावेत < धापयित्वा, गाहेत < गृहीत्वा आदि)। हमारी विवेच्य कृति से कुछ उदाहरण हैं — वन्देत, कुनेत, करेत, गाहेत, नमेत, चठेत, पूजेत, हसेत, मिदलेत, विरचेत, रचेत, तुष्येत, रचेत, स्मरेत, सरेत, मंगेत, धावेत, नोपेत, उत्येत, छेदेत, वेदेत, वेदेत, ध्यायेत आदि। कुछ स्थलों पर 'हत' का भी प्रयोग हुआ है — न्वरित, च्यित, तसित, पूलित् आदि।

भविष्यत् काल के रूप

सामान्य भविष्यत् काल के उदाहरण भी 'बाणासुरकथा' में सार्वनामिक प्रत्ययों से वियुक्त और युक्त रूप में उपलब्ध हैं। इन क्रिया-रूपों में लिंग क्रिया द्वारा सूचित न होकर सर्वनाम अथवा नाम द्वारा सूचित होता है।

वर्ग १.

उत्तम पुरुष एक वचन : लिखह, करा, थवाब, गला।

उत्तम पुरुष बहुवचन : गछव, वेदाव, गलौ, ज़िनव।

मध्यम पुरुष एकवचन : मरह (वर्तमान रूप मरख), रमह (वर्तमान रूप रमख)।

अन्य पुरुष एकवचन : करि, वसि, बड़ि, (कर) वाति, (ना) नुनरि।

वर्ग २.

इस वर्ग के अन्तर्गत सार्वनामिक प्रत्ययों से युक्त संयोगात्मक रूप रखे जा सकते हैं। ये प्रत्यय सर्वनाम के कारक और वचन के अनुरूप हैं। यहाँ क्रिया से कर्ता और कर्म दोनों सूचित होते हैं।

१. दपय, दरपय, दपाय (= कहूँगी। कहूँगा तुमसे), काय ((करय)- करूँगा तुम्हारी (सेवा)), आनाय (= लाऊँगी तुम्हारे लिए), हारय (=(प्राण) हरण करूँगा तुम्हारे), मरय (= मरूँगी तुम्हें, अर्थात् तुम्हारी में मरूँगी)। इन रूपों में क्रिया का कर्ता उत्तम पुरुष एकवचन में है और सार्वनामिक प्रत्यय 'अय' अथवा 'आय' कर्म के मध्यम पुरुष एक० सं०प्र० में होने का संकेत करता है।

२. रछात (= रक्षा करूँगी तुम्हारी) - यहाँ क्रिया उत्तमपुरुष एकवचन में है और सार्वनामिक प्रत्यय 'त' (वा०का०'थ') मध्यम पुरुष एकवचन कर्मकारक का प्रतिनिधित्व करता है।

३. करणी (= करेंगे तुम्हें), सरनै (= याद करेंगे तुम्हें), मारणी (= मारेंगे तुम्हें) — क्रिया उत्तम पुरुष बहुवचन में है और सार्वनामिक प्रत्यय `अय` मध्यम पुरुष एकवचन का प्रतिनिधित्व करता है।

४. फरिय (= तुम्हें लूट लेगा), फोटिय (= तुम्हें टूटेगा अर्थात् तुम्हारा यह (ध्वज) टूटेगा), वसिय (= तुम्हें (मौत) उतरेगी अर्थात् आयेगी), गलिय (= तुम्हें नष्ट होगा - यहाँ पर अर्थ है `तुम्हारा यह ( शोणितपुर ) नष्ट हो जायेगा ), गच्छिय ( = तुम्हें होगा - यहाँ अर्थ है तुम्हारा यह ( यौवन ) असफल होगा )। इन उदाहरणों में क्रिया अन्य पुरुष में है और सार्वनामिक प्रत्यय `इय` अथवा य मध्यम पुरुष सम्प्र० तथा संबन्ध कारक का प्रतिनिधित्व करता है। `फरिय` को छोड़कर शेष क्रियाएँ कर्मवाच्य में हैं।

५. मारान (= मैं मारूंगा उसे) - क्रिया का कर्ता उत्तम पुरुष एक० में है और सार्वनामिक प्रत्यय `आन` (वर्तमान रूप `अन`) अन्य पुरुष एक०कर्मकारक का प्रतिनिधित्व करता है।

भविष्यत् काल के अंतर्गत आशीर्लिङ् के कुछ उदाहरण भी `बाणासुरकथा` में मिलते हैं, यथा — ये वसिय निज दाह दानवा, ते शमिय हत काल ति जवा (१०) सो ज़ि मुच्चिनय जय (१२)।

क्रियार्थक संज्ञा :

क्रियार्थक संज्ञा के `अन` `उन` और `अणी` प्रत्यय `बाणासुरकथा` में मिलते हैं। वर्तमानकालीन कश्मीरी में मूल-क्रिया के साथ `उन` प्रत्यय लगाने से क्रियार्थक संज्ञा बनती है। यह प्रत्यय सिं० अणउ, गढ़वाली अणू, पुं० अन, म० णें, राज० णो, हि० `ना` से बहुत साम्य रखता है। ब्लाक इसे सं० अनमू-युक्त क्रियार्थक संज्ञा से व्युत्पन्न मानते हैं। ५८ `बाणासुरकथा` से कुछ उदाहरण हैं— अनध गौ च आनना, निपा ना पज़िजय मारणी, शशि आनुन गछ अवे दैप आनुन!

सहायक और अस्तित्ववाची क्रियाएं :

कश्मीरी की प्रमुख सहायक और अस्तित्वाची क्रियाएं प्राकृत अथवा अन्य नव्य भारतीय आर्य भाषाओं की तरह √अस् से विकसित हुई हैं। वर्तमानकालिक क्रिया-रूपों में प्रयुक्त आधुनिक कश्मीरी की छ-वर्गीय सहायक क्रियाएं — छुस, छस, छुख, छख, छि, छे, छिव, छव बाणासुरकथा में छ-युक्त रूपों में उपलब्ध हैं।[५६] टर्नर छ-वर्गीय सहायक क्रियाओं की व्युत्पत्ति सं० आ - छे से मानते हैं, बीम्स सं० √बच्छ (= बाँस) से।[६०] बहुत संभव है कश्मीरी सहायक क्रिया का विकास सं० 'क्षि' = ठहरना, रहना, निवास करना (ऋग्वेद), रहना, शांत रहना (अथर्व , शतपथ), निवास करना (शतपथ , तैत्रेय), से हुआ हो।[६१] बाणासुरकथा में आज की कश्मीरी की भाँति यह सहायक क्रिया कर्ता के वचन, पुरुष और लिंग के अनुसार रूप धारण करती है।

वर्तमान

'मैं हूँ' आदि रूप

पुरुष	एकवचन पुल्लिंग	एकवचन स्त्रीलिंग	बहुवचन पुल्लिंग	बहुवचन स्त्रीलिंग
उत्तम	छास	छिस	छे	
मध्यम	छो, छोह	छिह (आ०क०छस)	छवु, छिव	
अन्य	(आ०क०छुस) छो, छु		छि, छे	

सहायक क्रियाओं के सार्वनामिक प्रत्ययों से युक्त रूप भी मिलते हैं — १. छाम (= मुझे है, वर्तमान कश्मीरी रूप छुम), २. छुयास (= उसे है, आ० क० छुस), ३. छायिय (= तुझे है)।

संस्कृत 'अस्ति' का प्रयोग भी कुछ स्थलों पर हुआ है जो 'अस्त' रूप में भी मिलता है — सव्व च्यानी वृषभवाहना आर्य अस्ति विशेषा ; अपने

प्रतलोप ना अस्त ; बाणासुराजी देशी अस्त । अंतिम उदाहरण में `अस्त` का प्रयोग बहुवचन में हुआ है ।

सहायक तथा अस्तित्ववाची क्रियाओं के भूत और आज्ञार्थ के रूप भी √अस् से निर्मित हुए हैं किन्तु उनमें, वर्तमान कालीन कश्मीरी की भाँति मूल धातु का रूप सुरक्षित है । भूतकालिक सहायक क्रिया के केवल दो रूप `बाणासुर-कथा` में उपलब्ध हैं – आसोस (= उसे था) और आसे (थे थे) आज्ञार्थ के भी दो-एक रूप ही मिलते हैं – आस (– तू हो), आसा (मैं होऊँ) । इनमें से प्रथम में आशीलिङ् की ध्वनि है और दूसरे को इच्छार्थक माना जा सकता है । भूत संभाव्य का भी एक उदाहरण मिलता है – `आसाहा`, जिसका वर्तमान रूप है `आसहो` । `आंसु` (आसुम् = मैं सार्वनामिक प्रत्यय `म` जोड़ा गया है जो कर्म के उत्तम पुरुष एक० सम्प्र० में होने का संकेत देता है । आस का एक दिलचस्प प्रयोग `आस-आस तनया अनिरुद्धा` में मिलता है, जहाँ `आस-आस` (= हो – हो) से `ठहर-ठहर` का अर्थ ध्वनित होता है । कश्मीरी की भाँति मराठी में भी सहायक क्रियाओं में सं० `अस्` को सुरक्षित रखा गया है ।

प्रेरणार्थक क्रिया : प्रेरणार्थक क्रिया के ये उदाहरण `बाणासुरकथा` में उपलब्ध होते हैं – वातनेय (= पहुँचाये), न्यावीनुय (= तुमसे (तुम्हारे पास से) लिवाया) ।

सं० √भू से विकसित भू, भुव, भवा , भुय भुये, भुह , भुयिनय आदि का प्रयोग भी सहायक क्रिया के रूप में हुआ है ।

संयुक्त-क्रिया

`बाणासुरकथा` में अधिकांश संयुक्त क्रियाएँ पूर्वकालिक कृदन्त +भूतकालिक क्रिया का रूप लेती हैं । कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं –

१. तुष्येत आव जवे बाणासुर (११४) – प्रसन्नहोकर आया ।

२. हसेत निगदि बाण वीरेन्द वाचि (xxx) - हंसकर बोला ।

३. शुनेत वनी कुम्भाण्डे बाणास । अनोत मंगेत कित विनाश (xx)
- सुनकर कहा, मांगकर लाया ।

४. वाची नमेत (xxxx) - नमन करके पहुंचा ।

५. पश्येत वायान विशेष अंख (xxxx) - देखकर बजाया ।

६. च्छिन्नेत पियते ओसरी (xxx) - छिन्न होकर गिर पड़ीं वे ।

७. वेदेत गय बाणास आशुग बहु मम्म (xxxx) - भेदकर गयी ।

८. मये पलित वाय सव्व बाणास उंय निकटो (xxxx) - मागकर आये ।

९. गच्छेव जावेत अस्त्र जवा (xxxx) - छोड़कर चले जाओ !

१०. शब्दा लोक शुनेत द्राव (xxxx) - सुनकर निकला

संयुक्त क्रिया के कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं -

१. यत् ग ण महादेवे बाण पिवान दिट्ठ (xxx) - गिरते हुए देखा ।

२. दिट्ठेह बल्लवान वीरवरे (xxxx) - मागते हुए देखा ।

३. यत् ग ण चन्द्रचूड स्वानी कलो किण्णे (xxxx) - आते हुए देखा ।

४. गच्छ अनुन पिय न त पियिय शाप (xxx) - जाओ लाओ ।

५. लग्गे लाड्त पूर्व देव सकले - - - (xxxx) - लड़ने लगे ।

लग्गो, लग्गे संयुक्त क्रियाओं में कार्य आरंभ का भाव निहित है । आवृत्ति अथवा नैरन्तर्य को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त क्रिया-युग्मों को भी संयुक्त क्रियाओं के वर्ग में रखा जा सकता है ।

वर्ग में रखा जा सकता है। रह-रह, आस-आस, पि पेत - पि पेत में एक ही क्रिया की आवृत्ति है।

ध्वन्यात्मक क्रियाएं : `बाणासुरकथा` में ध्वन्यात्मक क्रियाओं के दो उदाहरण मिलते हैं — संखमवान — जिसमें भारी सांसे लेने की ध्वनि है और `हुंकार`— जिसमें सनसनाते-हुंकारते हुए बाण की ध्वनि अनुगुंजित है।

अव्यय

क्रिया-विशेषण : `बाणासुरकथा` में व्यवहृत अव्यय अधिकतर संस्कृत-प्राकृत से दाय के रूप में प्राप्त हैं। बहुत कम बार प्रयुक्त होने के कारण कुछेक क्रिया-विशेषणों का ठीक अर्थ स्पष्ट नहीं है।

कालवाचक क्रिया विशेषण : `बाणासुरकथा` में निम्नलिखित कालवाचक क्रियाविशेषण मिलते हैं — अजअथवा / अज्ज < प्रा० अज्ज < सं० अद्य (वर्तमान रूप अज़) ; तदा , तद (= तब), अदा , अदि , अद (= तब फिर, इसके बाद) — इसका मूल सम्भवत: वैदिक अधा में है ; यिल्ले, इल्ले, यिल्लि (तीनों रूप उच्चारण की दृष्टि से एक ही हैं, वर्तमान उच्चरित रूप है यॅलि - स्पष्टतया संस्कृत यर्हि से विकसित ; तिल्ले, तले (= तब , वर्तमान उच्चरित रूप तॅलि)— सं० तर्हि से व्युत्पन्न ; कर < सं० कर्हि — यहां यिल्ले और तिल्ले की भांति र > ल नहीं हुआ है ; पचा, पत, पदा — सं० पश्चात् से `श्च` के लोप से व्युत्पन्न , पदा में त > द ध्यातव्य है, वर्तमान कश्मीरी रूप है पत ; याव और ताव - संस्कृत यावत् और तावत् से `त्` के लोप से बने हैं। `कर तावत्` का प्रयोग भी मिलता है जो स्पष्टतया कर्हि + तावत् से विकसित है और `कभी`, `किसी समय` का अर्थ देता है। वर्तमान कश्मीरी में याव और ताव के स्थान पर `याज़` और `ताज़` का प्रयोग होता है। `बाणासुरकथा` का `तावत्` आज `तावथ` हो गया है जिसका विकास * तांवत (तावत् से सम्भाव्य है। संस्कृत तत्पश् `अत्रान्तरे` का भी प्रयोग दो - एक स्थलों पर हुआ है - अत्रान्तरे

सह कृष्णेवर कृष्ण भट्टे । (२३८), अत्रान्तरे वर पिया अनिरुद्ध गेहे (२५२) ।

अवधिवाचक: सदस्य, क्षण-क्षण, अत्-क्षण, तत्क्षण, क्षणे, क्षणस्त (= क्षण भर को), प्रतिदिन ।

स्थानवाचक क्रियाविशेषण : तथि, तवे, तत्या, तवीय, तत्यै, तवो - ये सब `वहाँ` के अर्थ में प्रयुक्त हुए किन्तु इनकी अर्थ-छायाओं में बल के कारण भेद है । तथि, तवे (आ० क० तति) का अर्थ `वहाँ``उस स्थान में` , तत्या का `वहाँ से` ( अपादान ) । तत्यै`वहाँ से` - `उन में से` के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । ततो का प्रयोग वहाँ - `उधर को` , `उस दिशा में` के अर्थ में हुआ है और `तवीय` का `वहीं` , वहीं को के अर्थ में । इन रूपों को सं० तत्र से विकसित माना जा सकता है । अति का अर्थ भी `वहाँ` के अर्थ में हुआ है ( और आज भी होता है ) किन्तु अधिक सामीप्य सूचक के रूप में । सं० अत्र से इसकी व्युत्पति स्पष्ट है । `इत्या` ( आ० क० येति ) का प्रयोग `यहाँ से` के अर्थ में हुआ है । इसके अतिरिक्त `यति` ( आ० क० येति) का भी प्रयोग हुआ है `जहाँ` के अर्थ में - इसकी निष्पत्ति सं० `यत्र` से मानी जा सकती है । आधुनिक कश्मीरी में भी `येति` के `यहाँ` और `जहाँ` दोनों अर्थ हैं । कर्यो, ( = कहाँ ),कति ( = कहाँ पर ) भी इसी वर्ग में आते हैं - इनकी निरुक्ति संस्कृत कुत: , कुत्र से संभाव्य है । `अधर`, अन्तर, बहिह्, निभरा (= बाहर), निकुट (निकट), समीप, निरिश, निश्शा (= पास) को भी स्थानवाचक क्रियाविशेषणों के अंतर्गत रखा जा सकता है ।

रीतिवाचक क्रिया-विशेषण :

`बाणासुरकथा` में मिलने वाले रीतिवाचक क्रियाविशेषण हैं कव (= कैसे), यासेत, यसेत, यसेत (= जैसे), कासेत (= कैसे), कन । यासेत और कासेत का प्रयोग सं० `यथा` और `कथं` के अर्थ में हुआ है किन्तु उनकी व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है । पञ्चानय प्रकाश में इस वर्ग के एक और क्रियाविशेषण का प्रयोग हुआ है -

ताबैत (= वैसे, सं० तथा)। इसकी व्युत्पत्ति के विषय में भी कुछ कहा नहीं जा सकता। जन (आ० क० ज़न, तुलनीय हिन्दी की बोलियों में प्रयुक्त जनु) संस्कृत `इव` के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इनके अतिरिक्त जवे, जवा (= शीघ्र) को भी इस वर्ग का क्रियाविशेषण माना जा सकता है। इसका प्रयोग आज की कश्मीरी में नहीं होता।

स्वीकृति सूचक : आम्र (सं० आम्), अवश्य।

निषेधवाचक

`बाणासुरकथा` में व्यवहृत निषेधवाचक क्रियाविशेषण वही हैं जिनका प्रयोग आधुनिक कश्मीरी में भी होता है - न, ना, मा, म। न, ना सामान्य निषेधात्मक क्रियाविशेषण हैं। मा, म का प्रयोग आज्ञार्थक क्रिया के साथ हुआ है।

संयोजक अव्यय

सम्बन्धवाचक : समुच्चय बोधक :

निम्नलिखित रूप `बाणासुरकथा` में उपलब्ध हैं -

१. त, ता (= और) सं० तथा। वर्तमान कश्मीरी रूप है त॒। ग्रियर्सन इसे `उत्` से सम्बन्धित मानते हैं।

२. सं० अपि के अर्थ में `ति` का प्रयोग हुआ है जो आज की कश्मीरी में भी प्रचलित है। ग्रियर्सन इसकी व्युत्पत्ति सं० `इति` से संभव मानते हैं।

३. नता, नस का प्रयोग `नहीं तो` के अर्थ में हुआ है। वर्तमान कश्मीरी रूप है नत॒ (सं० ननु)।

४. विषयवाचक अव्यय `जि` (= कि, आ० क० ज़ि) का प्रयोग

`बाणासुरकथा` में अनेक स्थलों पर हुआ है । व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह स्पष्ट नहीं ।

५. `ह` , जो संभवत: सं० `हि` का अवशेष है, `ही` के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है - कमलव्य ह कमलव्य रव्र शोभाले ।

६. विषय वाचक `जि` (= कि, आ० क० ज़ि) का प्रयोग `बाणासुरकथा` में अनेक स्थलों पर हुआ है । व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह स्पष्ट नहीं ।

७. हेत्वर्थ अव्यय `यदि` । यह `यिद` के रूप में भी आया है और महानय प्रकाश में भी इस रूप में मिलता है ।

८. कारणवाचक अव्यय: अवें (= इसीलिए, इसीसे, आ० क० `अवय`)।

<u>विस्मयादिबोधक</u> :

`बाणासुरकथा` में उपलब्ध विस्मयादि बोधक निम्नलिखित हैं :

१. सम्बोधन : हे, हि ।

२. कष्ट व्यंजक : उय (= हि० उई) । वर्तमान कश्मीरी रूप है <u>वो</u>ह्य ।

३. करुणा व्यंजक - है (= हाय !)

४. धिक्कार सूचक : धिग् - धिक्

५. आश्चर्य सूचक : वह - वुह (सं० अह) । वर्तमान कश्मीरी रूप - वोह । यहां व के ऊपर उ की मात्रा लगाकर लिपिकार यह स्पष्टतया सूचित करता है कि उसका आशय `उ` वर्ण से नहीं, अपितु कश्मीरी मात्रा `ु` से है । लिपि चिन्ह के अभाव में `उ` की मात्रा से ही काम चलाया गया है ।

६. उपहास व्यंग तथा दया व्यंजक : हे - हे (= हाय हत्या - हाय हत्या) ।

सन्दर्भ - संकेत

१. दि लैंग्वेज ऑफ महानय प्रकाश : मेमोइर्स ऑफ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल (जिल्द ६ , सं० २) , पृष्ठ ३४ ।
२. जो लक्खणे सिद्धा न पसिद्धा सक्कयाहिहाणेसु ण य गउण लक्णा सति संभवा ते इह निबद्धा । (देशी नाममाला) ।
३. हिस्टॉरिकल ग्रैमर ऑफ अपभ्रंश , पृष्ठ ५ पर उद्धृत ।
४. काव्यालंकार (६।२७) ।
५. हि० ग्रै० अप० , पृष्ठ ६ ।
६. पिशेल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : हेमचन्द्र जोशी कृत हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ १३ ।
७. हि० ग्रै० अप० , पृष्ठ ७ ।
८. याकोबी : सनत्कुमार चरित की भूमिका , पृष्ठ १७ पर उद्धृत ।
९. दीह समास पवाहा बंकिय सक्कय पायय पुलिनालंकिय देसी भासा उभय तडुज्जल कविदुक्कर घण सद सिलायल । (पउमचरिउ)
१०. महापुराण (१।८।१०) ।
११. वायरणु देसि सद्दत्थ गाढ
छन्दालंकार विसाल पौढ
पइ एवमाइ - बहु - लक्खणेहि
पयडिव्वउ किम् आपउ ण तेहि (पासणाहचरिउ)
१२. णा सक्कय पायउ देस - भास
णउ सद वण्णु जाणामि समास (नेमिनाह चरिउ)
१३. लीलावई कहा (गाहा ४१) ।
१४. ज्ञानेश्वरी (१८।१७२१) ।
१५. हि० ग्रै० अप० , पृष्ठ ७ ।
१६. का० क० (२) ।

सन्दर्भ - संकेत

१. दि लैंग्वेज ऑफ महानय प्रकाश : मेमोयर्स ऑफ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल (जिल्द ६ , सं० २) , पृष्ठ ३४ ।
२. जो लक्खणे सिद्धा न पसिद्धा सक्कयाहिहाणेसु ण य गउण लक्णा सति संभवा ते इह निबद्धा । (देशी नाममाला) ।
३. हिस्टॉरिकल ग्रैमर ऑफ अपभ्रंश , पृष्ठ ५ पर उद्धृत ।
४. काव्यालंकार (६।२७) ।
५. हि० ग्रै० अप० , पृष्ठ ६ ।
६. पिशेल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : हेमचन्द्र जोशी कृत हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ १३ ।
७. हि० ग्रै० अप० , पृष्ठ ७ ।
८. याकोबी : सनत्कुमार चरित की भूमिका , पृष्ठ १७ पर उद्धृत ।
९. दीह समास पवाहा बंकिय सक्कय पायय पुलिणालंकिय देसी भासा उभय तडुज्जल कविदुक्कर घण सद्द सिलायल । (पउमचरिउ)
१०. महापुराण (१।८।१०) ।
११. वायरणु देसि सद्दत्थ गाढ
छन्दालंकार विसाल पौढ
जइ एवमाइ - बहु - लक्खणेहि
पयडिव्वउ किम् आपउ ण तेहि (पासणाहचरिउ)
१२. णा सक्कय पायउ देस - भास
णउ सद्द वण्णु जाणमि समास (नेमिनाह चरिउ)
१३. लीलावई कहा (गाहा ४१) ।
१४. ज्ञानेश्वरी (१८।१७२१) ।
१५. हि० ग्रै० अप० , पृष्ठ ७ ।
१६. पा० क० (२) ।

१७. जनराज तरंगिणी (४।३६) ।

१८. बा० क० (६०) ।

१९. वही (३०६) ।

२०. बीम्स : ए कम्पैरिटिव ग्रैमर ऑफ दि मॉडर्न आर्यन लैंग्वेजिज़ ऑफ इंडिया, पृष्ठ १६ ।

२१. स्टीन : राजतरंगिणी, अंग्रेज़ी अनुवाद (खण्ड १), पृष्ठ १३० ।

२२. हिन्दी भाषा (किताब महल, इलाहाबाद), पृष्ठ ३४ ।

२३. स्टीन : राजतरंगिणी : अंग्रेज़ी अनुवाद (खण्ड १), पृष्ठ १३० ।

२४. स्टैन : जर्नल ऑफ रॉयल एशियैटिक सोसायटी (१९००), पृष्ठ १८७ ।

२५. ग्रियर्सन : ऐसेज़ ऑन कश्मीरी ग्रैमर (१८९९), पृष्ठ ३ ।

२६. ब्यूह्लर : ए ब्रीफ रिपोर्ट ऑफ टूर इन सर्च ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स मेड इन कश्मीर, राजपूताना एण्ड सेण्ट्रल इण्डिया, पृष्ठ ८४ ।

२७. ग्रियर्सन : एसेज़ ऑन कश्मीरी ग्रैमर, पृष्ठ ४ ।

२८. ब्यूह्लर : टूर इन सर्च ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स, पृष्ठ ८३ ।

२९. ग्रियर्सन : दि लैंग्वेज ऑफ महानय प्रकाश, पृष्ठ ८१ ।

३०. ब्लाक : लॅ लांग मारते : मु० ग० पंसे द्वारा 'लिंग्विस्टिक पैक्यूलियैरिटीज़ ऑफ ज्ञानेश्वरी', पृष्ठ ३० पर उद्धृत ।

३१. पिशेल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : हेमचन्द्र जोशी कृत हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ६६ ।

३२. तगारे, हि० ग्रै० अप०, पृष्ठ ४१ ।

३३. हि० ग्रै० अप० : पृष्ठ ८७ । तगारे के अनुसार प० अप० में प्रा० भा० आ० भा० का ष, चाहे प्रारंभ में हो या पदमध्य में क अथवा ख में परिवर्तित होता है । प० अप० भी मुख्यतया ष > ख बोली थी । धीरे धीरे ष > ख की प्रवृत्ति प० अप० में अधिक प्रचलित होती गयी । जोइन्दु के 'परमात्म-प्रकाश' (७वीं शताब्दी) में यह प्रवृत्ति विद्यमान थी ।

३४. ग्रियर्सन : लैं० म० प्र०, पृष्ठ ६४ ।

३५. ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया (जिल्द ८, भाग २), पृष्ठ २३५ ।

३६. जूल ब्लाक : लॉंग भारते : 'कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा' में डॉ० शिवप्रसाद सिंह द्वारा पृष्ठ ६२ पर उद्धृत ।

३७. दि फोनेटिक वीकनेस ऑफ टर्मिनेशनल एलिमेण्ट इन इण्डो आर्यन : ज०रा०ए० ज० (१६२७), पृष्ठ २२७-३६ ।

३८. बीम्स : ए कम्पेरिटिव ग्रेमर ऑफ मार्डर्न आर्यन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ २७० ।

३६. केलॉग : ग्रेमर ऑफ दि हिन्दी लैंग्वेज, पृष्ठ १०० ।

४०. क० ग्रे० मॉ० आ० लैं० , पृष्ठ २६१ ।

४१. दि एण्टिक्विटीज़ ऑफ कश्मीरी : डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा , पृष्ठ ६ ।

४२. टू० इ० स० सं० मे० , पृष्ठ ८७ ।

४३. लैं० भ० प्र० , पृष्ठ १२६ ।

४४. डॉ० सु० कु० चाटुर्ज्या : बंगाली लैंग्वेज, डॉ० बाबूराम सक्सेना : इवोल्यूशन आफ अवधी ।

४५. टू० इ० स० सं० मे०, पृष्ठ ८७ ।

४६. महानय प्रकाश (३।२) ।

४७. कामताप्रसाद गुरु : हिन्दी व्याकरण ।

४८. प्लाट्स :

४६. भोलानाथ तिवारी : हिन्दी भाषा , पृष्ठ २०१ ।

५०. टर्नर : कम्पेरिटिव डिक्शनरी ऑफ दि इण्डो आर्यन लैंग्वेजिज, पृष्ठ१६१, शब्द संख्या ३१६७ ।

५१. द्रष्टव्य , पृष्ठ २६३-६४, २६६ ।

५२. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : अनु० हेमचंद्र जोशी, पृष्ठ ४५६ ।

५३. हिन्दी भाषा , पृष्ठ २४६ ।

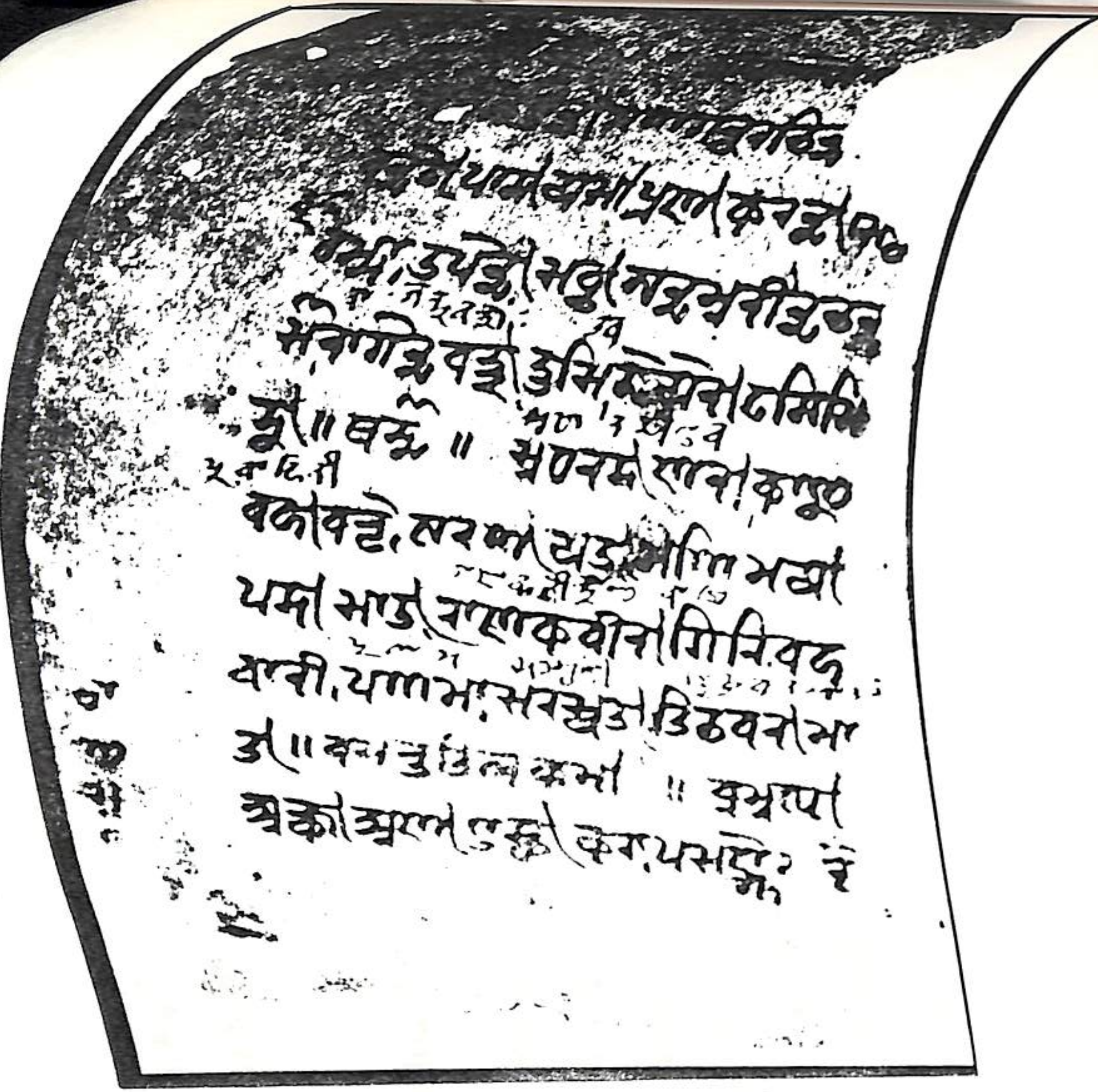
५४. लैं० भ० प्र० से उदाहरण देते हुए ग्रियर्सन कमीन और कमीन की क्रमितस तैन तथा वामतस तैन से निष्पन्न मानते हैं , पृष्ठ ११४ ।

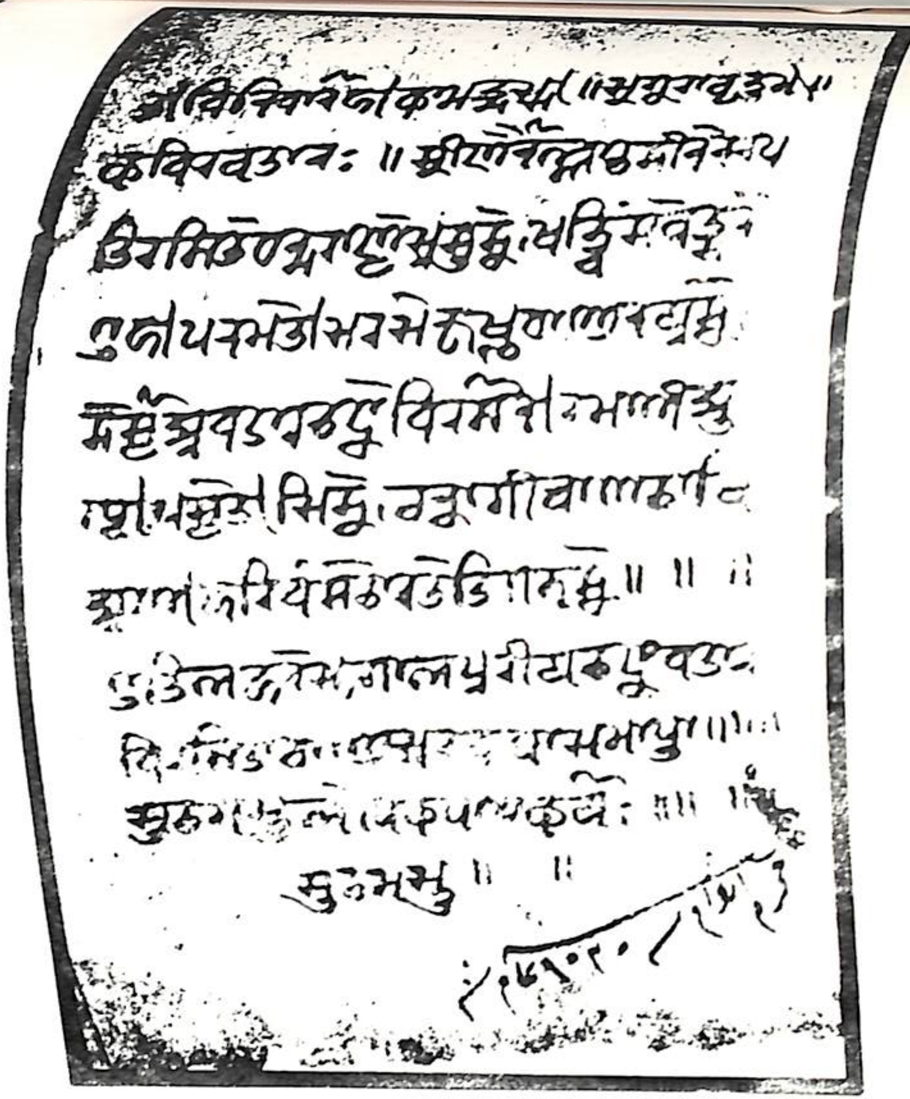
५५. के० डि० ई० वॉ० लैं० , पृष्ठ १४, शब्द-संख्या २८३ ।
५६. लैं० प० प्र० , पृष्ठ २५४ ।
५७. ट्रू० ए० स० सं० प० , पृष्ठ ८६ ।
५८. जूल ब्लॉक : भारतीय आर्यभाषा : अनु० डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृष्ठ ३०३ ।
५९. डॉ० शिवप्रसाद सिंह द्वारा 'कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा' में पृष्ठ पर उद्धृत ।
६०. क० ग्रे० प्रा० लैं० , पृष्ठ १८३ ।
६१. मोनियर विलियम्स : संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ ३२७ कॉलम ३ ।

:: २ ::

पाठ-शोध और अर्थ-सन्धान

हस्तलेख परिचय — पाठ-सम्पादन के आधार — हिन्दी भाषान्तर : अर्थ-निर्धारण की समस्या ।





"बाणासुर कथा": हस्तलेख का प्रथम और अंतिम पृष्ठ ।

:: २ ::

पाठ-शोध और अर्थ-सन्धान

हस्तलेख परिचय :

अवतार भट्ट द्वारा १४४६ ई० में रचित 'बाणासुरकथा' पुरानी कश्मीरी की भाषिक विशेषताओं के अध्ययन लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति सिद्ध हो सकती है। इसकी केवल एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है जो ब्यूहलर को बीकानेर में प्राप्त हुई थी। पूना के सुप्रसिद्ध डेक्कन कालेज ने यह पाण्डुलिपि उनसे १८७५-१८७६ में प्राप्त की थी। बाद को इसे पूना ही के भण्डारकर शोध-संस्थान स्थानान्तरित किया गया था जहाँ यह आज सुरक्षित है। ब्यूहलर ने इसकी सूचना 'बाणासुरवध' के नाम से दी, जो ग़लत है। कृति के अन्त में दी गयी पुष्पिका में इसका नाम स्पष्टतया 'बाणासुरकथा' दिया गया है -

> इति लहरे सुगालपुरी भट्टावतार विरचिता बाणासुरकथा समाप्ता।
>
> शुभमस्तु लेखक पाठकयो शुभमस्तु।

पाण्डुलिपि में 'हिकायते बाणासुर' पाण्डुलिपि के अंतिम आवरण पृष्ठ पर भी फारसी-लिपि में 'हिकायते बाणासुर' लिखा है। लिपिकार ने फारसी लिपि में ही इसका लिपिकाल दिया है - मुहर्रम-

उल-अहराम हि० १०२० जो ईस्वी सन् का १६५८ वां वर्ष ठहरता है ।

पाण्डुलिपि काफी पुराने कागज़ पर, जो अब बहुत जीर्ण हो चला है, काली और सिन्दूरी रंग की स्याही में लिखी गयी है । सिन्दूरी स्याही छन्द तथा संवाद बोल रहे पात्र के नाम और कहीं-कहीं कार्य निर्देश के लिये प्रयुक्त हुई है । पाण्डुलिपि के ६३ पत्रों में से कुल ८० पत्र उपलब्ध हैं, २५वें से ३७ वें तक के पत्र और ८६ वां पत्र अनुपलब्ध है । प्रति पृष्ठ १० पंक्तियां लिखित हैं और आकार है लगभग १५ × १२ सेंटीमीटर ।

वें पत्र तक संस्कृत और कहीं-कहीं कश्मीरी में भी पंक्तियों के बीच अथवा हाशिये पर टीका अर्थात् कुछेक शब्दों के अर्थ पतले कलम से काली स्याही में दिये गये हैं । इस कार्य को संभवत: कठिन जानकर बाद में छोड़ दिया गया है जिससे यह संकेत मिलता है कि १७वीं शताब्दी के मध्य तक ही कश्मीरी भाषा का स्वरूप काफी कुछ परिवर्तित हो गया होगा ।

पाठ-सम्पादन के आधार

केवल एक प्रति के आधार पर किसी भी कृति का पाठ-सम्पादन करना आसान कार्य नहीं , पर भाषिक दृष्टि से इतने महत्वपूर्ण काव्यग्रन्थ का असम्पादित ही पड़ा रहना भी वांछनीय नहीं कहा जा सकता । अत: कुछ सहायक सामग्री के आधार पर उसके पाठ को सम्पादित-संशोधित करने का यह प्रथम प्रयास अनेक सीमाओं के बावजूद भाषा-अध्येता के लिए उपादेय सिद्ध हो सकता है । `बाणासुरकथा` की कथा ,१ जैसा स्वयं उसके रचयिता ने संकेत किया है, हरिवंश पुराण से ली गयी है । अत: सम्पादन-कार्य में उसकी सहायता विशेष रूप से ली गयी है । प० ल० वैघ द्वारा सम्पादित `हरिवंश` के संशोधित संस्करण (भण्डारकर शोध संस्थान, पूना) तथा वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई और संस्कृति प्रकाशन, कानपुर द्वारा प्रकाशित संस्करणों का इस हेतु उपयोग किया गया । किंचित् परिवर्तित रूप में बाणासुर की कथा शिव पुराण में भी वर्णित है ,

अत: उसका भी अवलोकन किया गया । इससे पाठ की कई विकृतियाँ उभर कर सामने आयीं । छन्द संख्या ३५ में लिपिकार ने 'दैत्यातर' लिखा है , जबकि 'वैत्यातर' होना चाहिए था । इसी प्रकार 'सात्विक' के स्थान पर 'सात्यकि', 'अनिविष्टे' के स्थान पर 'अनिधिष्टे' (अनाधृष्टि), 'आसिर्लो' के स्थान पर 'असिलोमा' , नरुन्द के स्थान पर नरक, 'एरावुनू' के स्थान पर एरावुत् आदि संशोधन कर दिये गये । छन्द संख्या २५६ और २५८ में भी लिपिकार ने कृष्ण से युद्ध करने आह्वनीय अग्नियों के नाम अशुद्ध लिखे हैं जिन्हें हरिवंश के आधार पर शुद्ध कर लिया गया है । हरिवंश की सहायता से कथा के अनेक प्रसंग स्पष्ट हो गये और कई स्थलों पर लिपिकार द्वारा की गयी अशुद्धियों को सुधारा जा सका ।

किन्तु 'बाणासुरकथा' हरिवंश पुराण का अक्षरश: अनुवाद नहीं है कि सब कहीं उसी के आधार पर पाठ को संशोधित किया जाए । वह एक ऐसी भाषा में लिखी गयी कृति है जिसके अनेक रूप आज अप्रचलित और विस्मृत हो चुके हैं । ऐसी स्थिति में पाठ में आयी संभावित विकृतियों को केवल एक पाण्डुलिपि का अवलोकन कर, पहचान पाना अत्यन्त कठिन है । १५वीं शताब्दी की केवल एक और कश्मीरी कृति उपलब्ध है - सुख दु:ख मोहमाया जाल चरितम् जो अवतार भट्ट के युग के कई दशकों बाद सुलतान हसन शाह (१४७२-८४) के शासन में किसी समय लिखी गयी है । यह भी केवल पाण्डुलिपि रूप में ही है और आजतक अनछुई रही है । फिर भी ज्योतिष, हठयोग, चिकित्सा जैसे विषयों पर लिखी होने के कारण इसके सन्दर्भ अधिक स्पष्ट हैं और तत्कालीन भाषिक प्रवृत्तियों को पहचानने में उससे काफी सहायता मिलती है । 'बाणासुरकथा' में आये कुछेक शब्दों के शुद्ध रूप को स्थिर करने में उसका भी थोड़ा-बहुत सहारा लिया गया । दो-एक शब्दों यथा 'निज्जाव' , 'कम्हि' के अर्थ-निर्धारण में भी 'सुखदुख चरित्' सहायक सिद्ध हुआ ।

सारदा-लिपि में 'श' और 'ष' तथा 'म' और 'स' में काफी

साम्य होने के कारण शब्दों का सही रूप निर्धारित करने में कठिनाई उत्पन्न हो सकती है । `बाणासुरकथा` में लिपिकार ने कई स्थलों पर `श` और `च` को एक ही जैसा लिखकर इस प्रकार की समस्या उत्पन्न की है । कहाँ `श` होना चाहिए और कहाँ `च` इस निर्णय करना ऐसे स्थलों पर अपेक्षाकृत सरल है जहाँ शब्द का अर्थ एकदम स्पष्ट है, पर जहाँ अप्रचलित शब्दों का व्यवहार किया गया है वहाँ काफी गड़बड़ की संभावना है । ऐसे स्थलों पर प्रसंग के अनुसार अर्थ की दृष्टि से विचार करने के बाद ही निर्णय लिया गया है । उदाहरण के लिए, `श्यूरेत` और `च्यूरेत` को लिया जा सकता है । `श्यूरेत` संभवत: वर्तमान `शीरिथ` का पूर्व रूप है जो `भली-भाँति`, `ठीक तरह से`, `सजाकर`, `ठीक करके` के अर्थों में प्रयुक्त होता है । इसी भाँति `च्यूरेथ` संभवत: वर्तमान `चीरिथ` (- चोर कर) है जिसका बलात् यौन-भोग से संबन्धित एक अश्लील अर्थ भी है । इन दोनों में से किस शब्द की स्थिति (अर्थात् `श` और `च` की स्थिति) कहाँ मान ली जाए, यह प्रसंग के अनुकूल उनके अर्थों को ध्यान में रखकर निश्चित किया गया है ; जैसे, छन्द संख्या ६८ में वर्तमान कश्मीरी शब्द `शीरिथ` का अर्थ होने के कारण वहाँ `श्यूरेत` पाठ स्वीकृत किया गया है — शुन भावनयत्वा श्यूरेत (सुनो , तुम्हें मैं वह ठीक-ठीक बताता हूँ) । इसके विपरीत छन्द संख्या ६६ में `च्यूरेत` पाठ स्वीकृत किया गया है क्योंकि वहाँ प्रसंग स्वप्न में किये गये बलात्कार का है । अर्थ के ही आधार पर ३७ वें छन्द में `कृशि` को `कृचि` कर दिया गया है जो `कृत्तिका` नक्षत्र का कश्मीरी रूप है । `सुखदुख चरित` में भी यह शब्द इसी अर्थ में आया है और बाणासुरकथा में भी प्रसंग में मूल हरिवंश के अवलोकन के बाद यही अर्थ ठहरता है । `म` और `स` के बीच गड़बड़ी को भी इसी आधार पर दूर किया गया है । प्राय: अर्थ के लिए शब्द को बिगाड़ना या बदलना उचित नहीं होता, पर सन्दर्भ में कोई शब्द यदि बिलकुल ग़लत अर्थ दे तो उसे रखना भी ठीक नहीं । फिर `बाणासुरकथा` में समस्या पाठ-संशोधन से अधिक पाठ-निर्धारण की है । इसके लिए शब्दों के सही रूप का निर्णय करने में अर्थ की दृष्टि से विचार करना ही पड़ा है ।

छन्दों की दृष्टि से भी पाठ का निर्धारण करने का प्रयास कुछ स्थानों पर किया गया है। यद्यपि 'बाणासुर कथा' में व्यवहृत कुछेक छन्द आज अप्रचलित हो गये हैं पर संस्कृत के बहुप्रयुक्त छन्दों में मात्रा आदि की त्रुटियों को सरलता से देखा जा सकता है। इस दृष्टि से देखने पर 'बाणासुरकथा' की कुछ ध्वन्यात्मक विशेषताओं का भी पता चलता है जैसे 'ए' का ह्रस्व 'ए' अथवा 'इ' के रूप में व्यवहार। कश्मीरी में ये स्वर-ध्वनियाँ हैं भी परस्पर विनिमेय। उदाहरण के लिए १५३ वें छन्द की एक पंक्ति को लिया जा सकता है – 'असि मुसुल ते घोरे शूल तोमर काते' यह पंक्ति मालिनी छन्द में है पर मालिनी के सूत्र न न म य य के पूर्णतया अनुरूप नहीं है। यहाँ 'ते' की ए स्वर-ध्वनि को ह्रस्व मान लेने और 'तोमर' को 'तोमार' के रूप में लिखने पर गणों का क्रम ठीक हो जाता है –

न (। । । : असि मु) — न (। । । : सुल तॆ) — म (ऽ ऽ ऽ : घोरे शू) — य (। ऽ ऽ : ल तो मा) — य (। ऽ ऽ : र का ते)

इसी भाँति १६८ वें छन्द की अंतिम पंक्ति का अंतिम शब्द 'दुर्जैयत' है जो एक तो अन्त्यानुप्रास की दृष्टि से दूसरी पंक्ति के 'असितारैय' से मेल नहीं खाता और दूसरे अंतिम 'त' के प्रयोग के कारण उसमें आवश्यकता से एक मात्रा अधिक आ गयी है। यह पंक्ति दुक्कदिका छन्द में है जिसके प्रथम चरण में १७ और दूसरे चरण में १४ मात्राओं की योजना है। यहाँ दुर्जैयत् के 'त' को हटा देने से तुक भी ठीक हो जाता है और मात्राओं की संख्या भी। और भी कई स्थलों पर पाठ-शोध के हेतु छन्दों की ओर ध्यान दिया गया है। यहाँ यह कहना भी आवश्यक हो जाता है कि अवतार भट्ट ने छन्द-नियमों का सर्वत्र कड़ाई से पालन नहीं किया है अत: इस पद्धति की भी एक सीमा है।

'बाणासुरकथा' के पाठ को निर्धारित-सम्पादित करने का यह प्रयत्न पूर्णतया संतोषजनक है, यह नहीं कहा जा सकता। एक तो मूल रचना की केवल

एक ही प्रति उपलब्ध है दूसरे तत्कालीन भाषा-प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालने वाली सामग्री का भी अभाव है। इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी इस कार्य को, जहां तक संभव हो सका, संदर्भ, भाषा, अर्थ, छन्द आदि के विचार से पूरा किया गया। कुछेक शब्दों के रूप उनकी आवृत्ति और प्रायिकता के आधार पर भी स्थिर किये गये। अनुलेखन सम्बन्धी विशेषताओं को बहुत हद तक रहने दिया गया है, पर ह्रस्व `ए` `ओ` अथवा स्पर्श-संघर्षी कश्मीरी व्यंजन ध्वनियों च़, छ़, ज़ को लिपि चिन्हों के प्रयोग द्वारा व्यक्त किया गया है। शारदा, अनुलेखन पद्धति के अनुरूप व्यंजनांत शब्दों स्वरों के लिए हलन्त् का भी प्रयोग किया गया है।

हिन्दी भाषान्तर : अर्थ-निर्धारण

अंत में संशोधित पाठ का हिन्दी भाषान्तर भी दिया गया है जिसमें जहां तक हो सके सही अर्थ के सन्धान का प्रयत्न किया गया है। `बाणासुरकथा` की कश्मीरी से साक्षात्कार एक ऐसी भाषा से साक्षात्कार है जिसका रूप शताब्दियों की भाषिक पर्तों के नीचे दबा होने के कारण आज आसानी से पहचाना नहीं जा सकता। संस्कृत - प्राकृत - अपभ्रंश तथा भारतीय आर्यभाषाओं के तुलनात्मक कोषों की सहायता से उन पर्तों को कुरेद कर अनेक अप्रचलित तथा विस्मृत शब्दों के अर्थ के जितना निकट हो सके पहुंचा गया है। अर्थ-निर्धारण में महानय प्रकाश, लल्लेश्वरी, शेख नूरूदीन, सुख-दुःख चरित [illegible] से भी थोड़ी-बहुत सहायता मिली है। उदाहरणार्थ महानय प्रकाश के `यालेत` औ `तालेत` शब्दों को लिया जा सकता है - इनकी व्युत्पत्ति यद्यपि स्पष्ट नहीं है, पर इनका अर्थ संस्कृत व्याख्या के कारण स्पष्ट है - `जैसा`, और `वैसा` अथवा `जैसे` और `वैसे`। `बाणासुर-कथा` में `तालेत` शब्द तो नहीं आया है पर `यालेत` का अनेक बार प्रयोग हुआ है और बिल्कुल इसी अर्थ में। इसी क्रम में उसके `कालेत` शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ `कैसे` स्थिर किया गया -

कालेत बाणासुर गोविन्दे
ज़िनीन रणि सो महाउदास !

(कैसे गोविन्द ने युद्ध से अत्यंत हताश हुए बाणासुर को रण में जीता।)

वर्तमान-कालिक कृदन्त `न्द` को भी `महानय प्रकाश` की सहायता से एकदम पहचान लिया गया। यही नहीं `बाणासुरकथा` की कुछ ध्वन्यात्मक और रूपात्मक विशेषताएं भी `महानय प्रकाश` में मिलती हैं जिनके कारण भी अर्थ-निर्धारण में अनेक स्थलों पर थोड़ी-बहुत सुविधा हुई। इसी प्रकार `सुखदुख चरित` की पाण्डुलिपि की सहायता से `निज्जाव`, `कन्दि` संगत, कौनि, शाव, शित, छिन आदि शब्दों के अर्थ स्थिर किये गये। अर्थ का संधान कई स्थलों पर, विशेषकर वहां जहां सर्वथा अप्रचलित शब्दों का सामना था कल्पना के सहारे भी संदर्भ को ध्यान में रखते हुए किया गया है।

इस दिशा में सर्वाधिक सहायता पंक्तियों के ऊपर, मध्य तथा हाशियों में दी गयी संस्कृत (और किसी-किसी स्थान पर कश्मीरी) टीका से प्राप्त हुई है। इस टीका के सहारे कई शब्दों का अर्थ निश्चित किया जा सका है, यथा-मवलेस, आपू, किशू, मुन्य, नीवर राव, माशू, संगोय आदि! ८३ वें छन्द में `करहिंकरवत्रे` को लेकर कवि ने जो यमक क्रीड़ा की है वह काफी उलझन में डालने वाली है। इसी टीका के कारण उसे बहुत कुछ समझा जा सका है और इसके अभाव में १६६ वें छन्द में इसी प्रकार की यमक क्रीड़ा के कारण सही अर्थ तक पहुंचने में काफी कठिनाई अनुभव होती है –

हरोह असि दिवा कौशिके नता कोशके
वालोह पातालि मुकतु सरकोशके!

यहां `कौशिके` और `कोशके` के विभिन्न अर्थों के बीच मस्तिष्क डोलायमान होता है और शब्द-कोषों के पन्ने पलटने के बाद कल्पना का ही सहारा लेना पड़ता है।

२६५वें छन्द के बाद टीका बन्द हो जाती है। संभवत: स्वयं टीकाकार को भी तत्कालीन भाषा दुर्बोध लगी होगी और इसी से उसने कुछ दूर तक अर्थों की

तलाश में जाने के बाद प्रयत्न छोड़ दिया गया होगा ।

खोये हुए भाषिक सन्दर्भों, विस्मृत शब्द-रूपों और अप्रचलित प्रयोगों की दुनिया में बिना उचित दिशा-संकेत के यात्रा करना रोमांचकारी भले ही हो, बेहद कठिन भी है । फिर भी हिन्दी अनुवाद के माध्यम से प्रारंभिक कश्मीरी की एक उत्कृष्ट काव्य-कृति की काव्य-सौन्दर्यात्मक और भाषिक विशेषताओं का एक रेखा-चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास मेरा रहा है ।

:: २ ::

बाणासुरकथा : मूलपाठ

:: ३ ::

बाणासुरकथा : मूलपाठ

ॐ स्वस्ति श्रीगणेशाय नमः ।

योगेन्द्र इन्द गणगन्धरमिन्द

वन्देत पाद यस पूज़ करन्द

सिवक्र बम्पा उपेन्द्र स०ज चन्द मुनीन्द्र मन्द

सो नागेन्द्र वत्र तुसि देयेन कृचि सिद्ध ।।१।।

षट्दी :-

सुध-नद ज़न् कण्ठा वहवन्यै

स्रणा यत मणिमय पद सात्

राजकवीन् गिरि बह्वानी

पणामा सरस्वत् तिमवनमात् ।।२।।

वसन्ततिलकम् :-

बु मुख अक्क वज़ इच्छ करा पसंगे

पाने रचीम इह काव्य पबन्द

शंगो सुपनस् ति साम्य रघु विहंगे

ए दप्पा ताव् तत् क्यात् रहेव बन्द् ।।३।।

ज़ैनि पाने विमले राज्ये षड्विंशे वर्षे
कतकिय दिव सरस्वथ पूज़ित आज्ये
हरिवंशस अन्धर वंधिय ।।४।।

नमेत् रसाय सल्हन् आचार्यस
बहुशास्त्रज्ञस् यश येन् नेव् ज्ञान समुद्रस्
ता अति चार्यस अवतारे बाणासुरे केय् ।।५।।

दुक्कटिका :–
जनमेजय :
बुनेत् अनेक मि नारायणाने
वनेम चिये विशेष चरित्र ।
बुद्धिकुशल तू गुरु ज़न पाने
सगुण तपोधुन परम् पवित्र ।।६।।

कासेत बाणासुर गोविन्दे
ज़िनोन् रणि सो महाउदास
ज़ुवन मुचो गो केन अन्धे
बुन तस् इच्छ वसि वदतास् ।।७।।

वैशम्पायन उवाच :–
बुन् उयं एकमने तू भूपा
बाणस कृष्णस महायुद्ध–
युव, यो पत् ज़िनोन् सुरूपा
असुर सो बन्नाय ज्ञो सुबुद्ध ।।८।।

नरलोकि शोणिता पुर नामा
नगर कुवलय मज्य् सुशोभ
पुण्या तन्यू मनुज्यू यशसामा

पावूव् बुव् सुरेन्दस लोभ् ।।९।।

बलि नन्दुन बाणासुर तवै
युव ता तप् विरचोन् अपार ।
चट्ठेत मुज येन् अग्नस दिचै
अदा फकटोस करुणि फणिहार ।।१०।।

नाथ् वदिस गच्छिय् क्या वाचि
केन सत् तप विरचोत् बहुचण्ड्
सो ज़ि युयिनिय् जय् देवा चि –
दैत तिभवन राज्य् अखण्ड् ।।११।।

स्कन्द सहित् तु आसूँ निशिश
सचिव पनैयत् गण कामात्
गच्छिय् एथोय् पावुह् वप् किशिश
थव तप् चु निगदिस ए नाथ ।।१२।।

गाहेत वर पणमैत् जगिनाथस्
वातो रसा तत्क्षण निपदान्
दितोन तिभवन् राज्य अदा तस
नमैस् असुर, फण, देव पदान् ।।१३।।

सास करस तस् शम्भु पसादै
बाणस वैछ किछी आकार
भिय चु सुरवर रयिस वाद
इन्द्र करिता तुछिार ।।१४।।

शंगीय पवलेस विभवस अन्धार
उपयुस दुहित विशेष चरित्र

उष नामु नववय वर सुन्दर
तिभवन रूप चडाये चित्र ।।१५।।

मिगदिश शशि आनन् गजगामिन्
पीन पयोधर उरि जन् वज्ज्
बहकेश सुथ अधर सा कामिन्
वरकामिन् सुर लीलान् मज्ज ।।१६।।

कर तावत गौ रूद्रस निश्शी
बाणासुर गाहेत कृदि काम्
अंजल मन्नेत सौ रस मिश्शी
विन्नत् निगदिस् रचेत् पणाम् ।।१७।।

जिनै तिदिश गणगन्धर हेलि
करिन् नावाद पै नाकस पिट्ठ
मिय मि युद्ध कौञ्च ना पैलि
गौस निराशे मु वरनिट्ठ ।।१८।।

बाहु सहस् विथा गौ सामु
युद्धस कौञ्च सिर्जु छत् काल
सूख विन्दाना मि रह्य कामु
कम् किप निवसहु करुणाल ।।१९।।

ईश्वर उवाच :–
वसन्ततिलकाम् :–
बाणो पादन् पिट्ठ मुष चतुरो अप्पु
श्रीकण्ठस पुरा दप्पि क्यौत प्रसाद
चन्द्रमुकुटो तुष्येत् मि कारणो ।
मिथ्या बाहु सहस गौ न सूरा बु धन्य मवी
पना वासाहा तिरहेत् कंगत गरि वीरेन्द्र हीनी रणी ।।२०।।

षष्ठी :-

आनन्दाश्र निवारित् नयनु
विरचेत बद्धाऽञ्जल शत् पऽच
पुनाह पुनाह पूजेय् सुध वयनु
हर असिस जि क्यामस् वऽच ।।२१।।

ईश्वर :

मालिनीवृत्तम् :-

उत् उत् बाणा दानवेन्दा सुवीरा
भुजबल कुल उदार्य चि समो अक वाते
रणस् कुशल बडीपात्र् शुद्धीय धीरा
उयुग् मनस यं सा चिन्त दुसाय क्याते ।।२२।।

वैशम्पायन :

दप्येत परमेशुर ए उवर
गव अदि महातिष नाल
तुष्येत आव जवे बाणासुर
यति भुजगिह मुत कु हाल ।।२३।।

मन्दाक्रान्ताविृत्तम :-

बिट्ठो तचि हसेत् निगदि बाणवीरेन्द्र वाचि
शुन कुम्भाण्डा रहेत् सचिवा किऽच दपाय नीन्दी ।
सो चि देवाकल्य वदनातुष्ट एशु कवा चि
वज़ श्रीकण्ठे वशुम् तिजगिराज्य दितीय अमन्दी ।।२४।।

कुम्भाण्ड :

न तावक शतमख़ ध्यानये मय्ये
बतुरो पलित् रसातल ग़ायाव् ।

के रछीत विष्णु भया उय् ल्ये
दितीजेना असे एत गच्छाव ।।२५।।

च्यानी जनुक बडि दानुव् कूरी
किष णो पाताळि मन्नाव
एय मु ना परमेशे पद् पूरी
श्छोट् गयिस्ता राज्यस् आव ।।२६।।

बतिस्निग्धो गम्भीरो शंखस् —
निवसि निर्घोषेयस् राव
समरि दरिय ना बकेस शंखस
सो ए दिवा गोविन्द ज़िनाव ।।२७।।

स्कन्दपते परमेशस दप्येत
राज्यस दितिसुत् सब थावेत्
नता तेम देव जवे गळ कप्येत
मारव् बति बसि पट् धावेत ।।२८।।

एह पद् वने ताम् चू देवा
दप्योत यी बति प्यि इतकाल्
साफुल शम्भुस गये सेवा
हर्ष वसिय कृदि शोभाल ।।२९।।

स्रग्धरावृत्तम् :
बाण :
कुम्भाण्डा शम्भु तोषनी बतिहित विनये मि महा बज़ पाने
पछो युद्धाभिलाषे निगदोम् सहसा देम संग्राम कूरी ।
कुपो ते देवदेवे हसेत् पद् वदो तेन शुद्धो विधाने
बाणा चि युद्ध बचिरेय करणे धा ए ना बुत दूरो ।।३०।।

वसन्तम् :

हले मयूरधुज फोटिय् असभूपा
प्रावेह युद्ध तत्काल महा अवश्य
एती वदी परमेशे गिरि स्वरूपा
वातीस चि निकुट तस नमेत तुष्य् ।।३१।।

धर्दो :

वैशम्पायन :

शुनेत् वनी कुम्भाण्डे बाणस्
अनोत् मंगेत कित् विनाश
युद्ध महादुस्सह ए पानस बल्
देवा अंय वयन् मा माष् ।।३२।।

नर्कटकातृचम् :

ए पद् दपवान् तमे अकेस अक् वसे
पिव गरज कित् ध्वज वेग बला
वसुमति कम्प चाव कुल पब्बत ताव त्रसे
अति हुंकार रूप गयि अशन् सा भूमि तला ।।३३।।

यत् बाण अक् लोहध्वज् पत्थर सो पतिती
बाणस बाण आव रजनी तत् समयि
वरेशय देव देव जन् वासुव अति अहिती
दरणास रोद दैत्यपुरि कामन भुत गयि ।।३४।।

विदलेत चित्र भान् उल्का जन् पिव दरि
उदुय रचेत वक्र धरणी तत् काल महा
प्रवन ति मेघ रत नत वासुव नीत करि
गो शत सणहृ बेत्या तर फिक्रज्जेत् कित् लता ।।३५।।

बाणास राह रट्टेय अपर्वदिनै सहसा
अतितर धूमकेत दिशि दक्षिण नित्य रहि
दिवस ता रात वाव अविच्छिन्न वहि सहसा ।।
हरणास ज़ुव लूकस् विवते गैय गहि ।।३६।।

अति असितो नीलच्छ्य लोहित रूप मिश्रशी
एमय तिवन्नन मण्डल ववेत ता संध्या क्षणी
सूर्यस् ह्यिय् परशन ते आश्चुर यमसदिशी
रक्षेत् क्षो वक्र कृचि धरणीसुत क्रूरमणो ।।३७।।

बाणास जन्म कृक्ष अतिपीड्य कुज विषमी
तरवर अक् पिव् धरणीतल कम्प उयो
निवसो अनेक् शाल्मवलितो तत देश शमी
पति दिन पूजेहान यस दैत्य सुत् गनयो ।।३८।।

असुरा निपेन्द्र् बाण न कुलक्षण एम् गणि
मद उत्मत चेष्ट च्छियय पान सदाय गनी
सुभगान दैत्य दानव पियान समान् मनि्
ह्यिय् ना शंख वैक्षेत् सहस्त्र भुजन कनी ।।३६।।

वसन्ततिलका :
कुष्माण्ड चिन्ति कृदि तत्काल तिक्क्षी
ह भूपाल विचार करि ना सदाय
उत्पात लक्षण गनेय् नाथा ना रिक्क्षी
क्यात् भुय रण् मंगोन यो सदाय ।।४०।।

---

३५. हस्तलेख में "दैत्यातर" दिया है किन्तु हरिवंश पुराण में "दैत्यवृक्षेषु" दिया है : दैत्य वृक्षेषु सहसा धारा शत सहस्रशः (ह०पु०१०६।४४- श्री प० ल० वैद्य द्वारा सम्पादित संस्करण) ।

पज़ि ना सो वाक्य् बपज़ो परमेश्वरानी
दपोन् निपस मुय् अवश्य युद्ध
निज्जाव तेमे कै दा ी असि मित्यलानी
गछ्ि विनाश समये विपरीत बुद्ध ।।४१।।

एशु सत् कृदि छि यि बाणसन्ज़ु
आराधिती तपबले छयोस चन्दचूड़
निश्शि कुमार निज पुत्र दरेत् सन्ज़ु
सो ए दिवा हरिस् भंग चिनि ना मूढ़ ।।४२।।

थद्दो :
एम् वयन् हितकारसवे सचिव पान-पानस दप्पे
सो जि नाही निपे उत्सवे विमुव असि सह दप्पे ।।४३।।

वैशंपायन :
मत्तमयूरावृत्तम् :
कर तावत हर भयहर सरसे गिरिज सहिती
शौणितपुर वर उपवन् अन्धर नर नाट केलि
दाणस रही शशि शत मुख धारेत तपना सहिती
वरवनितन शतगन्धरे निपवर रहे तत् वेलि ।।४४।।

अति वीणा वर वज़न बहुश्रुत् तत थल सरसे
मुरज़ , मिर्दंग, पटह्, कलहागण, पुष्प शर सरनी
पारिजात विधु वान्धव वर ज़न पुष्प भर हरसे
तै अगरि विविध रचन् आमोदक दे तत् धरणि ।।४५।।

गजगमना शशिवदना कचिकार तेमा अच्छारसा
न[illegible]च्चन तनि अलसो हरिणादिशा मधुकरवयना
गीत करेन परमेशस विनये अति अच्छारसा
नीवर राव गुमन असितेकथ् तेन् जनवयना ।।४६।।

कलेत रसा शशि शेखुर परशेत् वप पुषमाला
बरुण वसन पैरेत मुखि चन्दुन कुण्डलश्वेते ।
तत् क्षण् चित्रलेख वर रमण सा नयनज्वाला
दिपवन् नाट्य करि तेन् बधिकोय् पुषशर हैते ।।४७।।

दिव्य रूप विरचेत बतिमनुहर तेयि रञ्जी
लील रचेत वदना जगिजननी नमोस पबन्धा
हास रचो गिरि तनयि सु हृदयस हमि बज भञ्जी
कलेत् चित्रलेख वर रमणाय हसेत् सानन्दा ।।४८।।

वसन्ततिलकम् :—
बासे ते तत्थल शम्भ समीप तुष्टे
परयेत् सो चहो रसो तेय हट्टहास
प्रावुह शोभ् तेन् पाप् अनन्त नष्टे
दिव्ये स्मान हर क्षो करवान् विलास ।।४६।।

शार्दूलवृत्तम :
तवे ईश्वर क्रूड करवान् उषि बाणासुरनि सुति —
दिट्ठोन् दिवो स्मान् चन्दवदनि सारंगनेत्र तदा ।
कोमारि सुभगि वरांगनि महाबालि शोभालि बति
दप्पि धन्य् तेमाय् भव सहिवा चिताभिलाष पदा ।।५०।।

चतुष्पदखण्डिका :—
तत् क्षण गिरितनयि तस ज़ानेत दप्पोन्
वाक्यहितो
बति हर्षं निजा निकटो बनेत् लमह
पिय् उचितो
साते बपोत क्षिस मु परमेशस करवान क्रीड उषे
ते थे तु सह भवोस शशिवेशस रमह जवे हर्षं ।।५१।।

नववे नमेत् फि गिरिजे निकटि
उष् अकलंक ग णा मनसि वदेय कर मचामि फाटि
वाष्पनयन् आनना पुनह वदिस शुम्बानी भवानी
शुन कल्याण उषे
हस्सेत चिन्त् वसिं कृदि च्यानी बाले कुरंग दिशे ।।५२।।

सित पक्षे वैशाख माशु स्वपने यो कलह निशि
एह कथ मि सहज तय माशु सो एचि मचा उषि
जगि जननी उष् पाद जु वन्देत नमेत् तापत रशु
दानव कन्या गने आनन्दे वाङ्य सा अमितमिशु ।।५३।।

मालिनीवृत्तम् :-
बत्क्ष ण् दिननाथ पान् यालेत रत्या
वलीन् गो निमिषे वेश क्यो कुसन्दि ।
हर गिरिजि स्यानी अदिश पवा
तदा सकले उत्थ बुज्जना पाप बन्दि ।।५४।।

वसन्ततिलकम् :-
केचा चढेत तुरगान् गजान् बन्या
केचा रथान् ता विमानन शोभवान्
आया गरान् निजदेश विशेष बन्या
तुष्येत् केच् आकाश दिव्य थान् ।।५५।।

पञ्चचामरावृत्तम् :-
बाणदुक्ति सा उष् वर सुन्दर
रूप चहु सकलि जगि अम्बर
वैशाखे माशु शयनि निज मन्दिर
कौमुद ज़न काशु ।।५६।।

बाकी सकल सखेजन वलिनू

सर्व सुर्टक वपाजन् लेरिबु
वन्दिक तारुवजा
निवसि उल्लिलिन् पर्यंकि विमन्या ।।५७।।

संगोय पुरुषवरे तस अक्की
सपने उयेत् धराजन अकले
कण्ठ बलोन च्छला
उषि अधर परक्की सुधमय दशनु दला ।।५८।।

अति ताडेत् आलिंगन क्योनस
सुखमय मन्मत भोग मजोन्मस
नववय् वररमणि
कौमार हरोणास खसैत ओलमनि ।।५९।।

सा उष् अनर निपेन्दस दुल्लभ
वरकामिन वदना जन् शशि पभ्
लत जन् फावुन फ्कि -
पुषमर गो अदा नम निरेत दाणी अकि ।।६०।।

शार्दूलवृत्तम् :-
वोजु मारव् दित तत समयि शंगोय सा लेदिबु
बालि लग्गोस कम्प भुत सुरता दिठ्ठोस न यो जातके
परिश शोणित वसवान सहसा सरेय मार हेबु
दप्पि पानस् शोकि शुत्रि लिखितो दिवा मूहि जातके ।।६१।।

वसन्तम् :-
रेवान् दिट्ठुन तदा उष् चित्रलेखि
दपिस पुन विनये कस भिह बाल
मारे शशांकवदने गल् वज लेखि
क्यानो पिता शुनेत दवान हत काल् ।।६२।।

मालिनीवृत्तं :-

तत् तत् वर कान्ती बाणकन्ये सुवेशे
नयनज़ल नुक्याला अज़ मीज़ीत रोषे
तिदशपतेस तावत वत न इत देशे
वर्दु तु सद्भावे सग़ये सपशोषे ।।६३।।

दष्पय क्यात अहितो अति चित्रलेखे
सूच्चि गयिं क्लिचित शंगोय रात लज्ज्
मुयिस कित हृदयि अन्तर मुत लेखे
रावोम् शूल त नुम जुव थवा न अज़्ज़ ।।६४।।

द्रुतविलम्बितवृत्तम् :-
पुषेस् रात् सखे अज़ तस्करे
बबल बाल कुमार मु के वन्या
सफ्ने अवभान मि तस्करे
त्यंजेत कण्ठस तेन् रसे वन्या ।।६५।।

रहेन रोमा तेन् मि दुज्जने
कचकला पस बन्धुन ओसरी
चिनोम् ना अकुय गै के दुज्जनै
वासे च्छिजेत् पिय ते ओसरी ।।६६।।

वपस ता भुव लग्गो ववी
ज़ानि पानुय भिय तू नन्दना
अहितो मुँहिं पत् दिवावो
कलोम् तेय जवे सुख विन्दना ।।६७।।

करोम केनिए शील महाच्छले
शोणित वेद़ा सखे पिय मि गनी
च्युरेत एय ता ज़ुव दाणो गले

कुलस लज्ज् पह्‌ ता गौ लग्गनो ।।६८।।

जनुक भुजेत पियि् नभाधरि
तिजगि वोरस मु तस क्या वदा
आनुन दिनस लज्ज गये धरि
दूषण करणास् वेदा किशू अदा ।।६६।।

उचितो दपय् मुज सखे गिरि
खटेत् पाश करा गल मु जवे
यदो तु रहस्य अंश ना नुनिरि
सहोम् स्य् ना जुव थवा भवे ।।७०।।

वैशंपायन :
मन्दाक्रान्तावृत्तं :—
एतो बालि हरिणनयनि सादरे तस वनो विस्सि
स्ताठि हिमकरमुखि चित्रलेखि सकाशे
सत सोभागि उरतट् उचि भुत रेवान्त वनो
माजि मा चू हृदयस अन उर शोक हि बन्द कोशू ।।७१।।

चित्रलेखा :
शार्दूलम् :—
एतो मा मर शोक बाण दुहिते चू ताव तावस् लज्ज पुरा
वाचि दप्योत ना स्मरोत् मनसि आनोत् ना कर्मणा
स्वपने ना व्रतलोप आस्त सुभगे ए भुज्ज् शास्त्रे पुरा
व्यानो शोल उचे कलंक रहितो आधार तू कर्मणा ।।७२।।

यदी :—
यस् भुव दुष्टचित वरललने सरवान मनस् त वदवान् वाचि ।।७३।।
परिष्पिय जुव् विन् कलने साय दुश्शील ए अंस कवा चि

वैशंपायन :

प्रहर्षिणीवृत्तम् :-

एतोय् बालि वदोस चित्रलेखि
शोभालि शुनेत् उषि वाक्य दप्पे
सत् शोठि जनुक मि बाण कण्ठ लेखि
हा कष्ट नयुन् मरेय् रेव् दप्पे ।।७४।।

चित्रलेखा :

हे बालि अचलसुति ये पव दप्पो
स्मर उन्दि निकटि महिषी सुकेलि
वैशाखे सित दिन द्वादशी ए कप्पो
स्वप्ने यो कलोत् सो मर्वा चि सवेलि ।।७५।।

सो अन्दे वचुन उषे एम् न गच्छि
आनन्दे वदुस किहो कलोत सवापे
बालगे पकित् अवा चि मुत अच्छि
त्यज् उन्दा मरह एह् शोक तू पलापे ।।७६।।

उषा :

वसन्ततिलकम् :-

सोपि उवर चिचस मि चित्रलेखे
दप्पोम् शैलतनयि यो महा विशेष्
चलोम त्रास उय मुयिस कित् लेखे
वन्नि सुरूप दिवा तस अशेष ।।७७।।

दप्पोम् शैलतनयि यि दिशोय् मर्वा
दिट्ठोम हर्म्यतल तेथोय मि सवापे
मुहि वदाय चि सखे पाण् कण् कन्ता
वैस्थावु मामूस किशू अज पुष्पचापे ।।७८।।

तोटकवृत्तम् :-

यस राजकवेस दिशे पद ना मि यू बान्युव

जन् लोयन पकटो सर राजकवेस दिशे पदना

करवाति सो पिय मि निकटो

शशि बानुन गच्छ जवै देम् बानुन अंग रछित सटो

भिय् गच्छम् किबव वस्त् नवो

करवातिं सो पिय् मि निकटो ॥७६॥

रति संगस भिय अनंगस दिवा

बुय यो कृदया जन अमृत घटो

यस कामिन् देवा पिया तिदिवा

कर वातिं सो पिय मि निकटो ॥८०॥

गुणसागुर सिंग यखेत तनि

नव भिंग जनो सपने यो घटो

तस विन पकित मि मुत तनि

कर वातिं सो पिय मि निकटो ॥८१॥

उय् निरिम् ना जात कृदि कमला

सखे नायुक चौर रमुन विकटो

जन मित्र शमो विन कमा कमला

कर वातिं सो पिय मि निकटो ॥८२॥

मालिनीवृत्तं :- चित्रलेखे

करहिं करवत्रे कार्य मि चित्रलेखे

करहिम् कर वत्रे सो दिवा जात मेलो ।

कर हिम् करवत्रे वज मि नार पेलो ॥८३॥

पियु पियु कर पाणि सखे शीमवानो

गळ्य गलय हेळियो गिहा भुत लोले ।
सद्न सद्न कन्दि वज वासुन् म्यानी
शुन अशुन् ना खिमि काम दुखिय बोले ।।८४।।

फुरो :-
यस कर पाद फुलिते
कमलय् इ कमलय् रचु शोभाले ।
रजन् कारि दिशी कमलय् इ कमलय्
जिनीन यु वाले च्यूरेत पकित गच्छिम अज
किसलय इ सरशोके सजिम् वप् किसलय इ
गो रजनीयस कुवलय सो कुवलय
वस्त ना वाले ।।८५।।

धदो :-
जान् सखे भुयि जन् वट्ठि
अबलि फरीम ववो पुष चाप्
शोक अपार हृदयस वट्ठि
गछ्इ अनुन् पिय त नत पिथिय शाप ।।८६।।

चित्रलेखा :
तनुमध्यावृत्तं :-
चू यस खि इ वाशि निशिदिन् सखान
निवसि कत वाशि सो पियु कव जाना
गछ्हस ताय् कवो भु ग्वारन् कत थान्
गुणमय ते वावहो सो पियु कव जाना ।।८७।।

विगलेस सरतापे मु खिस ममवाना
दिट्ठोत् दि स्वापे सो पिय कव जाना
दिट्ठोम् ना नयन्नु सम्मुख रमवाना

मुज्जोम् ना वयनु सो पियू कव जाना ।।८८।।

कैनिव ना वन्नो यस कुल सन्दाना
भामुक, तल वन्नो सो पिय कव जाना ।।८६।।

लत् जन् पुष मरिचू लूजूह येन पाना
यौवुन सुध मरिवू सो पिय कव जाना
वीर कुल दोपे बधर्य मधु-पाना -
ववोय् येन् रूपो सो पियू कव जाना ।।६०।।

मन्दाक्रान्तावृत्तं :-
यचि बाले गत ना अकनस देव-दैत्यन् कस्सि
सिद्ध, नागु, वसुर युवत मय्ये तराव्
तचि वीरे तोन् अति अधिके कैन् सन् एत् त्सस्सि
चि सौभाग्य रमुन विरचीन् धन्य सो अकक मावू ।।६१।।

बाणास लत दित अति कूरो जाव् यो शौणितापुर महावीर
जयस तू यस नगजि पद् पूरो त्रिजगि बुद्धि कुशल पियधीर ।।६२।।

वसन्ततिलकम् :-
उषा :
रछूम् जुव मि सखे उय चित्रलेखे
सो वीर ब्रह्माड निज बुद्धि बले अवश्य
भामुस येन् मनुजे कूथे के लेखे
स्ताठ मरय सुकुमार मु बाल् पश्य ।।६३।।

दुक्कटिका ।।
मारे उषे बाले सुकमारे वररमणी मिगनयनी अज्ज
कम्बु-गले शशि-वदने मारे वदल करून्य् आनायू पियू सज्ज्
सो यिद् आमयू ना पिय बाले मु स्ताठ सख कन्दि पलजाय

लगेन् शिर् म्यानी शौभाले रतिम्न रत्नम गिरि सहसाय् ।।६४।।

वैशंपायन :

शुनित् उषि सर अनले दज़ि सुय वश्शुन ज़न् वपस पहोस
सा ज़ि ए कर मि सम्पज़्ज़ि किंच ति निजपुर तौष चढ़ोस ।।६५।।

चित्रलेखा :-

पुज़ उपाय् उष अत कर्मस्
बुद्धिगुणे विचारि यो विशेष्
नमेत् रसाय पुराकितस् कम्मस्
वत्राय् पिय पश्याह शशिवेश ।।६६।।
देव्, असर्, गन्धर, फणि, किन्नर,
यक्ष, नरेन्द्र् विशेष येम् अस्त
तैमय् तैथेय् रूपा विविधे पुर
चित्रपटस लिखह समस्त ।।६७।।

राज़ून सत्तन प्राह तू बाले
याव् लिखा पट्चित्र कितोय्
तत्थै पज़ानिाह शौभाले -
पियवर ज़ुव समाय् पकितोय् ।।६८।।

वैशंपायन :

यहो :-

वत् वन्धर अनिरुद्धै निजगिह
हृदयि स्वप्न विनत् श्यूरेत
रचीन पलाप् रचोस्ते धरविह
ज़ुन भावनय त्वा श्यूरेत ।।६९।।

पुष्पिताग्रावृत्तम् :

अनिरुद्ध :

वरकान्ति सरेत रूप शुद्धी वप कान्ति विषमे ज्वरे यथा मि
सपने बालु कावूम् केश बुद्धी वसोस निशि पुष चापु का मरामि ।।१००।।

नरकटकम्

राजविहंगगामिन भुजंगिन जन वलयि
पियु पियु उचरंग रतिसंगस जात दिवा
देय कुरंगनेत्र निज अंग अनंगलयि
कर कर नालु मन्नेत ता सा कर नाल दावा ।।१०१।।

सर करवान् दासि चर अजरतान ववी
संचरवान् बाल चर अन्चर किास जवा
हिमकर वक्त्र यस अधरामित शच चवी
करु करु नाल मन्नेत् ता साकर नाल दावा ।।१०२।।

यस मिगराजमज्ज सो गजराज गवनो शनि
सज्जन मन्ज वद् थन उप्पजवान् उवा
हरिहरु वज्जपाण गतलज्जु गमन्द जनि
कर कर - - - - - - - - - - ।।१०३।।

उर तट हार पश्येत् ताहार नामार लयि
हरि नीहार तार सुकुमार कुमार भवा
भमेत कुमार ताव जिन मारक मार लयि
कर कर - - - - - - - - - - ।।१०४।।

सुधमय कण्ठ पश्येत तासाम् श्रीकण्ठा भुमि
चिबुक सरेत् घण्ट शुक कामेय कत्थि अवा
वर्ति उत्कण्ठ किाम् मन लम्पुट ना पश्यमि
कर कर - - - - - - - - - - ।।१०५।।

---

१०३. हस्तलेख में 'गराज गवन' दिया है, पर संदर्भ में 'गजराज गवन', अर्थात् गजराज की - चाल, अधिक अर्थ-संगत प्रतीत होता है, अतः पाठ में संशो- कर लिया गया है।

सुरवनिता विचारणास् रूप् गेण्टो वरहु
पादकमलन् त नासि शवनान् रहेत् दिवा
कचभर यस निम्मोह जना सकलु वरहु
कर कर - - - - - - - - - - - ।।१०६।।

मालिनीवृत्तं :
नयन् नयन् बालि बाण् काम म्मथाने
वचन अचन् उन्दि मुत नाराच पूरे
कुच् कुचन् नामूले वट् याखेत पाने
गुण् करिन् ना कस्सि निगुणी एम कूरे ।।१०७।।

दशन् जशन् हेलि काम रूषि महाते
अधर अधर बन्दा न वंश आसन दप्पे
कचन् कचन् कन्ता गौर कृष्णा नुहाते
गुण करिन् ना कस्सि निगुणि एम् बप्पे ।।१०८।।

वसन्ततिलकम् :-
स्वप्ने कम्यौस ति दिशुय के मुय कोनि
सा चन्द्र आनन् सरेत् मध्यन्द जुव्
शौके सदाय निजकाय मि मुत् कोनि
उथान णुव्(?) दिवा ज़ात् मिलाव ज़ुव ।।१०९।।

कचि पिये सब वसन्त कन्त् पिये पसंगे
संगे सुवन्न सदिसे कुच् वाकलेत
गोपूह तेमूय् ज़ना व्रज मार मंगे
मंगे कुरंग नयने पिक् लज्जवेत् ।।११०।।

वैशंपायन :
बयावृत्तम् :
चित्रलेख पाने गङ्गा बहु - - - - - ।।१११।।

मूल हस्तलेख के २५-३६ पत्र उपलब्ध नहीं

- - - - - - - सन्धौ मदाना
चिष् भमिय् पर थल रज मदाना
विनुय वदोय नवसदनाणु
रधि वसि उष मार किशु ।।११२।।

वैशंपायन :
दुक्कटिकावृत्तम् :-
वत दाण् बाणासुराने राधी
वदन् जि उत्य् वेदाव निपगेष्
अपर ते हम्यसि अन्धर माधी
लागेत कूट विशेष वेह ।।११३।।

उथेत ता वेदाग्रीह जाले त्रावे
उषि निकटि दिट्ठीक वक्क वीर
निगदन अकेस् वक्ता उंय् गवे
चली क्रोड कनी दिश दूर ।।११४।।

परेत् दिव्या वम्बर ता माला वदनस हरिचन्दुन लागेत
वरनायुक उष रछेत नाला वदवान् पन्त शराने गीत्
मणिमय् मयपात्र उषे गछेत वयतवरस् तस वातीय
बरसस चित्रलेख दाण वाहेत मणि कलशा सरसे फेरेय ।।११५।।

तैय जवे गच्छेत निपवाणस वनीह ता बहु लज्ज पहू
भुजोन संकोच मनीने पानस पक्मस विष भुजगेस जन वस बहू
दुषान् कुल वैवाहरस्तो रत उषि वजु नाशोन् शील
आनेत् दानव कटुक समस्तो निगदि कमे कैयि हह मूल ।।११६।।
वाव यो शोणितापुर वन्धर निर्मेय मण्डेत राधा हर्म
बुह बुह वीर त रूप सुन्दर सी मारेव दुज्जन बहि धर्म ।।११७।।

मन्दाक्रान्तावृत्तम् :-

एतौ बुजेत् निपस वदना दानवु तत्कालि
उथ् हेलि नमे चतुरो अस्त्रगाहेत पाणि
क्रूरे वक्त्रा यमभट् ज़न् विश्व् फैरेन्द गालि
याको वैड़ाव् लोहगिह सो शत्रु मारव् वानि ।।११८।।

शार्दूलवृत्तम् :-

शंगीय नाद गरज्ज गौ निभरा वीरै शुतो अन्धरा
उत्था याबेत् मच्चवासुण् जवे रटो उषि सो गला
दप्पि मा एम् मारणो हतुक्षण क्रूरे गणो अगरा
सख जनै मित् कैशस् अन्धर रथ मा गच्छ ततो बला ।।११६।।

अनिरुद्ध :

धिक् धिक् म्यानैस यादव जम्मस
वनति अचा मञ्ज कचान
युद्ध करा नमेत् स्वकम्पस ।
उषे अथच्छोन हत् थान ।।१२०।।

उषा :

दत्तविधाने :-

च्छोनात् बज नाकरा समेत् हनिय मारणो
हाणो पाश मु करा पिया म गच्छ मारणो ।
चि अक्क अस्त्र ना करि ते कोच काण दारणो
अमेन् युद्ध कु करि पिया म गच्छ मारणो ।।१२१।।

यि मारकि निदान पू अनोह कचि म्यारणो

---

१. हस्तलेख में `मच्चवारुणा` लिखा है, किन्तु टीका में `मदहस्ती` अर्थ किया है अत: `मत्तवासणा` पाठ रखा गया ।

गिहा समिद्ध योग चु पिया म गच्छ मारणी ।
मि आव अज्ज् नरशनी शमो म्यौन कारणी
नु क्यात् पा नी मा परशनी पिया म गच्छ मारणी ॥१२२॥

गला सुधांशे बानुना चि वंग मंग मारणी
अनत्थ् गौ चु बानना पिया म गच्छ मारणी ।
म्यानैस पितस बाणसे रौष् बढ़ि महारणी
पियेय् राह छ्हो ~~बकसे~~ आनसे पिया म गच्छ मारणी ॥१२३॥

वैशंपायन :

मालिनीवृत्तम् :-

तत् पाण वरबालि पान मारेत् वखि
परिघ धारेत अत्थि उट्ठ च्चानेत् वत्थी
रणास कुशल बडो वीर् कु वस वखिस
सकलु वलेत् शितो दान भुव समत्थी ॥१२४॥

नर्कटकावृत्तम :-

संग्राम :

रणि जन पञ्चबाण अनिरुद्ध शुशान मिली
उष् गलवान पिास पुष आकलवान् पिापि
बहु बल बाणवरशुन रचोरुस् तस् मवली
वचना तस् कायस् निधार रहत् पिापि ॥१२५॥

असि गद् शूल तोमार त नाराच शक्तियुधै
परि अनेक् मुदग्र परिहार पिा पौन बली
परिघ् पा नी वक्षस दित तदि कोनाय् पा सुमते –
पाण उष् आकलिस अमरा जन मान बली ॥१२६॥

---

१२४. हस्तलेख में 'मौरेत' दिया है, जो संभवत: लिपिकार की भूल है। संदर्भ के अनुकूल अर्थ को ध्यान में रखते हुए 'मारेत' ही उचित प्रतीत होता है।

लगीस दाीम कि^च नवे अस्त्र पहार तवा
हनेन समस्त दानव कौनेय वा पान गणी
परिघ धरेत वीर तेम् नाहेन युति अवा
ज़न् कल्पान्तकाल पिव् मेघन् वाव रणी ।।१२७।।

दिट्ठोह बलव् दिट्ठेह बल्लवान वीरवरे
विरचीह् सिंहनाद नभ मेघ् यथा वरषि
वदिह रछेव् युद्ध अज़् करो शुनेत लरे
उषि निकट फिरेत् गौ वीर सौ नववरषि ।।१२८।।

उषि चतुरीय बट्ठेत गलहार मणिलड्
दयितस बालवेत परिहार्यन् तिकरणे
भुजयुग नाल बन्नैत ता रट्टौन कुसुमलड्
निगदिस जि सम् छिवेत धनी कठिने करणे ।।१२९।।

भये प्लित चाय् सव् बाणस ते निकटी
संसमवान् रच दिापवान धनी उदरा
वदिह मा एतो धवेव फरीवु कुसी विकटी
हृदयातरस् च्छोनेव् हियवे ते सु दरा ।।१३०।।

बाणासुर :
सकलेय दानवेन्द निवसेव कुला उचिते
बहु बल नामलग् वसे शण्ड ते गेवु कवा
अज़् किस कायवान् छेवु कौनेसे सुमते
करेव् ना युद्ध गच्छेव त्रावेत बस्त्र जवा ।।१३१।।

वैशंपायन :
स्रग्धरावृत्तम्
एते बाणासुराणी कुपिते दानवु वाक्य बुज्जी
वाते कौटे गरन्दा प्रहरण सकलु जलवने बतिय हिदे ।

क्रूरी सन्यास परीह निजवह सुमट्ट अन्तर भुत् लज्जे
युद्धि सातित्र वाचि रचैत निपपुरा द्राय् आनन्दविचे ।।१३२।।

मालिनीवृत्तम् :-

रथान् चड़ेत हेलि किंच आकाश सत्ये
जल्न् तडित् सट्ठ भुत् वथान धीरे
यखेत ते धमाचे तोय् गजेन्द्र समत्ये
जुतन नयन् क्रूरे तेन् दैत्यान् पूरे ।।१३३।।

वसर तेथिय् बोले भूतले गै शिष्टे
मद गज जन् यूथा युद्ध दुर्ज्जेय उन्दा
रह रह करवाने वाते तवोय दष्टे
शुनेत अनिरुद्धे हास् मौधीक पबन्दा ।।१३४।।

निगदिस उष दैत्या अस्र कोट अनेका
पुन: फिरेत् आया मारणि अज्ज कोनी
ह्य ह्य अविचारे भुत् असतन्द एका
वरजुत् त्रप वीरन मारणी गच्छ कोनी ।।१३५।।

षट्पदावृत्तम् :

दप्पीन वयुन उषि अनिरुद्धे
आसीन् दानव वीर गरुद्धे युद्धे
रण् ताण् कल मना द्राव पुन: अति चिवे शुद्धे
शितीन परिघ् ता चम्म् सुयुद्धे ।।१३६।।

युद्धे अस्रगणान् फुता लग्गेस
आयुध वरशुन कारणि
दानव नाद रचेय् निष्कारणि
आकरणि वैकि पहा ।

चम्पस पिट्ठ फिपेत् ते करणि
आरबुर मुत् मति उष् करणि
गमन गछू करणि पहा ।।१३७।।

पश्शन् द्वात्रिंश फकारि करवान् युद्ध घनी करि दारि-
परिध् ता चम्म् शिरि रणे
असर् जियस वातो संहारि हथय असि वश जुव हद् हारि
आहारि शोणित घणे ।।१३८।।

वदलाडिव कोनोय तत् सेनि
लगोह अगठिचन्अज्या देनि
दिट्ठोह लद्‌य महाघने
नाहेन सब्ब दानव फेनि
धारोह सो रणथल बुद्ध ना केनि
रचोस फिरेत् मारेन गने ।।१३९।।

शिष्टे एम् तवा युद्धालस्ते
बाणस निकटो गै समस्ते
वदन गरस्ते जन यमे्
शोणित कड्‌न् वग्रितस्ते
रेण् उभारेण यफू मयस्ते
कस्ते गन् वस्ति शमे ।।१४०।।

शार्दूलम् :
वल्ले नाद् रचेत त्रावेत रथि गोढ
त दचेघाणा
स्वान्या कोच जानुबन्ध फर ते नानास्त्र
मघ्येकरा ।
मढे मारव देन प्रवान गने रथेन युद्धि फुगा

हेलि चाय् वनान गुहान महावीरेन्द्र नष्टे
पुना ।।१४१।।

वसन्ततिलकम् :-

लग्गीह कम्प् यदि सौ अनिरूद्ध युद्धे
दिट्ठोह तिपच एत दिशी नवे क्षौनि ।
गीपेत् पान तस् कड्न् तेन् गरूढे
च्छड्न् रच उलमच अनन्त जोनि ।।१४२।।

पच वथा अबल आय् जवे पदाते
वाते समीप् निपक्षाणस तत थान् ।
त्रावेत शूल गद तोमार ति कराव्
याते नमेत नवे पै युद्धस तरान् ।।१४३।।

षट्पदी :

नष्ट वेष्ट निज कटुक परशेत्
कोपे बाण् जली तत् काल
बाज्य अनेक उपरि पवरशेत्
यजथलि जन अतुल विशाल् ।।१४४।।

मत्तमयूर :

अत क्षण बाणासुर अतिकोपे समरि शत्रस–
द्राव असुर गाहेत कुम्भाण्ड्य रथु सन्यारणि ।
वीरस तस अनिरूद्धस सहसा अति पवित्रस
ते कलेत् कम्प् उयी कुदि कमला विषमी धरणि ।।१४५।।

लागे बाहुसहस्रन् ज्वलिते वायुथ रौद्र
पट्टिस शूल परिघ् गद् तोमार गणी जिन् काते
मकाध्वज् शत् बुत महवे जन नम पौर्च

बन्येत् गोर्यांगुलि शत भुजाने ते महाते ।।१४६।।

विरचेत् गुणटाङ्कार महाधनु योधो रोन हेलि
धिपोन् फ्नाह हरिद् उक्रिष्टो पर [घर] नम् नट्टो
निगदेय रह रह समरस कोपे तस तत् वैलि
जलनिस नयन् महा विकराले मुत् गण्टे ।।१४७।।

वयुन सुनेत बाणस् अनिरुद्धे तत धाण वेधी
कलोन फ्नाह बाणासुर कुपितो तेन् एवानो
चडेत महारथि यत् हय सास्त बन्ध जवे धी
दश चम्म् बहु च्छेदेत महिषे क्योह पमानो ।।१४८।।

वज्जन् तत् महारथस पवना बहुशत मवले
किङ्किनी ध्वज मुत पताकिन् तेम् अतिरचे
पश्येत त अनिरुद्धे वीरवरे हस्सोन लवले
आव् रचेत् आडम्बर कन्दिरहस मुत हचे ।।१४९।।

फिरेत त गों अनिरुद्ध सो कारि बाणस रण धाण्
आकलोन् पयको करि [धारेत] परिघ् पबन्धे
चम्मस् शिरि उपरि सुम्मी तस् नागगीतन्
असरस हर्ष उयं उयं मारण् गच्छि अन्धे ।।१५०।।

धन्य सो नर तनुत्राण विहोनो कोनीय
सरजन् ततधाण तस करि [illegible] ना मोन्दो
आयुष समरि
बाल अजेय यो असरस बाणस आव अभयमन्
मरुण मुये न् तिभवन तस् वीरस पान् कुसम्मरि ।।१५१।।

---

१४९. हस्तलेख में लिपिकार की भूल से 'बाहुसहस्रम्' आया है जो कोई अर्थ नहीं देता ।

शार्दूलम :

लग्गोस बालस् बाण् बाण बगैरे क्रूरे
महावरशनि
धारि बम्प् पिट्ठ तत् समयि याखेत् सूर्योदये ।
बस्तिस्ना सम्मुख यादव दडो लग्गो
पुनाह पश्यनि ।
क्रूरो सिंह हरेत हस्तेस बने दप्प्प करणु ल्ये ।।१५२।।

तीक्ष्णो बाण सहस्त्र बोध चतुरे काले निवारि पुरा
क्रूरे वेदेतै मर्म वाय सदिशे लग्गे दिशु गन्छनि
कोपे सो अनिरूद्ध रोमस् जलो आधारविवो धुरा ।
चल्लो पेरेस् ना युद्ध कुशलो तत्या भये तत् क्षणि ।।१५३।।

मालिनीवृत्तम् :
मथेत् शर समस्ते गात्र पूरेत रचा
तत्क्षण गव् सिद्धो बाणसे वीर उन्दा
रथस निकुट वातो कॉञ्च ना तस पचा
असुर सुर पियाते वेक्षवान से पवन्या ।।१५४।।

असि मुसल तँ धोरे शूल तोमार काते
परिघ् पटिस बाणो तस लायीन चक्रि
जगि गड नवे कम्पो बाल युधि महाते
रछेत रोमस् तवे वीर् भिष्टो स वक्रि ।।१५५।।

दुक्कटिका :
तेमय वस्त्र पुनाह अनिरूद्धे स्मरेत् जवे शितेन करान्
किञ्च ति रथु चट्टीन युद्धे गोपेत् पान तले अश्वान ।।१५६।।
लायेन मवले पट्टिस तोमर शक्ति शूल मुद्गर अलवान

---

१५५. हस्तलेख में `तोमर` दिया है किन्तु छन्द की दृष्टि से `तोमार` ठीक है ।

वर्षुन क्योनस तेन् तर्तॖ अवसर कम्पो महारथ् बब्बिव बाण ।।१५७।।

अच्छरसु गगना अनिरूद्धस कुसुम कि पेत् विरचो हितराव
असुर पिय जि जानो जि युद्धस बाण मितो द्रोह माराव् ।।१५८।।

फुनाह फिरेत् असरे तेन बाणो कडून घोररूप
सा शत्
घण्टा जालगगने कचवाने यं पश्येत बल्लिनिज सत् ।।१५६।।

जलवान यम आदित्य समानो
क्रूर सा यमदण्ड यखेत्
हेमदण्ड सकले कचवानी
वीर शिकिस कुदिष्ट करेत् ।।१६०।।

गुब्रू मार सहस्स तस बाणस
विषकम्मे क्रेया यि यत्
लायून् अनिरूद्धस जन् बाणस
हुं हुंकार दाणो गो तत् ।।१६१।।

अनिरूद्धे जानेत स्वान्ये
फिरेत च्छला करि रट्टन् साय्
वाप जयि बहुशत् वीरान्ये
सुरवनिच पुष कि पेह जवाय् ।।१६२।।

अदा लायेन कम्बल जन् बाणस
अनिरूद्धे बाण् रणाथान्
वेदेत् देह दाणो तस् बाणस
शव गयि भूतल जलवान ।।१६३।।

हंगो बाण दाणास तव मंगे

कठे ते उष् असितारेय
अदा कुम्भाण्ड वदिस मिदु भंगे
शून् विन्नत् निवसि दुर्जेय ।।१६४।।

मासोय ना उयं ताव युद्धे
वीक्ष किहो निवसि वरवीर
तुलाब्द ना पास तेज् गरुद्धे
मारि असि सकले कित् हेर्रे ।।१६५।।

रक्षाह इद् इत् प्राण मि त पानस्
मर्याय रचेत् बन्धुन् वीरेश
ताव फारिय् न त एहुय मानस्
शाणितापुर गछिय निश्शेष ।।१६६।।

मन्दाक्रान्तवृत्तम् :
एते बाणो सचिव वदना दुखिसते वाक्य मुज्बे
कुरिमायि असुर कुपितो गो अदिश्य रौमे
सो गन्धर्वनगुर सदिशो सारथिस्मान कज्जे
शंगो अभ्रा यसेत कुटिलो पान् गोपेत् सीमे ।।१६७।।

चिन्ति उन्दि असुर निप सो तामसे विष क्रोधे
वेक्षि दिशादह नवे अनिरुद्धे पश्चियस ना कौनि ।
युद्धातुलो तस ना समुखे पर्वताकार योधे
देनि आक्रन्द सटेत् समरि स्त्री यथाश्वास च्छोनि ।।१६८।।

---

१६४. लिपिकार के प्रमादवश हस्तलेख में 'दुर्जयत्' लिखा है जो निरर्थक होने के कारण अशुद्ध है । अन्त्यानुप्रास की दृष्टि से भी वह ठीक नहीं ।

१६५. हस्तलेख में 'पाय' है जो 'हरिवंश' से मेल नहीं खाता । (१०८/८१)

१६८. हस्तलेख में 'आशादह' दिया है किन्तु हरिवंश पुराण के (अवलोकन पर 'दिशादह' ही उचित पाठ प्रतीत हुआ।

वसन्ततिलकम् :-

बाणो अदा खटेत पान नभा मायि
लायोन कष्टतर शत्रस नागपाश् ।
हेलि वलोह अनिरुद्धस देह गायि
त्रप्पोह वीर क निबारेय सर्पपाश् ।।१६६।।

स्रग्धरावृत्तम् :-

यिल्लि सो वीर राजा नववय समरि पन्नगु मुत वोबू
कष्टु कालु ता जिष्टि अतुल विषभरं देह ना तस् मग्गा ।
जानो मेनाक् पट्ठो अचल जलवनोमुत हति अपूर्वो
बालि पश्येत मचा कुवलयनयनि ह्यु उषि रेणि लुग्गो ।।१७०।।

षद्पी :-

बाण :

येन असि पावू त्रप लोकस
दुषन अविवाहोहित कुमार
नाश रचोन अयनो परलोकस्
कुम्भाण्डा चतुरो ह्यु मार ।।१७१।।

कुम्भाण्ड :

पदविधाने :-

कुसो ह क्यात् ता असानो अनो कमै विचारणो
गछि वंश असानो निपा ना पज़िय मारणो
सुरेन्द तुल्य यो रणि वसिस रूप मारणो
शोमालो वैसि मूतनि निपा ना पज़िय् मारणो ।।१७२।।

---

१. हस्तलेख में [illegible] दिया है किन्तु हरिवंश पुराण [illegible]
पर [illegible] ही उचित पाठ प्रतीत हुआ।

[illegible] को अवलोकन

करुस पूज़ अगरा चि क्षी येना निवारणी
तुनेत् जात् सागरा निपा ना पज़्ज़िय् मारणी
करि ना भौगि असि पीडिती गनन्द धारणी
द्विबाह पिव् यो असिनिपा ना पज़्ज़िय् मारणी ।।१७३।।

थदी :-
वैशम्पायन :
कुम्भाण्डाने उचर भुज्जेत् बलोस मनि आसोस ताव
सर्पवली अनिरूद्धस् वज्जेत बाणासुर निज गिह वाचाव्
नीत क्षि पोह अदा त निश्शी
व्यालवली बाणान्यि क्रन्यि
रचीस प्रलाप तेयि स्निह मिशी
वदिस ज़ि शास्त गयिय् दयि म्यान्यि ।।१७४।।

हरिवंशे :
अत्रान्तरे वरपिया अनिरूद्धगेहे
वोजा निशि कल्न ना पिय चन्द-वत्र
लज्ये विषाद करणि करणि सनेहे
हेमार के अज असि केन कैव् कत्र ।।१७५।।

सचेस किष्णाम् कमे अनिरूद्ध हारी
इन्द्रादि देव सव्य क्षे यस वातवान्
तेथेसे तस्कर मयु येन चानी
वीरेन्द्र् देत्यवरु थवोस कत थान ।।१७६।।

युवतयः प्रलापं कुर्वन्ति :
विषमचयावृत्तम् :-
जन सचोष विनायका चुविन नायका
असो गजगमना ललना तले वरनायका

हरोह बसि दिवा कौशिके नता कौशके
वाळोह पाताळि मु हानि वप सरकौशके ।।१७७।।

बबळा गळो बज़् तामसे भिह तासे
पश्यो ना निजपुर दैतवरा भिह तामसि ।।१७८।।

चरक रतु केन भि बरे येन् अम्बरे
बहिते पद युवत कुरे बसि गह सम्बरे ।।१७९।।

नववे गोपोह केन पिया मुये पिया
अतिविरह पलापे यथा गण्यापिया ।।१८०।।

वसन्ततिलकम् :
बक्के किशु पियातन वसूय् सुवानो
बबके पर्शस विरचुय् गन्ये सदाय्
बक्केस वीरगते बज़् दिवा चि ज़ानो
बक्के सटोह के गनु रजनी हाणाय ।।१८१।।

चन्दे विना यखेत् नभ तारा बसितय पक्ष निवसिन बहुरेन्
वप् ददोह तस् विन् सरनारा हे वनिता पिया दुक्ख मरेन् ।।१८२।।

पुञ्चरेत् सदिशु कच वनेस
बसिते क्रिन ज़न तेमा चटेन्
वेदेत् अनि्रुद्धानेस शयानस
हे वनिता पिया दु:ख मरेन् ।।१८३।।

वदन रजनो पंकजसर फुळिते । तत् हाण नयनु जला पूरेण
रेण् मिशे पद् दप्पन ळळिते हे वनिता पिया दुक्ख मरेन् ।।१८४।।

हार लबु बौसर्यक नाळा
पणि सहिवा ज़न तेन् चट्टेन

१८३-८४. हस्तलेख में 'वनिता' के स्थान पर 'वनता' लिखा है।

प>बरारान्या जुवलमाला
हे वनिता पिया दुक्ख मरेन् ।।१८५।।

फुनाह पुनाह रयूरेत त लसन्या
कर पट् परेत् पलाप रचेन्
वसन चयेत उरहान नन्या
हे वनिता पिया दुक्ख मरेन् ।।१८६।।

गगने ज़न् कुरड़ो वदवन्या
निजनयनु शोणित मोकेन्
शीतलिह् वपना हिमवन्या
हे वनिता पिया दुक्ख मरेन् ।।१८७।।

शार्दूलवृत्तम् :-
एतो रण गरज्जेत् गिरि सो किष्ण् वातो जवे
दप्पि क्या गों च्छिद्र रात् विषमो गेहि अनिरुद्धनि
छाया पच्वा यलेत तेम तत् सव्वव निशि मज्जवे
सुतो सो अनिरुद्ध केनस् हारा दप्पीह ए कामनि ।।१८८।।

युवतय :
पदो :-
च्याने हरे सरेत् नाम हरे मयूये
सो चण्डवेश महा बाधुक धर्मराय
मुच्चन हा अज असि अनिरुद्ध लयूये
गच्छि पडितस् चिवीरस ए पुरायु ।।१८६।।

वैशंपायन :
चर्यावृत्तम :-
वत सण तेन किष्णो सनाह् भेरी वज्जावू

शब्द शुनेत् सकलु गना निशि निद्र तरावू ।।१६०।।

द्राय अनेक् गुहु क्ष णि हरि यादव काते
वोर गन्धर्व महारणि क्रिष्णास पूर्वाते ।।१६१।।

उपविष्टे सदसि तदा क्षमेत हरिनाथस्
क्षामे पदे यो यस् वदा प्रच्छन् परमाथस् ।।१६२।।

पुज्जेत वीरवरान् तदा अलाह गौ कोपे
क्षिफन् ते अति उश्वास सदा उषि आनुन गोपे ।।१६३।।

तुष्णी कित् सकले तदिनि वसे वीरेश
जानु क्षिपेतु विपृत वदि विन्नत सुविशेष् ।।१६४।।

क्यात् चिवह कृदि हरे च्छोनेत् उश्वास्
क्षण् क्षण् पुरुषेन्द लरे सुर तासुर सास्स ।।१६५।।

बलविरे यादव पुरि सव्वव क्ष ध्याने
प्रेतराट् मयूये लरि पश्येत जल्वाने ।।१६७।।

ध्याने पसादे सुरपते ति दिवि सुख पावी
चिन्त वये निवसमते रिपुकुल कम्पावी ।।१६८।।

सामु शोक महानवा उदर असि हेलि
चिन्त वसि कृदयि कवा वक्वन् सबेलि ।।१६९।।

---

१६०. `हरिवंश` में कृष्ण की `सन्नाह भेरी` का उल्लेख है, जबकि हस्तलेख में `फ्नाह` लिखा है। संदर्भ में `फ्नाह` उचित नहीं प्रतीत होता, अत: उसे संशोधित करके `सनाह` कर दिया गया है।

किष्ण :

मालिनीवृत्तम् :-

शुनेव् रछेत् रोमा सब् यादव दप्पा
कृदयि वर्सि यं चिन्त कष्टु महा मि
तुस्सि सह वोरान् अज् वत्थोस दप्पा
पिथिवु सकलरूपु क्लेव मन्नेह पामि ।।२००।।

धदो :-

सुचो रजनी वनितन् निरशा
नेव् कंनस कडेत् अनिरुद्ध
चिन्ते ते दाण दाण अवें विमरशा
मि निमिषस् छि स ममवान् बुद ।।२०१।।

स्रग्धरावृत्तम् :-

अग्रे साले यमाने अहुक निप् महा पव नेयाव क्रूरी
पाने प्रद्युम्न चोडो तेथेय ति अवले शम्बरे बीरमायि
मारे मि तेम् चक्का अनेम् नुम पुरा अज्ज कंनस दूरो
लज्ज लेवेत् मस्मा शिरस् मि अहि लत् गोयिंगिलायि ।।२०२।।

वसन्ततिलकम् :-

मारान् जानेत् रणि सो भि गछि कन्ती
किष्णो वदो सहित सोहित बान्धवान् ।

---

२००. हस्तलेख में `वीराक्` और `रूपु` दिया है किन्तु `वीरों का` के अर्थ का
घोतन उससे नहीं होता और `रूपु क्लेव` अर्थात् `क्लीवरूप` का कोई अर्थ
नहीं । हरिवंश पुराण (१०६।२७) में लिखा है -

अनिरुद्धे हृते वीरे पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ।
अशक्तानिव मन्यते सर्वान्स्मान्सबान्धवान् ।।

२०२. .. "हरिवंश" में 'साल्वासुर' द्वारा आहुक के अपहरण की बात लिखी है
अतः यहाँ 'माले' के स्थान पर 'साले' पाठ कर दिया गया।

दप्पि उत्थित तदि सात्यिक बुद्धिवन्तौ
देवानिरुद्धस गवारेन् किञ्च थान् ॥२०३॥

पञ्चपाजावृत्तम् :-
किष्ण वदि आहकस् तत्क्षण
वेदोण अनिरुद्धस यादवगण्
स्वज्जन् गछ्रु जवे
नम् घर् छित् उपवन छाडेत् कित नवे ॥२०४॥

मेर मलय मन्दर रेवति गिर कृष्णवन्त ।
ता विन्ध्य,महाधुर् , वैजयन्त उचितौ
सब् बहिहृ ता अन्तर ग्वारेत गछ्रु छितौ ॥२०५॥

शुनेत् तुंगसहस्त्रन् कत्थे
किञ्च रथान चडे समत्थे
यादव वीर गणौ
बहु पाताल वत्थे
किञ्च ति गय गगने ॥२०६॥

अतृष्ण् सेनापते अनिधिष्टे
किष्ण विरचेन वयने मिष्टे
विन्नत् तत समयि

---

२०३. हस्तलेख में मूल से 'सात्विक' लिखा है।
~~२०२. हरिवंश में 'साल्वासुर' द्वारा आहुक के अपहरण की बात लिखी है, अतः यहां 'मालें' के स्थान पर 'साल्वें' पाठ कर दिया गया।~~
२०६. हस्तलेख में 'अनिविष्टे' दिया है, किन्तु हरिवंश पुराण (१०६।४६) में 'अनाधृष्टि' दिया है जिसका 'अनिधिष्टे' होना ही संभव है।

मारेत अतिष्ठे
दानव बुत् अदयि ।।२०७।।

सोभ् साल्व् असिलोम पुलोमा
नरक निसुन्द ता कंस दरोमा
अन्य गण् जन काते
सुरहेते करोमा नेह चिनेत साते ।।२०८।।

अनोत पारिजात दिवा शक्कस
तुलोय् ना समरि भिय बक्कस
एरावुत रूढ़ो
निवसि वैर तस भुज ए पद गूढ़ो ।।२०९।।

अज् अनिरूद्ध हारी सुरनाथे
अपर त त्राण ते कस्सिव नाथे ।
तिदिशे वरवीरा ज़ानह परमाथे
एय बु मणि व्याना ।।२१०।।

वसन्ततिलकम् :-
भुजेत् एम किष्णो महागरूढे
हेलि सफुन् विषकोष् यलेत व्याल ।
दप्पि ज़ि देव आसन नवे जात रूढे
सदाय दुज्जन् एबाल् ।।२११।।

---

२०८. हस्तलेख में `असिलो` दिया है, किन्तु हरिवंश पुराण (१०६।४०) में स्पष्टतया `असिलोमा पुलोमा च` लिखा है। इसी भाँति हस्तलेख में आये `नरन्द` और `निसुम्भ` भी अशुद्ध हैं। हरिवंश पुराण (१०६।४०) में `नरक` और `निसुन्द` पाठ `निसुन्दनरको हर्ता` लिखा है अत: यहाँ भी `नरक` और `निसुन्द` पाठ कर दिया गया।

२०९. हस्तलेख में 'निवसि वैरी तस' अर्थात् उसके मन में वैरी निवास करता है, पाठ लिखा है, जो अर्थ और छन्द दोनों दृष्टियों से अनुपयुक्त है।

किष्णानि पद श्रुनैत कुरे
मधुर गिरि चतुरौ उत्थैत्
निगदौ तेन रसायु अक्रूरे
जानु त्रिपेत् धरणी रूष हेत ।।२१२।।

अक्रूर :
इन्दानौ र कार्य गोविन्दा
ते जन् मानौ त्रा‍ौ अशेष
सानौ यौ निवसि बु विन्दा
कार्य ते शक्कस निरि सन्देश ।।२१३।।

विन्दारकु हेते नरलोकस
वितरौ वसि सहसा नर जन्म
दानव मुत् हरे ना भासौ तस
पियाव टञ्ज कुसौ एह् कम्म् ।।२१४।।

शार्दूलवृत्तम् :-
कृष्ण :
देवु, सिद्ध, रिषु , क्षात्यु ना असरु, यक्षु, पिशाचगनु ,
गान्धर्वु एमत्य सव्वव मुख ना नवे केनि पुरा
क्षारौ मि अनिरूद्ध दैत्यवनति केनस पुण्यातनु
ताथि मुत विदग्ध माथि कुशज्यै सन्देह नासौ गरा ।।२१५।।

वैशम्पायन :
आकन्नैत् सौ वाक्य् किष्ण वदना सूक्ष्मी महामाधवै
लग्गै मुत् सूत मागधैं गिरि साटोप तै शंसनि
वाते यादव सव्व् व्क्राठेत् दिक्षु शूरेन्द उन्दा ड्रुरे
मिष्टे वन्देत सामूस पुरि गाहेत् मौचु मनि ।।२१६।।

यादव:

प्रहर्षिणीवृत्तम् :-

हे साम् अचल अरण्य मुत् च्छाडे
ह्रद् कूरे उपवन ति महाशोभाले ।
सो दिट्ठो केनिव ना वीरे नेहा गाडे
उयं रोमाह कलों पबात् गोपो बाले ।।२१७।।

वैशम्पायन:

तैमना ए वदना अकेस् अक् उन्दा
गो क्या ते अज़ विषमोय वाद् राते ।
वीरेन्दु नयन भरेह एक अन्दा
पुर केश अधर दलेह दन्तघाते ।।२१८।।

वसन्ततिलकम् :-

वातो पमात् हरिनाथ पुरिय कज्जे
धीरू सा रात् तत् काल गयि समत्
ते शंखवाद जय शब्द अनेक वज्जे
गोविन्द जीवन वशो निल्ये महत् ।।२१६।।

पूरो प्रकाश उदयो दिननाथ वातो
तचोयु नरूद् कृषे सदसि हसेत्
किष्णो उत्थेत मधुपर्क रचीस स्याती
वासेस वसुन् सितो सरसे वदीय ।।२२०।।

नारद:

दुक्कटिका :-

चिन्तह क्यात् मनि एह किष्णा
निकटि सकले यादव शित्
वीरवरा मुर्जु सदिशना
कलोव गयियु वरकुलिजित् ।।२२१।।

बाणस् दुहित् सभग् उष नामू
चित्रलेख स्वज्ञ् तेयि रात्
न्यावोनुय अनिरूद्ध चि़ सामू
हत्या शोणितापुर अकमात ।।२२२।।

रट्ठोक वर कामुक उषि निश्शा
बसरू मिलेत ता क्योहस युद्ध
हेनन् ते कोटिलता ए विमश्शा
कोनेय ना गने फ़ेश गरुद्ध ।।२२३।।

द्राव् अदा बाणासुर पाने
तुलो सना वर रथस चडेत
निधाने
माय् रचुनस पुनाह मियाने
च्छोनेन चतुरो सर्पवलेत् ।।२२४।।

पुय योपच बडेस् ता शक्कस्
बाणस ता अनिरूद्धस सोय्
युद्ध महा विषमोय चक्कस्
बात्र तापच जये जय होय ।।२२५।।

एते श्रुनेत् चरित्र् कृषि वदना
कृष्णास् हर्ष तेज चड्डिव ।
दर्पोउयोस् दिनपत् वदना
वीरवरस
वीरवरस्तस् रोम खड्डिव ।।२२६।।

बाज रचुन निज यादव सेनि
कुसुम च्छोनोखिस निकटो एत
शब्द गने लगे वज्जेनि
पटा नंगाहु करणस् गीत ।।२२७।।

नारद:

वैनतेय् चतुरो सर सामु
दाणेय यो शाणितापुर नैयिय
काह सास्स् योजनस कामु
पक्कैत् चि करणी कियिय् ।।२२८।।

स्मरोन् ता आव गरुड बलविचो
किष्णस् निकटी हर्षे स्थान
रूप विशेष गोविन्द शिते
शुनेत् ता पाप् शमिन् वीरान् ।।२२६।।

स्रग्धरावृत्तम् :-
दिट्ठोह सो किष्ण देहा तत् दाण् असितो
केशधरेत बन्धा ।
श्रीवत्सांगे सुशानो चतुरभुज महार्वंगुलिरत्नवञ्जा
वत्रा ज़न् सूर्य सास्से क्ष्य ज़न् विमज्ये तृष
तनो भुत उन्दा
सिद्दो सिंहास्य कूरो बहुबल समरि वस

पुञ्जते सञ्जा ।।२३०।।

मालिनीवृत्तम् :-
गरुडस तत् कालि किष्ण सत्यो महर्षी
फुनाह ति सो हलायुध् वीर प्रद्युम्न पता ।
नुत पठवन वेदा पारगु पुष्प वर्षं
पुनिवर बहु सूत मागदु शुद्धचित्ता ।।२३१।।

---

२३१. हस्तलेख में अंतिम चरण के अंतिम शब्द के स्थान पर 'अवश्य' लिखा है, किन्तु अर्थ की दृष्टि से 'अदृश्य' ठीक है ।

[कृपया इस पाद-टिप्पणी को पृ० ३६१ के नीचे पढ़ें]

पदो :-

दप्पो हरे असुर बाण महागरन्दो
मारान् वज़ कटके सह ब् अवश्य
उद्योग क्योन तदि नाद गरज्ज्
वज्जि आकाश मार्ग सहसा गो सो अदृश्य ।।२३२।।

यलि सो अनिरूद्ध महावीर्
वसो उषि निकटि विशेष
उरग्यू वलो सकलो तत् अवसर
शरणि गो दिवे हरि केश् ।।२३३।।

नरकटूकावृत्तम् :-
अनिरूद्ध:
दुर्गाभगवती स्तुतिकरोति
मुनिवर सिद्ध देवत् चि पूज़न् नुति कुसुमे
निवसिह सर्वदेहा माय मंग महादुरगे
हरिह निशेष म[ ]या विशेष दयि कुसमे
कर जनिने प्रसाद फणिबद्धेस मि दुरगे ।।२३४।।

जय जय चण्डतेजवदने वरसिंहरथे
दलेत सुम्भ् निसुम्भ महिषासुर सह वरगे
जलेय करान् अष्टादशायुध शैलरथे
कर जनिने प्रसाद् फणिबद्धेस मि दुरगे ।।२३५।।

ॐ गिरिराजनन्दन सरस्वत गौर् महा
तारिण भद्रकाल क्षिति पाताल ता सुरगे ।
निवसह वुय सिद्धराम शारद अक्क महा
कर जनिने प्रसाद् फाणिबद्धेस मि दुरगे ।।२३६।।

---

२३३. छन्द के तीसरे चरण में हस्तलेख में 'तस' दिया है जो अर्थ की दृष्टि से ठीक नहीं अत: 'तत्' कर दिया गया जो उपयुक्त अर्थ देता है ।

विधि हर इन्द चन्द रवि रुद्र समुद्रम् नै
किन्नर यक्ष गन्धर ते पूज़न च नरेंगे ।
नरपत राजराज गण अश्विन देत्य गने
कर जनिने प्रसाद फणिबद्देस मि दुरगे ।।२३७।।

मालिनीवृत्तम् :-
विदुर सदिशो यो मि पञ्जरो सर्पकिवी
निवसिस वप कुरो मु महा कष्ट माते
सरेत युम् तु इचि उंय मरा चि ए मवी
भयस जय चू देवा एव दुर्गे मि साते ।।२३८।।

तत: प्रविशति दुर्गा :-
देव्युवाच :
बास बास तनया अनिरुद्धा
वाचूस मु पाणो बज़ इती
रक्षा तु वतिनैहे महायुद्धा
विषमो कम्प फण्यु चि दिती ।।२३९।।

वैशम्पायन :
वसन्ततिलकम् :-
दुर्गि वदा निज करे बनिरुद्ध देहा
सो सम्पन्नो कोचु कठिनी शिथिलो रचोन्
मञ्चु नमोस् कित अञ्ज़ल ति सनेहा
माते मु लासवोथ दास दयि वरोन ।।२४०।।

श्रीभवानी :
करहाय च्वोट्ठ बनिरुद्धसुता निमेषा
दिव्यांगनि बज़ उथि सह चि क्षणोय
मारि वदा वधु कुदेत्यस मुत केशा

भुजेत् शङ्ख धरे एय् यदा सो एय् ।।२४१।।

वैशम्पायन :

शार्दूलवृत्तं :-

भेरी, तूर्य, मिर्दंग, वेन, कलहा
काञ्छान रक्क दिक्के बते जज्जिर
दण्डिमागण गणो लुग्गे महा वज्जनि
आशीर्वाद रचन विप्र कुशले किष्णास
थिष्णाधिके शब्द गोत् पठन्द
गायन् पुरि दारेक् शोभु ध्वनि ।।२४२।।

वसन्ततिलकम् :-

अत्रान्तरे सह कृष वर किष्णा भट्टे
सोमार्क शक्क सदिशो विरचीन् रूप ।
क्यो शोर्ष सास्स भुज् अष्ट महा दरट्टे
सत्थो सुपन्नस नमेत अनेके रूप् ।।२४३।।

वेतालो :

शंख चक्र धनुचाप् केशवे
वामिधरेन करान् त्रह्रे
बाण् चम्म् गद खग्ग् केशवे ।
वैरि संग एम् दलूनि धरे ।।२४४।।

राम भुत संगराम यो करि
जानि भिय कयलास् राजना ।
विष्णु पुत्र श्रियि शियि यो करि
भुतरात स कज्जे ह राणा ।।२४५।।

कृष्ण :

वैनतेयस् चढेत दुज्जने
हेलि गच्छो सो शत्रु मारणि
रट्टो येन् अनिरुद्ध दुज्जने
तुलि बाण् दितिपुत्र मारणि ।।२४६।।

वैशम्पायन :

ए शुनेत विनये तदाश्रये
सर्परस्ते दुज्जने चढे ।
पुष्प वर्षुन सुरु नभाश्रये
दो वीरविन्द तत् आहवि चढे ।।२४७।।

लग्गो ताक्ष अतिवेगे पक्कनि
पक्षवाव बहु शेल ति फिरे
सिद्ध चारण नु उन्द अध्वनि
काह् योजन् सहस्र सञ्चरे ।।२४८।।

राम :

दुक्कटिका :-

गय असि किस् तय गोविन्दा
सकले काञ्चनवन्ने देह् ।
मेरु निकुट दो ए बु विन्दा
वन नु क्या गो हर सन्देह ।।२४९।।

श्री भगवानुवाच :

वाते शोणितापुर ए निश्शी
वाको आहवनीय हुताश ।
यो अत् संरक्षक मच मिश्शी
उय् असि लग्गो संकाश ।।२५०।।

राम:

वाते असे यिद् अग्नस निकट्टो
अज़् निज ररम् शमू सहसाय्
अचव का अन्धर पा ो एह विकट्टो
बुद्धि गुण कि्च कर उपाय ।।२५१।।

श्री भगवान:

कात्य वसिय एह अल्पो रामा
क्यात भ्यु लग्गोय इत काल ।
बाण जिनव भवलो संग्रामा
गरूडा च्छ्रिव तू अग्न विशाल ।।२५२।।

वैशम्पायन :

च्यित् जवा सो गंग सपुन्ने
च्छ्रिवोन अग्न एतो बल तस् ।
तिज्जुन् तिजगि फारन् अति पन्ने
राम ता काम ता श्रीपिय् यस् ।।२५३।।

तत् पाण दहुन शमुरेत घोरी
ज़ाव गरुड् तेम् तिज्जन् शित
शोणितापुर अन्धर अति पूरी
पका पवुन विरेचोन् चित् ।।२५४।।

वासे द्वारपाल तति क्रूरे
रुद्राणी अनुचर महा अग्न
कलेत तेयु आयुध् सञ्चरे
वने तेम् अभिमानी अमग्न ।।२५५।।

---

२९६. हस्त-लेख में 'कुसु', 'निष्ठुर' और 'कल्पाशुय' दिया है किन्तु हरिवंश में अग्नियों के नाम 'कुसुम', पिठुर और 'कल्माश्रय' दिया है अत: उसी के अनुसार पाठ में संशोधन कर लिया गया ।

[कृपया इस पाद-टिप्पणी को 360. के नीचे पढ़ें]

कुसुम दलुन् पिठुर कल्माशुय
तफुन सहित सुधाकर पञ्च
स्वर्ण अगाध मराज त्रुप पंगुय
सासह स्वाहोकार ए पञ्च् ।।२५६।।

ज्योतिष्टोम् विभाग जु हुतवह्
वषट्कार वसे तथ् थान्
अंगिरसे सहित त्रि ता दह
किष्ण् कलेत् ता सत्थे रथान् ।।२५७।।

अग्न वदान नुम कव आय हवी
तिज्जन् गरुडस् सस्सेत कित
नानारूप् ~~धरेत्~~ धरेत मयविची
परशयेत् रविजस मन्देय चिव ।।२५८।।

हरिणीवृत्तम् :-
समर चतुर आतो किष्णास् ते अग्न अगि तदा
धरेत विषमे चक्रिल कूरि नानास्त्र अस्थिबले
कलेत् किषणो वीरे ख्यो ए वाक्य दपो अदा
विचरे सुम्यु मु अज्ज पीरी मुज्जे एते जले ।।२५९।।

मालिनीवृत्तं ।।
अत् दा ण् तम् मज्जा अंगिरे त्राण विचे
किष्णास जलवानो शूल लायोन् कांधे
रस पचे स्वानो अधचन्द्रे पविचे
परम शरु सो कोदो हेलिमाते पमोदे ।।२६०।।

---

२६०. हरिवंश पुराण (११०।३०- पु० ल० वैद्य द्वारा सम्पादित संस्करण) के अनुसार अंगिरस कृष्ण पर अर्धचन्द्राकार बाण चलाता है - 'अर्धचन्द्रैस्तथा तीक्ष्णैर्यमान्तकनिभैर्युधि' , अत: हस्तलेख के 'अवचन्दे' को संशोधित करके 'अधचन्दे' कर दिया गया ।

पुनह फिरेत किष्णो स्थान वणास्त्रालायो
यम ज़न समवानो अंगिरे दीप्त दिट्ठो
तस दुरित हुताशस वश वेधीन बलायो
पाणेय् सो धरणीतल पिव् ता.गुव् निट्ठो ।।२६१।।

कलीह बसित अग्न्यु शोणितापुरू यिल्ले
चयेत् रथ गरुडे वस्त्र अत्था पहाते ।
येम पाणस् ना सल्ले बाह तिल्ले ति चल्ले
बडितनयस् निरशो कम्पवाने वाते ।।२६२।।

वसन्ततिलकम् :-
किष्णो तदा जगि गडे तेम् वल्लवाने
परयेत् वायीन् विशेष् शंख
जानो शशाङ्क महामेघ समीप पाने
भुजेत दानव कुलि तद यूह शंख ।।२६३।।

लग्गी भयु बुनेत् शंख सो दैत्यैसनि
वीरान शोणितापुरू तत काल कष्टो
दैतेन्द्र बाण् निजलोकस् आत्र देनि
मेरी
भेरी सहनावान् पा ी शब्द मिष्टो ।।२६४।।

वचलावृत्तम् :-
बुनेत् रण् असुरगण् गयु अगण् रण दड़े
निपसदन पद वदन् नगिन मन् पाण चला
अर् मरण सर करन् तेम् धरण् नर मड़े
कडेत छिन् शरद दिन् दहन छिन् असिबला ।।२६५।।

असित पट अति सुमद दरेत वप रधि रहे

---

२६२. संदर्भ को ध्यान में रखते हुए 'शोणितापुरू' ही उचित प्रतीत होता है न कि 'शोणितापूर्न' जैसा कि हस्तलेख में लिखा है।

कुटिल पत् मुख विकट येम् भिय कट करिण ते ।
कठिन घट रविज भट्ट फिरन जन् नट वहे
चट्ठल पट् तेम् विकट खटन भट् नाबीजुते ।।२६६।।

गत असद् रथ विरद यदन पद् अतिबले
मुसुल गद् फार विरद भरन कर शर घने
वदन वद् वसिह वद् सहि वसुध तेन कले
गरलनद जन् शरद् बहि अबर् गं गने ।।२६७।।

नयन चल तेन् सबल जलन तत् थल दले
जन् अचल गन् अचल वहेत गल वप दले ।
बसन् बल् उम शकल सुख सफल शस्खले
रण कमल अतिविमल रहेत थिय कुल दड़े ।।२६८।।

हय करिण् हय करिण् येम बडिन् नभ जबे
कम् घरिण अस हरिण तेम बडिन जन पड़े
पर धुरिन कर भरिन ध्वज् जुतन नव-नवे
रण गुमिन गण् समिन् कलनि तत् दिन चड़े ।।२६९।।

शार्दूलवृत्तं :-
वाते किष्ण समीपे युद्ध करणि ते दैत्य क्रोधे घने
घोरे शैल यखेत मेघ वलिते नानास्त्र जाने तदा
गण्डे शूल किपान मुद्गर महानाराच ति जलने
क्रूरे क्रुध् ता चक्र चाप् शर ते दरेत् पाणि सदा ।।२७०।।

शितो पाणि कलेत किषणो आग्नेयो अस्त्रराजा
लज्जा हेलि जलनि ककुभा घोर कल्पावसाने
रट्ठो रामे रणस कुशलो भुत् हा राज राजा
रमो साते रमैन् मु कर युद्ध सामू विधाने ।।२७१।।

वरिश अग्रे रणक्षण् धुरो वैनितेया तू वामे
मि प्रद्युम्ना जय भुव किषणा दक्षिणे रक्षनाथ ।
युद्धा कष्टे वसन् समदे भुत दैतेय यामे
क्षा मि रोमाह समर् कृदया गज् आनन्द क्याथ ।।२७२।।

शार्दूलं :-
एतो दप्पेत् रौहिण्णेय समरे सो दैत्यसेनि मिलो
हैलि धारोन् रौद्ररूप वदनि जानो तैयू यम् नवो
असि लांगुल कित् कष्ठस महाते दैत्य् कूरे बले
मारि बट्ट्ट दिपेत् भुत् सुमुखे एकम्प लग्गो ववो ।।२७३।।

प्रद्युम्न शरजाल दिच चतुरे मारेन काते रणि
तुण्डाग्रे नख पक्षपाह्न गरुडै छिवेन् कोटि मिश्शा
अत्या वायेन् शंख बहुधा सो किष्णा पाने हनि
लग्गी लाहेत पूर्व देव् सकले नष्ट ति शिष्ट रक्षा ।।२७४।।

वच्छा रचनज़ू ते रोमस तदा घोरे महा आहवे
लिच्चे गे अनेक् एरेत् जवे यासेत लज्जा सने
शोर्षू टिंग रचेह भुत सबलो चौर लुस्ती नवे
आकाश सुर कामिन्यु तेन शिरि सत्पुष्प वर्ष गने ।।२७५।।

चयावृत्तं :-
तत अवसर ज्वर दुम्मदो करणि रण चाव
धारे त्रिशिर् त्रिपदो यस जगिदि क्षाव ।।२७६।।

यो स्वन् मेघसहस्त्रसे सो किसोन् वानि
कव रचोन् अति उश्वसे जम्ये तत् धानि ।।२७७।।

---

२७२. हस्तलेख में "वग्ने" दिया गया है जो संदर्भ में कोई अर्थ नहीं रखता ।

जानीह निद्रि घुर्णीतो मुकुलेकृत नेत्र
भ्रम करवान् वदना छितो निवसिस एह वैत्र ।।२७८।।

सिद्धो रोम् थरेत् तदि उरवास पि पेय
हसेत पुनाह् हलधर वदि इह क्यात् वरीय ।।२७९।।

दिट्ठोस सदृशो कोऽच ना संसार भिय्
निगदिस एह युद्धस पाणा वज् मित्य वसिय् ।।२८०।।

यान रचीन् मुसुलायुधे तुमुलस तत् मज्ज्
ताव ज्वरै भस्मायुधे पहरीन् उरि मज्ज् ।।२८१।।

न हलधर पिव् अमूल ज़न् संगामस मज्ज्
भस्मलहर तयू गने भेरस तत् मज्ज ।।२८२।।

भेरशिरा भस्मा तवा भूतल पिव् शंग
नाद धनो वज्जे भवा वभ्यित थी भिंग ।।२८३।।

रौहिणेय् दर्प्प गिरि दद्वोस गोविन्दो
जुव मि इत अवसर निरि चन्दुल निजविन्द ।।२८४।।

स्वज्जीन् इक कं केशिवे विरचेन् नवरूपे
मुज्जेत एम् पद् केशिवे गल वलीन् सुरूपे ।।२८५।।

कहोक्ड्यावृत्तम् :-
लासोन अस तत दाण् तस रौमे
वलेत् गला तेन केशिवनाथे ।
वदिस रणे महाभंग हरीमे
स्वज्जीय एह् यस् के शिवनाथे ।।२८६।।

श्रीभगवान :-
उलु ज्वरा साते मि समरस्

शाव तु शव विशेष निजान्ये ।
मिलव् त्ता णस् उयं दुजने समरस
किन्च ति गत् च्याने परजानी ।।२८७।।

एत् ज्वरे किष्णस् द्वय मुष्टि
म्सुन् त्ति पोनस् वतिजलवानी ।
त्ता णस् जली नारायण कष्टि
समुय रणि मन् गो भमवानी ।।२८८।।

वदा पहारोण् मुष्टि तिय किष णस्
त्ति पी रणि ज्वरस गोविन्दे ।
सुमनस् बबली निशाचर दिशनस्
नारपहार निरवान् तेयु विन्दे ।।२८९।।

तेयु
पुरुष [illegible] वरू तेयु युद्धस महावो
विरवोह ता घर अम्बर नट्टो
ताहेत ज्वर् रटोन तय कवो
गच्छ किष णो वदोस गहट्टो ।।२९०।।

फुनह् ज्वरे रट्टो वप् मायि
नारायणो जानो गो वस्ति ।
चयोन् भुपु च्छटेत हरशायि
शाव फिरेत् तस कृदय् सुवस्ति ।।२९१।।

स्रग्धरावृत्तम् :-
कम्पो सो किष्ण् तिलि गो त्ता ण् सलितो पिव् भूमि उदावो
सन्तापे भुत् जिम्भि कृदया तेम् ज्वरे आवशूरान् कष्टे
देहा रोमांच बोले उयन् तस महा उश्वसु थान् पातो
निदि सो नेत्र् कम्प्प समर समयु सो वम्बरा देव नष्टे ।।२९२।।

२९२. हस्तलेख में लिपिकार की भूल से 'रोमाँस' लिखा मिलता है।

किष्णो ध्यायेत उन्दा ज्वर् अतिविषमो वैष्णवो उप्पदावो
कढो च्छाडेत देहे ज्वर तेन् पथमो शंकरानो मुहुवे ।
दिट्ठो सो किष्ण पाणि हनेत् तत् पाणि भूतले चक्खि पावो
उच्चारूवान् व्योमा ज्वर एहु किष्णा मार मा मुज्ज एतो ।।२६३।।

च्छोनो मुज्जेत् अत्था ज्वर् एह किष्णो सो वदि मुज्ज देवा
ह यो चि उप्पदावो ज्वर अति कठिनो वैष्णवो कामवत्रा ।
आसा च्याने पसादे कौनोय बुवि दास मु काय सेवा
दप्पि गोविन्द हल्लु अदिश्यू गमु ज्वर् वैष्णवा तू पवित्रा ।।२६४।।

वैष्णवो ज्वर: अदृश्य: सम्पन्न: ।
देवा मु दास् च्यानो वदिस ज्वर् नये शत्र कासतो कूरो
देता मि आय कंसार चय अजू , पभु किष्ण वदिस पाने -
ह यो च्यानो त म्यानो सरोय नर महायुद्ध दुर्जय घोरो
सो शुद्धो मर्त्यलोकि विगत ज्वर वसि ए करा मु विधाने ।।२६५।।

वसन्ततिलकम् :-
अत्रान्तरे असुरसेनि ति ते उदाते
खस्सेत तादास त लाङ्वि रोष भावे ।
शंर्दे यथा तिनस घोर हुताश वाते
पारेह शत्र शत लांगल घात रावे ।।२६६।।

मुचे रणा येम् ति किम्चू हनेस अत्था
सन्नास ल्द वति शोणित पूर्ण हाते ।
नश्यन्द अन्तक दिशि जन् तेमु अनत्था
पये पुना असर बाण समीप वाते ।।२६७।।

१. हस्तलेख में लिपिकार की भूल से 'एोर्पास' लिखा मिलता है।

बाणासुर :

शार्दुलवृचम् :-

एती कौच् ता प्रास खग्ग गद् ति नाराच् शर्पु युते
तेषु सब्बव् नामलग समर प्रिवन् कन्दि गने ।
गयु क्लीव कवा नु वज़्ज् सकले मयुये अनेक हिते
चल्ले बु समपर्क् ईश्वर पुरा ए बुव ते शोभने ।।२९८।।

थद्दो :-

दानव् किष्णस् वने तुल्व इह पछिव न ता क्यात् करी
वरुम ता सकले दूर चलों गत विमवस कन्दि पन्वाव ।।२९९।।

त्रावेत् सहस्त्रायुध रणथल मुचरेत् ते कोत्र विशेष
मयुये सकले दानव बहु बल चले पित् तदा परदेश ।।३००।।

येम् सन्धारेत शित् सदाङ्कि दित करा मंगेह येम् वस्त
हे देवा पहुह आतङ्कि बिन् पाना करि कृ कस्त ।।३०१।।

यत् क्षण् चले दानव समरा मुचे अदा सकलेव पमात्
निगदो कुम्भाण्डे तेन् अगरा बाणस् पी गुह ता जगिनाथ ।।३०२।।

शार्दुलवृचम् :-

कुंभाण्ड:
यदि शंकुर क्षो कुमार सहितो माज्ये असि मोगवि
भस्मादिसुर नागदैत्य् गण् ति मारेत लासो कुना ।
तदि किष्ण् रचेयू कुशलो युद्ध ति आहवि
बाणा दैत्यपभा चू आस विमलो सौस्थे अमन्दे पुनाह ।।३०३।।

नरकटकावृचम् ।।
तत क्षण् ते शुनैत परमेश्वर द्राव बहू

नन्दिरुद्राधि दारेत् किष्णस् सिंह ववे ।
दरानुदलेत् वोट्ठ कदयिकित् चख बहु
दि रथ् सञ्चरवान् शरदे जनू चन्द नवे ।।३०४।।

यत् दाण चन्दचूड स्वानो फलो किषणो
गो चतुरो तादास चढेत तदा समरे ।
लायोन् नाराच् ता कान् शत चन्दशिरे कठिने
पडोस् चडोस् ते कोप् वसुदेवसुतस पहरे ।।३०५।।

पर्जन्यास्त्र लायोन् महेशस नारायणो
सकल दिशुव गव् शरवर्षुन तस शिरि ।
आग्नेयो अस्त्राय अदहा कैय् कित् वयने
दिचो रुद्रे केशवस् जानो ज़ि जुव निरि ।।३०६।।

ज़लवनो बाणाव्रिवरशुन पडोह तरिन तदा
गरुडे स्यान गय तेम् नारस मञ्ज दाणो ।
फलेत ता सिंहनाद विरचोह असरु सुमदा
दज़्जेत् एम गै समरि मुत काल मने ।।३०७।।

वारुण अस्त्र लायोन् महते पुना किषणो
छ्किवोन् अस्त्राग्नेय महा दुर्जय बले ।
बद पैशाच, राक्षस, अङ्गिर रौद्रगने
दिचेन अस्त्र चौर परमेशे महासफले ।।३०८।।

पुनह वाव् वासुव ता मुकुन मौकुन ति
दि पैत् तेम् अस्त्र चौर वैकुण्ठे महा पबले ।
तेयु तैम् रुद्र अस्त्र परिहारेह त्राण् गति
लायोन् परमेशस वैष्णवास्त्र तेन जवले ।।३०९।।

गव ज़न् व्याधिताश परमेशस काल ववी
दिशने पछित चाय दितिनन्दन घोर्र मये ।
स्वेत समस्त नेत्र पिव् तामुस तेन् नवो
रूद्र ता नन्दिरूद्र तेमू जानो ज़ि गे छ्ये ।।३१०।।

सहेत महा तिलोचने ति कड्‌ढीन् बाण बरो
पिव् यद्‌ति बाग परिहारीन तस सकलो
सन्दघ कार्मुके वद लायीन मीन छरो
जानो ज़ि किष्ण पिव् असुर प्राण कम्प् कलो ।।३११।।

किष्णो सबुद्ध कित विजृम्भन् अस्त्र महा
लायीन नीलकण्ठस ज़ामय कित डलो
वायीन पाञ्चजन्य गुण टङ्कार क्यीन महा
हिचोह सर्व भूत मनि त्रास सोये सु कलो ।।३१२।।

शार्दूलवृत्तम् :-
अथा द्राव कुमार पार करणि पश्येत मालो दयि
सो कुम्भाण्ड विशेष धारेल रथि चकिस महा साहसि
रवघात दरेत विष्णुबाल ता प्रदुमन वद्‌ फयि
ते त्रि अग्र यछेत गे समरि सो स्कन्द यसे वसि ।।३१३।।

वसन्तम् :-
वायोवो आग्नेयो ता पर्जन्या अस्त्र चत्रे
लायीन स्कन्दस एवानेस तत् काल ।
धारेत लग्नेस न युत वप पवित्रे
दितेन बाण तेय् कोनेय् ते विशाल ।।३१४।।

तेन सर्वसुचे महा विषमी रणि कड्‌ढीन ब्रह्मशिरास्त्र पुना
कचवान् विशेष देश समी नवे वेदीह का‍न्चु विकिम मना ।।३१५।।

३१३. हस्तलेख में 'विष्णुबल' दिया है किन्तु संदर्भ में 'विष्णुबाल' अर्थात विष्णुपुत्र (प्रद्युम्न) ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

महाभूत ते पिय दिशुन दाणा
तेन् बू यिह जीवन बाश नवे ।
पुन बव्विव केशुव कलेत मना
बड बड अस्त्र तदा विकटो जवे ॥३१६॥

बदा कहुडीन चक्र महा किषणी
बहु बायुधराजन् राय् बहो
पर अस्त्र विनारेय दले दाणी
बरि बंग बर्मंग बसेय दहो ॥३१७॥

बुदिमुचि ब्रह्माशिर् अस्त्र तवा
बहु चक्र प्रकाशदीप् जनकू
दिननाथ प्रभु उदयूस जवा
कृदि शंकरपुत्रस लज्ज् गन्नू ॥३१८॥

करि दारुन् काञ्चनशव गुहे
कचवान् महोल्क यखेत गने
कल्पान्ति अग्न यथा स गवे
यच वज्जन् घण्टा जाल गणी ॥३१९॥

शिवपुत्रे सा लायून शव बला
गयि जृम्भित (कृम्भित) कित् महागगने ।
वधु कांक्षाय किष्णास बुत गला
कर रत बहास बसे बगने ॥३२०॥

---

३१९. हस्तलेख में 'मलोल्क' दिया है जो निरर्थक है । हरिवंशपुराण (११२।४३) है 'महोल्कामिव तां दीप्तां' लिखा है जिसके अनुसार यहां 'महोल्क' कर दिया गया ।

जलवान् कज्येह सुरू गगना
निगदीह ज़ि केशुव दद्धो क्षणे ।
वश युद्धस द्रायाव ना लगना
असे गच्छी कोह निराश घने ।।३२१।।

मालिनीवृत्तम् :
यत् क्षण् तेन किष्णो अच स्वान् दिट्ठ
विरचोन् तत् कालि भुत हुंकारवानि ।
बहुबल तस शक्ति रश्म गोमय निट्ठ
धरणितल स पियि क्रूरि संग्राम थानि ।।३२२।।

कर्छेत सुर समस्ते अन्तरिक्षाय तुष्टे
पुष क्षिपेत गोविन्दस कामिन्यु स्मान लादे ।
पुनाह फिरेर्तै किषणो चक्र कड्डीन कष्टे
यम ज़न समवानी गौ कुमारस नादे ।।३२३।।

यत् क्षण तेन् स्कन्दस् चक्र आनीन् सिद्धो
कर्छेस् ता म्यु लग्गी सर्व भूतान वत्रा ।
तत् क्षण आकाश दिव आयि पसिद्धो
निज तनुय सो तिष्ठा नैव पचे पवित्रा ।।३२४।।

पद्दो :-
वायोन् शंख पुनह गोविन्दै
विरचोन् सिंहनाद रणथान्
गरूडस् वहेत् महा आनन्दे
वागि गह् सा वदान जयवान ।।३२५।।

कुष्माण्ड :
उप पतिपादी वज़ु अनिरुद्धस्

दैत्यनिपा स ज़ि मुत् र मन्न
वीरवरस ता विभव गरुडस्
किष्नास विनुय करो तादन्न् ।।३२६।।

बाण :

वसन्ततिलकम् :-
दम्मि विवाह युम् मु तस अज़्ज़ पाने
वातेत् ज़ाव यो निशि ज़न् चौर हर्म् ।
करहाय नीत् बहु धीम मिछ्ने च्याने
युद्धे विना अफुल गछ़िय अस जन्म् ।।३२७।।

कुम्भाण्ड:
कुस्त्रो ता मदल्य, डिण्डिम्, शस्त्र, ढुक्कि
भेरी, मिर्दंग, शतबुद्ध मनुष्य एम ।
नन्निह ज़ात एते कुशलीय छ्नेत ढुक्कि
संस्कार भाजन ना अस्तन् एम ।।३२८।।

वैशम्पायन :
षटपदावृत्तम् :-
तत् क्षण सज्ज घरेत बाणासुर
भेरी सहस्त्र छ्नेत् शोणितापुर
किष्नास द्राव छ्हु जवे
सिंहनाद विरचेत काते पुर
आकाश वछ्यिय सकले सुर
कलेत असुर तै नव-नवे ।।३२९।।

दिट्ठो किष्ण पभे एवानी
रचेत मयूर रथि अमलानी
गो असरस् सो तस रणी

गरूडुस चडेत दिनेशुर जानी
समरसमुय निमुह जयक्रानी
जयबानी शमजल धाणी ।।३३०।।

बाण :

रह् रह् चु किष्णापि युद्धस्
जुव् हारय चि विमव गुरूडस्
सहितौ अनिरूद्धस जवा ।
वनिता गरि रणोय् निरिबुद्धस
द्वारकै ननेय मिय् सबुद्धस
वर उघान ते कस भवा ।।३३१।।

निज बान्धव द्वारेकि सरणै
शोणितापुर अन्धर गयिय ल्य्
हे है करणो तेम तदि ।
अष्टभुजो काशित नववय्
बाहु सहस्त्रस् विरचह मि धाय्
युद्ध समय् विषमि हदि ।।३३२।।

वैथ् निशा मै भुज् नुं म्याने
कोटिफल निवसन् जलवाने
नानायुध अंगद वले ।
विरचय् शास्त्र किशु अज् पाने
संग्रह अज् वातीय पापान्
विषमेस् हत धाणस् बले ।।३३३।।

---

३३१. हस्तलेख में वक्ता का निर्देश नहीं है, किन्तु अन्यत्र सब जगह उसका निर्देश रहने के कारण यहां भी कर दिया गया है।

वैशम्पायन :

शार्दूल :-

एते वाक्यसमूह किष्णास वरे बाणासुराणे कृदि
कूरे ते जलोघ सागर ज़न क्रोधे गने गुर्णिती ।
संपुन्नै गै नेत्र शौणित भरै कल्पावसाने तदि
जानै सूर्य यबेत् मुच तदि ते तिलोक मयूयेमिती ।।३३४।।

भगवानुवाच:

तनुमध्यावृत्तं :-

बाणासंग्रामि थिक्कन
ना तैम शूर
जिन उर्य तू पुना मि
विरचेत रण कूर् ।।३३५।।

दप्पेत खिज वाचि
ज़िनहि हद् लोक्
बुछ्यि् सो कवा चि़
कृदयि रणशोक् ।।३३६।।

वैशम्पायन :

दप्पेत् ए गोविन्दे
दीप्ते शर तस
लायेन तस मरबन्धै
बाणस् मद् यस ।।३३७।।

वैदेत गय् बाणस
वाशुग बहु मम्प्
पर्यांटस पानस
वैशीय् ज़न् बम्प् ।।३३८।।

बाणो बैकुण्ठस
लायेन जलवाने
शरतात् शुभ्रकण्ठस
लग्गेस रण थाने ।।३३६।।

यो यस तेयु बारे
पट्टिटस् गद ता शूल
तोमर अतितारे
कहुह तेयु घूल ।।३४०।।

बाणो भुजसास्से
किवीन् रण तस्
किष्णास् वप आसे
अष्टय भुज् यस्स ।।३४१।।

शार्दूलं :-
लायो ब्रह्मकितोय अस्त्रवर सो बाणो दितिनन्दने
कम्पो वाव न सञ्चरे घन नभ ना किञ्च दिट्ठो तदा ।
घोरु सा शरवृष्ट पिय ककुभा न च्यावि ना नन्दने
अस्त्र क्योह हरिनाद ज़ानोह मितो गोविन्द रोमे सदा ।।३४२।।

पर्जन्यास्त्र प्रेतराट् सदिसो लायो तदा अच्युते
हेलि शान्तिव् दानवस्त्र कठिनो तामुस बल्लो क्षणा ।
शुद्दो पिव् पकाश मना देवेन्द मोहाच्युते
बाणो अस्त्र अनेक् क्रिष्णास् बले दिवेन कोपे पुन: ।।३४३।।

पदो :
परिहारे तेम अस्त्र उकिष्टे
रमारमणो तत् अवसर क्रूरे

बदा रथु दुय विरचीन कष्टे
तेन्दान्यु गरूडे ता मयूरे ।।३४४।।

शार्दूलम् :-
लग्गे अक्केस् अक्क युद्ध करणि कूरी महा दुम्मदे
तुण्डाग्र, नख, पक्ष पाद पहरू क्रोधे महा दुज्जने
चुञ्चि रटेत शीर्ष तस गरूडे दक्षीण पक्ष पदे
दिचेन पार्श्वस पट्ठ मुत बगने मयूर कम्पो रणे ।।३४५।।

मालिनीवृत्तम् :
क्षिपेत् क्षिपेत् अत्या घात देयिस बौले
तत समय मयूरस त्राण ना अंशा भूवी
अजरू अमुरू पाने दिट्ठो ते चन्द्रमौले
दितितनये समानी भूतले पिव भूवी ।।३४६।।

यत् क्षण् महादेवे बाण पिवान् दिट्ठो
अचुल यखेत भूमि स्यन्दने स्यान हंगो ।
तत् क्षण् निगदो तेन् भुत् नन्दीस् लिट्ठो
नेतस् रथु ह म्यानो देत्य अस्ति सभंगो ।।३४७।।

वसन्ततिलकम् :-
तत्या नमेत् रथु नेव सो नन्दिरूढे
वातो नमेत् निकट बाणस् तेन् शावो ।
दष्प्यस कम्प् क्षितिपालवयने समुद्रे
लद्दोय ईश्वरे रथु एह सुप्रभावो ।।३४८।।

सत्यो रथि असुर बाण सो ईश्वराणि
सो कोटिवीर निजा उन्दि सरेत विष ।
प्रत्यक्ष किष्ण् तत् वीरस कान्त जानि
श्वतोम्बरू सह शिरि तस् रक्ष सिद्ध ।।३४९।।

दैत्यो पुना स्मरेत् ब्रह्मशिरास्त्र लायो
दीप्तो कलेत बहुलोकस दाभ ।।३५०।।

८६ वाँ पत्र उपलब्ध नहीं है।

- - - - - - - - - - - - - - - टो

च्छेदोन् तस बस्त्रसे मदोत्वनो तदा लटो
निशाचरेन्द्र त्रि त्रसे ।।३५१।।

न ज़ुव शास शोणिते वपागिरीन्द्र जन् वसो
असुर सुरांगनु सिते दि पेत पुष्प ता हसो ।।३५२।।

फिरेत चक्र माधवे थारीन् बाण् मारो मि।
अधा वदी उमाधवे कुमारस्सान हारो मि ।।३५३।।

मन्दाक्रान्ता:

महादेव:

वीरा सानो शुर् विनुय माधवा आदिदेवा
नेता पवे हत दाण् महाचक्र दिव्यास्त्र रोषे ।।३५४।।

चि त्रैलोक्ये समिय पर ना कोऽच युद्धे गुणेवा
च्याने नेहे रणथल् पमा रछ ता बाण् तोषे ।।३५५।।

भगवानुवाच

सव्व् च्यानो वृष भवाहना कार्य अस्ति विशेषा
हतो पाने रचेत कु शिकि वे विना आदिदेवा
हह बाणासुर हरन ना पमा लासवो विपुये केशा
गच्छी नप्ता वसिम् भुजगु पीछितो यवि देवा ।।३५६।।

कृष्णो नमस्कारं कृत्वा रणान्निर्गत: ।।

नन्दिरुद्र :

थद्दी :

बाणा नच्च रसा भुजहीनो तुष्यिय् सिद्ध घणे विशेष

परयेत रचमव अति दीनो रचिय पसाद दयि परमेश ।।३५७।।

वैशम्पायन : ।।

स्रग्धरावृत्तम् :

बाणो भुज्जते भुजबलरहिते कातरे रचमवे

दिट्ठो सो नीलकण्ठो वदोस वर गिरि क्यात गच्छे त देम्मे ।

बाणो दप्पो महेशा अजर अमर भु सम्पज़ा शुद्ध चित्ते

श्रीकण्ठे एवमस्तु निगदोस सहसा प्राकृते पुण्यकम्मे ।।३५८।।

महेश्वर :

वैतालीवृत्तं :-

मंग भिय वर अस्र भुपाता, गच्छे क्यात् सहसा भू पाता ।।३५६।।

बाणासुर :-

येरन्द नर नाट्य साधरा, तेन् मोक्ष कर तू उमाधरा ।।३६०।।

महेश्वर :

मशोर्न मच्छू वश नम् एत पोषिते, मुक्तिथान् तेमु ज्ञेमि तोषिते ।।३६१।।

बाण :

दाह क्षामि भुजचक्क छेदना

ते निवारू हराय छेदना ।।३६२।।

ईश्वर :

ये वसियु निज दाह दानवा

ते अमियु हत काल वि जवा ।।३६३।।

---

३६१. हस्तलेख में 'नमनम' लिखा है जो शुद्ध प्रतीत नहीं होता ।

बाण :

मुह् गणेन्द महाकाल शंकरा

एह देम वर तू शंकरा ।।३६४।।

ईश्वर :

गच्छ मुह महाकाल दैत्यजा

चि मु उन्दा नवे जात दैत्यजा ।।३६५।।

बाण :

देम जुए मुज धर्मवाहना

ह विरूप सकलीय वाहना ।।३६६।।

ईश्वर :

यहो :-

मचि वरो मंगह अयुं अयं वर्

दिवेमय् सकले हत् काल ।

उयं महाकाल तू म्यानी अनुचर

हाह गणेन्द सुता शोभाल ।।३६७।।

ईश्वर : अदृश्यस्सम्पन्ना :

वसन्तं :-

अत्रान्तरे गरुडवाहन गो तवो

यचि वसेय अनिरुद्ध फणीन्द्र बद्धो ।

दिट्ठो फणीन्दु एवान् शत्र सो ताफ तवो

त्रल्ले रसातल भये नवे अक्क् रुद्धो ।।३६८।।

मालिनीवृत्तम् :-

अत् हाण् अनिरुद्ध केशवस पाद् वन्दे

किषणो पुना नाला बाल शितीन सनेहे ।

वदिस मधुर वाचि कष्ट लगीय बन्थे
निगदोस अनिरूद्धे अञ्जलि स्सान् देही ।।३६६।।

जयह तिभवन सामू कु समे प्रिय युद्धा
जिनैत असर क्राते पाद वन्देय शक्के
नुतोह तो परमेशे अज्ज् वत्रा सुबद्धा
भुजवन् बडि पुत्रस् तुय् च्छेदोथ् चक्के ।।३७०।।

दुक्कटिका :-
नारायणो दप्पो अनिरूद्धस् बड गरूडस उपि सहसाय
गच्छ्व द्वारिकापुर यत् युद्धस् आयाय् सो विरचो इत दाय ।।३७१।।

कत्थो वदा अनिरूद्ध सुपन्नस
वर सुन्दर उष् गाहेत कित ।
राम् काम ति लाडेत तैम तस्
अति हर्षे सम्पन्नोह चित ।।३७२।।

सास भुजस तस च़ट्ठेत बाणस्
सकेंलि चट्ट शित उष् विशेष ।
तिभवनयश अजेत ए पानस
गो वसुदेवतनुय निज देश ।।३७३।।

शंगोय गगने चंक्रमवानो
वारूणदिश वातो गोविन्द ।
बेलावन अन्धर चरवानो
दिट्ठोन धन्वी संग अमन्द ।।३७४।।

---

३६९. हस्तलेख में लिपिकार की भूल से अज्जलि दिया है ।
३७२. हस्तलेख में लिपिकार ने ग़लती से 'राम' के स्थान पर 'नाम' दिया है ।

ताहस वदो तदा गोविन्दे
बाणासुरा>ा देनी वस्त
स्कन्दानो पय् च्यिय यो भिन्दे
सो गच्छि वजरामुर ता पशस्त ।।३७५।।

अच्चवान हो वरुणालय बन्दर
गरुडा कर्ता को>च उपाय्
शुनेत एतो तु गव दुरन्दुर
वाव् रवेत् गोपोन् पक्षाय् ।।३७६।।

अष्टसास शत् पा>च् ति क्रूरे
द्राय रथान् करणि रण थान ।
किष्णो वदा शर तान पूरे
चला पलित मये प्रगु मान ।।३७७।।

केच ति गेयू वरुणेन्दस निरशी
हो यचि करवन् विलम् ।
सुरवनिच गन्धर्व मिरशी
देव कृष्ण सह - - - - ।।३७८।।

जलचे श्वेतच्छत्र ति निरिश
यन् शित् वसो जलोक

---

३७७. हस्तलेख में 'रथस' लिखा है किन्तु वरुण के हजारों अनुचर केवल एक रथ पर सवार कैसे हो सकते हैं, अत: उसे संशोधित करके 'रथान्' कर दिया गया है जो का०क० के व्याकरणिक रूप-रचना के अनुकूल है।

३७८. लिपिकार के प्रमाद के कारण हस्तलेख में 'सुरवनित' के स्थान पर 'सुरवनिभु' लिखा है।

कुजेत् तेम हुडु निज सुत गण भलविचे
रिष्टे गत शोक ।।३७६।।

अतिकोपे दिट्ठोन ख्वानो
चक्कधरे वायोन्निजशंख ।
शरवशुन विरचोनस जानो
वरुण देशे दद्धोस कंङ्ग ।।३८०।।

वारुण अस्त्र तदा मन्त्रावेत्
दामोदरस् लायोन कित् चक्र ।
किष्णो अदा शुद्धो मन् थावेत्
दितोन वेष्णावेस् सो अक्क ।।३८१।।

लग्गो वारुण सैन्य सो जलनि
वरुणोशे दितो भाराव ।
दद्धोस बाण् हरे विश्वलनि
चानोस युद्धस हत धाव ।।३८२।।

वसन्ततिलकम् :-
देव्, गन्धर बानेत जवे उर्य कामधेनो
कामाय् अस्त्र वरुणा करुणाय रोमा ।
सो ज़ि पुरा समुय वस्तिम बात देत्री
गच्छि ज़ुव नवे दम्मिय् ज़ात् एमा ।।३८३ ।।

मारेह इद् ता कु समे चि देवा
पुष्पे स्मान् पचिपादुह मि विधाने
अर्थं मु ध्यानेय वसा विचारय सेवा
किष्णो वदो हसेत वासे तुय पाने ।।३८४।।

शार्दूलवृत्तं :-

तत्या किष्ण् उथित् गौ चत्वरो लग्गो जवे अध्वनि
शक्कादिति दशु समान मरुत गन्धर्व सिद्ध समा ।
पिट्ठु द्वारिक दूर द्वार वलिव वायुन् शंख ध्वनि
शब्दा लोक् बुनित् द्राव सरसे आनन्दिते ते क्रमा ।।३८५।।

अग्रे अच्छरसा कुरंगनयना नच्चन्द चन्दानने
नाना गीत पठन्द् गन्धर गिरि ताल्यु सम्या शोभने ।
क्रूरो बाण् ज़िनेत आव् सुमना दप्पन्द जवो मना
शोभि तादास पिट्ठ नीलच्छाय सो गोविन्द ववो जने ।।३८६।।

यिल्ले केशुव वाव द्वारिक् रसा नप्ता स्मानो उषि
साते गाहेत् गे वर्षण पुष ते शब्द् वज्जे घने ।
तिल्ले द्वारिक वासिनु गिरि वदो नु धन्य इति तुषि
पाने माधुव सामदेव हृदि सो अस्ति वसि सज्जने ।।३८७।।

थदो :-

पति पुच्छे सब्ब देव गोविन्दे
शक्रादे तत काल विशेष्
नप्ता सह विभवे अमन्दे
बाण ज़िनेत् भिष्टो तत् देश ।।३८८।।

वसन्ततिलकम् :-

किय्यि करोह अनिरुद्धे उषि स्माने
वालांगनि सफुन साफुल गव यस्स ।

---

३८५. हस्तलेख में 'शक्काधुति' मिलता है, किन्तु सं० 'आदित्य' का कश्मीरी में 'आधुति' होना संभव नहीं अतः 'शक्कादिति' संशोधन कर लिया गया है ।

मध्ये रसे उपवने पवने विधाने
गोर्तांग शित् विनिवारोह कामत्सस्स ।।३८९।।

स्रग्धरावृत्तम् :-
कविरवतार :
श्रीज़ैनउल्लाभदीने नरपति रचिते धर्मराज्ये सुशुद्धे
ष ड्विंशे वत्सरे इह पनमेत् सरसे कृष्णबाणान युद्धे ।
देश्यो अवतारभट्टे विरचीन रमणी आस्य पश्येत् सिद्धे
बन्धा गोर्वाणि माषि अज् हरिवंशभारेतति गच्छे ।।३९०।।

इति लहरे सृगालपुरीय भट्टवतार विरचिता बाणासुर-कथा
समाप्ता । शुभमस्तु लेखक पाठकयो :
शुभमस्तु !!

(४)

हिन्दी भाषान्तर

(४)

हिन्दी भाषान्तर

(मरुदादि)
ओमुस्वस्ति। श्रीगणेश को नमस्कार हो। योगेन्द्र, इन्द्र, गण गन्धर्ववृन्द चरणों में वन्दना करके जिनको पूजा करते हैं शिव, ब्रह्मा, उपेन्द्र, चन्द्र, मुनीन्द्र, सभी ! वे नागेन्द्र वक्त्र (गणेश) तुम्हें शुभसिद्धि दें ।।१।।

आर्या :-

(जिनके) कण्ठ से सुधा-नदी प्रवाहित होती है जिसमें अनेक मणिमय काव्य-पद तिरते हैं उन राजकवियों (श्रेष्ठ कवियों) की गिरा को, तीनों भुवनों की माता, सरस्वती, को मैं प्रणाम करता हूं ।।२।।

वसन्ततिलकम्

अपने मुख से एक प्रसंग कहने को आज मुझे इच्छा है - यह काव्य-प्रबन्ध मैंने स्वयं रचा। स्वप्न में (काव्य) विहंग ने कहा मुक्त कर दो, बन्द क्यों रखते हो ।।३।।

स्वयं जैन - उल-आबिदीन के विमल राज्य के छब्बीसवें वर्ष कार्तिक के दिन सरस्वती का पूजन करके और रस (सिद्धि) के लिए बहुशास्त्रज्ञ, यशलब्ध, ज्ञान-समुद्र परमश्रेष्ठ सल्हण आचार्य को नमन करके हरिवंश (पुराण) में वर्णित बाणासुर

(कथा) को अवतार (अवतार भट्ट) ने (काव्य-बद्ध) किया ।।४-५।।

दुक्कटिका

जनमेजय :- नारायण (कृष्ण) के अनेक विशेष चरित्र आपने मुझसे कहे । उन्हें सुनकर यह सुनने की इच्छा ही रही है कि कैसे गोविन्द ने (युद्ध न मिलने के कारण) हताश बाणासुर को रण में जीता और कैसे वह (दर्प से) अन्धा जीवन-मुक्त हुआ - अब मुझे यह (वृत्तान्त) कह सुनायें ।।६-७।।

वैशम्पायन बोले -

अब एकमन होकर सुनो हे भूप, बाण और कृष्ण में महायुद्ध हुआ जिसके बाद कृष्ण ने उस असुर को (रण में) जीता । वह वृत्तान्त तुम्हें सुनाता हूं, तुम सुबुद्धिसम्पन्न हो ।।८।।

नरलोक में शोणितपुर नाम का एक नगर है - (सरोवर के) मध्य में एक कमल की भांति सुशोभित । वहां के लोग पुण्यवान् हैं, यशस्वी हैं । (इस नगर को) पाने का लोभ सुरेन्द्र को हुआ था ।।९।।

वहां बलि का पुत्र बाणासुर था । उसने अपार तपस्या की । अपनी भुजायें काटकर उसने अग्नि को अर्पित कीं, तभी करुणामय फणिहार (शिव) प्रकट हुए ।।१०।।

नाथ (शिव) बोले , कहो क्या चाहते हो ? वह बोला, हे देव, आपकी जय हो ! मुझे त्रिभुवन का अखण्ड राज्य दें । स्कन्द-सहित आप सदा सचिव की भांति कामना करने पर मेरे पास रहें । और (स्कन्द जैसा ही) आकर्षक शरीर मुझे प्राप्त हो । अब तुम तपस्या रहने दो, नाथ (शिव) बोले ।।११-१२।।

वर ग्रहण करके और जगत के स्वामी को प्रणमन करके वह दानव-नृप तत्काल पाताल जा पहुंचा । वहां उसे (शिव ने) तीनों भुवनों का राज्य दिया । असुर, नाग, देवता उसके चरणों में झुके । उस सहस्रबाहु का आकार तो देखो । कौन वह सुरवर है जो उसका प्रतिवाद करने आये - उसने सब को हत-आहत और अपमानित कर दिया ।।१३-१४।।

बहुल-वैभव की उसे प्राप्ति हुई और ऐसे में उदित हुई उसकी विशेष चरित्र-वाली उषा नाम की बेटी । उस नववय वर-सुन्दरी का रूप तीनों लोकों में अत्यधिक प्रशंसित हुआ ।।१५।।

मृगाक्षी, शशि-आनना, गजगामिनी, वक्षस्थल पर वज्रकठोर पीन-पयोधर, मयुर-पंखों जैसे केशों वाली, सुधामय अधरों वाली, वह कामिनी देवतावों के बीच लीला (क्रीड़ा) करती थी ।।१६।।

हृदय में कामना लिये एकबार बाणासुर रुद्र के पास पहुँचा । अंजलि बांध, प्रणाम करके आर्द्र-वाणी में सविनय बोला कि उसने देवतावों, (मरुदादि) गणों, गन्धर्वों को जीत लिया, उन्हें नाक-पृष्ठ (स्वर्गलोक) में रहने को विवश किया। अब युद्ध के लिए कोई आता नहीं । मैं, बर-निष्ठ, निराश हो गया हूं ।।१७-१८।।

हे स्वामी ! मेरी हज़ार भुजायें व्यर्थ हो गयीं । किसी को इस समय युद्ध के लिए भेजें - यही मेरी कामना है, इसी में मैं सुख जानता हूं । हे करुणामय, कृपा कीजिए ।।१९।।

वसन्ततिलकम् :-

बाणने श्रीकण्ठ (शिव) के चरणों पर सिर रख कर कहा - हे चन्द्रमुकुट, मेरे कारण प्रसन्न होकर आप पहले भी (मुझ पर) कृपा कर चुके हैं । मेरी ये हज़ार भुजायें वृथा राख नहीं हुईं । धन्य हूं मैं भक्त ! (पर) कैसे किसी वीरेन्द्र (से युद्ध किये) बिना मैं घर में छिपा बैठा रह सकता हूं ।।२०।।

यही :

आंखों से आनंद के आंसू बहाते हुए, पांच सौ बार अंजलि बांध कर, बार-बार मधुर वचनों से (स्तुतिकर) वह (शिव का) पूजन-करने लगा । शिव हंसे, और उसकी प्रतारणा की ।।२१।।

मालिनीवृत्तम् :-

ईश्वर - 'उठो-उठो बाण, दानवेन्द्र, सुवीर ! तुम्हारे भुजबल, कुल और

मनोकामना के अनुरूप एक युद्ध तुम्हें मिलेगा । हे रण-कुशल, महापात्र, शुद्ध-धीर, मन में तुम्हारे यह दुस्सह चिन्ता क्या है ।।`२२।।

वैशम्पायन – यह उत्तर देकर परमेश्वर चले गये । (युद्ध के लिए । महा-तृष्णावान बाणासुर प्रसन्न होकर शीघ्र वहाँ आया जहाँ ध्वज-गृह स्थित था।।२३।।

मन्दाक्रान्तावृत्तम् :-

वहाँ बैठ, हंसकर वीर श्रेष्ठ बाण बोला, `सुनो कुम्भाण्ड, सचिव,(तनिक) ठहरो, तुम्हें एक प्रिय बात सुनाता हूं ।` वह (कुम्भाण्ड) बोला , `हे देव, देखता हूं, तुम्हारा मुख आज प्रसन्न है, तो कैसे ? अवश्य श्रीकण्ठ (शिव) ने तुम्हें तीनों लोकों का अमन्द राज्य दिया है ।।२४।।

कुम्भाण्ड – `तुम्हारे भय से चतुर इन्द्र भागकर पाताल तो नहीं चला गया? या फिर हम दितिपुत्र (दानव) विष्णु के भय से मुक्त तो नहीं होंगे ?

तुम्हारे पिता बलि दानव को क्रूर कृष्ण ने पाताल में बांधकर (बन्दी बनाकर) रखा था, ऐसा तो नहीं हुआ कि परमेश्वर के वचनों की पूर्ति हुई और वह छूट कर पुन: राज्य करने आया ?

(या) जिसके शंख के निर्घोष को अत्यन्त स्निग्ध और गम्भीर ध्वनि है, समर में जिसके सामने कोई घड़ी भर भी टिक नहीं सकता उस गोविन्द को तुमने जीत लिया ।

हे दितिपुत्र ! स्कन्द ने (संभवत:) राज्य के लिये हर बात की व्यवस्था कर दी है । (या फिर) हमें शीघ्र तलवारों से देवताओं के गले काटकर उन्हें मारने का अवसर प्राप्त होगा ।

तभी, हे देव, तुमने कहा कि तुम्हें मुझे एक अत्यंत प्रिय बात कहनी है । तुम्हारी शम्भु की सेवा सफल हो गयी । तुम्हारे हृदय में हर्ष का वास है, हे सौभाग्य ! ।।२५-२६।।

स्रग्धरावृत्तम्

बाण — अरे कुम्भाण्ड, शम्भु अत्यन्त विनय के कारण आज मुझ पर बहुत प्रसन्न हुए। स्वयं युद्धाभिलाषा प्रकटकर मैंने सहसा कहा कि मुझे घोर युद्ध दीजिए। देवदेव ने सेना तो हंसकर यह शुद्ध विधान करते हुए कहा - 'बाण, तुझे शीघ्र ही युद्ध प्राप्त होगा — अब वह तनिक भी दूर नहीं है ।।३०।।

वसन्ततिलकम् :-

'जब, हे असुर भूप, तुम्हारा मयूरध्वज टूटेगा, तुम्हें महायुद्ध अवश्य प्राप्त होगा।' परमेश्वर के इतना कहने पर मैं उन्हें नमनकर तुम्हारे पास प्रसन्न पहुंच गया ।।`३१।।

यहो :

वैशम्पायन — (यह) सुनकर कुम्भाण्ड ने बाण से कहा, 'तुमने यह विनाश कहां से मांग लाया! युद्ध महादुस्सह है, अरे अपने भाग चलो। हे देव, इस प्रकार के वचन मत बोलो ।।`३२।।

नर्कुटकावृत्तम् :-

वे एक दूसरे से ये बातें कर ही रहे थे कि गरजकर बिजली गिरी और वेग से ध्वज गिर गया! धरती कांप उठी, कुल-पर्वत तक संत्रस्त हुए। भीषण रूप से हुंकारती हुई वह बिजली धरती में समा गयी ।।३३।।

उस लौह ध्वज के नीचे गिरते ही रात को उस समय बाण को एक बाण लगा। देवों के देव इन्द्र ने अत्यन्त अहितकारी वर्षा बरसाई। दैत्यपुरी में वर्षा थमने का नाम ही नहीं लेती थी ।।३४।।

सूर्य को मानो भेदती हुई उल्का धरती पर जा गिरी। सूर्य भी धरणी को पीड़ित करने लगा। इन्द्र द्वारा लाये गये वे मेघ रक्त बरसाने लगे। चैत्य-वृक्ष शत-खण्ड हो गया, लतायें छिन्न-विच्छिन्न हो गयीं ।।३५।।

उस अपर्वदिन सहसा राहु ने सूर्य को ग्रस लिया। दक्षिण-दिशा में धूमकेतु

नित्य स्थित रहने लगा । लोगों के प्राण हरने वाली आंधी रात-दिन अविच्छिन्न बहने लगी ।।३६।।

अत्यन्त काले, नीले और लाल- इन तीन मिश्रित रंगों के मण्डल ने सूर्य को उस सन्ध्या को घेर लिया, जो देखने में यम-सा आश्चर्यजनक लगता था ।।३७।।

वक्र कृत्तिका और मंगलग्रह , बाण का जन्म नक्षत्र, विषमता से धरती को पीड़ित करने लगे । एक बहुशाखायुक्त विशाल तरु गिरा और धरती काम्प उठी । प्रतिदिन (ग्रह) शान्ति के लिए दैत्य-कन्यायें और असुर उसका पूजन किया करते थे ।नृपेन्द्र बाण इन्हें कुलक्षण नहीं मानता । मदोन्मत्त होकर वह दैत्य-दानव प्रियाओं के साथ खूब मद्यपान करता है । यह अपशकुन देखकर उस सहस्रभुज के मन में तनिक आशंका भी नहीं होती ।।३८-३६।।

वसन्ततिलकम् :

तीक्ष्णबुद्धि कुम्भाण्ड मन में चिन्ता करने लगा - यह राजा तो कभी विचार ही नहीं करता । उत्पात् के लक्षणों को भी यह नहीं मानता ! (जाने) क्या होगा , इसने रण (जो) मांग लिया है ।।४०।।

परमेश्वर का वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता , उन्होंने राजा से कहा था कि युद्ध अवश्य होगा । इसने तो हमारे नाश के लिए मृत्यु का प्रबन्ध कर लिया है । विनाश के समय बुद्धि विपरीत हो जाती है । ।।४१।।

बाण आश्वस्त है कि उसके तपोबल से चन्द्रचूड़ (शिव) आराधित हैं और पास में उनके पुत्र कुमार सुसज्जित हैं । मूढ़ यह चीन्हता नहीं कि यह सब देव (शिव) हर भी सकते हैं ।।४२।।

पद्मी :-

हित की भावना से पूर्ण ये वचन सचिव ने अपने आपसे कहे । उसने सोचा कि स्वामी, राजा तो अतिशय दर्प से उन्मत्त हो गया है ।।४३।।

पञ्चमयूरावृत्तम् :-

वैशम्पायन :

एक समय को बात है कि भय को हरने वाले हर (शिव) शोणितपुर के सुन्दर-उपवन में नर-नाट्य और विलास-केलि कर रहे थे । शत-चन्द्रमाओं-सा दीप्त मुख लिए थे वे । वर-वनिताओं (अप्सराओं) के साथ सैकड़ों गन्धर्व नृप उस बेला में वहाँ उपस्थित थे ।।४४।।

वहाँ सैकड़ों उत्तम वीणाएँ बज रही थीं । मुरज, मृदंग, पटह, कलाहक आदि वाद्यन्त्रों से सरस वह स्थल पुष्पशर की वीथिका-सा लग रहा था । विधु-बन्धु पारिजात सुन्दर पुष्पों से लदा पुलक रहा था । वहाँ वे विभिन्न आमोदों में लीन थे ।।४५।।

गजगमना, शशिवदना वे अप्सरायें अत्यंत मनोहर थीं । मृगनैनी, मधुकर बेनी वे (बालायें) अलस तन नाच रही थीं और परमेश्वर (शिव) का स्तुतिगायन कर रही थीं । उन कृष्ण-केशा अप्सराओं का स्वर नूपुर-ध्वनि-सा प्रतीत होता था ।।४६।।

अरुणावसन पहने, मुख पर चन्दन का लेप किये श्वेत-कुण्डल पहने शशि शेखर को देख पुष्पमाला-सी वर-रमणी उज्ज्वल नयना चित्रलेखा ने उनके शरीर का स्पर्श किया और पुष्पशर के अनेक नाट्य किये ।।४७।।

जग-जननी (पार्वती) का दिव्य, अतिमनोहर रंजनकारी रूप उसने धारण किया, उनका-सा लीला-मुख रचा और (शिव को) नमन किया । यह देख गिरि-तनया हृदयहारी हंसी हंसीं । यह देख वररमणी चित्रलेखा भी सानंद हंस उठी ।।४८।।

वसन्ततिलकम् :

उस स्थल पर वे शम्भु के समीप सभी तुष्ट (विलासरत) थीं । उन्हें देखकर पार्वती अट्टहास कर उठीं । उनकी उस समय की शोभा अनंत पापों को नष्ट करने वाली है - देवी के सहित शिव विलास कर रहे हैं ।।४९।।

शार्दूलवृत्तम् :

वहाँ ईश्वर की देवी के संग विलास-क्रीड़ा करते हुए बाणासुर की पुत्री चंद्रवदना, हरिण-नयनी, कुमारी, सुभगा, वरांगना, अत्यंत शोभाशालिनी उषा ने देखा । भर्ता के साथ (क्रीड़ा कर रही) ये धन्य हैं, उसने (मन ही मन) कहा और ऐसी ही अभिलाषा उसे भी हुई ।।५०।।

चतुष्खण्डिका :

तभी गिरितनया ने (उसके मन की बात को) जान लिया और अति हर्ष से उसे अपने निकट बुलाकर यह हित की बात कही - उषे, तुझे भी योग्य पति मिलेगा । परमेश्वर के साथ जैसे मैं विलास-केलि कर रही हूं, वैसे ही तू भी शीघ्र ही अपने शशिवेश भर्ता के साथ रमण करेगी । अकलंक (सुन्दरी) नवयौवना उषा गिरिजा के पास जाकर क्षण भर को अपने मन में विचार करने लगी कि कब मेरे पति प्रकट होंगे । बाष्पनयन आनना भवानी ने (उसके मनोभाव को समझकर) फिर हंसकर शुभ वाणी कही - 'सुनो कल्याणि, उषे, बाले कुरंगनयनी, तुम्हारे हृदय में जो चिन्ता है, अवश्य दूर होगी । वैशाख मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को स्वप्न में जिसे देखोगी वही तुम्हारा भर्ता होगा - यह बात मैं सहज ही तुम्हें कह रही हूं । उसके बाद उन्हें नमन कर वह दानव कन्या अमृतमय आनंद में डूब गयी ।।५१-५३।।

मालिनीवृत्तम् :

उस क्षण सूर्य का वदन रक्त का-सा हो गया मानो उसने रुद्र का-सा वेश धारण किया । इसके बाद हर (शिव) गिरिजा के सहित अदृश्य हो गये । तब सभी उठकर चले गये । यह (वृत्तान्त) सुनने से पाप का अंत होता है ।।५४।।

वसन्ततिलकम्

कुछ लोग घोड़ों पर चढ़े, कुछ विमानों में शोभायमान हुए, कुछ रथों पर अपने-अपने देश अपने घरों को चले गये, कुछ प्रसन्न होकर आकाश में स्थित अपने दिव्य स्थान गये ।।५५।।

मालिनीवृत्तम् :

देवराज इन्द्र का भी इस देश में प्रवेश संभव नहीं, तब, हे सुन्दर वेशवाली बाणकन्या तू आंखों से यों आंसू क्यों बहाती है, मुझसे सद्भाव से अपना आशय कह, री सुधशोषिता ।।६३।।

उषा - क्या कहूं चित्रलेखा री, बड़ा अहित हुआ । रात को सोते में लज्जा-जनक संयोग हुआ । अपने अंतरतम का लेखा क्या प्रस्तुत करूं, मैं तो मरी ! मेरा शील चला गया, अब ये प्राण कैसे रहूं ।।६४।।

द्रुतविलम्बितम् :

रात को मुझे उस तस्कर ने लूट लिया ! मैं अबला, बाला, सुकुमारी - क्या बताऊं । स्वप्न में उसने मेरा अपमान किया, मुझे कण्ठ से लगाकर छोड़ गया ।।६५।।

उस दुर्जन ने मेरे केश-कलाप का बन्धन खोल दिया । समझ में नहीं आया वह एक था या दो । उसके द्वारा अस्त-व्यस्त होकर मेरे शरीर से कपड़े उतर गये।।६६।।

जो कुछ हुआ उसे मैं जानती हूं या तू, री प्रिय सखी ! अहित हो चुकने के बाद मैंने उस सुख देने वाले की बस झांकी भर देखी ।

किसी ने महाकुल से मेरा शील हर लिया । देखो तो प्रिय सखि, कितना रक्त बह रहा है । इस प्रकार भोगे जाने से मेरे तो प्राण निकले जा रहे हैं । जो कुछ उस समय हुआ, मेरे कुल के लिए लज्जा का विषय है ।।६७-६८।।

पिता सुनेंगे तो मानों आकाश से धरती पर जा गिरेंगे ! तीनों लोकों में प्रसिद्ध उस वीर को मैं क्या कहूंगी ? घर में अपना मुख दिखाते भी मुझे शर्म आयेगी। उचित कहती हूं सखि , मेरी बात सुन, मैं छिपकर शीघ्र ही गले में फांसी लगा लूंगी ताकि रहस्य तनिक भी प्रकट न होने पाए । यह मुझसे सहा नहीं जाता कि इस जीवन को धारण किये रहूं ।।६९-७०।।

मन्दाक्रान्तावृत्तम् :

वैशम्पायन – इतना उस प्रिय सखी हिमकर- मुखी चित्रलेखा के सामने हरिण-नयनी बाला ने सादर कहा । सती, सौभाग्यशालिनी (चित्रलेखा) ने रोती हुई उषा को वक्षस्थल से लगाते हुए कहा – अरी चन्द्रज्योत्स्ने, तू रोकर यों अपनी माँ को शोकाकुल न बना ।।७१।।

शार्दूलवृत्तम :

चित्रलेखा – री बाण-पुत्री, इतना शोक न कर, इस मनस्ताप को तू छोड़ । तूने वाणी से कहा नहीं, मन में याद नहीं किया, न कर्म में ही लाया । स्वप्न में व्रत का लोप, हे सुभगि, नहीं होता । प्राचीन शास्त्रों का यह कथन सुन । तेरा शील कलंक रहित है, उषा, तू कर्म के आधार पर शुद्ध है ।।७२।।

वही :-

हे वरलल्ना, जिसका चित्त दूषित हो वह मन में स्मरण करती है, वाणी से कहती है । पर-पुरुष को देखे बिना जिसके मानों प्राण ही निकलते हैं,– वही स्त्री दुश्शीला होती है । तब तुझे ऐसी बात की शंका क्यों है ? ।।७३।।

प्रहर्षिणीवृत्तम् :

वैशम्पायन - इतना उस बाला से शोभामयी चित्रलेखा ने कहा । सुनकर सती, शीलवती उषा ने ये वचन कहे – ' मेरे पिता बाण मेरा तो गला काट डालेंगे ।' अत्यंत कष्ट के कारण, आँखों में आँसू भर, रोती हुई वह बोली।।७४।।

चित्रलेखा - हे बाला, अचल सुता ने तुझ से कुछ काल पूर्व जो उस क्रीड़ा के समय कहा था, मन में याद तो कर– वैशाख के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को स्वप्न में जिसे देखेगी वही तेरा पति होगा ।।७५।।

वैसा अवश्य होगा, उषा री, और कुछ अनुचित नहीं होगा । जो कुछ तूने स्वप्न में देखा (पिता से) प्रसन्नतापूर्वक कह दे । हे सुकुमार अंगों वाली, तेरी प्रकृति सचमुच बड़ी कोमल है । तू इस शोक को मन से निकाल दे, इस प्रकार

प्रलाप करने से तो तू मर जायेगो ।।७६।।

वसन्ततिलकम् :

उषा – वह उत्तर मुझे याद है चित्रलेखा, जो शैलतनया (पार्वती) ने
मुझे विशेष रूप से दिया था । मेरा भय अब दूर हो गया । हाय, मैं मरी ! उस
पुरुष का रूप मुझे ठीक-से याद है ।।७७।।

शैलतनया (पार्वती) ने जैसे पति के देखने की बात कही थी, वैसा ही
स्वप्न में मैंने अंत:पुर में देखा । उस कन्त के विषय में तुझ से बताती हूं । आज
पुष्पचाप ने मुझे कैसी भरमाया , सखि ! ।।७८।।

जिसके रूप की समता के लिए राजकवि (श्रेष्ठ कवि) के पास पद्य नहीं,
वह मेरा प्रिय मेरी आंखों के सामने प्रकट हुआ था । राजकवि के पास उसके स्वर
की समता के लिए भी पद्य नहीं ! वह (मेरा) प्रिय मेरे पास कब आयेगा ?
जाओ शीघ्र उस शशिमुख को, जो मुझसे छिपा कहीं बैठा है, ढूंढ लाओ ! मुझे और
कोई वस्तु नहीं चाहिए ।।७९।।

कब आयेगा वह प्रिय मेरे पास – रतिसंग और अनंग क्रीड़ा के लिए । जो
मेरे हृदय में अमृत घट-सा प्रकट हुआ है, देवप्रियाएं तक जिसकी कामना करती हैं,
वह देव, मेरा वह प्रिय कब आयेगा मेरे पास ? ।।८०।।

जो गुण-सागर है ! जिसकी देह सिंह की-सी है । नव-भ्रमर की भांति
जो मेरे स्वप्न में आया । उसके बिना मेरी प्रकृति (देह) क्षीण हो रही है ।
वह प्रिय मेरे पास कब आयेगा ।।८१।।

वह सखा, नायक, वह विलक्षण पुरुष, चोरी से आकर रमण करने वाला,
मेरे हृदय से कभी नहीं जा सकता ! जैसे बिना किसी प्रयोजन के सूर्य निकल कर कमलिनी
को शान्त करता है, वह मेरा प्रिय मेरे पास कब आयेगा ।।८२।।

मालिनीवृत्तम् :

चित्रलेखा री, कब तू मेरे लिए कर-दण्ड का-सा कार्य करेगी (मुझे सहारा

देगी) ? कब उस हिमकर-मुख प्रिय से मेरा मिलन करा दोगी ! कैसा है मेरा भाग्य (कर्मलेख), मेरी देह मानो आरे से चिरी जा रही है । कब (प्रिय के) हिम-शीतल करों का स्पर्श मेरी इस आग को शान्त करेगा ।।८३।।

कब प्रिय के शोभनीय हाथ मेरे हाथों में पड़ेंगे, सखि ? तनिक भी अवहेलना से मैं अब गल कर उन्हीं में विलीन हो जाऊंगी ! मेरा होना ही किस काम का है यदि सदन में आज मदन (प्रिय) न हों । सुन, मैं काम-पीड़ा से उन्मत्त हो गयी हूं , मैं कुछ खाऊंगी-पिऊंगी (?) नहीं ।।८४।।

फुरी :-

जिसके हाथ और पांव प्रफुल्ल हैं । जो शोभामय सब ओर कमल ही कमल
की सृष्टि करता है । रात में भी जिसकी दृष्टि कमल ही कमल खिलाती है । उसे
जीतकर ले आ बाले ! ताकि मेरी प्रकृति सुशुद्ध हो जाये । इस शोक सागर में किसलय-
सी देह लिए हूं मैं, किसलय-सी ! अरी, वह (प्रिय) तो ऐसा कमल है कि रात
को भी मुंदता नहीं ।।८५।।

घत्तो :

सखि, मुझे पत्थर की भांति निर्जीव हुई जान । अपार शोक मेरे हृदय को
निचोड़ रहा है । जा, प्रिय को ले आ , अन्यथा तुझे शाप लगेगा मेरा ।।८६।।

तनुमध्यावृत्तं :-

चित्रलेखा — तू बड़ी आशा से रात-दिन जिसे याद करती रहती है, वह
तेरा प्रिय कहां रहता है, मैं कैसे जानूं ? जाऊं तो कहां जाऊं, उसे किस स्थान
पर ढूंढूं । उस तेरे गुणमय नायक , तेरे प्रिय को मैं किस प्रकार जान सकूंगी ?।।८७।।

तू काम के ताप से गली जा रही, और मेरी बुद्धि भ्रांत हो रही है । जिसे
तूने स्वप्न में देखा उस तेरे प्रिय को मैं कैसे पहचान सकूंगी ?

उसे मैंने आंखों के सम्मुख रमते हुए कभी देखा नहीं, कानों से, वचनों को कभी
सुना नहीं । कहो हे सखि, उस तुझे भरमाने वाले प्रिय को मैं कैसे पहचान सकूंगी?

जिसके कुल का कुछ अता-पता मुझे ज्ञात नहीं, कहो ना उसे मैं कैसे पहचान लूंगी ? जिसने यौवन-सुधा से परिपूर्ण तेरी पुष्पित देह-वल्लरी का भोग किया, उस, तेरे प्रिय को भला मैं कैसे पहचान सकूंगी । जिस वीर - कुल दीपक ने तेरे अधरों का मधु पिया, तेरे रूप का पान किया, उस तेरे प्रियतम को मैं कैसे पहचानूंगी? ।।८८-९०।।

मन्दाक्रान्ता वृत्तम्

बाले, जहाँ किसी दैत्य-दानव की गति नहीं । सिद्ध-नाग-देव-युवक भय से धराते हैं । वहाँ उस वीर ने तो चुपके से आकर तुम्हें सौभाग्य और रमण-सुख प्रदान करके बहुत कुछ किया । धन्य है वह एक-भाव-निष्ठ (पुरुष) ।।९१।।

बाण के सिर पर लात रखकर जो महावीर शोणितपुर में प्रविष्ट हुआ । जिस नगजा (पार्वती) का तू जयगान करती है उसके वर्णों की पूर्ति उस बुद्धिकुशल तीनों लोकों के वीर ने की ।।९२।।

वसन्ततिलकम् :

उषा - चित्रलेखा री, मेरे प्राणों की रक्षा कर, उस चोर को बुद्धिबल से अवश्य ढूंढ़ ला - वह चाहे मनुष्य हो, ऋषि हो या देवता ! अन्यथा हे प्यारी (सखी), देख, मैं बाला मर जाऊंगी ।।९३।।

दुधकटिका :

हे कामिनी, उषे , बाले, सुकुमारि, वररमणी , मृगनयनी, कम्बुगले शशिवदने जिसने तेरी काम से यह दशा कर डाली है उस प्रिय को मैं अवश्य लाऊंगी। यदि मैं उसे न ला सकूं तो हे प्रिय सखी, मैं तेरे किस काम की हूं । मेरा सिर भी इस कार्य के लिए प्रस्तुत है - तभी मैंने यह बात कही ।।९४।।

वैशम्पायन - यह सुनकर अग्नि-सरोवर में जल रही उषा के शरीर पर मानो अमृत की वृष्टि हुई । कहने लगी, ऐसा कब होगा । मन में वह कुछ प्रसन्न हुई ।।९५।।

चित्रलेखा - उषे, इस कार्य का बुद्धिपूर्वक विचारा गया उपाय सुन ।

अपने पूर्वकर्मों को नमन कर — तू अवश्य अपने चाँद-से रूपवाले प्रियतम का मुख देखेगी ।।९६।।

देव, असुर, नाग, किन्नर, यक्ष और मनुष्य - इन में जो श्रेष्ठ हैं विविध स्थानों में रहने वाले उन सब पुरुषों के रूप में चित्रपट पर अंकित करेगी । सात रातें तू प्रतीक्षा कर बाले । तब पट पर अंकित चित्रों में शोभने, अपने प्रियवर को पहचान ले जिसमें तेरे प्राण समाये हैं ।।९७-९८।।

षष्ठी :

वैशम्पायन — इस बीच अपने घर में अनिरुद्ध ने हृदय में उस सुन्दर स्वप्न को याद कर प्रलाप किया । सुनो (यह वृत्तान्त) तुम्हें ठीक तरह से बताता हूं।।९९।।

अनिरुद्ध — उस कान्ता के शुद्ध-सुन्दर रूप, उसकी देहकान्ति का स्मरण कर मुझ पर जैसे विषम ज्वर-सा छा गया है । स्वप्न में मैंने उस बाला का (रूप) रस लूटा — पुष्पचाप ने रात को मुझे कैसा भरमाया ।।१००।।

नरकटकावृत्तम् :

वह हंसगामिनी, भुजंगिनी की भाँति देह से लिपट जाने वाली रतिसंग के लिए मेरी देहरी पर कभी आयेगी क्या ? हरिण-नयनी वह निज अंगों में अनंग को लिए कब अपनी मृणाल भुजाएं मेरे गले में डालेगी ।।१०१।।

चर और अचरों में उसका मूल्यांकन करता हूं तो पाता हूं कि जहां वह बाला जाए तत्काल चर भी अचर हो जाएं । हिमकर-मुखी जिस बाला का अधरामृत मैंने शक्ति भर किया, कब वह अपनी मृणाल भुजाएं मेरे गले में डालेगी ।।१०२।।

मृगराज (सिंह) की-सी कटि है जिसकी, गजराज की-सी चाल ! वक्ष-स्थल के मध्य उगते हुए अत्यंत शोभनीय स्तन हैं । हरि, हर और इन्द्र आदि भी लज्जा को त्याग जिसके पास भटकते रहते हैं, कब वह (प्रिया) अपनी मृणाल-भुजाएं मेरे गले में डालेगी ।।१०३।।

उसके हृदय तट पर हार देखकर (मन) कामदेव के वशीभूत हो जाता है। नीहार-तार से भी अधिक सौकुमार्य है जिसका। उसके मारक रूपाकर्षण ने कुमार तक को जीतकर उद्भ्रान्त कर दिया है। कब वह अपनी मृणाल भुजाएं मेरे गले में डालेगी ॥१०४॥

उसके अमृतमय कण्ठ को देख स्वयं श्रीकण्ठ शिव तक भ्रमित हो जाते हैं। उसके सुन्दर काम्य चिबुक का स्मरण कर शुक तुरन्त प्रशंसा करने लगता है। यह मेरा मन-लम्पट उसे देखने को बहुत उत्कण्ठित है। कब वह अपनी मृणाल भुजाएं मेरे गले में डालेगी ॥१०५॥

सुर-वनिताएं उसके रूप-गठन को, उसके सुन्दर कमल जैसे चरणों को, नासिका को, कानों की चर्चा करती हैं। देव उसके निर्मोही कच भार को देख ठगे-से रह जाते हैं! सभी कुछ श्रेष्ठ-सुन्दर है उसका। कब वह अपनी मृणाल भुजाएं मेरे गले में डालेगी ॥१०६॥

उस बाला के नयन काम के, मन्मथ के बाण हैं। वचन तो पूरे नाराच हैं — सीधे हृदय में चुभ जाते हैं। उसके उभरे कुच तो बस पत्थर जैसे (कठोर) हैं! ये निर्गुण (बिना बन्धन के, गुणहीन) किसी को गुण न करें (अपने पाश में बांध न डालें) ॥१०७॥

उस मानिनी (रूठी हुई कामिनी) के दान्त तड़ित के समान हैं। उसके अधर अधर में ही बांध डालते हैं, किसी के दर्प का अंश मात्र भी शेष रहने नहीं देते। उसके कच कितनों को प्रिय हैं, सब गोरे-सांवले उनकी प्रशंसा करते हैं। वे निर्बन्ध (निर्गुण) किसी को अपने बन्धन (गुण) में न बांधें ॥१०८॥

वसन्ततिलकम् :

स्वप्न में उसे देखकर मैं क्लिन्न-सा हो गया हूं। उस चन्द्रमुखी को याद करके तो प्राण निकले जाते हैं। देव (विरह) शोक से संतप्त मेरा कभी किसी उपाय में प्राण से मिलन करायेगा क्या? ॥१०९॥

कहाँ है वह प्रिया जो वसन्त-सा रूप लिए है। प्रिया का प्रसंग ही कितना प्रिय है। अपने स्वर्ण-सदृश्य कुचों की झलक दिखाकर, उनका स्पर्श देकर उसने उन्हें छिपा लिया और अपनी काम-भंगिमाओं से मुझे आहत कर दिया। कोयल को भी लजा देने वाली है वह कुरंग-नयना सुन्दरी ।।११०।।

चर्यावृत्तम् :

चित्रलेखा स्वयं जाकर ~~उस मदन (प्रिय) को ढूंढने गयी। परस्त्री-भूमि, परायी मिट्टी पर, उसका चित्त भ्रमित हो गया। उन नव-राजमहलों में जाकर उसने विनयपूर्वक कहा कि उषा को कामदेव की मार से रक्षा की जाए~~ ।।१११।।

(हस्तलेख के २५-३६ पत्र उपलब्ध नहीं)

परायी मिट्टी पर चित्त भ्रमित हो जायेगा।

- - - - - मदन को ढूंढो ! परायी मिट्टी पर चित्त भ्रमित हो जायेगा। हमारी उषा को कामदेव की इन नव-राजमहलों में सविनय तुमसे कहती (?) हूं कि हमारी उषा को कामदेव की मार से रक्षा की जाए ।।११२।।

दुक्कटिकावृत्तम् :

वैशम्पायन - तब बाणासुर के रक्षकगण परस्पर कहने लगे कि चलो नृपगृह में जाकर देखें कोई पराया व्यक्ति छद्मवेष धारण कर अंत:पुर में तो नहीं घुस आया है ।।११३।।

वे उठे और (गवाक्षों को) जालियों से झांका। उषा के निकट उन्हें एक और दिखाई दिया। वे (दोनों) एक-दूसरे से कह रहे थे कि चलो किसी दूर देश में चले जायें ।।११४।।

दिव्य वस्त्र और माला पहने हुए, मुख पर चन्दन का लेप किये वह पुरुष श्रेष्ठ नायिका उषा को कण्ठ से लगाये पंचशर के गीत गा रहा था। उषा उसे मणिमय पात्र पकड़ा रही थी और वरसखी चित्रलेखा मणिकलश से सरस मदिरा उंडेल रही थी ।।११५।।

तुरन्त जाकर उन्होंने नृप बाण को बता दिया तो सुनकर वह बहुत लज्जित हुआ, मन में उसके संकोच हुआ । ज़हरीले सांप की तरह वह अत्यंत क्रुद्ध हो उठा । समस्त दानव सेना को बुलाकर बोला किसने यह काम किया है, आकर बिना विवाह के जिसने हमारे कुल को दूषित किया ; उषा का आज शील-भंग कर डाला, हर्म्य-रक्षकों को रौंदता हुआ जो निर्भय शोणितपुर में प्रविष्ट हुआ (वाह, क्या वीरता है, क्या रूप-सौंदर्य !) — उस दुर्जन का जाकर तुरन्त बध कर डालो, यह बड़ा धर्म है ।।११६-११७।।

मन्दाक्रान्तावृत्तम् :

नृप के मुंह से इतना सुनते ही दानव उठे और उसको नमन कर उन्होंने हाथों में अस्त्र ग्रहण किये । क्रूर मुख वाले थे वे दानव, मानो यमदूत हों जो सारे विश्व को नष्ट करके रहेंगे । चीखते-चिल्लाते हुए जाकर उन्होंने लोह-गृह में शत्रु को घेर लिया ।।११८।।

शार्दूलवृत्तम् :

भीतर वह वीर सोया पड़ा था कि बाहर गर्जन-ध्वनि सुनायी दी । मत्त हाथी की भांति सहसा उठ खड़ा हुआ कि उषा ने उसे आलिंगन में बांध लिया, बोली — इन गणों के सम्मुख मत जाओ, प्रिय ! हे सुन्दर (?) केशों वाले मेरे सखा, ज़बर्दस्ती वहां न जाओ ।।११९।।

अनिरुद्ध :

धिक्कार हो मेरे यादव जन्म को । हे वनिता, मैं कहां मैं छिप जाऊं या स्वकर्म को नमन कर निहत्था ही जाकर युद्ध करूं ? ।।१२०।।

रचविधान :

उषा — आज ये मगरमच्छों की भांति मिलकर तुमसे रण करने आयेंगे । मैं तुम्हें इस क्षण पाश में बांधूंगी, हे प्रिय, मत जाओ, ये तुम्हें मार डालेंगे । (अथवा रण में मत जाओ) ! तुम्हारे हाथ में एक भी अस्त्र नहीं है और ये कवच और बाण धारण किये हैं । इनसे युद्ध कौन करे, हे प्रिय, मत जाओ, ये तुम्हें

मार डालेंगे ।।१२१।।

मैंने तो काम के निदान के लिए तुम्हें ढूंढकर लिवाया । तुम समृद्ध घर के हो, योग्य हो, मत जाओ इस रण में । आज जैसे मेरा विनाश आ गया है, मेरे लिए शांत रहो । मत देखो यह सब क्या है, हे प्रिय ।।१२२।।

हे सुधांशु-आनन तुम्हारा वे युद्ध में अंग-भंग न कर डालें , मैं तब मर जाऊंगी। तुम्हें यहां लाना ही अनर्थ हुआ, हे प्रिय मत जाओ रण में ।।१२३।।

वैशम्पायन :

तब उस वर बाला ने क्रोध से अपना वक्ष पीटा । पर वह हाथ में परिघ लिये छलांग मार कर उठा । रणकुशल उस परमवीर की वीरता का बखान कौन कर सकता है भला – दानवों (से युद्ध) के लिए वह अकेला ही पूर्ण रूप से समर्थ था ।।१२४।।

नरकटकावृत्तम् :

संग्राम :

रण में क्रोधपूर्वक सांस लेता हुआ पंचबाण-सा अनिरुद्ध (असुर-सेना से) जा भिड़ा । उषा उसे पुकारती ही रही, (और फिर) उसे (युद्ध करते) देख उस पर फूल बरसाने लगी । असुर उस पर भयंकर बाण-वर्षा करने लगे, पर वह रणक्षेत्र में दृढ़ रहा ।।१२५।।

तलवार, गदा, शूल, तोमर, नाराच और शक्तियुक्त मुद्गरों से उन्होंने उस पर प्रहार किया, किन्तु अपने बल से उसने सब का परिहार किया । अकेला ही परिघ से (शत्रुओं के) वक्षस्थल पर प्रहार करता हुआ वह रणभूमि में खड़ा रहा । उषा को वह बादलों से घिरे हुए सूर्य के समान प्रतीत हुआ ।।१२६।।

असुरों के अस्त्र-प्रहार से उसे तनिक भी क्षोभ न हुआ । परिघ उठाये हुए उसने अकेले ही समस्त दानवों को यों मार गिराया जैसे कल्पान्तकाल में आंधी मेघों को नष्ट करती है ।।१२७।।

(उसका यह पराक्रम) देखकर वे भाग खड़े हुए । उस वीर ने उन्हें भागते देखते आकाश में गरजते मेघों के समान सिंहनाद किया । "सुनो, ठहरो, युद्ध करो" — वह बोला । सुनकर वे कांप उठे । तब वह वीर नव यौवना उषा के पास लौट आया ।।१२८।।

सयानी उषा ने गले से हार उतार कर उसकी मणिलड़ी प्रिय पर वार दी । उस कुसुम-लता ने अनिरुद्ध के गले में दोनों बाँहें डालकर उसे भींच लिया । बोली, कठिन युद्ध के कारण तुम्हारी सांस फूल उठी है, प्रिय ।।१२९।।

भयभीत होकर सब असुर बाण के पास भागे । वे भारी साँसें ले रहे थे । उनके बड़े-बड़े उदरों से रक्त बह रहा था । बाण ने डांटा — कौन विकट व्यक्ति तुम्हें लूट गया है भला जो तुम इस प्रकार दौड़े आ रहे हो । तुम्हारे हृदय-तरु को किसने छिन्न कर डाला है ।।१३०।।

बाणासुर — सभी दानव श्रेष्ठ हो, उचित घरानों के हो, अत्यन्त बलशाली और नामी हो तो फिर तुम्हारे चेहरे यों भयत्रस्त क्यों हैं ? कैसे हो तुम शरीरधारी, कैसी है तुम्हारी सुमति ? जाओ, अस्त्र छोड़कर चले जाओ, युद्ध मत करो ।।१३१।।

स्रग्धरावृत्तम् :

वैशम्पायन — बाणासुर के ये क्रोधपूर्ण वचन दानवों ने सुने तो करोड़ों की संख्या में हाथों में चमचमाते अस्त्र लेकर प्रहार करने के लिए चल पड़े । कठिन कवच पहने हुए वे योद्धा मन ही मन लज्जित हुए । युद्ध का निनाद करते हुए वे आनंदपूर्वक नृपपुर से चल दिये ।।१३२।।

मालिनीवृत्तम् :

कुछ रथों पर आरूढ़ हुए, कुछ आकाश से गये । उनके हाथों के घोर अस्त्र बिजली की भांति चमक रहे थे । पानी उछालते हुए समर्थ गजराज के समान उन दानवों की आंखें क्रूरता से जल रही थीं ।।१३३।।

असुर मदमाते हाथियों के समूह की भाँति अशिष्ट और उन्मत्त हो गये। युद्ध में दुर्जेय हृदयवाले वे 'ठहरो-ठहरो' कहते हुए वहाँ (युद्धस्थल में) पहुँच गये। अनिरुद्ध ने सुना तो विहँस पड़ा ।।१३४।।

उषा बोली, करोड़ों असुर शायद पुन: लौटकर मारने को आये हैं। हाय-हाय, ये तो बड़े अतिचारी हैं। हे अरिजीत वीर ये तुम्हें परेशान करेंगे, तुम रण में अकेले न जाओ ।।१३५।।

षट्पदावृत्तम् :

उषा से अनिरुद्ध ने कहा कि ये शीर्षस्थ और प्रसिद्ध दानव वीर (लड़ने को) आये हैं। मन में रण की इच्छा लिए तब वह शुद्ध चित्त से निकल पड़ा। हाथ में उस सुबुद्धि सम्पन्न ने परिघ और ढाल धारण किया ।।१३६।।

युद्ध में असुरगण पुन: आयुध-वर्षा करने लगे। अनिरुद्ध को मारने के लिए उन्होंने आक्रमण किया और इसके ढाल को (अस्त्रों से) बींध डाला। उषा यह देखकर अत्यंत आश्चर्य करने लगी कि कैसे अनिरुद्ध उनके बीच विचरण कर रहे हैं।।१३७।।

परिघ तथा ढाल हाथ में लिए अनिरुद्ध बत्तीस प्रकार के पैंतरे दिखाकर घोर युद्ध कर रहे थे। असुर (संत्रस्त हुए) कि यह तो यहाँ हमारा संहार करने को आये हैं। अवश्य क्षण में हमारा रक्त बहाकर हमारे प्राणों को हर लेंगे।।।१३८।।

अकेले ही वे उस सेना पर टूट पड़े और द्वार की अर्गला से उन पर प्रहार करने लगे। उस महायुद्ध में उन्हें देखते ही अपना लक्ष्य बनाया और सब दानवों को नष्ट कर दिया। कोई उस रणस्थल में उन्हें रोक न सका, प्रत्युत उन्होंने बहुतों को मार डाला ।।१३९।।

जो शेष बचे वे युद्ध छोड़कर सबके सब बाण के पास भाग चले। वे अनिरुद्ध को यम के समान समझने लगे। उनके मुख से रक्त बह रहा था। भय के मारे धूल (मूल) उड़ाते हुए वे भाग खड़े हुए और कोई उन्हें शान्त न कर सका ।।१४०।।

चीत्कार करते हुए वे उस अवसर रथ, घोड़े, विशाल कवच, जानुबन्ध आदि अनेक भयंकर अस्त्रों को वहीं छोड़कर भाग चले । ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हुए वे भागे तो युद्ध में पुन: नहीं आये, पल भर में वनों - गुफाओं में छिप गये । उस महा-वीरेन्द्र ने उन्हें पुन: नष्ट कर दिया ।।१४१।।

वसन्ततिलकम् :

युद्ध में अनिरुद्ध को देखकर वे इतने भयकम्पित हुए जितने पहले कभी नहीं हुए थे । उससे छिप-छिप कर वे अनेकों असुर रक्त बहाते हुए पगलाये हुए से भाग निकले ।।१४२।।

तब वे बलहीन हुए-से पैदल ही तुरन्त राजा बाण के पास जा पहुंचे । वहां उसे नमन कर हाथ से शूल, गदा तोमर आदि अस्त्र फेंक दिये । युद्ध में पुन: जाने को वे तैयार नहीं हुए ।।१४३।।

यही :

अपनी सेना को यों नष्ट होते हुए देख, बाण तत्काल क्रोध से जल उठा, मानों घी डालने से यज्ञस्थल में अग्नि भड़क उठी हो ।।१४४।।

मत्तमयूर :

तब अत्यंत क्रोधित हुआ बाणासुर कुम्भाण्ड द्वारा चलाये गये रथ में शत्रु से — उस वीर अतिपवित्र अनिरुद्ध से - युद्ध करने चल पड़ा । यह देख धरती के हृदय-कमल में विषम भयकम्पन हुआ ।।१४५।।

अपनी हज़ार भुजाओं में उसने क्रोधपूर्वक पट्टिश, शूल, परिघ, गदा, तोमार आदि कितने ही चमचमाते हुए अस्त्र धारण किये (जो ऐसे प्रतीत होते थे) मानो आकाश में सैकड़ों इन्द्रध्वज हों । उंगलियों में उसने सैकड़ों अंगुलित्राण पहन लिये।।१४६।।

अपने महाधनु की डोरी को उसने टंकार कर सिंहनाद किया जिससे धरती और आकाश कांप उठे । बोला ठहरो, युद्ध के लिए ठहरो । उस समय उसकी महा-विकराल आंखें क्रोध से जल रही थीं ।।१४७।।

उसको आवाज़ सुनकर अनिरुद्ध ने कुपित बाण को (अपनी ओर) आते हुए देख लिया । वह हज़ार घोड़ों से युक्त महारथ पर चढ़ा था । शीघ्र उसने उस रणकुशल ने उसके ढाल को बींध डाला ।।१४८।।

उस महारथ में सैकड़ों किंकिनियां बज रही थीं और रक्तवर्ण की पताकाएं लहरा रही थीं । यह देखकर अनिरुद्ध तनिक हंस पड़ा कि यह कैसा आडम्बर रचता हुआ आया है ।।१४९।।

क्षण भर में अनिरुद्ध उसके सामने रण के लिए जा खड़े हुए । हाथ में परिघ और ढाल लिये उन्हें पैदल आते देख असुर हर्ष से अंधा (उन्मत्त) हो गया कि बस अब मैं अनिरुद्ध को मार डालूंगा ।।१५०।।

धन्य है वह तनुत्राण-विहीन पुरुष जिसके हाथ में एक भी अच्छा अस्त्र नहीं । वह अजेय युवक जो अभय मन असुर बाण के सामने रण में जा डटा । त्रिभुवन में उस वीर का मरण नहीं, वह तो स्वयं कामारि शिव है ।।१५१।।

बाण उन पर क्रूर बाणों की महावृष्टि करने लगा । किन्तु यादव (अनिरुद्ध) पीठ पर ढाल लिये उदय काल के सूर्य समान दृढ़ता से टिके रहे । वन में किसी हाथी को मानो सिंह देख ले, अनिरुद्ध उसे देखकर वैसे ही खड़े रहे और उसके दर्प का हरण किया ।।१५२।।

मर्मभेदी हज़ारों तीक्ष्ण बाण दिशाओं में दृष्टिगोचर होने लगे । चतुर अनिरुद्ध ने कितनों का निवारण किया । क्रोध से अनिरुद्ध का रोम-रोम जल उठा। वे अपने स्थान पर स्थिर रहे, युद्ध से विचलित न हुए ।।१५४।।

मालिनी वृत्तम् :

शरों से बिंधकर उनका सारा शरीर रक्त में नहा उठा । तत्क्षण अनिरुद्ध सीधे बाण पर झपटे और उसके रथ के निकट जा पहुंचे । असुर और सुर प्रियाएं यह दृश्य देख रही थीं ।।१५४।।

क्रोध में आकर बाण ने तलवार, मुसल, भयंकर शूल, तोमर, परिघ, पट्टिस आदि अस्त्रों का वर्षण कर अनिरुद्ध को ढक दिया। पर युद्धकुशल वह युवक इस पर भी भयकम्पित न हुआ। उसके रोंगटे खड़े हो गये और वहीं स्थित रह वह सामना करता रहा ।।१५५।।

दुक्कटिका :

वे ही (बाणासुर द्वारा प्रयुक्त) अस्त्र ही अनिरुद्ध ने तुरन्त हाथ में धारण किये और घोड़ों के नीचे शरीर को छिपाते हुए उन्होंने बाण के रथ को काट डाला। तब उसने अनेक पट्टिस, तोमर, शक्ति, शूल और मुद्गरों की वर्षा की जिससे वह महारथ हिल उठा और बाण डगमगा गया। आकाश से अप्सराओं ने फूल बरसा कर हर्ष प्रकट किया। असुर प्रियाएं बाण को मरा जानकर चीख उठीं ।।१५६-१५८।।

तब बाणासुर ने घण्टाओं से युक्त एक अत्यन्त भयानक, यम और आदित्य के समान तेजोमयी और यमदण्ड की भाँति कठोर शक्ति अनिरुद्ध पर छोड़ दी। हेमदण्ड के समान चमचमाती हुई उस शक्ति को और किस वीर में शक्ति थी कि देखे! उसने पहले भी बहुत से विषकर्म किये थे और अब वह (साधारण बाण से) हज़ार गुना मारो बाण बाणासुर ने अनिरुद्ध को मारा। क्षणभर में हुंकारता (सनसनाता) हुआ वह बाण चला गया ।।१५९-६१।।

अनिरुद्ध ने उसे आते हुए देख बीच से ही लपक लिया। उस वीर की यह शक्ति देखकर सुरवनिताओं ने तुरन्त फूल बरसाये। तब अनिरुद्ध ने उसी चंचला जैसी शक्ति से बाण पर प्रहार किया। बाणासुर की देह को बींधती हुई वह तेजोमयी शक्ति धरती में समा गयी ।।१६२-६३।।

उस चोट से बाणासुर क्षणभर के लिए अचेत हो गया। उसकी यह दशा देखकर कुम्भाण्ड मृदुवाणी में बोला, हे दुर्जेय, विनती सुनो। तुम नहीं देखते कि कैसे अब तक यह वीरवर रण में डटा है। इस तेजस्वी की कोई तुलना नहीं। कहीं यह हम सबको मार न डाले। अतः इस समय इससे मेरी और अपनी रक्षा करो।

माया का प्रयोग करके इस वीर को बांध डालो, अन्यथा यह तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा का हरण करेगा और तुम्हारा शोणितपुर नष्ट होकर रह जायेगा ।।१६४-६६।।

मन्दाक्रान्तावृत्तम् :

सचिव के मुख से बाणासुर ने ये दुख भरे वाक्य सुने और कठिन माया रचकर वह क्रोधित असुर गन्धर्वनगर के समान सारथि के सहित अदृश्य हो गया । उसने अपना कुटिल शरीर यों छिपा लिया जैसे बादलों से घिरा गिरि-शिखर ।।१६७।।

उस असुर नृप ने मन में तामसी विद्या का ध्यान किया । दसों दिशाओं में अनिरुद्ध ने देखा वह कहीं भी नज़र न आया । युद्ध में अतुल्य उस अनिरुद्ध के सामने न रहकर उस पर्वताकार योद्धा ने समर में स्त्री की भांति छिपकर प्रहार किया।।१६८।।

वसन्ततिलकम् :

तब माया से अपना - आप छिपाये, आकाश में स्थित बाणासुर ने शत्रु पर अन्यन्त कष्टप्रद नागपाश दे मारा । तत्काल उन सर्पों ने अनिरुद्ध की देह को जकड़ लिया और उस वीर को चिन्ता हुई कि कैसे इस सर्प-बन्धन से छुटकारा हो। ।।१६६।।

स्रग्धरावृत्तम् :

जब उस नवयुवा वीर को राजा ने पन्नगों से बांध लिया तो उसे घोर कष्ट हुआ । विष उसके सारे शरीर में व्याप्त हो गया और दूर नहीं हो सका । सांपों से जकड़ा हुआ वह तेज से युक्त मैनाक पर्वत सा अपूर्व दिखाई दिया । कमलनयनी उषा पति को देखकर आह भरकर रो पड़ी ।।१७०।।

षष्ठी :

बाण - जिसने हमें लोक में लज्जित किया, बिना विवाह किये कुमारी कन्या को दूषित किया और इस पाप से हमारा परलोक बिगाड़ा, बुद्धिमान कुष्माण्ड उसे मारो ।।१७१।।

दचविधान :

कुम्भाण्ड – यह कौन है, कहाँ का है, किसने इसे लाया, यह किस वंश का है, यह सब विचारे बिना इसे मारना, हे नृप, उचित नहीं । जो रण में सुरेन्द्र के समान है, रूप में कामदेव के समान• शोभाशाली है, उस नवयुवक को हे नृप मारना उचित नहीं ।।१७२।।

इसकी जाति अथवा घराने के विषय में जान लेने के बाद तुम चाहो इसकी पूजा करो, चाहे उसे मारो । साँपों से जकड़ा हुआ यह पुरुष हमें भोग से क्या पीड़ित करेगा भला ! जो यह छिबाहु हमें मिला है, हे नृप, इसे मारना उचित नहीं ।।१७३।।

पद्दो :

वैशम्पायन – कुम्भाण्ड का उत्तर सुनकर उसके मन का ताप कुछ दूर हुआ । साँपों से जकड़े हुए अनिरुद्ध को वहीं छोड़कर बाणासुर अपने महल जा पहुँचा । सर्पबद्ध अनिरुद्ध को बाणकन्या उषा के निकट ले जाकर छोड़ दिया गया । स्नेह-मिश्रित स्वर में वह रो पड़ी कि हे मेरे देवता, तुम्हें यह कैसा दण्ड दिया गया।।१७४।।

हरिवंश :

इसके बाद अनिरुद्ध के घर में उसकी सुन्दर प्रियाएं रात को जाग पड़ीं तो अपने चाँद - से मुखवाले प्रिय को नहीं देखा । उसके स्नेहवश वे विलाप करने लगीं कि जाने कौन हमारे कामदेव (पति) को कहाँ ले गया ।।१७५।।

किसने उन कृष्ण के अनिरुद्ध का हरण किया, जिनके आश्रय में इन्द्रादि-देव सब रहते हैं । कौन है, वह वीर, हे कृष्ण ! जिसे तुम्हारा भय नहीं । उस वीरेन्द्र को,उस हमारे देवता को उन्होंने कहाँ छिपा रखा ।।१७६।।

युवतियां प्रलाप करती हैं :

विषमपद्यावृत्तम् :

हे विनायक, उस नायक के बिना हम शाप-संतप्त-सी हैं । हम गजगमना

ललनाएं हैं, हमारे उस श्रेष्ठ नायक को कौन अपहृत करके ले गया - इन्द्र ने ? या फिर और कोई ऐसा कर सकता है । क्या किसी गारुडी ने उसे धरती से ले जाकर पाताल में छिपा लिया ? ।।१७७।।

रात को पुन: हम अपने अपने वर-देवता को नहीं देखेंगी तो अंधकार और भय से मर जायेंगी । जाने किसने यह सब चक्कर चलाया है । ये अमंगलसूचक कठोर शब्द युवतियां अपने गृह में कह रही थीं ।।१७८-१७९।।

किसने हमारे उस नववय प्रियतम को छिपा लिया ? हाय, हम तो मर गयीं। अतिविरह से पीड़ित अपने प्रिय के लिए वे युवतियां विलाप करने लगीं ।।१८०।।

वसन्ततिलकम् :

उनमें से एक उठी और अपने प्रिय के तन की रूप-चर्चा करने लगी । एक उसकी प्रशंसा करने लगी । एक को आशंका हुई कि कहीं उसने आज वीरगति न प्राप्त कर ली हो । एक सोचने लगी कि किसने उसे रात के क्षण में छिपा लिया ।।१८१।।

अंधेरे पक्ष में चांद के बिना तारिकाओं-सी कान्तिहीन पड़ी वे युवतियां बहुत विलाप कर रही थीं । अपने प्रिय से वियुक्त उनके तन मानो आग में झुलस रहे थे । हाय, वनिताएं पिया के बिना दुखी हो रही हैं । अपने कृष्ण केशों से वेणी-बन्धन खोलकर उन्होंने तृण की भांति काट डाला । अनिरुद्ध की शैया को और देख-देखकर वनिताएं पिया के बिना दु:खी हो रही हैं ।।१८२-८३।।

रात के समय फुल्ल पंकज-सर की जो दशा होती है, वैसे ही उनके मुख हो गये हैं, आंखें अश्रुजल से परिपूर्ण ! आंसुओं से भीगे वचन कह रही हैं वे ललिताएं ! हाय, वनिताएं पिया के बिना दु:खी हो रही हैं ।।१८४।।

हीरक-हारों की लड़ियां उनके गले से सरक कर गिरी जा रही हैं - उन्हें मणियों के सहित उन्होंने काट डाला । पंचशर की मणिमालाएं- वे वनिताएं बिना पिया के दुखी हो रही हैं ।।१८५।।

बार-बार वे लावण्यमयी युवतियां हाथ से पट संभालकर विलाप करती हैं। उन्होंने अपने वसन फाड़ डाले और नग्न वक्ष स्थल लिये वे वनिताएं पिया के लिए दुखी हो रही हैं ।।१८६।।

आकाश में कुरकड़ी पक्षी की भांति रुदन करती हुई वे मानो अपने नयनों से रक्त टपका रही हैं। उनके शरीर हिम के समान ठण्डे पड़ गये हैं। हाय, वनिताएं पिया के लिए दुखी हो रही हैं ।।१८७।।

शार्दूलवृत्तम् :

तभी रण में गर्जना करने वाले कृष्ण वहां शीघ्र आ पहुंचे। सोचने लगे कि अनिरुद्ध के घर में यह क्या विषम दुर्घटना हो गयी है। पागल-सी सबकी सब वे युवतियां रात में निकल पड़ी। कहने लगीं कामिनियां, तुम्हारे सुत अनिरुद्ध का किसने अपहरण किया है, कृष्ण ।।१८८।।

वदी :

युवतियां - हे हरि ! तुम्हारा नाम स्मरण करने मात्र से वह चण्डवेश महाबाधक धर्मराज यम तक भय से कांप उठता है, हम आज अनिरुद्ध के प्रेमवश सूखी जा रही हैं ।।१८९।।

जयावृत्तम् :

वैशम्पायन - तत्क्षण कृष्ण ने अपनी सन्नाह भेरी बजायी जिसका शब्द सुनकर सभी यादवों ने रात की नींद त्याग दी ।।१९०।।

अनेक यादव सिंहों की भांति अपने-अपने घरों, गुहाओं से बाहर निकले। रण में गंधर्वों के समान वे कृष्ण के सम्मुख आ उपस्थित हुए ।।१९१।।

हरि को प्रणाम करके वे वहां बैठ गये और क्षीण स्वर में परमात्मा (कृष्ण) से पूछने लगे। बात पता चलने पर वे वीरवर क्रोध से भभक उठे। वे दीर्घ उच्छ्वास छोड़ने लगे और मुंह छिपाकर आंसू बहाने लगे ।।१९२-१९३।।

इस प्रकार सबके चुपचाप खड़े रहने पर, घुटने टेक कर विशेष विनय से विपृथु ने कहा -

"हे हरि आपके मन में यह कैसी चिन्ता है कि आप क्षण-क्षण उश्वास छोड़ रहे हैं। हे पुरुषेन्द्र, हज़ारों सुर और असुर आपके भय से लरजते हैं। हम सब यादव आपके ही बल के आश्रय में रहते हैं। आपका तेज देखकर स्वयं यम भी भय से कांपता है।

आप की ही कृपा से सुरपति और देवता सुखी हैं और चिन्ता छोड़कर रिपुकुल को कम्पाते हैं ।।१६४-१६८।।

हे स्वामी, आपके हृदय में किस चिन्ता का वास है, हमसे कहें। हम शोक-सागर में पड़े हुए हैं ।।१६६।।

मालिनीवृत्तम् :

किष्ण (कृष्ण) - सुनो, यहाँ सभी यादव उपस्थित हैं, मैं बतलाता हूं कौन-सी चिन्ता मेरे मन में है जिससे मुझे महाकष्ट हो रहा है। तुम सब वीरों के सहित आज हमारा दर्प उतर गया। पृथ्वीभर के राजा हमें क्लीव समझ कर व्यंग करेंगे ।।२००।।

पद्दी :

रात को वनितार्वा के पास सोये हुए अनिरुद्ध का न जाने किसने अपहरण कर लिया। इसी चिन्ता के कारण मैं क्षण-क्षण विमर्श कर रहा हूं। इस निमिष मानों मेरी बुद्धि भ्रान्त हो रही है ।।२०१।।

स्रग्धरावृत्तम् :

पहले भी एकबार हमारे राजा आहुक का साल्व असुर ने अपहरण किया था। इसी भांति शम्बरासुर प्रद्युम्न की माया रचकर चुरा ले गया था। मैंने उन्हें चक्र से मार डाला और उन्हें वापस ले आया। आज फिर कोई अनिरुद्ध को कहीं दूर ले गया है। जिसने मुझे लज्जित करने के लिए अपने धूल-धूसरित पांव मेरे सिर

पर रखे हैं ।।२०२।।

वसन्ततिलकम् :

उसे मैं बन्धु-बान्धवों सहित निश्चय से जाकर रण में मार डालूंगा । तब बुद्धिमान सात्यकि ने कहा कि अनिरुद्ध को खोज कराई जाए ।।२०३।।

पंचचामरवृत्तम :

कृष्ण ने तब आहुक से कहा कि यादवगण शीघ्र जाकर अनिरुद्ध को खोजने के लिए चल पड़ें । नभ में,, धरा में सब कहीं उसे खोजा जाए । वन, उपवन कोई स्थान न छोड़ा जाए । सुमेरु, मलयाचल, रैवतिक और कृष्णवन्त गिरि, विन्ध्याचल, महाधर, वैजयन्त (वेणुमन्त) आदि सभी स्थानों पर बाहर तथा भीतर जाकर उसे ढूंढें ।।२०४-२०५।।

यह सुनकर वीर यादवगण सहस्रों घोड़ों पर सवार हुए, कुछ रथों पर चढ़े । बहुत से यादव पाताल चले गये और कुछ आकाश मार्ग से गये ।।२०६।।

तब सेनापति अनाधृष्टि ने अत्यन्त विनयपूर्वक कृष्ण से ये मधुर वचन कहे— आपने अनेक दारुण दानवों को मार डाला— सौभ साल्व, असिलोमा, पुलोमा, नरकासुर, निसुन्द, कंस कोई भी आपके सामने ठहर नहीं सका - अन्य न जाने कितने असुरों का आपने संहार किया । ये सब कार्य आपने देवताओं के हित के लिए, उनके स्नेहवश ही किये ।।२०७-२०८।।

आप पारिजात पुष्प ले आये तो ऐरावतारूढ़ इन्द्र समर में आपके चक्र का सामना नहीं कर सका । मेरी यह गूढ़ बात सुन लें - तभी से उनके मन में आपके प्रति वैर है । इसीसे आज इन्द्र ने अनिरुद्ध का अपहरण किया है । अन्य किसी का भला ऐसा कार्य करके कहीं त्राण हो सकता है । मैं तीसों कोटि देव वीरों को जानता हूं, हे परमात्मा (कृष्ण) अतः मेरे मन में यह शंका उत्पन्न हुई है।। ।।२०९-२१०।।

वसन्ततिलकम् :

महायशस्वी कृष्ण ने ये वचन सुने तो विषैले सर्प की भांति सहसा क्रुद्ध हो गये । बोले हे युवक, देवता इस प्रकार के दुर्जन कभी नहीं होते ।।२११।।

कृष्ण के ये कठोर वचन सुनकर उठकर बुद्धिमान अक्रूर ये मधुर-शिष्ट शब्द घुटने टिकाकर बोले - हे गोविन्द इन्द्र का जो कार्य है वह अशेष रूप से मानो हमारा ही कार्य है और जो हमारा कार्य है मैं जानता हूं। इन्द्र उसे अपना कार्य मानते हैं । हमने देवताओं के हित के लिए ही हमने नर जन्म लिया है और अनेक दानवों का वध किया है; किन्तु जाने यह कैसा कर्म, स्थिति का कैसा व्यंग है(?) ।।२१२-२१४।।

शार्दूलवृत्तम् :

कृष्ण : देव, सिद्ध, ऋषि या किसी असुर, यक्ष, पिशाच, गन्धर्व इन सब में से किसी का यह कार्य नहीं है । पुण्यतनवान, चिरंजीवी अनिरुद्ध का किसी पुंश्चली माया को जानने वाली स्त्री ने हरण किया है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ।।२१५।।

वैशम्पायन : कृष्ण के मुख से ये सूक्ष्म वचन सुनकर सूत और मागध आदि उनको मधुर स्वरों में प्रशंसा करने लगे । इतने में सब दिशाओं में शूरेन्द्र (अनिरुद्ध) को खोजने गये यादव लौट आये और मन में भय लिये हुए दूर ही से स्वामी को प्रणाम करके पुरद्वार पर बैठ गये ।।२१६।।

प्रहर्षिणी वृत्तम् :

यादव :- हे स्वामी, हमने जंगल, अरण्य आदि सब स्थानों में खोज लिया, गहरे सरोवरों में और अत्यन्त शोभामय उपवनों में देखा किन्तु वह वीर कहीं दिखा नहीं । अब प्रभात के समय देखेंगे कि उसे कहां छिपाया गया है ।।२१७।।

एक-दूसरे को देखकर वे मन में सोचने लगे कि आज रात में यह क्या विषम बात हो गयी । उन में से कुछ वीरेन्द्रों के नयन भर आये, कुछ बार-बार दांतों से ओठ चबाने लगे ।।२१८।।

तभी प्रभात हुआ, पूर्व में सूर्य निकल आया। वह भयंकर रात व्यतीत हुई। शंखादि वाद्य बज उठे और जयजयकार के शब्द सुनाई दिये। गोविंद अपने गृह में जागकर उठ बैठे ।।२१६।।

फिर पूर्ण प्रकाश हुआ, सूर्य उदित हुआ और वहाँ नारद ऋषि मुस्कराते हुए आ गये। उठकर कृष्ण ने मधुपर्क से उनका सत्कार किया। श्वेत आसन पर बैठते हुए सरस स्वर में नारद बोले- ।।२२०।।

दुक्कटिका :
नारद :-

हे कृष्ण, आपके मन में यह कैसी चिन्ता है कि सभी यादवों को पास लिए बैठे हैं। हे वीरवर सुनिए आप श्रेष्ठकुलोत्पन्न होने पर भी यों क्लीब-से क्यों हो गये हैं ।।२२१।।

बाणासुर के उषा नाम की एक सुन्दर बेटी है। उसी ने रात चित्रलेखा को भेजा और अनिरुद्ध को यहाँ से अकस्मात् शोणितपुर लिवा लिया ।।२२२।।

उन्हें वर-कामिनी उषा के पास पकड़ा गया। असुर मिलकर आये और उनसे युद्ध किया। उन्होंने करोड़ों-लाखों को मार डाला, यह विचार किये बिना कि वे अकेले हैं ।।२२३।।

तब स्वयं बाणासुर श्रेष्ठ रथ पर आसीन होकर आया और उन्हें माया के द्वारा नागपाश में बाँध दिया। जैसा विषम युद्ध उन दोनों के बीच हुआ वैसा कभी इन्द्र और बलि के बीच हुआ था। बस यही बात है। आपकी जय हो जय हो। ।।२२४-२२६ ।।

ऋषि के मुंह से यह वृतान्त (चरित्र) सुनकर कृष्ण के हर्ष और तेज में वृद्धि हुई। सूर्य के समान दीप्त मुखमण्डल से युक्त उन कृष्ण को गर्व हुआ और उन्हें रोमांच हो आया ।।२२७।।

तब उन्होंने अपनी यादव सेना को (युद्ध सामग्री एकत्र करने को) आज्ञा दी । लोगों ने निकट आकर उन्हें कुसुम (हार) पहनाये । तब नगाड़े पर भट गीत गाने लगे और उनके (वाद्यों के) शब्द सुनाई दिये ।।२२८।।

नारद : हे स्वामी, चतुर वैनतेय (गरुड़) का स्मरण कीजिए जो क्षण भर में आपको शोणितपुर पहुँचा देगा । आपने ग्यारह हज़ार योजनों की दूरी को तय करना है ।।२२८।।

(कृष्ण के) स्मरण करते ही बलशाली गरुड़ सहर्ष कृष्ण के सम्मुख आ उपस्थित हुआ । तब गोविन्द ने जो विशेष रूप धारण किया उसके विषय में सुनने मात्र से वीरों के पाप शान्त हो जाते हैं ।।२२६।।

स्रग्धरावृत्तम्

काले केशों को बान्धे हुए, श्रीवत्स के चिन्ह को धारण किये, अंगुलियों में रत्न पहने हुए उन कृष्ण की देह दिखायी थी । उनका मुख:मानों हज़ारों सूर्य हों। उनकी रूपछबि मन की तृष्णा को हर लेने वाली थी । सिंह, सिंह के समान मुख वाले अत्यंत बलशाली उनकी देह की शोभा को सुनो ।।२३०।।

मालिनीवृत्तम्

तत्काल कृष्ण गरुड़ पर सवार हुए, उनके पीछे महर्षि (नारद), हलायुध बलराम और वीर प्रद्युम्न बैठे। शुद्ध चित्त से मुनिवर और सूत मागध आदि स्तुति-पाठ करने लगे और देवता पुष्प बरसाने लगे ।।२३१।।

पद्दो :

हरि ने कहा कि उस विख्यात् असुर बाण को आज मैं सेना सहित अवश्य मार डालूंगा । तभी कृष्ण ने भयंकर गर्जना की और आकाश मार्ग से वे अदृश्य हो गये ।।२३२।।

जब वे महावीर अनिरुद्ध उषा के पास ठहरे हुए थे, उनका सारा शरीर सांपों ने जकड़ लिया था । वे तब देवी की शरण गये ।।२३३।।

नरकटकावृत्तम् :

अनिरुद्ध :

दुर्गाभगवती की स्तुति करते हैं :

मुनिवर, सिद्ध, देवतागण स्तुतियों और कुसुमों से तुम्हारा पूजन करते हैं। हे दुर्गे, माया को भंग करने वाली, तुम सभी के शरीर में निवास करती हो। मेरे इस भय को विशेष दया करके दूर कर दो! हे जननी, दुर्गे मुझ सांपों से बंधे हुए पर तुम कृपा करो ।।२३४।।

हे प्रचण्ड तेजोमय मुखवाली, श्रेष्ठ सिंहरथ पर सवार होने वाली माँ, तुमने शुम्भ-निशुम्भ, महिषासुर आदि असुरों का उनके अनुयायियों सहित दलन किया है। हे शैलरथे तुम हाथों में अठारह प्रकार के चमचमाते हुए आयुध धारण किये हो। हे जननी, दुर्गे मुझ सांपों से जकड़े हुए पर कृपा करो ।।२३५।।

हे पर्वतराज की कन्या, सरस्वती, महागौरी, तारिणी, भद्रकाली, धरती, पाताल और स्वर्ग— सब कहीं तुम निवास करती हो। हे सिद्धों को सुख देने वाली, शारदा! तुम एक हो, महान हो। हे जननी, दुर्गे, मुझ सांपों से जकड़े हुए पर कृपा करो ।।२३६।।

ब्रह्मा, हरि, इन्द्र, चन्द्र, रुद्र, समुद्र, किन्नर, यक्ष और गंधर्व तथा मनुष्य आदि सभी तुम्हारा पूजन करते हैं। राजा, सम्राट, अश्विनी, अनेक दैत्य-गण आदि तुम्हारी वन्दना करते हैं। हे जननी, दुर्गे मुझ सर्पों से जकड़े हुए पर कृपा करो ।।२३७।।

क्रूर सर्पों ने मेरे शरीर को जकड़ कर मेरे देह-पिंजर को बाँध डाला है। इसी से अब मेरे शरीर में निवास करके सर्पों ने, हे माँ, मुझे महाकष्ट दिया है। मैं यहाँ तुम्हारा स्मरण कर रहा हूँ, मैं तुम्हारा भक्त मरा जा रहा हूँ। हे माँ, तू भय को जय दे दे ।।२३८।।

देवी प्रवेश करती हैं।

दुर्गा बोलीं —ठहरो-ठहरो अनिरुद्ध, मेरे सुत, मैं आज स्वयं यहां पहुंच गयी । अत्यंत स्नेह से मैं महायुद्ध में तुम्हारी रक्षा करूंगी । सर्प तुम्हें विषम पीड़ा दे रहे होंगे ।।२३९।।

वसन्ततिलकम्

वैशम्पायन :

तब दुर्गा ने अपने हाथों से वह कठिन सर्प-कवच ढीला कर दिया । भक्तिपूर्वक नमन करके और अंजलि बांधकर स्नेहपूर्ण स्वर में वह (अनिरुद्ध) बोला, हे मां मुझ दास को तुमने दया करके फिर जिला दिया ।।२४०।।

श्रीभवानी :

मैं दिव्यांगना उषा सहित क्षण भर में तुम्हें मुक्त कर देती, पर केशव के द्वारा इस कुदैत्य का वध होना है । बात सुनते ही वे शांर्ङ्गधर यहां आ जायेंगे ।।२४१।।

शार्दूलवृत्तम् :

वैशम्पायन :

(उधर) कृष्ण को विजय कामना को व्यक्त करते हुए-से भेरी, तूर्य मृदंग , वेणु, कलाहक, झांझर, डिण्डिम आदि वाद्य बजने लगे । कृष्ण के कुशल के लिए ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे । स्तुतिपाठ हुआ, शुद्ध गीत गाये गये, (द्वारका) पुरी में शोभन ध्वनि गूंज उठी ।।२४२।।

वसन्ततिलकम्

इसके पश्चात् ऋषिवर (नारद) के सहित (शोणितपुर) जा रहे कृष्ण ने चंद्र, सूर्य, इन्द्र के समान रूप धारण किया । उनके हजार सिर और आठ महाबलशाली भुजायें प्रकट हुईं । गरुड़ पर आसीन उनके रूप को देख बहुतों ने नमन किया ! ।।२४३।।

वैतालीवृत्तम्

केशव ने बाईं भुजाओं में शंख, चक्र, धनुष आदि भयंकर अस्त्र धारण किये

और शत्रु के साथ (युद्ध के लिए) दाहिनी भुजाओं में बाण, ढाल, खड्ग आदि । ।।२४४।।

घोर संग्राम करने वाले बलराम कैलाश पर्वत से प्रतीत होते थे और शत्रुओं को नष्ट करने वाले विष्णु पुत्र प्रद्युम्न भी वहाँ से चल पड़े ।।२४५।।

कृष्ण :

तुम दोनों जन वैनतेय पर चढ़ो हम तुरन्त शत्रु को मारने जायेंगे जिसने अनिरुद्ध को पकड़ रखा है । उस दुर्जन दैत्य बाण का हम वध करेंगे ।।२४६।।

वैशम्पायन :

कृष्ण का यह आशय सुनकर वे दोनों विनयपूर्वक गरुड़ पर बैठ गये । युद्ध में जा रहे उन वीरवरों पर आकाश से देवताओं ने पुष्प बरसाये ।।२४७।।

अत्यंत तीव्र वेग से गरुड़ चलने लगा । उसके पंखों से निकलने वाली वायु से अनेक पर्वत उलट गये । इस प्रकार सिद्धों और चारणों के ग्यारह हज़ार योजन लम्बे मार्ग को उन्होंने पार कर लिया ।।२४८।।

दुक्कटिका :

बलराम -

हे गोविन्द, हम सबके शरीर स्वर्ण-वर्ण के क्यों हो गये हैं ? कहीं हम सुमेरु पर्वत के निकट तो नहीं पहुँच गये हैं ? यह क्या बात है, यह बतलाकर मेरा सन्देह दूर करें ।।२४९।।

श्रीभगवान बोले -

हम शोणितपुर के निकट पहुँच गये हैं, जिसका संरक्षक यह आह्वनीय अग्नि है, उसी का यह प्रकाश हमें दिखायी दे रहा है ।।२५०।।

बलराम -

यदि अग्नि के निकट पहुँचने से ही हमारी कांतियाँ फीकी पड़ गयी तो

हमारा भीतर प्रवेश करना अत्यंत विकट है । अत: बुद्धिपूर्वक विचार कर कुछ उपाय करें ।।२५१।।

श्रीभगवान-

यह तो बहुत थोड़ा है, आगे ऐसा बहुत कुछ देखोगे, बलराम । तुम्हें इस समय भय लग रहा है क्या ? हम घोर संग्राम में बाणासुर पर विजय प्राप्त करेंगे । ।।२५२।।

वैशम्पायन :

शीघ्र ही स्वर्गंगा के जल का पान कर सुपर्ण ने अग्नि को शांत कर दिया— इतना शक्तिशाली था वह ! तीनों जगतों के लिए युद्ध में पर्याप्त उन तीनों जनों — बलराम, प्रद्युम्न और कृष्ण को लेकर वह चल पड़ा ।।२५३।।

तत्क्षण उस घोर अग्नि को शांत कर गरुड़ उन तीनों जनों को लिए शोणितपुर के अंदर प्रविष्ट हुआ। अपने पंखों (के फड़फड़ाने) से उसने वायु उत्पन्न की ।।२५४।।

रुद्र के अनुचर क्रूर महाअग्नि वहां द्वारपाल थे । देखते ही उन्होंने अस्त्रों का संचालन शुरू किया । उन सबके नाम मैं तुम्हें बताता हूं ।।२५५।।

कुसुम, दहन, निष्ठुर (शोषण?) कल्माष और तपन ये पांच स्वधाकार अग्नि ; स्वर्ण, रवगाध, भुजि, त्रपु (पिठुर?) और पतंग - ये पांच स्वाहाकार अग्नि वहां थे । ज्योतिष्टोम का विभाग करने वाला तथा वषटकार ये दोनों अग्नि भी वहां उपस्थित थे । अंगिरस के सहित तेरह अग्नि कृष्ण को देखकर रथों पर चढ़े हुए थे ।।२५६-२५७।।

अग्नि कहने लगे-गरुड़ पर चढ़े हुए अत्यंत भयानक अनेक रूप धारण किये हुए ये कौन तीन व्यक्ति यहां आये हैं ? इन्हें देखने से तो यम का चित्त भी भयभीत होगा ।।२५८।।

हरिणीवृत्तम्

तब वे बलशाली समर-चतुर अग्नि हाथों में अनेक अस्त्र धारण किये हुए कृष्ण के सामने जा पहुंचे । उन्हें आते हुए देख वीर कृष्ण ने ये वचन कहे - आज मैं तुम्हें नष्ट करके रहूंगा, यह सुनकर -

मालिनीवृत्तम्

स्वरक्षा के लिए

तब उनमें से रक्षा के लिए अंगिरा ने कृष्ण पर क्रोध से एक प्रज्वलित शूल दे मारा । उसे अपने पीछे आते देख कृष्ण ने उस शूल को पवित्र, अर्धचन्द्राकार परम बाण से खेल ही में काट दिया ।।२५६-२६०।।

इसके पश्चात् कृष्ण ने तेजोमय वरुणास्त्र का प्रहार करके, जो अंगिरा को यम के समान भयानक दिखायी दिया, उसके हृदय को बींध डाला । इससे अंगिरा क्षण भर में भूमि पर अचेत हो जा गिरा ।।२६१।।

अग्नियों ने जब उसे शोणित से लथपथ गिरते हुए देखा - उसके रथ को यशस्वी कृष्ण ने अस्त्र-प्रहार से काट डाला था - तो वे क्षणभर भी वहां न ठहर सके, बांह उठाकर भाग गये और कांपते हुए बलिपुत्र बाण के पास जा पहुंचे।।२६२।।

उन्हें भागते हुए देखकर कृष्ण ने अपना विशेष शंख बजाया । ऐसा प्रतीत हुआ कि मेघों के समीप चांद आगया है । दानव कुल ने यह शंख-ध्वनि सुनी । सुनकर दैत्यसेना को भय लगा । शोणितपुर में वीरों को उस समय बहुत कष्ट का अनुभव हुआ । दैत्येन्द्र बाण ने अपनी सेना को युद्ध के लिए सुसज्जित होने की आज्ञा दी और भेरी के मधुर शब्द बजने लगे ।।२६३-२६४।।

चपलावृत्तम् :

रण की आज्ञा सुनकर असंख्य असुर गण रण के लिए दृढ़ता से चल पड़े । नृप के महल के सामने वे परस्पर बात करने लगे, उन का मन (युद्धोत्साह से) चंचल हो उठा । शत्रुओं को मारने वाले, रक्त बहाने वाले, नरों का मर्दन करने वाले थे । उस शरद के दिन वे शीघ्रता से आगे बढ़ रहे थे और अपनी तलवार के बल पर

(हिंसा को) आग भड़काते जा रहे थे ।।२६५।।

काले वस्त्र पहने हुए, रथारूढ़ , कुटिल मति, विकट मुख वाले वे असुर हाथियों की-सी जंघाओं वाले थे । उनके शरीर अत्यंत कड़े थे, यमदूतों के समान भयंकर वे नट की भाँति वे शरीर संचालन करते थे । चंचल और पटु वे अत्यंत विकट और बड़ी नाभियुक्त थे ।।२६६।।

वे असद् गति वाले, तोड़-फोड़ में प्रसन्न, अत्यंत ज़ोर से बोलने वाले थे । हाथ में वे मुसल, गदा, धनुष-बाण आदि अस्त्रों को लिए हुए थे । (?) वे इतनी अधिक संख्या में वहाँ एकत्र हो गये कि लगा शरदकाल में गरलनद बह रहा है।।२६७।।

उन बलशाली असुरों के नयन मानों जल रहे थे, पहाड़ों का-सा उनका आकार था, वे शरीरों का दलन करने वाले थे । अत्यंत बलशाली वे असुर सैनिक तम जैसा रूप लिए थे । शरबल में ही उनके लिए सब सुख और सफलता निहित थी । रण में दृढ़ वे दैत्य अति विमल रण-कमल को सदैव सन्मुख रखते थे ।।२६८।।

'हय' करके वे हाथी-घोड़ों पर सवार होकर आकाश छू आने वाले थे । सबको थराने वाले, हाथों में नये-नये तेजोमय ध्वज लिए हुए, वे दिन चढ़ने पर रण के लिए प्रयाण करने लगे ।।२६९।।

शार्दूलवृत्तम् :

अत्यंत क्रोधित हो वे दैत्य कृष्ण के समीप युद्ध करने आ पहुँचे । अनेक अस्त्र धारण किए वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे मेघों से ढँके पर्वत् ! हाथों में उनके चमचमाते हुए शूल, कृपाण, मुद्‌गर, नाराच, कुर्च, चक्र, धनुष, बाण आदि लिए हुए थे।।२७०।।

उन्हें आते देख कृष्ण ने अस्त्रराज आग्नेय हाथ में लिया । ऐसा प्रतीत होता था कि कल्पावसान के समय पर्वत-शृंग जल रहे हों । तब रणकुशल बलराम ने कहा कि हे स्वामी, इस असुर सेना से मैं युद्ध करूंगा, ऐसा विधान कीजिए ।।२७१।।

मैं पूर्वाभिमुख होकर लड़ूंगा, वैनतेय आगे, प्रद्युम्न तुम मेरी बाईं ओर रहो

और कृष्ण की जय हो। - वे दाई और रक्षणार्थ रहेंगे । इन मदोन्मत्त असुरों के साथ भयंकर युद्ध करने के लिए मुझे मन में जाने यह कैसा आनंद-सा अनुभव हो रहा है ।।२७२।।

इतना कहकर बलराम दैत्य सेना से भिड़ गये ! उन्होंने पल भर में रौद्ररूप धारण कर यम के समान अपनी आकृति बनायी ! लांगलास्त्र चला-चला कर वे पूरे बल से असुरों की मार-काट डाल रहे थे जिससे वे सभी भयकम्पित हो उठे ।।२७३।।

चतुर प्रद्युम्न ने भी शर-वर्षा करके रण में अनेक दैत्यों को मार डाला । गरुड़ भी अपनी चोंच, नखों और पंखों के प्रहार से करोड़ों असुरों को मार रहे थे। कृष्ण भी स्वयं अनेक बार शंख का घोष करते हुए पूर्व दिशा में युद्ध कर रहे थे और उन्होंने भी अनेक को नष्ट कर दिया ।।२७४।।

उस घोर महायुद्ध में रक्त की नदियां बह चलीं । जिनमें तत्काल अनेक कायर बह गये, मानों लज्जा में डूब रहे हों । चारों ओर से शिरों के ढेर उसमें डूबने लगे । आकाश से सुरकामिनियां कृष्ण आदि के सिर पर पुष्प बरसाने लगीं ।।२७५।।

चयावृत्तम् :

उसी समय दैत्यों की रक्षा के लिए भयानक तीन-सिर- तीन पैर वाला दुर्मद ज्वर युद्ध करने आया । सहस्रों मेघों के समान वह गर्जना कर रहा था । वह बार-बार उश्वास छोड़ता और जम्हाइयां लेता था।।२७६-२७७।।

उसकी आंखें घूमती हुई और अधमुंदी थीं, उसके मुख को देखकर भ्रम होता था कि वह निद्रित है ।।२७८।।

उसकी रोमावली खड़ी थी, और वह उश्वास छोड़ रहा था । तब हंसकर हलधर ने कहा यह कौन यहां खड़ा है ! संसार में उस जैसा उन्होंने और कोई देखा नहीं था ! वह (ज्वर) उनसे कहने लगा, "ठहरो, आज युद्ध में क्षण भर में तुम्हारी मौत आयेगी" ।।२७९-८०।।

उससे तुमुल युद्ध करने के लिए जब हलधर आगे बढ़े तो ज्वर ने भस्मास्त्र से उनके वक्ष स्थल पर प्रहार किया । हलधर मानो निर्मूल होकर संग्राम में गिर पड़े । वह भस्म तब सुमेरु पर्वत के ऊपर गिर पड़ी। सुमेरु के शिखर से वह भस्म धरती पर आ गिरी जिससे भयानक विस्फोट हुआ और पर्वत-शिखर हिल उठे ।।२८१-२८३।।

रोहिणेय (बलराम) बोले - हे गोविन्द, मैं जल गया ! लगता है इस समय मेरी यह जान ही निकल जायेगी । यह नया ही रूप धारण किये इस (ज्वर) को जाने, हे केशव, किसने भेजा है । ये वचन सुनकर कृष्ण ने बलराम को गले लगाया ।।२८४-२८५।।

कृष्ण ने गले से लिपटते ही बलराम को मानो जिला लिया । बलराम बोले यह जो भयंकर पीड़ा, हे केशव, इस ज्वर ने मुझे दी थी, आपने दूर कर दी ।।२८६।।

श्रीभगवान :

हे ज्वर, आओ, मेरे साथ युद्ध करके अपनी शक्ति प्रदर्शित करो । आओ हम दोनों अब रण में मिलें ताकि मैं भी तुम्हारी गति-मति जान लूं ।।२८७।।

इस पर ज्वर ने कृष्ण पर भी दो मुट्ठी अत्यंत दाहक भस्म फेंका । क्षण भर को नारायण दाह से पीड़ित हुए । उनका चित्त रण में उद्भ्रांत हो गया।।२८८।।

फिर उसने कृष्ण पर मुक्के से प्रहार किया । कृष्ण ने भी ज्वर को पटक कर गिरा दिया । निशाचरों ने देखा कि ज्वर ने उनके हृदय पर अग्नि प्रहार किया ।।२८९।।

तब उन युद्ध-कुशल पुरुष-श्रेष्ठ ने उससे ऐसा युद्ध किया कि धरती और आकाश कांप उठे । कृष्ण ने उसे पछाड़कर धर दबाया और कहा कि "कहां जाता है"। ज्वर ने माया द्वारा अपने शरीर को छिपा लिया । नारायण ने समझा कि वह मर गया । पर वह कृष्ण की भुजाओं से छूट कर उनके वक्ष स्थल में प्रविष्ट हो गया ।।२९०-२९१।।

स्रग्धरावृत्तम् :

कृष्णा को कम्प हुआ, उनके पांव डगमगाये और वे भूमि पर गिर पड़े । उन्हें बहुत ही संताप हुआ । वे जम्हाइयां लेने लगे । हृदय में प्रविष्ट ज्वर ने उन्हें यों कष्ट दिया । उनकी देह को बहुत रोमांच हुआ, वे उश्वास छोड़ने लगे, नींद से उनकी आंखें मुंदने लगीं ।।२६२।।

तब कृष्णा ने ध्यान करके अपने हृदय से अति विषम वैष्णव ज्वर उत्पन्न किया । उस ज्वर ने उस पहले वाले शैव ज्वर को उनकी देह से बाहर निकाल दिया। उसे देख कृष्णा ने क्रोध से उसे मारने के लिए धरती पर पटक दिया । तभी आकाश-वाणी हुई , `हे कृष्णा, सुनो, इस ज्वर को मत मारो` ।।२६३।।

यह सुनकर कृष्णा ने उस ज्वर को मुक्त कर दिया । वह (ज्वर) बोला, `हे देव, सुनें, आपने यह अत्यंत कठिन सुन्दर मुखवाला वैष्णव ज्वर उत्पन्न किया है, किन्तु आपकी कृपा से मैं धरती पर एकमात्र ज्वर रहूं । मैं, आपका दास, आपकी सेवा करूंगा । तब कृष्णा बोले, `हे पवित्र वैष्णव ज्वर, तू अदृश्य हो जा` ।।२६४।।

वैष्णव ज्वर अदृश्य हो गया ।

ज्वर बोला, ` देव मैं आपका दास हूं । मेरे क्रूर शत्रुओं को आप समाप्त करें । हे कंसारि, मुझे आज आप ( दीर्घ ) आयु प्रदान करें ।` प्रभु कृष्णा स्वयं बोले, `तुम्हारा और मेरा यह जो घोर और दुर्जय युद्ध हुआ, जो नर इसका स्मरण करेगा वह विगत ज्वर होकर मर्त्यलोक में निवास करेगा — ऐसा मैं विधान करता हूं ।।२६५।।

वसन्ततिलकम् :

इसके पश्चात् वे दोनों वीर गरुड़ पर चढ़कर अत्यंत क्रोधपूर्वक असुर सेना से लड़ने लगे । शरदकाल में जैसे भयंकर अग्नि में घास जल जाती है, शत्रु भस्म होने लगे । गर्जन करते हुए (बलराम ने) लांगल के घात से सैकड़ों शत्रु मार डाले ।।२६६।।

अस्त्र प्रहार से उन्होंने जिस किसी को मारा वह रणमुक्त हो गया ।

संत्रास से पीड़ित, रक्त में भीगे वे असुर मृत्यु की दिशा में जा-जाकर नष्ट होने लगे । अनर्थ होते देखकर, वे भयभीत हुए और असुर बाण के पास जा पहुंचे ।।२६७।।

शार्दूलवृत्तम् :

बाणासुर :

कवच, प्रास, खड्ग, नाराच आदि तीक्ष्ण अस्त्र तुम धारण किये हो । सभी नामी हो और समर-प्रिय माने जाते हो । तुम्हें ईश्वर (शिव) का सम्पर्क प्राप्त है । तब फिर यों अत्यंत भयभीत होकर सबके सब क्लीव बने-से यहां भाग क्यों आये? क्या तुम लोगों को यह शोभा देता है ? ।।२६८।।

पद्यो :

उधर दानव कृष्ण से कहने लगे कि यह (बाणासुर) हम पर विश्वास न करे तो हम क्या करें । हम अब भाग कर कहीं दूर चले जायेंगे क्योंकि गत-वैभव का कौन भरोसा है ।।२६९।।

रणक्षेत्र में हज़ारों आयुध छोड़कर, अपने विशेष कवचों को खोलकर वे अत्यंत बलशाली दानव परदेश भाग चले । जो शेष रहे वे अस्त्र धारण किये रहे कि जाने कब वह इन वस्तुओं को मांग ले । 'हे देव, हम भयंकर आतंक से ग्रस्त हैं । शरीर न रहे तो कौन किस के लिए युद्ध कर सकता है' ।।३००-३०१।।

जब सभी दानव सैनिक युद्ध से मुक्त होकर प्रभातकाल में भाग चले, तो कुम्भाण्ड बाणासुर से शिव और कार्त्तिकेय के सामने बोला -

शार्दूलवृतम् :

कुम्भाण्ड - यहां कुमार के सहित शंकर हमारे पक्ष में हैं जिन्होंने भस्मासुर आदि असुरों को और अनेक नाग-दैत्य गणों को अकेले ही मार दिया । वहां कृष्ण अत्यंत कुशलता से युद्ध कर रहे हैं । हे दैत्यों के स्वामी बाण, आपको पुन: विपुल और अमन्द सौख्य प्राप्त होगा ।।३०२-३०३।।

नरकटकावृत्तम् :-

यह सुनकर तब परमेश्वर (शिव) नन्दिरुद्र (नन्दो) को साथ लेकर सिंह-रथ पर आरूढ़ हो कृष्ण से युद्ध करने के लिए रण-क्षेत्र में अत्यंत क्रोधपूर्वक ओठ चबाते हुए आये । वह रथ ऐसा प्रतीत होता था मानो शरद का नया चान्द हो ।।३०४।।

कृष्ण ने जब चन्द्रचूड़ (शिव) को आते देखा, तो वे गरुड़ पर चढ़कर युद्ध करने को आये । शिव ने नाराच और चन्द्राकार सौं बाणों से उन पर प्रहार किया जिससे वसुदेवसुत (कृष्ण) को बहुत क्रोध चढ़ा ।।३०५।।

नारायण (कृष्ण) ने तब पार्जन्यास्त्र से महेश पर प्रहार किया । सभी दिशाओं से उनके ऊपर शरवृष्टि होने लगी । तब शिव ने गर्जन करते हुए आग्नेय अस्त्र कृष्ण पर छोड़ा और समझा कि इससे कृष्ण के प्राण निकल जायेंगे ।।३०६।।

धरती पर आग के बाणों की वर्षा होने लगी । क्षणभर गरुड़ के समेत वे सब उसी आग से घिर गये । यह देखकर मद से भरे असुरों ने सिंहनाद किया । उन्हें लगा कि ये सब रण में भस्म हो गये ।।३०७।।

कृष्ण ने वारुणास्त्र का प्रयोग करके उस महादुर्जेय शक्तिशाली आग्नेयास्त्र को शांत किया । तब पिशाच, राक्षस, अंगिरा, रुद्रगणों आदि को उन्होंने चारों ओर से शस्त्रास्त्रों से सफलतापूर्वक ढंक लिया ।।३०८।।

वायव्य, वासव, मोहन आदि अस्त्र उन्होंने भी कृष्ण पर चारों ओर से बरसाये । रुद्र के उन अस्त्रों से त्राण के लिए कृष्ण ने शिव पर प्रज्वलित वैष्णवास्त्र से प्रहार किया ।।३०९।।

काल की भांति मुंह खोले हुए वह अस्त्र परमेश्वर की ओर गया । अत्यंत भय से व्याकुल हो दैत्य विभिन्न दिशाओं में भाग गये । अंधकार छा गया और सभी कुछ आंखों से ओझल हो गया । रुद्र और नन्दि रुद्र (नन्दीश) उसी में मानो विलीन हो गये ।।३१०।।

तब महात्रिलोचन (शिव) ने भी एक तीक्ष्ण बाण मारा, जिससे सारा अंधकार दूर हो गया । फिर उन्होंने अपने धनुष पर चढ़ा कर एक बाण छोड़ा जिससे असुरगण क्षण-भर काम्प उठे — उन्हें लगा कि बस अब कृष्ण गये ।।३११।।

किन्तु सुबद्धिसम्पन्न कृष्ण ने विजृम्भन नाम का अस्त्र शिव पर छोड़ा और शिव जम्हाइयाँ लेने लगे । तब उन्होंने पाँचजन्य शंख फूंका और धनुष की डोरी को टंकारा । सभी प्राणियों के मन में संत्रास व्याप गया ।।३१२।।

अपने पिता की यह दशा देखकर कुमार कार्त्तिकेय कुम्भाण्ड - संचालित विशेष रथ पर अत्यंत क्रोध और साहस से युद्ध करने को आये । रक्त में सने शरीर लिए तीनों विष्णु (कृष्ण), बलराम और प्रद्युम्न भी रणक्षेत्र में स्कन्द के सम्मुख उपस्थित हुए ।।३१३।।

वसन्ततिलकम् :

वायव्य, आग्नेय और पार्जन्यास्त्रों से उन रणचतुरों ने स्कन्द पर आते ही प्रहार किया । किन्तु वे अस्त्र उनके पवित्र शरीर में प्रविष्ट नहीं हुए । स्कन्द ने भी उन पर विशाल बाणों की वर्षा की ।।३१४।।

फिर कार्तिकेय ने रणक्षेत्र में सूर्य के समान प्रकाशमान ब्रह्मशिरा नाम के अस्त्र का प्रयोग किया जिसको और कोई देख भी नहीं सकता था । सभी प्राणी उसे देखकर इधर-उधर भागने लगे । उन्हें अपने जीवन की आशा नहीं रही । तब केशव ने उस विकट अस्त्र को आते देख उसे शीघ्र बीच से काट डाला ।।३१५-३१६।।

इसके बाद कृष्ण ने आयुध राजों का भी राजा अपना महाचक्र निकाला । शत्रु के अस्त्रों का क्षण में निवारण करता हुआ अरि का अंग-भंग करने के लिए वह चक्र चल पड़ा ।।३१७।।

उस अनेक दीपों के समान प्रकाशमान ब्रह्मशिरास्त्र के सामने वह चक्र सूर्य की भाँति उदित हुआ । यह देख शंकर-पुत्र को मन में भारी लज्जा का अनुभव हुआ।।३१८।।

तब कार्तिकेय ने महाउल्का के समान दीप्त कांचन शक्ति हाथ में ली । वह शक्ति कल्पान्तकाल की अग्नि-सी प्रतीत होती थी और अनेक घण्टाओं से युक्त थी। शिवपुत्र ने वह शक्ति छोड़ी तो वह एकदम सनसनाती हुई कृष्ण के वध की आकांक्षा लिए हुए आकाश में लाल आग-सी प्रज्वलित हुई ।।३१६-२०।।

उस प्रज्वलित शक्ति को आकाश में देखकर देवताओं ने सोचा कि बस अब केशव क्षण में जल जायेंगे । अवश्य वे किसी अशुभ घड़ी में युद्ध करने निकले हैं । अब हम निराश कहाँ जायें ?।।३२१।।

पालिनीवृत्तम् :

कृष्ण ने जब उस शक्ति को आते हुए देखा, वे तत्काल हुंकार उठे । उस अत्यंत बलशाली शक्ति की प्रभा क्षीण हो गयी और वह संग्रामस्थल में जा गिरी ।।३२२।।

अंतरिक्ष में सभी देवता यह देख प्रसन्न हुए । तब पलट कर कृष्ण ने पुनः अपना कष्टदायक चक्र निकाला जो यम की भाँति फुफकारता हुआ कुमार को बुलाने गया ।।३२३।।

स्कन्द की ओर चक्र सीधे को आते देख, सभी प्राणियों के चहरे भयत्रस्त हो गये । तब प्रसिद्ध देवी आकाश से आईं और उन्होंने अपने पवित्र पुत्र को रणक्षेत्र से बाहर खींच निकाला ।।३२४।।

षष्ठी :

कृष्ण ने तब गरुड़ पर बड़े बड़े आनंद से शंख बजाकर रणक्षेत्र में सिंहनाद किया । सारा संसार उनका जयजयकार करने लगा ।।३२५।।

कूष्माण्ड :

हे दैत्यराज, मान लो और अनिरुद्ध को उषा विवाह में दे दो । आओ वीरवर, विभु कृष्ण से इस हेतु हम विनय करें ।।३२६।।

वसन्ततिलकम् :

बाण - उषा को मैं उसे विवाह में आज स्वयं दूं जो रात को आकर चोर की भाँति हर्म्य में घुसा ? सुनो, तुम्हारे कुशल के लिए मैं तुम्हें नीति बताता हूं — बिना युद्ध के असुर-जन्म ही निष्फल है ।।३२७।।

कुम्भाण्ड -

कुस्त्री, पागल घोड़ा, डिण्डिम, अस्त्र, ढक्का, भेरी, मृदंग, प्रबुद्ध मनुष्य इनको जाति का पता चलने में ही कुशल है । ये संस्कार के पात्र नहीं होते ।।३२८।।

षट्पदावृत्तम :

वैशम्पायन - तब बाणासुर सुसज्जित होकर कृष्ण से युद्ध करने के लिए सिंहनाद करता हुआ निकला । शोणितपुर में हज़ारों भेरियां बज उठीं । आकाश में सभी देवता प्रकट हुए । असुर उसे देख प्रशस्ति गीत गाने लगे ।।३२९।।

प्रभु कृष्ण ने अम्लान मयूररथ में उसे आते हुए देखा तो वे भी रणक्षेत्र में उसकी ओर लपके । गरुड़ पर बैठे हुए वे सूर्य के समान प्रतीत हो रहे थे । उन समरजयी के मुख पर श्रमजल झलक आया था ।।३३०।।

बाण :-

ठहरो, ठहरो कृष्ण ! युद्ध में तुम जैसे वैभववान के मैं अनिरुद्ध के सहित शीघ्र प्राण हर लूंगा । हे निर्बुद्धि, वनिताएं घर पर तुम्हारे लिए रोयेंगी । द्वारका के सुन्दर उद्यानों में तुम्हें न पाकर बात प्रकट हो जायेगी । द्वारका में तुम्हारे बन्धु-बान्धव याद करेंगे कि शोणितपुर में तुम्हारी मृत्यु हो गयी । वे वहां हाय-हाय करेंगे । हे आठ भुजाओं वाले इस विषम युद्ध में तुम मेरी हज़ार बांहों को कैसे नष्ट कर पाओगे ।।३३१-३२।।

देखो, मेरी इन भुजाओं में करोड़ों चमकते हुए अस्त्र हैं । अनेक आयुधों से भरे अंग युक्त हैं । आज मैं स्वयं तुम्हें पराजित करूंगा । इस विषम घड़ी में तुम्हारे पापों का संग्रह हो चुका है ।।३३३।।

शार्दूलवृत्तम् :

वैशम्पायन :

कृष्ण को मन में बाणासुर के ये वचन बहुत बुरे लगे । विप्लवी सागर के समान उनके मन में भयंकर क्रोध उमड़ उठा । उनकी आँखें आरक्त हो गयीं । वे कल्पावसान के सूर्य के समान प्रतीत होने लगे जिससे तीनों लोकों में बहुत भय व्याप गया ।।३३४।।

तनुमध्यावृत्तम् :

भगवान बोले –

बाण रे, संग्राम में बढ़ हाँकने वाले शूर नहीं हुआ करते । भयंकर रण करके मुझे जीतोगे तो जानूं । तुमने तो कहा था कि तुम ये सारा लोक जीत लोगे । तब फिर तुम्हारे हृदय में यह रण-शोक उमड़ता क्यों है ? ।।३३५-३६।।

वैशम्पायन –

यह कहकर गोविन्द ने मदोन्मत्त बाण को अत्यंत तेज-दीप्त शर तान कर मारे ! उन बाणों ने असुर बाण के ढाल को छेद कर उसके मर्म को बींध डाला । ।।३३७-३३८।।

बाण ने भी अत्यन्त तेजोमय सौ बाण कृष्ण के शुभ कण्ठ को लक्ष्य करके मारे ।।३३९।।

एक दूसरे पर उन्होंने पट्टिस, गदा, शूल आदि से प्रहार किया । तोमरों के प्रयोग से धूल उड़ाई ।।३४०।।

बाण ने अपनी हज़ार बाँहों से उन कृष्ण के साथ युद्ध किया जिनकी देह बस आठ भुजाओं वाली थी ।।३४१।।

शार्दूलवृत्तम् :

दितिनंदन बाण ने तब ब्रह्मणा नाम के श्रेष्ठ अस्त्र का प्रयोग किया जिससे वायु का कम्पन बन्द हो गया, मेघों का नभ में संचरण रुक गया, कहीं कुछ दिखायी

न दिया । भयंकर शर-वृष्टि होने लगी (?) । असुरों ने कृष्ण को मृत्यु को निश्चित समझ कर सिंहनाद किया ।।३४२।।

तब कृष्ण ने यम के समान भयंकर पर्जन्यास्त्र छोड़ा जिससे दानव द्वारा छोड़ा गया अस्त्र शांत हो गया और क्षण में अंधकार दूर हो गया । शुद्ध प्रकाश हुआ और इन्द्र मन में कृष्ण के प्रति मोहित हुए । तब बाण ने पूरे बल से क्रोधपूर्वक अनेक अस्त्रों से कृष्ण पर प्रहार किया ।।३४३।।

पद्दी :

रमारमण ने उन सब क्रूर-कठिन उत्कृष्ट अस्त्रों को काट डाला । तभी उन दोनों के वाहन, गरुड़ और मयूर, परस्पर भिड़ गये ।।३४४।।

शार्दूलवृत्तम् :

दोनों ही घनघोर युद्ध करते हुए एक-दूसरे को चोंच, नख, पंख, पैर आदि के प्रहारों सो पीड़ित करने लगे । तभी गरुड़ ने मयूर का सिर अपनी चोंच में दबा लिया और दाहिने पंख और पैरों से उसके पार्श्व में प्रहार करने लगा जिससे वह रण में लड़खड़ा गया ।।३४५।।

मालिनीवृत्तम् :

इस प्रकार बार-बार उसके हाथ से पिटते - पिटते मयूर अपनी तनिक भी रक्षा न कर सका। स्वयं अजर-अमर शिव ने उसे चेतनाहीन होकर दितिपुत्र बाणासुर के सहित गिरते हुए देखा ।।३४६।।

महादेव ने जब बाण को स्यंदन के समेत पर्वत के समान गिरते हुए देखा तभी उन्होंने नंदीश्वर से कहा कि दैत्य घायल हो गया है, मेरा यह रथ ले जाकर उसको दे दो ।।३४७।।

वसन्ततिलकम् :

तब (शिव को) नमन करके नन्दिरुद्र रथ को लेकर बाणासुर के समीप पहुंचे और उस राजा से प्रसन्न मुद्रा में कहा — यह सुप्रभाव रखने वाला रथ ईश्वर

(शिव) ने भेजा है ।।३४८।।

असुर बाण तब ईश्वर के उस रथ पर जा बैठा और वह महावीर मन में रण-विधा स्मरण करने लगा - - - (?) ।।३४६।।

दैत्य ने पुन: स्मरण करके दीप्त ब्रह्म शिरास्त्र का प्रयोग किया जिससे सारा लोक व्याकुल हुआ - - - (पाण्डुलिपि का ८६ वां पत्र उपलब्ध नहीं) ।।३५०।।

- - - - - तब उस बार उस मदोन्मत्त के अस्त्र को छेद डाला जिससे वह निशाचरेन्द्र भयभीत हो गया ।।३५१।।

उस असुर के पहाड़ जैसे शरीर में प्राण, श्वास या रक्त कुछ भी शेष न रहा । सुरांगनाएं श्वेत फूल बरसाती हुई हंस पड़ीं ।।३५२।।

तब लौट आये चक्र को माधव ने यह सोच कर फिर धारण किया कि बाणासुर को मैंने मार डाला है । तभी कुमार के सहित शिव बोल उठे, "मैं तो हार गया" ।।३५३।।

मन्दाक्रान्ता :

महादेव - हे वीर, हमारी विनय सुन लो, हे माधव, हे आदिदेव, क्रोध में प्रयुक्त अपने इस दिव्यास्त्र महाचक्र को रोकें । तीनों लोकों में आपको युद्ध में कोई जीत नहीं सकता । मेरे स्नेहवश प्रसन्न होकर रणक्षेत्र में बाण की रक्षा करें ।।३५४।।

भगवान बोले - हे वृषभवाहन, यह सब विशेषकर आपका ही तो कार्य है । आपने स्वयं यह प्रपंच रचा, बिना आपके, हे आदिदेव, ऐसा कौन कर सकता था । आप इसे जिला लें, मैं बाण के प्राण नहीं हरूंगा । अब मैं वहां जाता हूं जहां सांपों द्वारा पीड़ित मेरा पौत्र पड़ा है ।।३५५-५६।।

कृष्ण नमस्कार करके रणक्षेत्र से चले गये ।

षष्ठो :

नन्दिरुद्र - हे बाण, तुम यों भुजहीन हो नाचो । इस क्षण शिव तुम पर अवश्य प्रसन्न होंगे । तुम्हें इस प्रकार रक्त में लथपथ, और अति दीन अवस्था में देखकर वे तुम पर दया और कृपा करेंगे ।।३५७।।

स्रग्धरावृत्तम् :

वैशम्पायन - सुनकर भुजबलरहित, कातर और रक्त से लथपथ बाण ने वैसा ही किया। (उसे इस अवस्था में) देखकर नीलकण्ठ (शिव) ने कहा , 'वर माँग, जो चाहिए, दूंगा ।' बाण ने कहा , 'हे महेश्वर, मैं अजर, अमर और शुद्धचित्त से सम्पन्न हो जाऊं ।' श्रीकण्ठ (शिव) ने 'एवमस्तु' कहा - 'तू फिर प्रकृत हो और पुण्यकर्मा बन जा' ।।३५८।।

वैतालीवृत्तम् :

महेश्वर - हे असुरभूप और वर माँग । कह तुझे क्या चाहिए ।।३५९।।

बाणासुर :

जिससे इस नर-नाट्य का अंत हो , हे उमापति, मुझे ऐसा मोक्ष आप प्रदान करें ।।३६०।।

महेश्वर : जो भक्तिवश मुझे नमन करते हैं, उनका मैं पोषण करता हूं और तुष्ट होकर उन्हें मुक्ति के स्थान ले जाता हूं ।।३६१।।

बाण : चक्र द्वारा भुजाओं के कट जाने से मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है, हे शिव, उसे हरें ।।३६२।।

ईश्वर : हे दानव, जो पीड़ा तुझे हो रही है वह इसी समय शांत हो जायेगी ।।३६३।।

बाण : हे शंकर, मुझे यह वर दें कि मैं आपके गणों का प्रमुख 'महाकाल' बनूं ।।३६४।।

ईश्वर : हे दैत्य, जा तू महाकाल बन जा । तेरे हृदय से मेरा ध्यान कभी न जाए ।।३६५।।

बाण : हे धर्म को वहन करने वाले, मुझे इन सभी विरूप भुजाओं के स्थान दो भुजाएं प्रदान करें ।।३६६।।

षष्ठी :

ईश्वर : भक्तिवश तुमने जो-जो वर माँगा, मैंने इस समय तुम्हें दे दिया । अब तू मेरा अनुचर महाकाल है, गणेन्द्र है , मेरा शोभाशाली सुत है ।।३६७।।

ईश्वर अदृश्य हो जाते हैं ।

वसन्ततिलकम् :

इसो बीच गरुड़वाहन वहां गये जहां साँपों के बंधन में पड़े हुए अनिरुद्ध थे । साँपों ने जब अपने शत्रु गरुड़ को आते देखा तो सबके सब भाग कर पाताल चले गये, वहाँ एक भी न रहा ।।३६८।।

शालिनीवृत्तम् :

तब अनिरुद्ध ने केशव के चरणों में प्रणाम किया । कृष्ण ने उस बालक को सस्नेह गले से लगाया और मधुर शब्दों में कहा कि नागों के बन्धन में पड़े हुए तुम्हें कष्ट मिला । अनिरुद्ध अंजलि बाँधकर बोले, "हे त्रिभुवन स्वामी आपकी जय हो ! आपके समान और कौन योद्धा है । आपने जाने कितने असुरों को रण में जीता है, स्वयं इन्द्र आपके चरणों की वन्दना करते हैं । स्वयं सुबुद्ध परमेश्वर (शिव) ने अपने मुंह से आज आपकी प्रशंसा की । सुना है, बलिपुत्र को आपने चक्र से छेद डाला ।।३६९-७०।।

दुक्कटिका :

नारायण ने अनिरुद्ध से कहा , "उषा के समेत गरुड़ पर चढ़ जाओ । हम अब द्वारकापुरी जायँगे । जिस उत्तरदायित्व को निभाने हम यहाँ आये थे वह पूरा हो गया ।।३७१।।

तब अनिरुद्ध उस श्रेष्ठ-सुन्दरी उषा को साथ लिए गरुड़ पर चढ़े । बलराम और प्रद्युम्न को भी उस पर बिठाकर, कृष्ण का चित्त अत्यन्त हर्षित हुआ ।।३७२।।

बाणासुर को हज़ार भुजाएं काटकर, सभी द्वारा प्रशंसित हो और उषा को लेकर तीनों लोकों में यश अर्जित कर वसुदेव के पुत्र (कृष्ण) अपने देश को लौट चले ।।३७३।।

आकाश मार्ग से संचरण करते हुए गोविन्द वरुणदेश पहुंचे । वहां उन्होंने वेलावन में गायों के एक झुण्ड को चरते हुए देखा ।।३७४।।

तब कृष्ण ने गरुड़ से कहा - ये गाएं बाणासुर की हैं । जो व्यक्ति इनका दूध पिये, वह अजर और अमर हो जायेगा ।।३७५।।

ये गाएं वरुणालय में घुस रही हैं - अत: हे गरुड, (इन्हें लाने का) कुछ उपाय करो । यह सुनकर वह धुरन्धर गया और अपने पंखों से वायु उत्पन्न करके उन्हें छिपा दिया ।।३७६।।

तभी वरुण की आठ हज़ार एक-सौ-पांच क्रूर सैनिक रथों पर आरूढ़ होकर रण करने के लिए वहां आ गये । कृष्ण ने उन पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की और वे - - - भाग खड़े हुए ।।३७७।।

उन में से कुछ वरुण के पास चले गये जहां वह विलास कर रहा था । सुरवनिताएं, और गंधर्व, देवताओं और ऋषियों के साथ (उनके पीछे-पीछे स्तुति करते हुए चल रहे थे) ।।३७८।।

उनके माथे पर जलमय श्वेतछत्र था और वे धनुष लिए हुए थे । उन्होंने सुना तो तत्काल अपने पुत्र और बलशाली गणों के साथ बिना किसी शोक के युद्ध करने चले ।।३७९।।

अत्यंत क्रोध में उन्हें आते देखकर चक्रधर ने अपना शंख बजाया और भारी

शरवर्षा करके वरुण देश को मानो दग्ध कर दिया ।।३८०।।

तब मन्त्रपूत करके वरुण ने कृष्ण पर वारुण अस्त्र छोड़ दिया । शुद्धमन रखकर कृष्णाग्र ने वैष्णवास्त्र का प्रयोग किया ।।३८१।।

इससे वरुण की सेना जलने लगी और स्वयं वरुणेश चिल्लाए, "हे हरि, तुम्हारे इस बाण से मैं जल गया" ।।३८२।।

वसन्ततिलकम् :

(कृष्ण ने कहा) देव और गन्धर्व अभी जाकर तुरन्त वे गाएं ले आयें, तभी हे वरुण, मैं अपने अस्त्र को रोकूंगा । वह बोला कि ये गाएं बहुत पहले से मेरे पास हैं । मेरे प्राण भले ही जाएं, ये गाएं मैं दे नहीं सकूंगा । आप मुझे मार सकते हैं । आपके समान , हे देव और कौन है । मुझे फूल की भांति इस विधान (बाणासुर और वरुण के बीच हुई सन्धि) का पालन करने दीजिए । आपके लिए मैं योग्य सेवा विचारूंगा । कृष्ण ने हंसते हुए कहा तभी तो तुम स्वयं आ गये हो ।।३८३-८४।।

शार्दूलवृत्तम् :

वहां से उठकर कृष्ण शीघ्र चले गये । उनके पीछे पीछे इन्द्र, द्वादश आदित्य, मरुद्गण, सिद्ध आदि चले । दूर से ही द्वारका के सुसज्जित द्वारों को देखकर कृष्ण ने (अपने आगमन की सूचना देने के लिए) शंख-ध्वनि की । शंख का शब्द सुनकर अत्यंत आनंदित हुए लोग (स्वागत को) निकल पड़े ।।३८५।।

आगे-आगे चन्द्रमुखी अप्सराएं नाच रही थीं, गन्धर्व अनेक गीत गा-गाकर शोभनीय ताल दे रहे थे । सभी लोग मन में कह रहे थे कि कृष्ण बाणासुर को जीत कर आये हैं । गरुड़ पर चढ़े हुए उनकी नीलच्छवि देह कितनी शोभनीय प्रतीत हो रही है ।।३८६।।

केशव ने जब नाती और उषा के सहित द्वारकापुरी में प्रवेश किया तो फूलों की वर्षा हुई और अनेक वाद्यों की ध्वनि गूंज उठी । द्वारकावासी प्रसन्न होकर

परस्पर कहने लगे कि हम धन्य हैं, स्वयं माधव, जगदीश्वर हमारे रक्षक हैं ।।३८७।।

बाद में इन्द्रादि सभी देवों से अवकाश पाकर बाणासुर को जीतकर आये गोविन्द नातो के सहित अमन्द वैभव को भोगने लगे ।।३८८।।

वसन्ततिलकम् :

अनिरुद्ध ने उषा के सहित क्रीड़ा-विलास किया । उस बालिकाओं के-से अंगों वाली सुकुमारी का स्वप्न सफल हुआ । उपवन में मंद पवन के झकोरों के बीच उन्होंने कामतृषा का गीत-गा-गाकर निवारण किया ।।३८९।।

स्रग्धरावृत्तम् :

कवि अवतार - श्री जैन-उल-आबिदीन के सुशुद्ध धर्मराज्य में, छब्बीसवें वर्ष इष्ट को प्रणाम कर सरस कृष्ण-बाण युद्ध (नाम के काव्य) की रचना की । अवतार भट्ट ने सिद्धों (कुशल कवियों) के काव्यों को देखकर देश्यभाषा में यह रमणीय आख्यान रचा । हरिवंश और प्रसिद्ध महाभारत में यह कथा पहले ही कही गयी है ।।३९०।।

इति । लहर (वर्तमान लार) के सृगालपुरी (वर्तमान शालपुर) नामक स्थान के अवतार भट्ट द्वारा रची गयी बाणासुर-कथा समाप्त होती है ।

लेखक और पाठकों का शुभ हो ।

-----

(6)

ग्राम्य - सम्पदा

अ
========

अन्व	(76)
अन्वर	(15)
अन्यरा	(119
अन्यरे	(4)
अन्वे	(7)
अन्य	(209)
अबनो	
अब्य	(2०9)
अपजो	(41)
अपर	(113)
अपवर्तिने	(37)
अपार	(80)
अपिश	(54)
अप्पू	(20)
अपूर्वो	(170)
अप्पे	(109)
अफ्रस	(327)
अबस	(65)
अबला	(176)
अबलि	(99)
अभंग	(317)
अभ्रन	(155)
अमयमव	(151)
अमरा	(126)
अम्रा	(167)
अमिवृयानो	(155)
अमर	(260)
अमसानो	(330)
अमन्वे	(303)
अमन्वो	(24)
अमृत	(90)
अमितांमिशु	(53)
अमेन	(221)
अम्बर	(115)
अक्ष अय	(371)
अर	(161)
अरगसविजूजया	(137)
अरजुत	(185)
अरण्य	(117)
अरि	(317)
अर्याति	(132)
अरि	(317)
अरूवसन	(47)
अलसो	(46)
अल्पो	(252)
अवतम्रटटे	(390)
अवतारे	(5)
अवमान	(65)
अवाय	(31)
अवसर	(349)
अवा	(76)
अवापि	(74)
अविचारे	(135)
अविछन	(36)

क

प

बाणासुर (7)
बाणासुरनि (50)
बाणासुराज (375)
बाणासुराबे (132)
(बाणासुराने' (113) रूप में भी लिखित
बाबे (155)
बान्धव (332)
बान्धवान् (203)
बान्धुव (79)
बाल (62)
बालङ्गे (76)
बालस (152)
बालाग्नि (389)
बाल् (53)
बालि (50)
बाले (52)
बाडु (19)
बाडुसहरमत् (149)
बिट्ठी (24)
बिम्बारक (219)
बु (3)

बुज (70)
बुजु (221)
बुजेत (69)
बुजा (30)
बुजोन (116)
बुज्ज (72)
बुज्जते (358)
बुज्जना (54)
बुज्जे (165)
बुज्जोम (88)
बुत (310) 'भुत' रूप में भी लिखित
बुड्य (41)
बुद्धयफुल्ल (6)
बुद्धयगुणे (92)
बुद्धयवते (93)
बुद्धयमुक्ति (318)
बुद्धयवन्तो (203)
बुध (80)
बुध (9)
('भुध' और भु' रूप में भी लिखित
बुधि (294)

म

य

यडुस	(74)	यम्येत	(1)
यडेय	(52)	यम्येय	(379)
यडो	(30)	यम्या	(65)
यडोय	(112)	यय	(1[illegible]7)
यडोस	(74)	ययना	(187)
यथ	(241)	ययस	(67)
यनीति	(12[illegible])	ययन्	(32)
यनान	(141)	ययनु	(21)
यमितन्	(201)	ययने	(306)
यनिता	(192)	ययुन	(136)
यने	(29)	यर	(13)
यनेम	(6)	यरकुति	(221)
यनेस	(183)	यरक्षमि	(100)
यने	(155)	यरक्षामिन	(16)
यनो	(32)	यरगे	(235)
यमोह	(116)	यरनु	(4)
यम्नाय	(8)	यरमापुक	(119)
यम्नि	(77)	यरपिया	(175)
यम्नो	(89)	यरवाति	(124)
यम्न	(3)	यरमति	(59)
यम्ने	(369)	यरमने	(94)

साबरे	(71)	सिंग्माव	(128)
सायरा	(360)	सिंहास्य	(130)
मानन्या	(48)	सिंजू	(19)
सानो	(213)	सित	(53)
साफुल	(29)	सिते	(251)
साम	(271)	सितो	(220)
सामवेद	(387)	सिद्ध	(1)
सामू	(19)	सिद्धराम	(236)
सामूस	(216)	सिद्धा	(91)
साम्य	(3)	सिद्धे	(390)
साय्	(162)	सिद्धो	(154)
सारङ्गनेमू	(50)	सिध	(1)
सारीय स्याने	(167)	सुगालपुरीय	(390)
साले	(242)	सु	(85)
साल्म	(105)	सुकुमार	(93)
सासकरय	(17)	सुकुमारे	(94)
सासठ	(256)	सुकीत	(75)
सास्त्	(148)	सुख	(19)
सास्ती	(230)	सुखमय	(59)
खिंग	(81)	सुखानी	(181)
सिंठ	(152)	सुखिन	(64)

====

सहायक साहित्य

अभिनवगुप्त — तंत्रसार, शोध तथा प्रकाशन विभाग श्रीनगर।

अशोक यमुना दत्त — "बाणासुर इतिहास के संदर्भ में", कादम्बिनी नवम्बर, 1969

आचार्य, श्रीराम शर्मा — हरिवंश पुराण (2 भाग) संस्कृति संस्थान, बरेली, 1970 (द्वि० सं०)

उपाध्याय, बलदेव — वैदिक साहित्य और संस्कृति, वाराणसी, 1958, (द्वि० सं०)

उपाध्याय, वासुदेव — प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, वाराणसी, 1961

उपाध्ये, आदिनाथ — लीलावई, कोऊहल, सिंघी जैन ग्रंथ माला, 1949 ।

कपूर, मोती लाला — द हिस्टरी ऑफ मेडीवल कश्मीर, जम्मू, 1971

कल्हण — राजतरंगिणी, एम० स्टीन द्वारा सम्पादित और अनूदित ।

काचरू, ब्रजबिहारी — ए रेफ्रेन्स ग्रैमर ऑफ कश्मीरी, इलिनोइस यू० एस० ए०, 1969

काले, मोरेश्वर रामचन्द्र — हायर संस्कृत ग्रामर, हिन्दी अनुवाद — डा० कपिलदेव आचार्य, इलाहाबाद ।

किर्क, जी० एस० — मिथ इट्स मीनिंग एण्ड फंक्शन्स इन अदर एन्शेन्ट एण्ड मार्डन कल्चर्स ।

केन्ड्रु नेल्सन वीलर — हिस्टोरी ऑफ दि वाइल्ड वर्ल्ड, न्यूयार्क 1962

कौल, ईश्वर — कश्मीर शब्दामृत, ग्रियर्सन द्वारा सम्पादित कलकत्ता, 1898 ।

कौल, श्रीकण्ठ — 1 - जोनराजकृता राजतरंगिणी - संशोधित पाठ, विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1967 ।

2 - श्रीवर शुक कृता जैनराजतरंगिणी (संशोधित पाठ ', विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1966 ।

खुल्लर, गुरदीप सिंह — " भारतीय इतिहास चेतना" परिशोध 15, हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

खुबचन्दानी, लक्ष्मण — फोनीमिक्स सीक्वेंसिज इन सिन्धी, इण्डियन लिंग्विस्टिक्स, 1961, रिप्रिंट ।

ग्रियर्सन, जार्ज अब्राहम — 1 - स्केच ऑन कश्मीरी ग्रामर, लन्दन और कलकत्ता 1899 ।

2 - ए मैन्युअल ऑफ दि कश्मीरी लैंग्वेज (2 भाग) आक्सफोर्ड 1911 ।

3 - लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया (जिल्द 8, भाग 2)

4 - दि लैंग्वेज ऑफ [महानय] प्रकाश

चाटुर्ज्या, सुनीतिकुमार — 1 - दि ओरिजन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ बंगाली लैंग्वेज, कलकत्ता 1926 ।

फ्रेन्ज़ मेक्सन वीवर — स्टोरी ऑफ दि वाइवल वर्ल्ड , न्यूयॉर्क 1962

कौल , ईश्वर — कश्मीर शब्दामृत , ग्रियर्सन द्वारा सम्पादित कलकत्ता , 1898 ।

कौल , श्रीकण्ठ — 1 – जोनराजकृता राजतरंगिणी – संशोधित पाठ , विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान , होशियारपुर, 1967 ।

2 – श्रीवर शुक कृता जैनराजतरंगिणी (संशोधित पाठ ' , विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर , 1966 ।

खुल्लर , गुरदीप सिंह — " भारतीय इतिहास चेतना " परिशोध 15, हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

खूबचन्दानी , लक्ष्मण — फोनोमिनल सफिक्सिज़ इन सिन्धी , इण्डियन लिंग्विस्टिक्स , 1961, रिप्रिंट ।

ग्रियर्सन , जॉर्ज अब्राहम — 1 – एसेज़ ऑन कश्मीरी ग्रामर , लन्दन और कलकत्ता 1899 ।

2 – ए मैनुअल ऑफ दि कश्मीरी लैंग्वेज (2 भाग) ऑक्सफोर्ड 1911 ।

3 – लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया (जिल्द 8, भाग 2)

4 – दि लैंग्वेज ऑफ महानय प्रकाश

चाटुर्ज्या , सुनीतिकुमार — 1 – दि ओरिजन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ बंगाली लैंग्वेज , कलकत्ता 1926 ।

2 - भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी (हिन्दी अनुवाद) दिल्ली, 1954

बगारे, ग० बा० — हिस्टॉरिकल ग्रामर आफ अपभ्रंश, 1948

तिवारी, भोलानाथ — हिन्दी भाषा, इलाहाबाद

तोषखानी, श्रीकण्ठ — सम इम्पॉर्टेण्ट आस्पेक्ट्स आफ कश्मीरी एज़ ए लैंग्वेज, दि तालारुच (अमर सिंह कालेज श्रीनगर की पत्रिका अगस्त 1966)

दवे, ए० पी० बुद्धदत्त — दि न्यू पाली कोर्स, कोलम्बो, 1954

दत्त, जगदीशचन्द्र — किंग्स ऑफ कश्मीर (3 भाग) कलकत्ता।

दत्त रमेशचन्द्र — एन्शेण्ट इण्डिया (लौंगमन्स ग्रीन) 19[illegible]4।

द्विवेदी हजारी प्रसाद — 1 - हिन्दी साहित्य, दिल्ली
2 - हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पटना
3 - सौंदर्य और लालित्य ", परिशोध 7, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

नूरुद्दीन, शेख — " नूर नामा " - मुहम्मद अमीन कामिल द्वारा सम्पादित, श्रीनगर 1965।

पंत, सुमित्रानन्दन — पल्लव

पगे, मु० ग० — लिंग्विस्टिक पेक्युलियेरिटीज़ आफ ज्ञानेश्वरी, पूना 1953।

पिशेल
पिशेल, आर० — ग्रैमेटीक डेर प्राकृत स्प्राखें, हिन्दी अनुवाद, हेमचन्द्र जोशी।

2 - भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी (हिन्दी अनुवाद) दिल्ली, 1954

बगारे, ग० बा० — हिस्टॉरिकल ग्रामर आफ अपभ्रंश, 1948

तिवारी, भोलानाथ — हिन्दी भाषा, इलाहाबाद

तोषखानी, श्रीकण्ठ — सम इम्पॉर्टेन्ट आस्पेक्ट्स आफ कश्मीरी एज ए लैंग्वेज, दि तासारम्ब (अमर सिंह कालेज श्रीनगर की पत्रिका अगस्त 1966)

थेरे, ए० पी० बुद्धदत्त — दि न्यू पाली कोर्स, कोलम्बो, 1954

दत्त, जगदीशचन्द्र — किंग्स ऑफ कश्मीर (3 भाग) कलकत्ता।

दत्त रमेशचन्द्र — [illegible] (लौंगमन्स ग्रीन) 19[illegible]4।

द्विवेदी हजारी प्रसाद —
1 - हिन्दी साहित्य, दिल्ली
2 - हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पटना
3 - सौंदर्य और लालित्य ", परिशोध 7, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

नूरुद्दीन, शेख — " नूर नामा " - मुहम्मद अमीन कामिल द्वारा सम्पादित, श्रीनगर 1965।

पंत, सुमित्रानन्दन — पल्लव

पंडे, मु० ग० — लिंग्विस्टिक पीक्युलियरिटीज आफ ज्ञानेश्वरी, पूना 1933।

पिशेल

पिशेल, आर० — ग्रैमेटीक डेर प्राकृत स्प्राखेन, हिन्दी अनुवाद, हेमचन्द्र जोशी।

	2 - देशीनाम माला (हेमचन्द्र - सम्पादन ।
पुष्पदन्त	महापुराण , पं० ल० वैद्य द्वारा सम्पादित संस्करण, मा० दि० जैनग्रन्थमाला , 1941
*पुष्प , पृथ्वीनाथ	(कश्मीरी भाषा और उसका साहित्य " , चतुर्दश भाषा निबन्धावली में संग्रहीत, पटना 1957 ।
बामजई पृथ्वीनाथ कौल	ए हिस्टरी ऑफ कश्मीर, दिल्ली 1962
बीम्स , जान	ए कम्पेरेटिव ग्रैमर ऑफ मॉडर्न लैंग्वेजिज़ ऑफ इण्डिया ।
बेले टी० ग्राहम	ग्रैमर आफ दि शिणा लैंग्वेज़ , लन्दन
ब्यूह्लर , जॉर्ज	टूर इन सर्च ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स मेड इन कश्मीर , राजपुताना एण्ड सेन्ट्रल इण्डिया , रॉयल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई , 1877 ।
ब्लॉख , जूल	भारतीय आर्य भाषा , हिन्दी अनुवाद - डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय , प्रयाग
भट्ट , जयन्त	आगमडम्बर , डा० वी० राघवन और द्वारा सम्पादित, दरभंगा
भारद्वाज , मैथिलीप्रसाद	" मध्यकाल में रोमांटिक प्रेम का आधार " समाज शास्त्रीय विश्लेषण परिशोध 7 , पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ ।
मजूमदार , आर० सी०	दि वैदिक एज (सम्पादन) बम्बई ।

2 - देशीनाम माला (हेमचन्द्र – सम्पादन ।

पुष्पदन्त — महापुराण, पं० ल० वैद्य द्वारा सम्पादित संस्करण, मा० दि० जैनग्रन्थमाला, 1941

पुष्प, पृथ्वीनाथ — (कश्मीरी भाषा और उसका साहित्य ", चतुर्दश भाषा निबन्धावली में संग्रहीत, पटना 1957 ।

बाम्जई पृथ्वीनाथ कौल — ए हिस्टरी ऑफ कश्मीर, दिल्ली 1962

बरिम्ज, जान — ए कम्पेरीटिव ग्रैमर ऑफ मॉडर्न लैंग्वेजिज ऑफ इण्डिया ।

बेले टी० ग्राहम — ग्रैमर आफ दि शिणा लैंग्वेज, लन्दन

ब्यूह्लर, जॉर्ज — टूर इन सर्च ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स मेड इन कश्मीर, राजपूताना एण्ड सेन्ट्रल इण्डिया, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई, 1877 ।

ब्लाख, जूल — भारतीय आर्य भाषा, हिन्दी अनुवाद – डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, प्रयाग

भट्ट, जयन्त — आगमडम्बर, डा० वी० राघवन और द्वारा सम्पादित, दरभंगा

भारद्वाज, मैथिलीप्रसाद — " मध्यकाल में रोमांटिक प्रेम का आधार " समाज शास्त्रीय विश्लेषण परिशोध 7, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ ।

मजूमदार, आर० सी० — दि वैदिक ऐज (सम्पादन) बम्बई ।

मजूमदार, सुरेन्द्रनाथ	कनिंघम्स एन्शेण्ट ज्योग्रफी ऑफ इण्डिया, कलकत्ता
मुंशी, क0 मा0	1 - कृष्णावतार (2 भाग) भारतीय विद्याभवन बम्बई।
	2 - दि हिस्टरी एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल (भाग 6) भारतीय विद्याभवन, बम्बई।
मेघ, रमेश कुंतल	तुलसी आधुनिक वातायन से, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी।
युंग, कार्ल	मैन एण्ड हिज़ सिम्बल्स, लन्दन
रघुवंश, डॉ0	प्रकृति और काव्य (संस्कृत खंड)
रूद्रट	काव्यालंकार
रैंक, ओटो	दि मिथ आफ दि बर्थ ऑफ दि हीरो (अंग्रेजी अनुवाद) लन्दन
रोज़ एच0 जे0	ए हैण्डबुक आफ ग्रीक माइथॉलोजी
लल्लेश्वरी	ललवाक्यानि
लारेन्स, वाल्टर आर0	दि वैली आफ कश्मीर पुनर्मुद्रण, श्रीनगर, 1967।
लैंगर, सुसान्ने के0	1 - फिलॉसफी इन न्यू की
	2 - फीलिंग एण्ड फॉर्म
वर्मा, सिद्धेश्वर	दि एण्टिक्विटीज़ ऑफ कश्मीरी - एन एप्रोच
वाजपेयी, कैलाश	आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प
वेंकटेश्वर प्रेस	1 - हरिवंश पुराण
	2 - शिवपुराण

वैद्य, परशुराम लक्ष्मण	1 - प्राकृत व्याकरण (हेमचन्द्र) पूना 1928 2 - महापुराण (पुष्पदन्त) मा0 दि0 जैन ग्रन्थमाला 1941। 3 - हरिवंशपुराण (संशोधित पाठ) पूना
शर्मा, हरद्वारी लाल	सौंदर्य शास्त्र, इलाहाबाद, 1953
शितिकण्ठ	महानय प्रकाश, पं0 मुकुन्द राम शास्त्री द्वारा सम्पादित, श्रीनगर 1918
सक्सेना, बाबूराम	इवोल्यूशन ऑफ अवधी
सिंह, शिवप्रसाद	कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, इलाहाबाद, 1955
सूफी, गुलाम मुहम्मद	कश्मीर (2 भाग) लाहौर 1949 ।
स्कली, जैमा	माडर्न पोएट्स आन माडर्न पोएट्री
स्टीन, एम0 ए0	1 - एन्शेण्ट ज्योग्रैफी ऑफ कश्मीर, कलकत्ता 1899 2 - कल्हणस राजतरंगिणी
स्वयंभू	पउमचरिउ
हसन, मुहीबुल	कश्मीर अण्डर दि सुल्तान्स, कलकत्ता, 1959
हसनशाह, पीर	तारीख - ए - हसन
हेग, वुल्जे	कैम्ब्रिज हिस्टरी ऑफ इण्डिया (भाग 3)
हेमचन्द्र	1 - देशीनाम माला, आर0 पिशेल द्वारा सम्पादित 2 - सिद्ध हेमचन्द्र, पं0 प0 वैद्य द्वारा सम्पादित ।

वैद्य, परशुराम लक्ष्मण	1 - प्राकृत व्याकरण (हेमचन्द्र) पूना 1928
	2 - महापुराण (पुष्पदन्त) मा0 दि0 जैन ग्रन्थमाला 1941
	3 - हरिवंशपुराण (संशोधित पाठ) पूना
शर्मा, हरद्वारी लाल	सौंदर्य शास्त्र, इलाहाबाद, 1953
शितिकण्ठ	महानय प्रकाश, पं० मुकुन्द राम शास्त्री द्वारा सम्पादित, श्रीनगर 1918
सक्सेना, बाबूराम	इवोल्यूशन ऑफ अवधी
सिंह, शिवप्रसाद	कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, इलाहाबाद, 1955
सूफी, गुलाम मुहम्मद	कश्मीर (2 भाग) लाहौर 1949 ।
स्कली, जैम्स	माडर्न पोएट्स आन माडर्न पोएट्री
स्टीन, एम0 ए0	1 - एन्शेंट ज्याग्रफी ऑफ कश्मीर, कलकत्ता 1899
	2 - कल्हणकृत राजतरंगिणी
स्वयंभू	पउमचरिउ
हसन, मुहीबबुल	कश्मीर अण्डर दि सुल्तान्स, कलकत्ता, 1959
हसनशाह, पीर	तारीख - ए - हसन
हेग, वुल्जे	कैम्ब्रिज हिस्टरी ऑफ इण्डिया (भाग 3)
हेमचन्द्र	1 - देशीनाम माला, आर० पिशेल द्वारा सम्पादित
	2 - सिद्ध हेमचन्द्र, पं० ब० वैद्य द्वारा सम्पादित ।

कोश

टर्नर, राल्फ लिली	1 - ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ माडर्न इण्डो आर्यन लैंग्वेजिज़
	2 - ए कम्पैरेटिव एण्ड एटिमोलोजिकल डिक्शनरी ऑफ नेपाली लैंग्वेज़
नावेल्स	ए डिक्शनरी आफ कश्मीरी प्रावर्ब्स एण्ड सेइंग्स
प्लाट्स	उर्दू - इंग्लिश डिक्शनरी
विलियम्स, मोनियर मोनियर	संस्कृत - इंग्लिश डिक्शनरी
शिप्ले टी0	ए डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिट्रेचर
सेठ, हरगोविन्द तिकमचन्द	पइय सद्द महण्णवो

हस्तलेख

सुखदुःखमोहमायाजालविटतम् :	गणकप्रकाश (15वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध)

1- इण्डियन लिंग्विस्टिक्स
2 - कादम्बिनी
3- जर्नल ऑफ द एशियैटिक सोसाइटी आफ बंगाल
4 - धर्मयुग
5 - परिशोध
6- रायल एशियैटिक जर्नल
7- लालारुख